भूमिका

विश्ववन्दनीय परम कृपालु श्री आदि जिनेश्वरकी असीम कृपासे आज हम अपने प्रेमी पाठकोंकी सेवामें यह ग्रन्थ-रत्न ले कर उपस्थित हो रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थके मूल लेखक श्री उदय-वीर गणि हैं, जिन्होंने संवत् १६५४ में इस ग्रन्थको गद्य संस्कृतमें लिखा है। यद्यपि हेमचन्द्राचार्य आदि अन्यान्य सात-आठ आचार्योंने संस्कृत और प्राकृत भाषामें 'पार्श्वनाथ-चरित्र' लिखे हैं, किन्तु संस्कृतके अल्पबोधि पाठक उनकी कृतिसे यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकते थे, इसी उद्देशसे उक्त गणिजीने इस ग्रन्थकी रचना की है। और इसी ख़यालसे उन्होंने इस चरित्रको कथायें आदि दे कर बड़ा बना दिया है। समूचा ग्रन्थ एक प्रकारसे कथा मय है, किन्तु उन कथाओंमें जैन धर्मके बड़े-से-बड़े सिद्धान्त और गूढ़ तात्त्विक विषय गूंथ कर मणि और काञ्चन संयोगकी कहावतको चरितार्थ कर दी है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर हरएक पाठक वर्णनीय विषयके अतिरिक्त अन्यान्य महा पुरुषोंके चरित्र एवं धर्म तथा नीति-शास्त्रके गूढ़ तत्व आसानीसे हृदयंगम कर सकता है।

वर्तमान समयमें जो लोग कुछ पढ़ सकते हैं अथवा जिन्हें कुछ पढ़नेका शौक है, वे प्रायः उपन्यास पढ़ते पाये जाते हैं। उपन्यास-प्रेमियोंकी संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है, किन्तु

इसे हम शुभ लक्षण नहीं कह सकते। उपन्यास बहुधा असम्भव कल्पनाओं और गपोड़ोंसे भरे रहते हैं इसी तरह सामाजिक कह-लानेवाले उपन्यासोंमें भी अधिकांश उपन्यास ऐसे होते हैं, जिनमें किसी दूसरी जाति या दूसरे समाजके आदर्शोंका वर्णन पाया जाता है। ऐसे उपन्यास हमारे बच्चे, युवक और युवतियोंके लिये उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। इनके पढ़नेसे उन्हें सिवा हानिके कोई लाभ नहीं हो सकता। पुस्तकें, चाहे वे उपन्यास ही क्यों न हों, पाठकोंके आचार विचारोंको उन्नत बनानेवाली— उनके हृदयमें महत्वाकांक्षा और महान अभिलाषाओंको उत्पन्न करनेवाली होनी चाहिये। यह तभी हो सकता है, जब वे किसी उच्च उद्देशको लेकर ही लिखी और प्रकाशित की गयी हों। उपन्यासोंमें यह बात नहीं पायी जाती, इसी लिये वे हानिकारक प्रमाणित होते हैं।

जैन समाजमें ऐसे अनेक महा पुरुष और सती-साध्वियें उत्पन्न हुई हैं, जिनके चरित्र हमारे लिये बढ़िया पाठ्य सामग्री बन सकते हैं। जीवन चरित्रों द्वारा जन समाजको सदाचार, न्याय, नीति तथा धर्म कर्मकी शिक्षा जितनी आसानीसे दी जा सकती है, उतनी और किसी विषयके ग्रन्थों द्वारा नहीं दी जा सकती। साधारण बुद्धिके पाठकोंके लिये तो यह और भी उपयुक्त प्रमाणित होते हैं, किन्तु यह खेदकी बात है कि केवल जीवन चरित्र पढ़नेमें पाठकोंका जी नहीं लगता। जिस प्रकार कुनैन लाभ दायक होनेपर भी उसकी कटुता दूर करनेके

लिये लोग उसे आसानीसे खा सकें इसलिये, उसकी गोलियोंपर चीनी चढ़ा दी जाती है, उसी तरह जीवन चरित्रोंको भी लोगोंकी रुचिके अनुसार कथा-कहानी या उपन्यासके रूपमें उपस्थित करनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसा करनेसे उनकी नीरसता दूर हो जाती हैं, फलतः लोग उन्हें बड़े चावसे पढ़ने लगते हैं और उनसे उन्हें यथेष्ट लाभ भी होता है।

कथा-कहानी और दृष्टान्तोंपर मनुष्यका कुछ स्वभाविक प्रेम होता है। यह प्रेम किसी-न-किसी रूपमें सभी अवस्थाके स्त्री पुरुषोंमें पाया जाता है। इसी प्रेमके कारण छोटे छोटे बच्चे किस्से कहानी सुननेके लिये उत्सुक रहते हैं, इसी प्रेमके कारण युवक-युवतियां उपन्यासोंके पीछे खाना-पीना तक भूल जाते हैं और शायद इसी प्रेमके कारण बड़े-बूढ़े पूर्वजोंका गुण गान किया करते हैं। ऐसी अवस्थामें यह निर्विवाद है, कि महात्माओंके जीवन चरित्र कथा-कहानी और उपन्यासके रूपमें उपस्थित करनेसे वे आवाल-वृद्ध-वनिता सभीके लिये उपयोगी प्रमाणित हो सकते हैं और सभी उनसे लाभ उठा सकते हैं।

मनुष्यकी प्रकृति बड़ी चंचल होती है। उसके हृदयमें नित्य ही नये-नये तरंग और नयी-नयी भावनायें उत्पन्न होकर कार्य रूपमें परिणत हुआ करती हैं। यदि मनुष्य सत्संग करता है और सद्ग्रन्थ पढ़ता है, तो उसके हृदयमें अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं और वह अच्छे ही कार्य करता है। यदि संयोगवश वह कुसंगति और कुग्रन्थोंके फेरमें पड़ जाता है, तो उसे पथभ्रष्ट होते देर नहीं

लगती, मनुष्यके हृदयमें सदा अच्छे विचारोंका उदय हो, अच्छी-अच्छी अभिलाषायें और अच्छी-अच्छी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हों, इसलिये उसे सदा किसी सद्ग्रन्थका मनन करते रहना चाहिये। प्रस्तुत पार्श्वनाथ-चरित्र इसी कोटिका ग्रन्थ है। इसे पढ़नेसे अपूर्व और अपरिमित आनन्द प्राप्त होता है। स्थान-स्थान पर जो उपदेश अंकित किये गये हैं, उन्हें पढ़ कर चित्त निर्मल हो जाता है और उदार, पुण्यवान एवम् धर्मवीर नर-नारियोंके चरित्र पढ़ कर हृदयमें उच्च भावनायें जागृत होती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रावकके बारह व्रतोंका उसके अन्तर्गत पन्द्रह कर्मादान और बाईस अभक्ष्यादिका स्वरूप बहुत ही अच्छी तरह बतलाया गया है। साथ ही निरतिचार पूर्वक रहनेके लिये उसके अतिचारोंका भी वर्णन कर दिया गया है। कर्म विषयक बहुत सी बातें तीसरे सर्गमें अङ्कित की गयी हैं। मिथ्यात्वका त्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण करना धर्मनिष्ठ व्यक्तिके लिये अधिक आवश्यक होनेके कारण चौथे सर्गमें उसका वर्णन किया गया है और रोचक कथाओं द्वारा उनकी पुष्टी की गयी है। इस प्रकार धर्मके अनेक गहन सिद्धान्त यथास्थान बड़े ही उत्तम ढंगसे दे दिये गये हैं और इसीके कारण पुस्तक की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गयी है। सारा ग्रन्थ आदिसे अन्त तक ध्यानपूर्वक मनन करने योग्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थको रोचक बनानेके उद्देशसे हमने इसमें यथा स्थान चउदह रंग-बिरंगे चित्र भी दे दिये हैं। आशा है, पाठकोंको

हमारा यह उद्योग प्रिय प्रतीत होगा।

यहांपर हम अपने परम पूजनीय वयोवृद्ध उपाध्यायजी हेमचन्द्रजी बाबाजीके पूर्ण अनुगृहीत है, जिन्होंने इस ग्रन्थके सम्पादनमें बड़ी सहायता पहुंचायी हैं। आप अजीमगंजके निवासी हैं, किन्तु इधर कई वर्षोंसे कलकत्ते ही रहते हैं। संस्कृतके तो आप उच्च कोटीके प्रखर विद्वान् हैं ही; पर साथ ही यन्त्र-मन्त्र एवं वैद्यक शास्त्रके भी पूर्ण ज्ञाता हैं। यहांपर आपका निजी एक औषधालय भी है, जिसमें आप स्वयं रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं। यह बड़े ही गौरवकी बात है, कि आप जैसे योग्य विद्वान् इस समय यति समाजमें मौजूद हैं।

धर्म-प्रेमी साहित्यानुरागी श्रीयुत बाबू पूरणचन्दजी नाहरको भी हार्दिक धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय दे कर समय-समयपर उचित सम्मति देनेकी कृपा की है।

प्रस्तुत ग्रन्थके दो फार्म छपनेके बाद ही हम मलेरिया ज्वरसे बुरी तरह घिर गये। उपचार करनेपर भी लगातार डेढ़ महिने तक बना ही रहा। अतः इस ग्रन्थके प्रूफ संशोधनमें अनेक त्रुटियें रह गयी हैं; एवं कई जगह प्रेसके भूतोंकी असावधानीके कारण अशुद्धियें छूट गयी हैं। एतदर्थ पाठकोंसे क्षमायाचना पूर्वक निवेदन है कि वे उन अशुद्धियोंको सुधार कर पढ़ें।

दीपावली
ता० ३१-१०-१९२१
२०१, हरिसन रोड, कलकत्ता।

आपका—
काशीनाथ जैन।

पहलेसे ग्राहक बननेवाले परम पूजनीय यति-मुनियोंकी

नामावली ।

२— पूज्य महर्षी उपाध्याय, श्री हेमचन्द्रजी महाराजके शिष्य यतिजी करमचन्दजी तथा प्रशिष्य कनकचन्दजी कलकत्ता ।

१— „ यतिजी उपाध्यायजी जयचन्दजी, कलकत्ता ।

१— „ महोपाध्यायजी श्री सुमति सागरजी तथा मणिसागरजी महाराज, छवड़ा गुंगेर ।

२— „ श्रीमद् वाचक श्री जीवनमलजी, शिष्य गोपालचन्दजी हिंगनघाट ।

१— „ यतिजी लब्धिसागरजी, मारवाड़ जंकशन ।

१— „ यतिजी डूंगरचन्दजी, विलाड़ा (मारवाड़)

१— „ यतिजी जैरतनलालजी, लक्ष्मनपुर ।

श्रावकोंकी नामावली ।

५—श्रीयुत् बाबू बहादुरसिंहजी साहब सिंघी, कलकत्ता ।

४— „ „ सुरजमलजी मानमलजी; मुंगेली ।

३— „ „ भैरूंदानजी कोठारी (हस्तमल लक्ष्मीचन्द) कलकत्ता ।

२—श्रीयुक्त बाबू हस्तीमलजी कटारिया, उलिपुर।
२— „ „ शाह सूरजमलजी उमेदमलजी, विजयानगर।
२— „ „ छोगमलजी मिश्रीलालजी, कटंगी।
२— „ „ छगनलालजी वालचन्दजी दलाल मनमाड़।
१— „ „ किशनलालजी चोरड़िया, कलकत्ता।
१— „ „ गुलाबचन्दजी सुराना, नागोर।
१— „ सेठ भोजराजजी गिरधारिमलजी, चावड़ाहाट।
१— „ बाबू महताब चन्दजी, छजलानी, अजीमगंज।
१— „ „ गम्भीरसिंहजी, छाजड़ अजीमगंज।
१— „ „ श्रीमती प्रभावती अजीमगंज।
१— „ „ हीराचन्दजी गुमानचन्दजी, पोरवाल।
सादड़ी मारवाड़।
१— „ „ ज्ञानचन्दजी मुणोत, कलकत्ता।
१— „ „ पुरनचन्दजी सेठिया, जीयागंज।
२— „ „ छेदुलालजी छजलानी, जीयागंज।
१— „ „ कांसवा केशरीलालजी जैन, रायपुर।
१— „ „ तुलसाजी प्रेमचन्दजी, रामसागर।
१— „ „ नाथुलालजी लक्ष्मीचन्दजी जावदवाला।
१— „ मन्त्री श्वे० स्था० जैन संघ, इतवारी नागपुर।
२— „ „ पृथ्वीराजजी सोहनराजजी बैंगाणी,
पण्डिरीया जमींदारी।
२— „ „ भीखमचन्दजी गोठी, सरदारशहर।

१— „ मन्त्र अमानमलजी सुरजमलजी, सायकार मद्रास।
१— „ सेठ मोतीलालजी कन्हैयालालजी, हापुर। •
१—श्रीयुत बाबू मगनमलजी लालचन्दजी गांग, अहमदनगर।
१— „ „ छोटूलालजी कोचर, फटंगी।
१— „ „ पुनमचन्दजी ओंकारदासजी नाहटा, भुसावळ।
१— „ „ गणेशिलालजी सिंघी, अजीमगंज।
१— „ „ हस्तिमलजी समीरमलजी, चोरड़िया, येला।
१— „ „ गुलाबचन्दजी रेखावत, सिवनी।
१— „ „ लक्ष्मीचन्दजी सेठिया, जीयागंज।
१— „ „ रतनचन्दजी श्रीमाल, रामपुरहाट (वीरभूम)
१— „ „ बछराजजी अमरचन्दजी, बोरगुड़ी।
१— „ „ मोतीचन्दजी रतनचन्दजी जैन, थाना फटंगी।
१— „ „ भैरूदानजी डूगड़, बिदासर।
१— „ „ जवाहरमलजी रुणवाल, राहतगढ़।
१— „ „ कनिरामजी जुगराजजी, मद्रास।
१— „ „ धूलचन्दजी घेवरचन्दजी, मद्रास।
१— „ „ नेमिचन्दजी पारख जैनी, मद्रास।
१— „ „ अमोलकचन्दजी दूगड़, मद्रास।
१— „ „ नगराजजी डांगी, गंगाशहर (बीकानेर \
१— „ „ पुनमचन्दजी उदयराजजी कालुगा, टीएडीवानम
१— „ „ खूशालचन्दजी बुधमलजी, लोनार।
१— „ „ -जुगराजजी फूलचन्दजी सांड ब्यावर।

१—श्रीयुत मन्त्री—श्रीशान्ति जैन श्वेताम्बर सभा, ब्यावर।
१— ,, ,, सोभागचन्दजी बोरा मोमीनाबाद।
१— ,, ,, अमोलखचन्दजी, छोगमलजी फंदोली नरसिंहपुर।
१— ,, ,, खेमचन्दजी ज्ञानचन्दजी जौहरी, लखनऊ।
१— ,, ,, अमरचन्दजी गोलछा, बाहदुरा (आकोला)
१— ,, ,, केवलचन्दजी नवलमलजी तिलोड़ा।
१— ,, लाला परसरामजी सोहनलालजी जैन, रोपड़।
१— ,, सेठ शिवलालजी इन्दरचन्दजी बैद, राहतगढ़।
१— ,, बाबू छितरमलजी मुन्नालालजी, नलखेड़ा।
१— ,, सेठ मानिकलालजी अमरचन्दजी कोचर, फलोदी।
१— ,, सेठ जीवराजजी अगरचन्दजी गोलछा, फलोदी।
१— ,, बाबू रतनलालजी ताराचन्दजी बोथरा, कलकत्ता।
१— ,, ,, मूलचन्दजी बाँठिया, कलकत्ता।
१— ,, ,, खजानचन्दजी पन्नालालजी जैन, चौधरी लालम्बर (पंजाब)
१— ,, ,, पूनमचन्दजी प्रतापचन्दजी कोचर, सिकन्द्राबाद।
१— ,, ,, हिन्दूमलजी बगतावरमलजी बोहरा, भूंटानिवासी मद्रास।
१— ,, ,, छोगमलजी जेठमलजी तातेड़, साण्डिया (मारवाड़)
१— ,, ,, सुजानमलजी सोभागमलजी गुलेछा, मद्रास।
१— ,, ,, मांगीलालजी श्रीमाल जैन 'विशारद', घोलिया।

१—श्रीयुत बाबू लक्ष्मनदास कोठारी, दिंगनघाट।
१— „ „ जालीमसिंहजी श्रीमाल, कलकत्ता।
१— „ „ अभयचन्दजी लछमीलालजी बैद, फलोदी।
१— „ „ आसकरणजी शंकरलालजी गोलछा, फलोदी।
१— „ „ छगनलालजी रुखयान, दिल्ली।
१— „ „ मथमलजी चोरड़िया, रानिपुकर।
१— „ „ रतनलालजी चान्दमलजी कोचर, धमतरी।
१— „ शाह बगराजजी रूपचन्दजी, कोट (मारवाड़)।
१— „ मन्त्री—श्री जैन चन्द्रप्रभा लायब्रेरी, मद्रास।
१— „ बाबु श्रीपतसिंहजी दुगड़, जियागंज।
१— „ „ सम्पतलालजी लूंकड़, फलोदी।
१— „ शाह हिम्मतमलजी रतनचन्दजी जैन, बम्बई।
१— „ बाबू बछराजजी चान्दमलजी बोरा, पारनेर (दक्षिण)
१— „ „ पेमराजजी दीपचन्दजी लोढ़ा, चउसाला (दक्षिण)
१— „ „ डी० ए० पुखराज लोढा जैन, बलरामबाजार।
१— „ मन्त्री—गणि श्री कुशलचन्दजी पुस्तकालय, बीकानेर।
१— „ „ सेठिया जैन ग्रंथालय, बीकानेर।
१— „ „ हेमचन्द्र जैन पुस्तकालय, बीकानेर।
१— „ बाबू गंगारामजी डूंगरवाल, कनौली बाजार।
१— „ मन्त्री—आत्मानन्द जैन पुस्तकालय, मासपुर।
१— „ बाबू तेजमलजी पारख जैन, धमतरी।
१— „ „ केशरीचन्दजी गोठी जैन, बेतुल।

१—श्रीयुक्त बाबू रतनचन्दजी गुलाबचन्दजी बाँठिया, फलोदी।
१— " " मोहनलालजी अमरचन्दजी दफतरी बीकानेर।
१— " बाबू केसरीचन्दजी कोठारी अजीमगंज।
१— " " बहादुरसिंहजी पटावरी अजीमगंज।
१— " " सौभागमलजी बोरा, बड़नगर।
१— " मन्त्री—जैन सभा रोपड़ (पंजाब)
१— " शाह भगवानजी थोनाजी, बम्बई।
१— " बाबू उँकारलालजी नवलखा जैन, छोटीसादड़ी।
१— सेठजी—रघुनाथजी हीराचन्दजी, गोकाक (बलेगाम)
१— " बाबू शंकरदानजी सुभयराजजी, नाहटा, कलकत्ता।
१— शाह गुलाबचन्दजी हीराजी आहोर (मारवाड़)।
१— " बहादुरमलजी पूनमचन्दजी, बालोतरा (मारवाड़)
१— " किस्तुरचन्दजी सदाजी, नूँन (मारवाड़)
१— " चुन्नीलालजी कोनाजी, गोल (मारवाड़)
१— " अमरचन्दजी रामलालजी कोचर, बीकानेर।
१— " हमीरमलजी भँवरलालजी, छापिहेड़ा।
१— " किसनलालजी सम्पतलालजी पाली (मारवाड़)
१— " घेवरचन्दजी सूरजमलजी, भाटापारा (रायपुर)
१— " नानूरामजी सुराणा चान्दीके दलाल, कलकत्ता।

१—श्रीयुत बाबू सेनाजी कपूरचन्दजी, वेलारी।
१— " " जेसराजजी नथमलजी जैन, बेङ्गलोर।
१— " " जसवन्तराजजी दूगड़, नागोर।
१— " प्रसन्नचन्दजी बोरडिया, जीयागञ्ज।
१— " शाह हिम्मतमलजी रतनचन्दजी, बम्बई।
१— " मन्त्री—गुलाबकुमारी लायब्रेरी, कलकत्ता।
१— " बाबू चिन्तामणलालजी भनशाली, नाथनगर।
१— " " इन्द्रमलजी लूनिया, हैदराबाद।
१— " मन्त्री—सर्वहितैषी जैन-वाचनालय, बड़गांव (मारवाड़)
१— " " श्रीचन्दजी नाहटा, किशनगंज।
१— " बाबू मगनमलजी पारख, वन (येवतमाल)
१— " " गणेशमलजी बम्बोली, कलकत्ता।
१— " " राजकुमारसिंहजी मुकीम, कलकत्ता।
१— " " रायकुमार सिंहजी मुकीम, कलकत्ता।
१— " " प्रतापमलजी इन्द्रमलजी बागरेचा, जोधपुर।
१— " " दुलीचन्दजी बैद, कलकत्ता।
१— " " नौबत रायजी बदलिया, कलकत्ता।
१— " " मिठालालजी कोठारी, जेसलमेर।
१— " " कल्लूमलजी पालावत, अलवर।
१— " मन्त्री जैन श्वेताम्बर मित्रमण्डल पुस्तकालय, जयपुर।
१— " बाबू जवाहरलालजी, रक्यान दिल्ली।
१— " " पन्नालाल जैन, दिल्लीजोल।

१—श्रीयुत बाबू मानमलजी कालूरामजी, जयपुर ।
१—„ मन्त्री—महावीर जैन पुस्तकालय, रायपुर ।
१—श्रीयुत बाबू बिसनचन्दजी कोठारी, बुलडाना ।
१— „ मन्त्री—श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञान-भण्डार, इन्दौर ।
१— „ मन्त्री—जैन-श्वेताम्बर ज्ञान-भण्डार, लोहावट, (मारवाड़)
१— „ „ महावीर जैन लायब्रेरी, रावलपीण्डी ।
१— „ बाबू हीरालालजी खारड़, कलकत्ता ।
१— „ मन्त्री—जैन श्वेताम्बर प्रियमण्डल, कंटगी ।
१— „ बाबू गुलाबचन्दजी गणेशीलालजी जैन, शिरपुर ।
१— „ „ सुगनचन्दजी लुनावत, धामक ।
१— „ „ सुखराज रायजी रायबहादुर, नाथनगर ।
१— „ सेठ रोशनलालजी चतुर, उदयपुर ।
१— „ बाबू बिरधीचन्दजी सांकला, उदयपुर ।
१— „ सेठ ताराचन्दजी भूरा, सिवनी ।
१— „ बाबू सूरजमलजी गांधी, डूंगरपुर ।
१— „ „ बजरंगचन्दजी भण्डारी, जोधपुर ।
१— „ „ डेढराजजी कोठारी, चुरू ।
१— „ „ केशरीचन्दजी मोतीचन्दजी, सरदारशहर ।
१— „ मन्त्री—महावीर जैन लायब्रेरी, दिल्ली ।
१— „ बाबू विजयलालजी बैद, फलोदी ।
१— „ „ छगनमलजी मीखमचन्दजी गोलछा, कलकत्ता ।
१— „ „ उत्तमचन्दजी कोचर, बी० ए०, बीकानेर ।

बृहद्गच्छीय परमपूजनीय पूज्यपाद प्रात.स्मरणीय शान्तमूर्त्ति
यतिवर्य श्री कृष्णविजयजी महाराज।

पार्श्वनाथ-चरित्र ।

※ प्रथम सर्ग ※

प्रोद्यत्सूर्यसमं सुरासुरनरैः संसेवितं निर्मलं,
श्रीमत्पार्श्वजिनं जिनं जिनपतिं कल्याणवल्लीघनम्।
तीर्थेशं सुरराजवंदितपदं लोकत्रयोपावनं,
वंदेऽहं गुणसागरं सुखकरं विश्वैकचिन्तामणिम् ॥१॥

अर्थात्—"देदीप्यमान सूर्यके समान, सुर-असुर और मनुष्योंसे सेवित, निर्मल, जिनपति, कल्याणलताके लिये मेघके समान, तीर्थोंके नायक, देवेन्द्र भी जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं। जो लोक-त्रयको पवित्र करनेवाले हैं, ज्ञानादि गुणोंके जो समुद्र हैं, सुख देनेवाले हैं, और संसारके लिये एकमात्र चिन्तामणि हैं, ऐसे श्री पार्श्वप्रभु जिनकी मैं वन्दना करता हूँ।"

प्रभावसे प्रकाशित देवताओंके रचे हुए उत्तम सिंहासनपर विराजमान, चमकते हुए चँवर जिनपर ढुल रहे हैं, जिनपर तीन छत्र लगे हैं, सोना-चाँदी और मणियोंसे चमकते हुए वप्र-त्रयसे जो विभूषित हैं और सूर्यके समान प्रकाशमान हो रहे हैं, ऐसे श्रीपार्श्वनाथदेवको मैं वन्दना करता हूँ।

वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली, देवेन्द्रसे सेवित, सुर-असुर और मनुष्योंसे पूजित, संसार-सागरसे तारनेवाली, विजय देनेवाली, दरिद्रता दूर करनेवाली, विघ्नरूपी अन्धकारको दूर करनेवाली, सुखको देनेवाली और सब अर्थोंकी सिद्धि करनेवाली भगवती सरस्वतीको प्रणाम कर और गुरुके चरण-कमलोंको नमस्कार कर मैं भगवान् पार्श्वनाथका चरित्र लिखता हूँ।

प्रथम भव।

लाख योजनमें फैले हुए जम्बू द्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्रमें बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, बड़े बड़े सुन्दर मकानोंसे सुशोभित, दूकानोंकी श्रेणीसे विराजित और नर-रत्नोंसे अलङ्कृत पोतनपुर नामका नगर है। उसी नगरमें अरविन्दके समान शोभा-युक्त अरविन्द नामके राजा राज्य करते थे। वह बड़ेही न्यायी प्रजा पालक, शत्रुओंको जीतनेमें चतुर, धर्म-निष्ठ, श्रद्धालु, परोपकारी और प्रतापी थे। उनकी पटरानीका नाम धारिणी था, जो बड़ी ही परोपकारिणी, न्यायवती, शीलवती, गुणवती, धर्मवती और पुत्रवती थीं। उनके राज्यमें प्रजा बड़ी ही सुखी थी। उनके पुरोहितका नाम विश्वभूति था। वह विद्वान, पण्डित'

न्याय शास्त्र तथा धर्म-शास्त्रमें कुशल, श्रावक-धर्ममें प्रवीण, राजमान्य और महर्द्धिक थे। यह धर्मनिष्ठ थे। राजाकी पुरोहिताई भी करते थे और प्रतिदिन प्रतिक्रमण आदि धर्म-क्रियाएँ किया करते थे। उनकी प्राणवल्लभाका नाम अनुद्धरा था, जो पतिव्रता, सदाचारिणी और शीलरूपी अलङ्कारको धारण करनेवाली थी। उनके मरूभूति और कमठ नामके दो पुत्र थे, जो बड़े ही चतुर और पण्डित थे। उनमें मरूभूतिकी प्रकृति बड़ी सरल थी। वह बड़ाही सत्यवादी, धर्मात्मा, सज्जन और गुणवान् था, कमठ बड़ा ही दुष्ट, लम्पट, दुराचारी और कपटी था। एक ही नक्षत्रमें और एक ही माँके उदरसे पैदा हुए मनुष्य भी पाँचों उंगलियोंकी तरह एकसे शील-स्वभाव वाले नहीं होते।

कमठकी स्त्रीका नाम अरुणा और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा था। अपनी स्त्रियोंके साथ यह दोनों भाई सभी प्रकारके सुख भोगते हुए अपना जीवन सानन्द व्यतीत कर रहे थे।

एक दिन पुरोहित विश्वभूतिने अपनी गृहस्थीका भार अपने दोनों पुत्रोंको सौंपकर आप केवल जिनधर्म-रूपी सुधारसका स्वाद लेना आरम्भ कर दिया। तृष्णाको त्याग कर, वैराग्यसे मनको एकाग्र कर, वह सामायिक और पौषध आदि करने लगे। कुछ दिन बाद विविकाचार्य नामक गुरूसे अनशन-व्रत ले, एक चित्तसे पञ्च परमेष्ठि मन्त्रका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर वह सौधर्म-देव लोकमें जाकर देवता हो गये। इधर पति वियोगसे व्याकुल अनुद्धरा भी कठोर तप द्वारा शरीर-त्यागकर विश्वभूति-

देवकी-देवी हुई। कमठ और मरुभूति अपने माता-पिताकी प्रेत-क्रिया सम्पूर्ण कर अपनी घर-गृहस्थीकी चिन्तामें पड़ गये। कुछ दिन बाद वे लोग शोक-रहित होकर अपना घर सम्हालने लगे और मरुभूति राजाकी पुरोहिताई करने लगा।

एक दिन श्रेष्ठ प्रशमामृतसे सींचे हुए चारों प्रकारके ज्ञानको धारण करनेवाले हरिश्चन्द्र नामके आचार्य भव्य-जनोंको प्रतिबोध देते हुए पोतनपुरके निकटवाले उपवनमें पधारे। मुनीश्वरके आगमनका समाचार श्रवणकर नगर-निवासी जन अपनी आत्मको धन्य मानते हुए उनकी वन्दना करने गये। उस समय राजा, तथा कमठ और मरुभूति आदि सभी राजवर्ग उनकी वन्दना करनेके लिये आये और वन्दना करके यथा स्थान बैठ गये। मुनीश्वरने अपने ज्ञानके प्रभावसे मरुभूतिको भावी पार्श्वनाथका जीव जानकर विशेष रूपसे उन्हींको लक्ष्य करके धर्म-देशना देनी आरम्भ की :—

"हे भव्यजनों! करोड़ों भवोंमें जिनको प्राप्त करना कठिन है, ऐसी नरभव आदि सकल सामग्रियाँ प्राप्तकर भवसागरके लिये नौकाके समान जैन-धर्मकी आराधना करनेका सदा प्रयत्न करते रहो। जैसे अक्षरोंके बिना लेख, देवताके बिना मन्दिर और जलके बिना सरोवर नहीं सोहता, वैसे ही धर्मके बिना मनुष्य-भव भी शोभित नहीं होता। हे भव्य प्रणिओ! विशेष रूपसे एकाग्र चित्त होकर सुनो—इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर धन, ऐश्वर्य, प्रमाद, और मदसे मोहित होकर इसको व्यर्थ मत

गंवाओ। जड़-कटा वृक्ष, सिर-कटा सिपाही, और धर्म-हीन धनवान् भला कहाँ तक अपनी लीला दिखला सकता है? जैसे वृक्षकी ऊँचाईपरसे नीचे ज़मीनमें गड़ी हुई उसकी जड़का अनुमान किया जा सकता है, वैसेही पूर्वकृत धर्म अदृष्ट होते हुए भी प्राप्त सम्पत्तिसे उसका अनुमान किया जाता है। इसीलिये सुज्ञ-जन धर्मको ही मूल मानकर उसीको सींचते और सब तरहके फल भोग करते हैं। मूढ़जन उसी जड़को काटकर सदाके लिये भोगका रास्ता बन्द कर देते हैं। निर्मल कुल, कामदेवका सा रूप, फला-फूला वैभव, निर्दोष क्रिया, फैली हुई कीर्त्ति; सारे संसारके काम आने लायक और कभी कम न होनेवाला सौभाग्य आदि मनोहर गुण धर्मसे ही मिल सकते हैं। जो धर्मका पक्षावलम्बन करता है उसे ललिताङ्ग कुमार की तरह जय मिलती है। और धर्मका विरोध करनेसे उनके नौकर सज्जनकी ही तरह अनर्थका मूल हो जाता है।

ललिताङ्ग कुमारकी कथा।

इसी जम्बूद्वीपके भरत नामक क्षेत्रमें श्रीवास नामका एक नगर था। वहाँ बहुतेरे राजाओंको अपना दास बनानेवाले नरवाहन नामके राजा राज्य करते थे। उनके कमला नामकी रानी थी, जिनका मुख कमलके समान था, उनके ललिताङ्ग नामका एक पुत्र था, जो बड़ा ही बुद्धिमान्, चतुर बहत्तर कलाओंमें निपुण और शस्त्र तथा शास्त्र-विद्यामें प्रवीण था। वह दीपककी भाँति अपने कुलको उज्ज्वल किये हुए था। दीपकसे तो काजल भी निकलता है; परन्तु कुमारमें जरा भी दोष नहीं था। वह अवस्थामें छोटे थे, तोभी उनमें बहुतसे गुण थे, इसीलिये वह बड़े थे; क्योंकि सिरके बाल सफेद हो जानेसे ही कोई बड़ा नहीं हो जाता। जो युवा होनेपर भी गुणी हो, वही वृद्ध है।

ललिताङ्ग कुमारमें और और गुण तो थेही, परन्तु उनको दानशीलतासे अधिक प्रेम था; जैसा आनन्द उन्हें याचकोंको देखकर होता था, वैसा कथा, काव्य, कविता, अश्व और गजकी लीला देखकर भी नहीं होता था। जिस दिन कोई याचक नहीं आता, उस दिनको वे बहुत बुरा मानते थे। जिस दिन कोई

याचक आ जाता, उस दिन उन्हें पुत्र-जन्मका सा आनन्द होता था, उन्हें दानका ऐसा व्यसन था, कि किसी वस्तुको अदेय नहीं समझते थे।

कुमारके एक सेवक था, जिसका नाम सज्जन था ; पर जो स्वभावका बड़ा ही दुर्जन था। वह कुमारके ही अन्नसे पला था, तोभी उन्हींकी बुराई करता था। जैसे समुद्रके जलसे ही पुष्ट होता हुआ बड़वानल उसीका जल सोखता है, वैसे ही वह सज्जन कुमारके लिये दुर्जन रूप था। इतनेपर भी कुमार उसको अलग नहीं करते थे ; क्योंकि चन्द्रमा कभी कलङ्कको थोड़ेही छोड़ देता है ?

एक दिन राजाने कुमारके गुणोंपर रीझकर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उनको अपने हार आदि मूल्यवान अलङ्कार दे डाले। वह सब कुमारने याचकोंको दे डाला। सज्जनने राजाके पास जाकर इस बातकी चुगली खायी। यह सुनतेही राजाके बदनमें आगसी लग गयी। तुरत ही उन्होंने राज कुमारको एकान्तमें बुलाकर बड़ी मधुर बोलीमें इस प्रकार शिक्षा देनी शुरू की,—"प्यारे पुत्र ! राज्य बड़े झंझटकी चीज़ है। तुम अभी बालक हो, इसलिये तुम्हें बहुतसी बातें नहीं मालूम। यह सारा सप्ताङ्ग राज्य तुम्हारा ही है। पिटारीमें रखे हुए साँपकी तरह यह बड़ी सावधानीके साथ चिन्तनीय है और फले हुए खेतकी तरह इसका बारबार सेवन करना चाहिये। राजाको चाहिये कि किसीका विश्वास न करे। राजा अपने ख़ज़ानेके द्वारा अपने कन्धोंको मज़बूत बनाता

है। इसीके द्वारा उसे अपने स्वार्थोंका साधन और हाथी-घोड़े तथा सेनाकी वृद्धि करनी चाहिये। तुम तो आपही बड़े होशियार और चतुर हो, तुम्हें बहुत कहनेका काम ही क्या है? तुममें दानका जो गुण है, वह बहुत ही उत्तम है, इसमें सन्देह नहीं, पर दानकी भी एक हद होनी चाहिये। बेहद दान देनेकी प्रवृत्ति ठीक नहीं है। कहा भी है, बहुत पाला पड़नेसे पेड़ जल जाते हैं, बहुत पानी बरसनेसे भी अकाल पड़ता है, अधिक खानेसे अजीर्ण हो जाता है, बहुत कपूर खानेसे दाँत गिरनेका डर रहता है। इसलिये हर काममें अति करना बुरा है। अत्यन्त दान करनेसे ही राजा बली बन्धनमें पड़े, अति गर्वसे रावण मारा गया, अति रूपकेही कारण सीता हरी गयी। इसलिये अति सर्वत्र वर्जित है। तुम धन इकट्ठा करनेकी पूरी चेष्टा करो। जबतक धन रहता है, तभीतक स्त्री-पुत्र आदि अपने बने रहते हैं। धनके बिना बड़े-बड़े गुण बेकार हो जाते हैं। इसलिये तुम योंही धन खर्च न किया करो।"

बड़े हर्षसे राजाका यह उपदेशामृत पानकर कुमारने अपने मनमें कहा,—"आह! मैं धन्य हूँ, जो मेरे पिता स्वयं मेरी इतनी प्रशंसा करते हैं। यह तो सोने और सुगन्धका मेल हो गया। माँ-बाप और गुरुकी शिक्षासे बढ़कर अमृत दूसरा नहीं है।" यही सोच कर कुमारने कहा,—"पिताजी! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" यह कह, पिताको भक्ति पूर्वक प्रणाम कर कुमार अपने निवास-स्थानको चले गये।

पिताके कहे अनुसार दानमें कमी कर देनेसे कुमारकी बड़ी बदनामी होने लगी। एक दिन कितनेही याचकोंने मिलकर कुमारसे कहा,—"हे दानवीरोंमें मुकुट-रूपी कुमार! आपने यह एकाएक कैसा काम करना शुरू कर दिया? दान करनेमें चिन्तामणिके समान होते हुए भी आप पत्थरके टुकड़ेकी तरह क्यों हो गये? इस जगतमें दानही श्रेष्ठ वस्तु है। जैसे दूध बिना गायको कोई पूछ नहीं होती, वैसेही मक्खी चूसको कोई नहीं पूछता। कहा भी है कि चिंटियोंका जमा किया हुआ धान्य, मक्खियोंका जमा किया हुआ शहद और कृपणोंकी जमा की हुई लक्ष्मी दूसरेही भोग करते हैं। संग्रह करते करते समुद्र तो पातालमें पहुँच गया और दानी मेघ सबके सिरपर गरजते रहते हैं। धन, देह और परिवार आदि सभीका नाश हो जाता है, किन्तु दानसे उपार्जन की हुई कीर्त्ति सदा जगतमें जागती रहती है। हे कुल दीपक कुमार! आपकी मति ऐसी क्योंकर पलट गयी? सन्तजन तो अङ्गीकार किये हुए व्रतको कभी नहीं छोड़ते। कहा भी है कि, सूर्य किसके कहेसे अन्धकारका नाश करता है? राह चलनेवालोंके सिरपर छाया करनेके लिये वृक्षोंसे कौन कहने जाता है? वर्षामें पानी बरसानेके लिये कोई बादलोंसे प्रार्थना थोड़े ही करता है? सज्जनोंका तो स्वभावही है कि दूसरोंकी भलाई करें। उत्तम पुरुष जिस कामको उठाते हैं, उसे कभी नहीं छोड़ते। धतूरेका फूल बिना गन्धका होता है, तो भी महादेव उसे नहीं त्यागते। इसी तरह महादेव विषको, चन्द्रमा

मृगको, समुद्र बड़वानलको बुरा होनेपर भी नहीं छोड़ते फिर प्रिय वस्तुके त्यागकी क्या बात है? सुधाकरमें कलङ्क, पद्मनालमें कण्टक, समुद्रमें जलका खारीपन, पण्डितमें निर्धनता, प्रियजनोंमें वियोग, सुरूपमें दुर्भगत्व और धनीमें कृपणत्व आदि प्रत्येक उत्तम वस्तुमें इन दोषोंको उत्पन्न कर विधाता ही रत्न-दोषी कहलाये। इसलिये हे कुमार! आप अङ्गीकार किये हुए दानव्रतको मत त्यागें। क्योंकि समुद्र भलेही अपनी मर्यादा छोड़ दें, अचल पर्वत भलेही चलायमान हो जायें; पर महापुरुष प्राणान्त होनेपर भी अपने स्वीकृत व्रतका त्याग नहीं करते।"

याचकोंकी ये बातें सुन ललिताङ्ग कुमार अपने मनमें विचार करने लगे,—"अब मैं क्या करूँ? यह तो एक ओर कुआँ और दूसरी ओर खाईं वाली मसल हुई। एक ओर तो पिताकी आज्ञा है, जो टालने लायक नहीं और दूसरी ओर निन्दाका भय है। यह बहुत ही बुरा है, इसलिये अब चाहे जो हो, मैं तो दान करनेसे मुंह न मोड़ूँगा।"

यही सोच कर कुमार फिर पहलेहीकी तरह दान करने लगे। यह हाल सुनकर राजा कुमार पर बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने कुमार और उनके नौकरोंको दरबारमें आना बन्द करा दिया। इस अपमानसे मन-ही-मन दुःखी होकर कुमार अपने मनमें सोचने लगे, "मुझे जितना प्रेम दान करनेसे है, उतना राज्य पानेसे नहीं है। जब पिताने मुझे दान करनेके लिये इस तरह अपमानित किया, तब मेरा यहाँ रहना सर्वथा उचित नहीं है। अब मुझे किसी दूसरे

अरे मूढ़! धर्मकी सदा जय होती है, और अधर्मकी पराजय—यह बात औरतें बच्चे, खेतिहर और हलवाहेतक जानते हैं। [पृष्ठ ११]

ही देशमें चला जाना चाहिये। कहा भी है कि देशाटन, पण्डितोंकी मित्रता, वेश्याका संसर्ग, राज सभामें प्रवेश, और अनेक शास्त्रों का अवलोकन ये पाँचों बातें चतुराई पैदा करती हैं, क्योंकि इन बातोंसे तरह तरहके चरित्रोंका परिचय प्राप्त होता है, सज्जनों और दुर्जनोंकी विशेषता मालूम होती है और अपनी ख्याति होती है। इसलिये दुनिया-भरमें घूमना फिरनाही उचित है।"

ऐसाही निश्चय कर कुमार एक दिन रातको चुपचाप घरसे बाहर निकल पड़े और एक अच्छे घोड़ेपर सवार हो एक ओर चल दिये, उस समय वही धूर्त्त, अधम सेवक, जिसका नाम सज्जन था, अपनी दुष्ट प्रकृतिके कारण कुमारके पीछे-पीछे चला। दोनोंही साथ-साथ परदेश जाने लगे।

एक दिन कुमारने रास्तेमें उससे कहा "सज्जन! जिसमें जी लगे, ऐसी कुछ मनोहर बातें कहता चल," यह सुन उसने कहा,—"हे देव! यह तो कहिये, पुण्य और पाप इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ हैं? यह सवाल सुन कुमारने कहा,—"अरे मूर्ख! तू ऐसा सवाल क्यों करता है? तेरा नाम सज्जन है, पर तू भीतरका दुर्जनही मालूम पड़ता है। क्योंकि भौमका नाम मङ्गल, कुयोगका नाम भद्रा, फसलको नाश करनेवाली वर्षाका नाम अति वृष्टि, तीव्र ज्वालामय स्फोटकका नाम शीतला, आदि केवल नाम मात्रको ही हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है। अरे मूढ़! धर्मको सदा जय होती है और अधर्मकी पराजय—यह बात औरतें बच्चे, खेतिहर और हलवाहेतक जानते हैं।"

यह सुन सज्जनने कहा,—"देव! इसमें शक नहीं कि मैं मूर्ख हूँ ; पर यह तो कहिये, धर्म किसे कहते हैं?"

कुमारने कहा,—"रे दुष्ट सुन,—सत्य वचन, गुरु-भक्ति, यथाशक्ति-दान, दया और इन्द्रिय दमन येही तो धर्म हैं और इनसे विपरीत जो कुछ है वही दुःखदायी अधर्म है।"

सज्जनने कहा,—"समय पाकर कभी-कभी अधर्म भी सुख-दायी हो जाता है और धर्मसे ही दुःख होता है। अगर ऐसा न होता, तो आप ऐसे धर्मात्माकी ऐसी हालत ही क्यों होती? इसलिये मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह युग ही अधर्मका है। आजकल तो चोरी चकारी करके धन उपार्जन करनाही ठीक है।"

यह सुन कुमारने कहा,—"अरे पापी! ऐसी नहीं सुनने लायक बातें न बोल। धर्मकी सदा जय होती है। धर्म करते हुए भी यदि कुछ कष्ट हो तो उसे पूर्व जन्मके कर्मोंका विपाक समझना चाहिये। जो अन्यायसे धन पैदा करता है, वह अपने घरमें आपही आग लगाता है।"

फिर उस अधम सेवकने कहा—"इस तरह अरण्यरोदन करनेसे तो कोई लाभ नहीं है। सामने वाले गाममें चलिये। वहाँके लोगोंसे पूछिये। देखिये, वे क्या कहते हैं। यदि वे लोग कह दें कि अधर्मकी जय होती है, तो आप क्या करेंगे?"

कुमारने कहा,—"यदि वे ऐसा कह देंगे,तो मैं घोड़ा आदि अपनी सारी चीजें तुम्हें दे दूँगा और जीवन भरके लिये तुम्हारा दास हो जाऊँगा।"

बस, यही निश्चयकर वे दोनों जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए पासवाले गाँवमें आये और वहाँके बड़े-बूढ़ोंको इकट्ठा कर पूछा,—"सज्जनो! हमें इस बातका बड़ा सन्देह हो रहा है कि अधर्मकी जय होती है या धर्मकी। आप लोग इसका सच सच निर्णय करके बतलाये।" यह अनोखा सवाल सुन वे सबके सब बोल उठे,—"भाई! आजकल तो अधर्मकी ही जय दिखाई देती है।"

यह सुन, दोनों फिर रास्ते पर चले आये। अबके उस दुष्ट सेवकने कुमारकी हँसी उड़ाते हुए कहा,—"कहिये सत्यवादी जी! धार्मिक शिरोमणि जी! अब क्या राय है? अब अपनी सारी चीजें मुझे देकर मेरे दास बनजाइये।"

कुमार अपने मनमें विचार करने लगे,—"राज्य, लक्ष्मी और प्राण भले ही चले जायें; पर जो बात मेरे मुँहसे निकली है, वह तो पूरी होकर ही रहेगी। सुख-दुःख कोई किसीको नहीं देता। सब अपने कर्मोंके सूत्रमें बँधे हैं।" यही सोचकर उन्होंने कहा,—"अच्छा, तुम मेरी पोशाक और यह घोड़ा ले लो, अब मैं तुम्हारा दास बनता हूँ।"

अब तो वह सेवक घोड़ेपर सवार हो ठाठके साथ चलने लगा। अपने घोड़ेके पीछे-पीछे दौड़ते हुए थके-माँदे कुमारको देखकर मन-ही-मन खुश होता हुआ वह दुष्ट नौकर बोला,—"कुमार! धर्म-धर्म चिल्लाने और धर्मका पल्ला पकड़नेसे ही तुम्हारी यह हालत हुई। इसलिये अब भी धर्मका पक्षपात छोड़ो और अपनी यह सब चीज़ें वापिस ले लो।" यह सुन कुमारने

कहा,—"अरे दुष्ट! तेरा सज्जन नाम बिलकुल व्यर्थ है। तू केवल दुष्ट बुद्धि सिखलाता है, इसलिये तू व्याधसे भी बुरा है।"

व्याधकी कथा।

किसी वनमें एक व्याध—शिकारी एक हरिणीपर निशाना किये कानतक बाण खींचे हुए उसे मारने दौड़ा। उसे देख मृगीने कहा,—"हे व्याध! थोड़ी देर ठहर जाओ। मैं अपने भूखे प्यासे बच्चोंको, जो मेरी राह देख रहे होंगे, दूध पिलाकर तुरत तुम्हारे पास चली आऊँगी। यदि न आऊँ, तो मुझे ब्रह्म-हत्या आदि पाँच महापातक लगें।" यह सुन व्याधने कहा,—"इस शपथका मुझे विश्वास नहीं।" मृगी फिर बोली,—"हे व्याध! यदि मैं न लौटूँ, तो मुझे वही पाप लगे, जो विश्वाससे कोई बात पूछने वालेको दुष्ट बुद्धि देनेवालेको लगता है।" यह सुन उस व्याधने मृगीको छोड़ दिया और वह भी अपने बच्चोंको दूध पिलाकर लौट आयी और व्याधसे पूछने लगी,—"हे भाई! मैं किस तरह तुम्हारी मारसे बच सकती हूँ?" यह सुन उस व्याधने सोचा,—"जब पशु भी दुष्ट बुद्धि देते हुए डरते हैं, तब मैं क्योंकर इसे झूठी बात बतलाऊँ?" यही सोचकर उसने कहा,—"यदि तुम मेरी दाहिनी तरफसे निकल जाओ, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।" उस मृगीने ऐसा ही किया और उसकी जान बच गयी। इसलिये विपत्तिमें पड़ने पर भी सन्तजन कभी पापके पास नहीं फटकते। हँस भूखे मर जायेगा, पर कभी कुत्तेकी तरह कीड़े-मकोड़ोंको नहीं खायेगा। गुण रहित और क्षण भंगुर

शरीके लिये धर्मका ही एकमात्र सहारा है। अगर गवई गाँवके गँवारोंने धर्मको नहीं पहचाना, तो क्या इससे उसका महात्म्य कम हो गया? अगर दाखको देखकर ऊँट मुँह फेर ले, तो क्या इससे दाखकी मिठास कम हो जायेगी? वस्तुतः धर्म ही एक सच्चा मित्र है।"

यह सुन उस अधम सज्जनने फिर कहा,—"कुमार! तुम भी बड़े हठी हो। तुम्हारी वही हाल है, जैसा उस गाँवके छोकरेका था, जिसको माँने उसे सिखलाया था कि बेटा! जिस चीज़को पकड़ना, उसे फिर छोड़ना नहीं। एक दिन उसने एक बड़े बलवान साँड़की पूँछ पकड़ी। साँड़ने उसे कितना हैरान किया तो भी उसने उसकी पूँछ नहीं छोड़ी। लोगोंने बारम्बार कहा कि पूँछ छोड़ दे, पर उसने नहीं छोड़ी। वैसा ही हठ तुम्हारा भी है। खैर, एक गाँवके लोगोंने वैसा कह दिया, तो क्या हुआ? अबके दूसरे गाँवके लोगोंसे चलकर पूछा जाये, कि वे क्या कहते हैं। पर इस बार कौनसी शर्त्त रहेगी? अबके यह शर्त्त रखी जाये कि यदि दूसरे गाँववाले भी ऐसा ही कह दें, तो मैं तुम्हारी दोनों आँखें निकाल लूँगा।"

कुमारने यह बात भी निसङ्कोच स्वीकार कर ली। दोनोंने दूसरे गाँवमें जाकर वहाँके लोगोंसे भी वही सवाल किया। होनहारकी बात, इन लोगोंने भी वही राय दी। अबके उस गाँवसे बाहर निकलते ही उस नौकरने कहा,—"धर्म परायणजी! सत्यवादीजी महाराज! अब कहिये, *क्या कीजियेगा!*"

यह सुन कुमारके जीको बड़ी कड़ी चोट लगी और वे जंगलके एक वट-वृक्षके नीचे जाकर कहने लगे,—"हे वन देवताओ! हे लोक पालो! सुनो तुम लोग गवाह रहो। हे धर्म! मुझे केवल तुम्हारा ही आसरा है।" यह कह उन्होंने छुरीसे अपनी दोनों आँखें निकालकर सज्जनको दे डालीं। अबके वह नीच सेवक बोला,—"हे सत्यपारायण कुमार! अब धर्मके सुन्दर फल मजेसे चखते रहो।" यह कह वह घोड़ेपर चढ़ा हुआ चला गया।

इधर दुःख-रूपी नदीके हिलोरेंमें चक्कर खाते हुए कुमार सोचने लगे,—"यह क्या अनहोनी हो गयी? धर्मका पल्ला पकड़े रहनेपर भी यह क्या नतीजा हुआ? अवश्य ही यह मेरे पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंका फल है। पर इसमें तो शक नहीं कि तीनों लोकमें धर्म ही जयका हेतु है।" ऐसा सोच ही रहे थे कि एका-एक सूर्य अस्त हो गये। मानों उनका दुःख देखा नहीं गया, इस लिये वे छिप रहे। पक्षी भी उनका दुःख न देख सकनेके कारण अपने-अपने घोंसलोंमें जा छिपे। सब दिशाओंमें अंधेरा छा गया। इसी समय उस वट-वृक्षपर बहुतसे भारण्डपक्षी इकट्ठे होकर इस प्रकार बातें करने लगे—"भाइयों! जिस किसीने कोई अचम्भेकी बात देखी हो, वह कह सुनाये।" इतनेमें एक बूढ़ा भारण्ड बोल उठा,—"भाइयो मैंने एक अचम्भा देखा है, उसका हाल सुनाता हूँ।"

"यहाँसे पूर्व दिशामें चम्पा नामकी एक बड़ी भारी नगरी है। वहाँ संसार प्रसिद्ध राजा जितशत्रु राज्य करते हैं। उनके

"हे सत्यपरायण कुमार! अब धर्मके सुन्दर फल मजेसे चखते रहो।" यह कह वह घोड़ेपर चढ़ा हुआ चला गया। [पृष्ठ १६]

अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी, सुन्दरी और चौंसठ कलाओंमें प्रवीण पुष्पावती नामकी एक पुत्री है। परन्तु नेत्र नहीं होनेके कारण उसके ये सारे गुण मिट्टीके मोल हो गये हैं। एक दिन राजा उसकी हालत पर विचार कर रहे थे कि दैव भी क्या-क्या करामात किया करता है? पर दैवको दोष देकर ही चुप बैठनातो ठीक नहीं, कुछ इलाज भी करना चाहिये। यही सोच कर राजाने नगरमें ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई राजकुमारीकी आँखें ठीक कर देगा, उसे वे अपनी पुत्री और आधा राज्य दे देंगे। यह सुन देश-देशके नेत्र वैद्य आये और तरह-तरहके उपाये किये; पर उसकी आँखें आराम नहीं हुई। यह देख, राजा बड़ी चिन्तामें पड गये। उन्हें बडा कष्ट होने लगा; क्योंकि चितासे भी चिन्ता बढ़कर है। चिता मरेको जलाती है, पर चिन्ता तो जीते-जी जला डालती है। राजा हर रोज ढिंढोरा पिटवाते-पिटवाते हैरान हो गये; पर कोई आराम करनेवाला नहीं मिला। इसीलिये दुःखित राजा और रानी दोनों कल सवेरे चितामें प्रवेश करने वाले हैं। अब देखा चाहिये, क्या होता है? यहाँसे कल चलकर जरूर देखना चाहिये।"

इसी समय एक छोटेसे बच्चेने बड़े आश्चर्यके साथ पूछा,—"क्यों चाचाजी! क्या राजकुमारीकी आँखें अच्छी होनेका कोई उपाय है? वृद्धने कहा,—"भला जो जन्मसे अन्धी हो, उसकी आँखें किस तरह अच्छी हो सकेंगी? तोभी मणि, मन्त्र और औषधियोंका अचिन्त्य प्रभाव होता है।" उस बच्चेने

फिर पूछा,—"अच्छा, तो उसीका कुछ हाल कह सुनाओ।" वृद्धने कहा,—"रातमें कहनेकी बात नहीं है। कहा भी है कि, दिनमें चारों ओर देखकर बातें करनी चाहिये ; पर रातको तो बोलना ही नहीं चाहिये। कारण, रातको जगह-जगह धूर्त्त लोग छिपे रहते हैं।" यह सुन उस बच्चेने फिर बड़े आग्रहसे पूछा, तब उस बूढ़ेने कहा, कि इस वृक्षके स्कन्ध-प्रदेशमें जो लता लिपटी हुई है, उसीका रस निचोड़ कर भारण्ड-पक्षीकी बीटके साथ मिलाकर आँखमें आँजनेसे नयी आँखें निकल आती हैं।" यही बोलते-बोलते वे सब सो गये। यह सारा हाल ललिताङ्ग कुमारने सुनकर अपने मनमें विचार किया,—"यह बात सच है या नहीं ? पर इसमें सन्देह करनेका क्या काम है ? सन्तोंकी आपत्ति निवारण करनेके लिये धर्म सदा तैयार रहता है।" यही सोचकर कुमारने हाथसे टटोलकर वह लता छुरीसे काटी और उसका रस निचोड़कर पास पड़ी हुई भारण्ड-पक्षीकी बीटमें मिलाकर अपनी आँखोंमें लगा लिया। दोही घड़ियोंके बाद कुमार की आँखें नवीन ज्योतिवाली हो गयीं। यह देख, अपनी चारों ओर निहार कर, कुमारको बड़ा सन्तोष हुआ। कहा भी है कि, जिस मनुष्यका पूर्व-कृत पुण्य जाग्रत रहता है, उसके लिये जंगल भी उत्तम नगर हो जाता है सारे संसारके लोग अपने हो जाते हैं, सारी पृथ्वी खज़ाने और रत्नोंसे भर जाती है। वनमें, रणमें, शत्रुओंके बीचमें, जलमें, अग्निमें, महासमुद्रमें, पर्वत-शिखरपर सोते हुए, प्रमत्त या विषम अवस्थामें पूर्वकृत पुण्य ही मनुष्यकी सदैव-

रक्षा करते हैं। कुमारने सोचा कि यह सब धर्मका ही प्रभाव है, इसलिये अब यहाँसे चलकर चम्पापुरीकी उस राजकुमारी कन्या-को भी आराम कर दूँ।" ऐसा विचार कर वे उसी वट-वृक्षपर चढ़ गये और एक भारण्ड पक्षीके पँखोंके बीचमें जा छिपे। सवेरे ही उठकर वे सब पक्षी चम्पापुरीके बागीचेमें आये। कुमार भी उसके पंखोंसे बाहर निकल, तालाबमें नहा-धोकर स्वादिष्ट फल खानेके बाद नगरकी ओर चले। मार्गमें ढिंढोरेकी आवाज़ सुनकर वे नगरीके मुख्य द्वारके पास आ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि नीचे लिखा श्लोक द्वारपर लिखा हुआ है :—

"जितशत्रोरियं वाचा, मत्पुत्री-नेत्र दायिने।
राज्यस्यार्द्धं स्वकन्यां च, प्रदास्यामीति नान्यथा॥"

अर्थात्—"राजा जितशत्रुकी यह प्रतिज्ञा है कि, जो कोई मेरी पुत्रीकी आँखें बना देगा, उसे मैं अपना आधा राज्य और अपनी कन्या दे डालूँगा, इसमें हेर-फेर नहीं होगा।"

यह श्लोक पढ़, मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कुमारने आस-पासके लोगोंसे कहा,—"भाइयो! तुम लोग जाकर राजासे कहो कि एक विद्यावान् सिद्ध-पुरुष आया हुआ है और कहता है कि मैं राजकुमारीकी आँखें ठीक कर दूँगा।" लोगोंने तुरत ही राजाके पास जाकर यह बात कह सुनायी। राजाने उन लोगोंको बहुतसा धन दिया और तुरत ही कुमारको अपने पास बुलवाया। उनके आनेपर राजाने उन्हें बड़े प्यारसे गले लगाया और बड़े आदरसे आसन देकर कहा,—"पुत्र! तुम कहाँसे आ रहे हो?

तुम्हारी जाति और कुलका परिचय क्या है? तुम्हारा नाम क्या है? यह सुन कुमारने कहा,—"स्वामी! विशेष पूछ-ताछ करनेसे क्या लाभ है? आपको जो काम लेना है, वह बतलाइये। उसीसे आपको सब प्रश्नोंके उत्तर मिल जायेंगे।" राजाने सोचा,—"यह कोई सात्विक और परमार्थी जीव मालूम पड़ता है। अनुमानसे इसके कुल शील आदि भी उत्तम ही मालूम होते हैं।" यही सोच राजा कुमारको साथ लिये हुए अपनी कन्याके पास आये। वहाँ आकर राजाने कहा,—"हे नरोत्तम! आप मेरी इस कन्याको दिव्यनेत्र प्रदान कर मेरा दुःख निवारण करें।"

कुमारने सुगन्धित-द्रव्य मंगाकर विधि-पूर्वक वहाँ मण्डल बाँधा और होम-जाप करने लगे। कहते हैं कि—शत्रुओंमें, सभामें व्यवहारमें, स्त्रियोंमें और राज-दरबारमें आडम्बरहीकी पूजा होती है। इसी नीतिको स्मरण कर यह सब आडम्बर करनेके बाद कुमारने कमरमें बँधी हुई लता और भारण्डकी बीट निकालकर उन्हींके प्रयोगसे राजकुमारीकी आँखें दुरुस्त कर दीं। राजकुमारी दिव्य नेत्रोंवाली हो गयी। भाग्य-सौभाग्यके निधानके समान और रूपमें कामदेवको जीतनेवाले लावण्य, औदार्य, गाम्भीर्य और सुन्दर चातुर्य आदि गुणोंके आधार-स्वरूप कुमारको देखकर राजकुमारी राजकुमारके प्रेममें बँध गयी। उसे इस तरह प्रेममें फँसी देख राजाने कहा,—"प्यारी पुत्री! ये बड़े परोपकारी पुरुष हैं। कहा है कि, सत्पुरुष अपने स्वार्थका विसर्जन करके भी दूसरोंके स्वार्थका साधन करते हैं, सामान्य जन अपने स्वार्थोंकी

रक्षा करते हुए पराये अर्थका साधन करते हैं और जो अपने स्वार्थके लिये दूसरेके स्वार्थका नाश करता है, वह राक्षस है, उसको उपमा किससे दी जाये। यह तो समझमें ही नहीं आता। प्यारी पुत्री! इन पुरुषोत्तमने अपने गुणोंसे तुझे वशमें कर लिया है और तूने भी अपने आपको इनके हाथोंमें सौंप दिया है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। इसलिये मेरा यह आशीर्वाद है कि, तुम अपने स्वामीके साथ चिरकाल जीवित रहकर संसारके सभी सुख भोग करो।"

इसके बाद राजाने शुभ लग्नमें चित्त और वित्तके अनुसार सब सामग्री इकट्ठी कर उन दोनोंका विवाह कर दिया। कुमारको रहनेके लिये एक बड़ासा महल मिला। अनन्तर राजाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आधा राज्य कुमारको बाँट दिया।

अपने पुण्योंके प्रभावसे कुमार पुष्पावतीके साथ काव्य-कथा रस तथा धर्मशास्त्रके विनोदके साथ सुख-भोग करने लगे। पुण्यसे सारे मनोरथ पूरे होते हैं। कहा भी है कि "हे चित! तू किस लिये खेद करता है? इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? अगर तुझे मनोहर और रमणीय वस्तुओंकी इच्छा हो, तो पुण्य कर, क्योंकि पुण्य बिना मनोरथ पूरे नहीं पड़ते। एक मात्र पुण्यका ही प्रभाव तीनों लोकमें विजय प्रदान करनेवाला है। इसके प्रतापसे बड़े-बड़े मतवाले हाथी, हवासे भी तेज चलनेवाले घोड़े, सुन्दर-रथ लीलावती स्त्रियाँ, वीज्यमान चामरसे विभूषित राजलक्ष्मी, ऊँचा श्वेत-छत्र और समुद्र तक फैली हुई सत्ता प्राप्त

होती है। इसी प्रकार कुमार ललितांग अपने पुण्योंके प्रभावसे प्राप्त हुए सुखोंको भोगते हुए दिन बिताने लगे।"

एक दिन वे अपने महलकी खिड़कीपर बैठे हुए नगरका निरीक्षण कर रहे थे, कि उसी समय एकाएक वही अधम सेवक सज्जन दिखाई दिया। उसके कण्ठ, नेत्र और मुख बीभत्स हो गये थे तथा दुर्निवार क्षुधासे मुख और उदर पिचके हुए थे। वह मलोन शरीरवाला और शरीरपर लगे हुए घावोंपर पट्टी बाँधे हुए था। वह चलती फिरती हुई पापकी मूर्त्ति की तरह मालूम हो रहा था। उसे देख और अच्छी तरह पहचान कर कुमारके चित्तमें बड़ी दया उपजी। वे अपने मनमें विचार करने लगे,—"अहा! इस वेचारेकी ऐसी दुर्दशा क्योंकर हो गयी? शास्त्रोंमें कहा है कि, आदमी कर्मानुसार फल भोगता है और उसकी बुद्धि भी कर्मानुसारिणी ही होती है, तोभी सुज्ञ जनोंको चाहिये, कि अच्छी तरह विचार कर कार्य करें।" इस प्रकार विचारकर कुमारने अपने नौकरोंको भेजकर उसे अपने पास बुलवाया और पूछा,—"तुम मुझे पहचानते हो या नहीं?" यह सुन उसने भयसे काँपते हुए आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंके साथ कहा,—"हे स्वामी! पूर्वाचलके ऊँचे शिखरपर विराजमान सूर्यको भला कौन नहीं पहचानता?" कुमारने कहा,—इस तरहकी शङ्का पूर्ण बात मत कहो। साफ़-साफ़ कहो कि मैं कौन हूँ?" उसने कहा,—"स्वामी! मैं ठोक-ठोक नहीं कह सकता।" ललिताङ्ग कुमारने कहा,—"सज्जन! भला तुमने जिसकी आँखें निकाली थीं, उसे क्योंकर

नहीं पहचानते ?" यह सुनते ही वह लज्जा, भय और शङ्काके भारसे झुककर नीचा सिर किये बैठ रहा। इसके बाद उसके मलिन वेशको दूर कर स्नान और भोजन करानेके बाद अच्छे वस्त्र पहना कुमारने उससे कहा—"सुनो सज्जन! जो द्रव्य अपने सज्जनोंके काममें नहीं आता, वह भी किसी कामका है ?"

यह सुन, वह नीच सेवक अपने मनमें सोचने लगा,—"अहा! कुमारकी मुझपर कैसी अकारण दया है ? कहते हैं कि, जिसे सम्पत्तीमें हर्ष न हो, विपत्तिमें विषाद न हो और समर-भूमिमें धैर्य हो, ऐसे त्रिभुवनके तिलक-स्वरूप पुत्रको कोई विरलीही माँ पैदा करती है।

इसके बाद वह कुछ दिन वहीं आरामसे पड़ा रहा। एक दिन कुमारने उससे बातें करते हुए पूछा,—सज्जन! तुम्हारी ऐसी दुर्गति क्यों हुई ?" सज्जनने कहा,—हे स्वामी! सुनिये, मैं आप की ऐसी दुर्दशा करके आपको वहीं बड़के पेड़ तले छोड़कर चला गया। आगे जानेपर चोरोंने मुझे लाठी-सोंटे और घुस्से-मुक्कोंसे मार-पीटकर मेरा सब कुछ छीन लिया। केवल मुझे पापोंका फल भोगनेके लिये छोड़ दिया। हे स्वामी! मुझे अपने पापोंका फल हाथों हाथ मिल गया और आपने भी अपने पुण्यका फल हाथों हाथ पा लिया। अब मुझे मालूम हो गया कि सचमुच धर्मकी ही जय होती है। हे स्वामी! मेरा मुँह देखनेसे भी पाप लगता है, इसलिये आप मुझे अपने पाससे दूर कर दीजिये।"

यह सुन, कुमारने कहा,—"मित्र! तुम अपने मनमें किसी बात

का सोच न करो। मुझे यह सब कुछ तुम्हारी ही मददसे मिला है। यदि तुमने मेरी वैसी हालत नहीं कर दी होती तो मैं 'यहाँ क्योंकर आता और स्त्रीके साथ-साथ राज्य क्योंकर पाता, इस लिये यह तुम्हारा ही उपकार है। अब तुम सानन्द यहींपर रहो और प्रधानको पदवी ग्रहण कर मुझे निश्चिन्त करो।" इसके बाद सज्जन वहीं आनन्दसे रहने लगा।

एक दिन स्वभावसे ही चतुर राजकुमारीने उसकी दुष्टता परखकर राजकुमारसे कहने लगी,—"स्वामी! यद्यपि कुलीन स्त्रियोंके लिये यह उचित नहीं है, कि अपने स्वामीको शिक्षा दें। तथापि आपका स्वभाव बहुत भोला भाला हैं, इसलिये कुछ कहनेकी आवश्यकता मालूम पडती है। स्वामी! इस सज्जन नामक मनुष्यकी सङ्गति करनी आपके लिये उचित नहीं है। यदि आपका इसपर प्रेम हो, तो इसे कुछ धन या जगह-जमीन भले ही दे डालिये; पर इसको पास हर्गिज मत रखिये। साँपको दूध पिलानेसे उसका जहर बढ़ता ही है। अग्नि तजोमय होनेपर भी लोहेका साथ होनेके कारण उसे घनकी मार सहनी पड़ती है। कहा भी है कि, तपते हुए लोहेपर पड़े हुए जलका नाम भी नहीं मालूम पड़ता; वही जल कमलके पत्तेपर मोतीकी तरह झलकता है और वही यदि स्वाति-नक्षत्रमें समुद्रकी सीपीके मुहमें पड़ जाय, मोती पैदा करता है; इस प्रकारके उत्तम, मध्य और अधम गुण सङ्गतिसे ही प्राप्त होते हैं। इसी लिये सज्जनोंको नीचोंकी सङ्गति कभी सुख देनेवाली नहीं होती। नीतिमें एक दृष्टान्त दिया

है, कि कौओंकी सङ्गतिमें पड़कर बेचारा हंस भी मारा गया। वह दृष्टान्त इस प्रकार है :—

किसी वनमें पानीमें तैरनेकी विद्या नहीं जाननेवाला कोई कौआ बगुलोंको देखा देखी मछली पकडनेकी इच्छासे आकाशसे नीचे उतरा और सरोवरमें बैठा। परन्तु उसे तैरना नहीं आता था, इसलिये सिवारोंमें फँसकर मरनेकी नौबतको पहुँच गया और बहुत व्याकुल होने लगा। उसकी यह हालत देख पास ही रहनेवाली हंसीको बड़ी दया उपजी। उसने अपने पति राजहंससे कहा,—“हे स्वामी! देखो, वह बेचारा कौआ मरा चाहता है। लोग तुम्हें सब पक्षियोंमें उत्तम बतलाते हैं, इसलिये उस बेचारे को किनारे लगाकर उसको जान बचा दो।” यह सुन उस हंसने कहा, बहुत अच्छा। इसके बाद दोनों हंस-हंसीने मिलकर अपनी चोंचमें तृण ले उसीसे उसके सिवारके बन्धनको दूर किया और कौएको बाहर निकाल लिया। क्षणभर चुप रहनेके बाद उस कौएने बड़ी नम्रताके साथ हंससे कहा,—“हे हंस! मेरी बड़ी इच्छा है कि, मैं तुम्हें इस उपकारका बदला दूँ, इसलिये तुम मेरे जंगलमें आकर मुझे सन्तुष्ट करो।” यह सुन हंसने अपनी स्त्रीके मुँहकी ओर देखा। हंसी उसका यह मतलब समझ गयी और एकान्तमें जाकर बोली,—“हे प्राणनाथ! यह बात उचित नहीं है। बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये। साथ ही कभी नीचोंकी सङ्गति नहीं करनी चाहिये। कहा भी है कि :—

"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपुनो, जगमें होत हँसाय॥"

हंसीके इस तरह समझानेपर भी अपनी उदारताके कारण हंसने कहा, कि थोड़ी देरके लिये चला जाता हूँ, इसमें क्या हर्ज है? यह कह वह कौएके साथ उसके जंगलमें चला गया। वहाँ पहुँच कर वे दोनों नीमके पेड़पर बैठ रहे। इतनेमें पासके नगरके राजा अश्वक्रीड़ा करते हुए थके-माँदे उसी पेड़के नीचे आकर बैठ गये। कौएने उसी समय अपने स्वभावानुसार राजाके सिरपर बीट करदी और उड़ गया। हंस वहीं बैठा रहा, इसी समय राजाके एक आदमीने उस हंसको तीर मारकर नीचे गिरा दिया। उसे गिरते देख राजाने कहा,—"वाह! कौआ तो हंस जैसा मालूम पड़ता है।" औरोंने भी यही बात कही। उन लोगोंकी बात सुन अपनी जातिका दूषण निवारण करनेके लिये हंसने कहा :—

नाहं काको महाराज! हंसोऽहं विमले जले।
नीच संग प्रसंगेन, मृत्यु मुखे न संशयः॥

अर्थात्—"महाराज! मैं कौआ नहीं हूँ; बल्कि निर्मल जलके रहनेवाला हंस हूँ; परन्तु नीचकी सङ्गतिके प्रभावसे आज मैं यों मुफ्त मारा गया।"

इस प्रकार अपनी स्त्रीके वचन सुनकर कुमारको बड़ा अचम्भा हुआ, तो भी उन्होंने उस नीचकी सङ्गति नहीं छोड़ी, जो ठीक कोयलेके साथ कपूरकी सङ्गतिके समान मालूम पड़ती थी। कुछ दिन बाद एक दिन राजाने एकान्तमें सज्जनको बुलाकर कहा,—"क्यों सज्जन! तुम्हारी और कुमारकी ऐसी गहरी मित्रता किस लिये हुई? कुमारका देश कौनसा है? ये किस जातिके हैं? इनके माता-पिता कौन हैं? तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?"

यह सुन सज्जनने अपने मनमें विचार किया, कि कहीं कुमार किसी दिन मेरे पहले वर्त्तावको याद कर मेरी कुछ बुराई न कर बैठे, इसलिये उसका आज ही इलाज करना चाहिये। इसी विचार से उसने कहा,—"हे स्वामिन्! जो बात कहने लायक न हो, उसे नहीं कहना ही अच्छा है।" अब तो राजाके जीमें और भी सन्देह पैदा हो गया। उन्होंने कहा,—"इसका क्या मतलब?" इस प्रकार उनकी बात सुन-सुनकर सज्जन हँसने लगा। अब तो राजा अधिक आश्चर्यमें पड़ गये और उसे क़सम देकर पूछने लगे। सज्जनने भी मौका पाकर यों कहना शुरू किया :—

"महाराज! आपकी ऐसी ही इच्छा है तो सुनिये। श्रीवास-पुरमें नरवाहन नामके राजा हैं—मैं उन्हींका पुत्र हूँ। यह मेरा सेवक है और देखनेमें ज़रा सुन्दर है। किसी सिद्ध पुरुषसे विद्या सीखकर यह अपनी जातिकी लज्जा छिपानेके लिये घर छोड़कर इधर-उधर घूमता हुआ यहाँ आया है। पूर्व जन्मके भाग्य-योगसे उसे यहाँ इतनी सम्पत्ति मिल गयी। मुझे इसने पहचान

लिया है और अपना भेद पूछनेके डरसे ही मेरी इतनी खातिर करता है।

सज्जनकी यह बातें सुन राजा व्याकुल होकर सोचने लगे,—"ओह! यह तो बड़ाही गोलमाल हो गया। इसने मेरी प्रतिज्ञाका लाभ उठाकर मेरी पुत्रीसे ब्याह करके मेरे कुलमें दाग़ लगा दिया। इसलिये इस पापी जामाताको दण्ड देना चाहिये।" यही सोच राजाने अपने सुमति नामक मन्त्रीको बुलाकर सारी बातें कह सुनानेके बाद कहा,—"इसको दण्ड देनेकी व्यवस्था करो।" प्रधानने कहा,—"अच्छा या बुरा कोई काम करनेके पहले पण्डितोंको उसके परिणामपर विचार करना चाहिये; क्योंकि उतावलेपनसे किया हुआ काम मरणपर्यन्त दिलमें खटकता रहता है। इसलिये आप जल्दबाज़ी न करें।" मन्त्रीके मना करनेसे राजा उस समय तो चुपहो गये। किन्तु मन हो-मन कुमारके सम्बन्धमें अनिष्ट सोचते रहे। निदान एक दिन राजाने अपने कुछ हुक्मी बन्दोंको बुलाकर कहा,—"आज रातको जो कोई महलके अन्दरवाले रास्तेसे अकेला आता दिखाई दे,उसे तुम लोग बिना कुछ पूछे ताछे मार डालना।" उन लोगोंने कहा,—"जो हुक्म!" यह कह वे सब वहीं एक गुप्त स्थानमें छिप रहे। रातको राजाने अपना एक आदमी कुमारको बुलानेके लिये उनके पास भेजा। उस आदमीने कुमारसे जाकर कहा,—"हे स्वामी! किसी ज़रूरी कामके लिये राजाने आपको महलके अन्दरवाले रास्तेसे इसी समय बुलाया है, इसलिये आप तुरत अकेले चले चलिये।" यह सुन कुमार खड्ग हाथमें लिये हुए

पास ही छिपे हुए राजा के नौकरोंने उसे तलवारके घाट उतार दिया। [पृष्ठ २६]

पलङ्गसे नीचे उतरे और चलनेको तैयार हो गये। इतनेमें उनकी धोतीका छोर पकड़कर उनकी स्त्रीने कहा—हे प्रियतम! आप का भी बड़ा भोला-भाला स्वभाव है। आपको राज-नीति तो बिलकुल ही मालूम नहीं है। इसीसे आधीरातको यों अकेले चले जा रहे हो। चतुर पुरुष कभी किसीका विश्वास नहीं करते। नीतिमें कहा हुआ है कि भला किसने राजाको मित्रता निबाहते देखा या सुना है? हे स्वामी! आपकी जगहपर सज्जन कभी काम करता ही है, आज उसीको भेज दीजिये।" यह सुन कुमार अपनी स्त्रीकी चतुरतापर मुग्ध होकर विचार करने लगे,—"अहा! इसकी बुद्धि कितनी प्रौढ़ है!" यह विचार कर वे मन-ही-मन बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। इसके बाद उन्होंने सज्जनको, जो उसी घरके आँगनमें सोया हुआ था, जगाकर, राजाके पास भेज दिया। वह भी खुश होता हुआ महलके भीतर वाले रास्तेसे होकर चला। ज्योंही वह थोड़ी दूर गया होगा, त्योंही पास ही छिपे हुए राजा के नौकरोंने उसे तलवारके घाट उतार दिया। इसीसे कहते हैं कि "खाद खने जो औरको वाको कूप तैयार।" उसने दूसरेको मर-वानेकी धुन बाँधी थी; पर आप ही मारा गया। उसी समय उसके अकस्मात् मारे जानेकी ख़बर चारों ओर फैल गयी। गड़बड़ सुन राजकुमारी भी हालचाल मालूम करने आयी। सब हाल देख-सुनकर राजकुमारीने अपने स्वामीके पास आकर प्रसन्नताके साथ कहा,—"हे नाथ! हे सरल-स्वभाव! अगर आपने मेरी बात नहीं मानी होती, तो आज मेरी क्या दुर्दशा होती? हे आर्य-

पुत्र ! अब आप कल सवेरे ही सेनासे सजधज कर नगरके बाहर चले जाइये।"

राजाको यह कपट-कला मालूम हो जानेपर सवेरा होते ही राजकुमार सैन्य सजाकर नगरके बाहर निकले। राजा भी क्रोधमें आकर सैन्य लिये, युद्धकी सामग्रियोंसे सजे हुए नगरके बाहर निकल कर कुमारके सामने आये। दोनोंकी सेनाएँ परस्पर भिड़ गयीं। इसी समय राज्यके मन्त्रियोंने आपसमें विचार किया कि राजा यह बड़ा अनुचित काम कर रहे हैं। इसके बाद सब मन्त्रियोंने राजाके पास आकर कहा,—"हे स्वामी ! तीक्ष्ण शस्त्रोंकी तो बात ही क्या है, फूलोंसे भी युद्ध करना उचित नहीं ; क्योंकि युद्ध करनेमें विजय होना तो सन्देह-जनक है। साथ ही प्रधान-प्रधान पुरुषोंके नाशका भी भय रहता है। इसलिये जैसे ग्रहोंके नायक चन्द्रमा और सूर्यका नायक समुद्र है, वैसे ही आप भी प्रजाके नायक हैं। विना विचारे काम करनेसे सिवा बुराईके भलाई नहीं होती, इसलिये आप विचारके साथ काम कीजिये। जो विना देखे-सुने विना विचारे, बिना परीक्षा किये काम करता है, वह जयपुरके राजाकी तरह दुखी होता है। उसकी कथा इस प्रकार है :—

"विन्ध्याचल-पर्वतकी भूमिपर अनेक वृक्ष हैं। वहाँ एक बहुत बड़ा और ऊँचा वट-वृक्ष है। उसपर एक जोड़ा शुक-पक्षीका रहता था। सस्नेह काल निर्गमन करते हुए उन्हें एक पुत्र हुआ। माँ-बापके पंखोंकी हवा और चूर्ण वगैरह खाकर वह बालक धीरे-

धीरे बड़ा हुआ। उसके पर हो आये। एक दिन वह बाल-चापल्य के कारण उड़ता हुआ थोड़ी दूरतक चला गया। इससे उसे थकावट आ गयी और मुँह बाकर पड़ गया। उसी समय उसी तरफसे एक तपस्वी जल लाने जा रहे थे। उन्हें उस बच्चेको देखकर बड़ी दया उपजी। उन्होंने दया करके उसे उठा लिया और अपने वल्कल-वस्त्रसे उसे हवा करने लगे। एवं उसे अपने कमण्डलसे जल निकालकर पिलाया और अपने आश्रममें ले गये। वहाँ स्वादिष्ट नीवारके फल खिला और निर्मल जल पिलाकर वे उसे पुत्रकी तरह पालने-पोसने लगे। धीरे-धीरे वह पक्षी बड़ा हुआ। तापसोंने उसका नाम शुकराज रखा। उसे लक्षणवान् जानकर कुलपतिने उसे पढ़ाना शुरू किया। उसके माता-पिता भी वहीं आकर रहने लगे।

एक दिन कुलपतिने अपने शिष्योंसे कहा,—"प्यारे शिष्यो! मेरी बात सुनो। समुद्रमें हरिमेल नामका द्वीप है। वहाँ ईशान-कोणमें एक बड़ा भारी आमका पेड़ है। उसमें निरंतर फल लगे रहते हैं। उसपर विद्याधर, किन्नर और गन्धर्व वास करते हैं। वह वृक्ष बड़ा दिव्य-प्रभाववाला है। उसके फलको जो खाता है, वह रोग, दोष और जरासे मुक्त हो जाता है और उसे नव-जीवन प्राप्त हो जाता है।"

शुकको यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा,—"गुरुजीने तो बड़ी अच्छी बात बतलायी। मेरे माता-पिता बहुत बूढ़े हो गये हैं। उनकी आँखोंसे सूझता नहीं है। इसलिये उन्हें

वही आमका फल लाकर खिलाऊँ, तो मैं उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा। कहा भी है कि जो माँ-बाप और गुरुकी भक्ति करता है और उनका दुःख दूर करता है, वही सच्चा पुत्र और शिष्य है, नहीं तो कीट-पतङ्गके समान है। वही वृक्ष श्रेष्ठ है, जो सींचनेसे बड़ा हो और उसके नीचे आराम किया जा सके; पर जो पुत्र पाल-पोसकर बड़े किये जानेपर भी पिताको उलटा दुःख ही देता है, वह सचेतन होनेपर भी मृतक समान होता है। योंतो माता-पिता और गुरुके उपकारोंका बदला कोई नहीं दे सकता; तो भी पुत्र और शिष्यको अपनी शक्तिके अनुसार उनकी सेवा अवश्य करना चाहिये।"

इस प्रकार विचार कर वह शुक अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर उड़ गया और उसी द्वीपमें आ पहुँचा। वहाँ उसने वही आमका पेड़ देखा और उसका फल चोंचमें दबाये लौटा आ रहा था कि रास्तेमें उसे बड़ी थकावट मालूम हुई। यहाँ तक कि उसे अपनी देह सम्हालनी भी मुश्किल मालूम पड़ने लगी। वह सहसा समुद्रमें गिर पड़ा, तो भी उसने फलको मुँहसे छूटने नहीं दिया। इसी समय अपने नगरसे समुद्र-मार्गसे जहाजमें सफर करते हुए सागर नामक सार्थ-पतिने उस शुकको समुद्रमें व्याकुल होकर डूबते देखा। उसने अपने तैराकोंको हुक्म दिया कि जलमें उतर कर उस शुकको बचा लो। उसी क्षण एक तैराकने जलमें उतरकर उस शुकको पकड़ लिया और सेठके पास ले आया। सेठने शुकको हाथमें ले, उसे बहुतेरा चुपकारा। जब शुक सावधान हुआ, तब

सेठसे कहने लगा,—"हे उपकारियोंमें मुकुट-मणिके समान सार्थ-वाह! तुम्हारी सदा जय हो। इस संसारमें वही धन्य है, जिसे दूसरोंकी भलाई करनेमें आनन्द मालूम होता है। कहा भी है कि, सज्जनोंकी सम्पत्ति परोपकारमें ही खर्च होती है, नदियाँ परोपकार के ही लिये बहती हैं, वृक्ष परोपकारके ही लिये फलते हैं और मेघ परोपकारके ही लिये पृथ्वीपर जल बरसाते हैं। साथ ही यह भी कहा है कि विपत्तिमे धैर्य धारण करनेवाला, अभ्युदयमें क्षमा रखनेवाला, सभामें चतुराईसे बोलनेवाला, संग्राममें वीरता दिखा-नेवाला, कीर्तिकी इच्छा रखनेवाला, और शास्त्र-श्रवण करनेका व्यसन रखनेवाला ये सब महात्मा हैं और संसारमें स्वभावसे ही सिद्धगुण वाले हैं; अर्थात् महात्माओंका ऐसा स्वभाव ही है। हे सेठ! तुमने न केवल मेरे ही प्राण बचाये, बल्कि मेरे अन्धे माँ-बापके भी प्राण बचा लिये। हे उपकारी! सुनो, मनुष्यकी नक़ली मूर्त्ति खेतको रखवाली करती हैं, हिलती-डोलती हुई ध्वजा महल की रक्षा करती है, भूसी अन्नकी रक्षा करती है, दाँतों तले दबाया हुआ तृण प्राणोंकी रक्षा करता है,—ऐसी-ऐसी सामान्य वस्तुएँ भी रक्षाका काम करती हैं; फिर जिससे किसीकी रक्षा नहीं होती, ऐसे मनुष्यके होनेसे ही क्या लाभ हुआ?" फिर भी शुकने कहा,—"हे सेठ! मेरे गुरुने मुझे बतलाया था कि समुद्रमें हरिमेल नामका एक द्वीप है, जिसके ईशान-कोणमें दिव्य-प्रभाववाला एक आमका पेड़ है; उसका फल खानेसे रोग और बुढ़ापा नहीं व्यापते —और नयी जवानी मिलती है। यही सुनकर मैंने विचार किया कि

अपने बूढ़े माँ-बापको यही फल लाकर खिला दूँ, जिससे वे सुखी हो जायें। अतएव उनकी आज्ञा लेकर मैं उस द्वीपमें गया और वहाँसे फल लाकर लौटा आ रहा था कि रास्तेमें थककर समुद्रमें गिर पड़ा, परन्तु तुमने मुझे मौतके मुँहसे बचा लिया। अब मेरी यही इच्छा होती है कि, किसी तरह तुम्हारे इस उपकारका बदला चुकाऊँ।" सार्थ-पतिने कहा,—"तू क्या कर सकता है?" शुकने कहा,—"हे सार्थेश! यह फल तुम्हीं ले लो।" सार्थेशने कहा,—"नहीं, इसे ले जाकर तुम अपने माता-पिताको दो।" शुकने कहा,—"मैं फिर वहाँ जाकर दूसरा फल ले आऊँगा।" यह कह, वह फल सेठको देकर शुक उड़ गया। अनन्तर सार्थेश उस फलको लिये हुए क्रमशः जयपुरमें आया। अपने साथवालोंको नगरके बाहर ही रखकर उसने अपने मनमें विचार किया कि, "यह फल मैं खाकर क्या करूँगा? अच्छा हो, यदि यह फल राजाको दे दूँ, तो जिससे दुनियाकी भी कुछ भलाई हो।" ऐसा विचारकर राजाकी भेंटके लिये मोतियोंसे भरे हुए थालके ऊपर वही फल रखे हुए वह दरबारमें आया। द्वारपालके साथ राजाके पास पहुँचकर उसने वह थाल राजाके सामने रख दिया।

राजाने वह भेंटका थाल देख, विस्मय और आदरके साथ पूछा,—"इसमें तुमने एक आमका फल किस लिये रख दिया है? क्या मैंने कभी आम नहीं देखा है?" यह सुन सार्थेशने कहा,—"हे स्वामी! इस फलके गुण सुनिये। यह कह उसने विस्तारके साथ उस फलके गुण कह सुनाये। पश्चात् राजाने बड़े ही आनन्दसे

सार्थपतिको सम्मानित किया और तुरत उसका कर माफ़ कर दिया। इसके बाद राजाने अपने मनमें सोचा,—"मैं अकेला ही यह फल क्यों खाऊँ? ऐसा काम करना चाहिये, जिससे सारी प्रजाको सुख हो।" यही विचार कर राजाने मालीको बुलाकर उस फलका बीज रोपनेके लिये कहा। साथ ही उसकी रखवालीके लिये अपनी ओरसे आदमी तैनात कर दिये। मालीने भी बड़ी अच्छी जगहमें उस फलको रोप दिया। धीरे-धीरे उसमेंसे अङ्कुर निकला। इस समय राजाने उत्सव किया और अपनेको वैसा ही कृतार्थ माना जैसा पुत्र-जन्म होनेसे मानते। साथ ही उन्होंने उस माली और पहरेदारोंको वस्त्रादिक देकर भी सन्तुष्ट किया। ज्यों-ज्यों उस अङ्कुरमें पल्लव निकलते, त्यों-त्यों राजा रोज आकर उसे देख जाते थे। इस तरह जैसे-जैसे वह पेड़ बढ़ने लगा, वैसे-वैसे राजाके मनोरथ भी बढ़ने लगे। इसी तरह क्रमसे उस पेड़में मंजरियाँ निकल आयी। धीरे-धीरे वह पेड़ फलोंसे लद गया। राजाने सोचा कि अब हमारी प्रजा रोग और बुढ़ापेके पंजेसे छूट गयी। इन्हीं दिनों एक बाज़के द्वारा पकड़े हुए साँपके मुँहसे एक फलपर विष टपक पड़ा। विषकी गरमीसे वह फल तुरत ही पककर नीचे गिर पड़ा। मालीने वह फल ले जाकर राजाके सामने रखा। राजाने उसे इनाम देकर विदा किया और वह फल अपने पुरोहितको दे दिया।

पुरोहितने उस फलको घर ले जाकर पूजापाठ करनेके बाद बड़ी प्रसन्नताके साथ खाया और खाते ही वह मर गया। शोकसे

सुन कुमारने मन्त्रीको अपने कुल आदिका यथार्थ विवरण कह सुनाया। तुरतही मन्त्रीने जाकर राजाको कह सुनाया। सुनकर राजाको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। तो भी उन्होंने अपनी दिलजमईके लिये अपना एक दूत पत्रके साथ श्रीवासनगरमें राजा नरवाहनके पास भेजा। दूतने वहाँ पहुँचकर राजाको पत्र दिया और जबानी भी सारा हाल कह सुनाया। उसकी बातें सुनकर नरवाहन राजाको तो मानों नया जीवन मिल गया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा,—"अहा! इस समय राजा जितशत्रुसे बढ़कर मेरा कोई हितू नहीं है, जिन्होंने अतिदान करनेके लिये तिरस्कार पाये हुए मेरे लड़केको, जो इधर-उधर भटकता फिरता था, अपने पास रखा और पाला-पोसा। तुम जाकर अब मेरे लड़के को यहाँ भेज दो।" यह कह, तरह-तरहकी भेंटोंके साथ राजाने अपने प्रधान पुरुषोंको भी उस दूतके साथ भेजा। उन लोगोंने वहाँ पहुँचकर राजा जितशत्रुसे सारी बातें कह सुनायीं। सब सुनकर राजा जितशत्रु अपने मनमें विचार करने लगे,—"ओह! अज्ञानके वशमें पड़कर मैं क्या कर बैठा!"

इसके बाद राजाने अपनी पुत्रीको पास बुलवा, गोदमें बिठा, आँखोंमें आँसू भरे हुए कहा,—"प्यारी पुत्री! तू स्वामीके साथ चिरकाल जीती रहे, यही मेरा आशीर्वाद है। मुझ पापीने जो कुछ अनुचित किया हो, वह क्षमा करना। तेरे सारे मनोरथ पूरे हों।" इसके पश्चात् उन्होंने कुमारको बुलाकर शर्माते हुए कहा,—"हे सत्यवीर कुमार! उस दुष्ट सज्जनकी बातोंमें आकर मैंने बड़ा

कोलाहल मच गया। जब यह हाल राजाको मालूम हुआ, तब वे बड़े सोचमें पड़ गये कि यह क्या मामला हुआ। उनका चेहरा उतर गया। उन्होंने सोचा कि मेरे किसी दुश्मनने ही उस व्यापारीके द्वारा यह विषैला फल मेरे पास भेजा था। अब इस मामले में क्या करना चाहिये। सोचते-सोचते राजाने गुस्सेमें आकर लकड़हारोंको हुक्म दिया कि उस पेड़को एकदम जड़से काट डालो। जिसमें उसका नामोनिशान भी न रहे। यह हुक्म पाते ही लकड़हारोंने उस पेड़को काट गिराया। यह हाल सुन अपने जीवनसे निराश बने हुए बहुतसे कोढ़ी, पङ्गु और अन्धे वहाँ आये और मरनेकी इच्छासे उस पेड़के फल और पत्ते चबाने लगे। देखते-देखते उस विचित्र आमके प्रभावसे वे सबके सब नीरोग और कामदेवके समान सुन्दर हो गये, उन लोगोंने बड़ी प्रसन्नता के साथ यह हाल जाकर राजाको सुनाया। यह सुन राजाको बड़ा अचम्भा हुआ और वे सोचने लगे,—"यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। वास्तवमें उस व्यापारीका कहना सच था। किसी कारणसे यह पहला फल ज़हरीला हो गया होगा।" यही सोचकर उन्होंने मालीको बुलाकर कसम दिलाते हुए पूछा,—"तू सच-सच बतला दे, तूने यह फल कहाँ पाया था!" उसने कहा,—"और सब फल कच्चे थे, केवल वही पककर ज़मीनमें गिरा हुआ था, इसी लिये मैं उसे आपके पास ले आया था।" यह सुन राजाने सोचा,—ज़रूर यह फल ज़हरके ही प्रभावसे समयसे पहले पक कर गिर पड़ा था।" इसके बाद उन्होंने उन रखवालोंको बुलवाया, जिनपर

उस पेड़की रखवालीका भार था और कहा कि उस पेड़का जितना हिस्सा बचा हो, उसकी रखवाली करो। उन्होंने वहाँका हाल देख, राजाके पास आकर कहा,—"महाराज! वहाँ तो लोगोंने उस पेड़का नामो-निशान भी नहीं रहने दिया है।" "यह सुन राजा बहुत अफ़सोस करने लगे कि, हाय! मैंने अभाग्य वश कैसा काम कर डाला?"

इतनी कथा सुनाकर राजा जितशत्रुके प्रधान मन्त्रीने कहा,—"हे महाराज! मैं इसी लिये कहता हूँ कि बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये। आप सर्व गुण-सम्पन्न ललिताङ्ग कुमारकी परीक्षा किये बिना ही क्यों उनसे युद्ध करनेकी तैयारी कर रहे हैं! अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं कुमारके पास जाकर उनका सारा हाल पूछ आऊँ।" यह सुन, राजाने कहा कि अच्छा, ऐसा ही करो। राजाकी बात सुन मन्त्रीने कुमारके पास आकर प्रणाम करते हुए कहा,—"हे कुमारेन्द्र! यह क्या अनर्थ कर रहे हो? पहले अपने कुल आदिका तो परिचय दो। कुमारने कहा,—"हे मन्त्री! मेरी भुजाओंका पराक्रमही तुम लोगोंको मेरे कुलका परिचय दे देगा। पहले मेरा बाहु-बल देख लो, पीछे आप ही सब कुल जान जाओगे। यह सुन मन्त्रीने कहा,—"हे स्वामी! आपमें खूब पराक्रम है, इसमें शक नहीं; परन्तु पापी सज्जनने तुम्हारे कुल-शील आदिके विषयमें बहुत ही ऊँच-नीच बातें कही थीं, इसीलिये हमारे राजाने आपका यथार्थ परिचय जाननेके लिये हमें भेजा है मैं आपके पाँवो पड़ता हूँ; कृपा करके शीघ्र बतला दो।" यह

हे पुत्र! अब तुम कभी किसी ओछेकी सङ्गतिमें न पडना।

[पृष्ठ ३६]

अनुचित काम किया ; पर तुम्हारा भाग्य बड़ा बली है, इसीलिये उस पापीको अपनी करनीका फल हाथों-हाथ मिल गया। इस लिये हे पुत्र ! अब तुम कभी किसी ओछेकी सङ्गतिमें न पड़ना। अब सुनो, तुमने अपने गुणोंसे मेरा आधा राज्य तो पाही लिया है, बाक़ीका आधा भी मैं तुम्हें दिये देता हूँ—उसे ग्रहण करो।" यह कह कुमारकी इच्छा न होनेपर भी उन्होंने उनको गद्दीपर बिठाकर उनका अभिषेक किया और आप तपस्या करने वनमें चले गये। कुमार उस राज्यको पाकर अत्यन्त शोभित हुए। वे पिताकी तरह प्रजाको सुखी करने लगे। क्योंकि प्राणियोंका पुण्य सर्वत्र जाग्रत रहता है। कहा भी है, कि :—

"पुण्यादवाप्यते राज्यं, पुण्यादवाप्यते जयः।
पुण्यादवाप्यते लक्ष्मीर्यतो धर्मस्ततो जयः॥"

अर्थात्—"पुण्यसे राज्य, जय और लक्ष्मी प्राप्त होती है ; क्योंकि जहाँ धर्म रहता है, वहाँ सदा जय होती है।"

ललिताङ्गकी जो सदा जय होती गयी, उसका मूल कारण यही था कि उनके पुण्य बहुत थे।

अब ललिताङ्ग कुमार उस राज्यका भार एक सुपरीक्षित मन्त्री के हाथमें सौंपकर अपनी स्त्री-पुष्पावती और बहुतसे लोगोंके साथ अपने पितासे मिलनेके लिये श्रीवासनगरकी ओर चले ; क्योंकि उनके पिताने उन्हें तुरत ही बुलाया था। वहाँ पहुँच, महलमें बैठे हुए राजाके पास जा, आँखोंके आँसुओंसे पिताके हृदयकी जलन मिटाते हुए कुमारने उनके चरणोंमें सिर झुकाये

और हाथ जोड़े हुए विनय और भक्तिके साथ कहा,—"पिताजी ! माता-पिताका हृदय शीतल करनेवाले पुत्रको शास्त्रकारोंने चन्दनका उपमा दी है और कुलदीपक कहा है, पर मैं ऐसा कुपूत पैदा हुआ कि आपको दुःख ही देता रहा। कितने ही पुत्र अपने कुलके लिये चिन्तामणिके समान होते हैं, पर मैं तो कीड़े-मकोड़ेकी तरह ही हुआ। मुझ पापीने प्रति-दिन आपको प्रणाम भी नहीं किया, और क्या कहूँ ? लड़कपनसे आजतक मैं केवल माँ-बापको दुःख देनेवाला ही हुआ। अब मेरे सारे अपराध क्षमा कर आप मेरे श्वसुरके दिये हुए चम्पाके राज्यको स्वीकार कीजिये और जिसे उचित समझिये, दे डालिये। आपकी यह पुत्रवधू आपको प्रणाम करती है, इसे जो कुछ आज्ञा हो, दीजिये।" कुमार ये बातें कह रहे थे, इसी समय उनके पिताने बाँहें फैलाकर उन्हें अपने विशाल हृदयमें लगा लिया और पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान अपने पुत्रका मुख देखते हुए हर्षित हृदयसे उनका माथा चूमते हुए गद्गद्स्वरसे बोले,—"मेरे कुलदीपक पुत्र ! ऐसी बातें न करो। सोना कभी काला नहीं हो सकता। सूर्य कभी पूरब छोड़ पच्छिम में नहीं उगता। कल्पवृक्षके समान तुमपर मैंने बड़ा अन्याय किया।

हाँ, पिता यदि पुत्रको शिक्षा देता है, तो उससे पुत्रका गौरव ही बढ़ता है ; क्योंकि कहा है कि :—

"पितृभिस्ताडितः पुत्रः, शिष्यस्तु गुरुशिक्षितः।
घनाहतं सुवर्णं च, जायते जनमण्डनम्॥"

अर्थात्—"पितासे शासित पुत्र, गुरुसे शिक्षित शिष्य और घनकी चोट खाया हुआ सोना मनुष्योंका मण्डन हो जाता है।" फिर उपालम्भ बिना अपने पुत्रका ऐसा माहात्म्य क्योंकर देखनेमें आता ? हे पुत्र ! मेरा भाग्य अभीतक सोया नहीं है; क्योंकि तुम आ पहुँचे। क्या कहूँ, तुम सब तरहसे योग्य हो। यह राज्य, यह महल, यह सारे पुरजन-परिजन तुम्हारे ही हैं। तुम इन्हें स्वीकार करो और प्रजाका पालन करो। मैं पूर्वजनोंके आचरणके अनुसार गुरुके पास जा, व्रत ग्रहण करूँगा।"

पिताके वियोगकी सूचना देनेवाली बातें सुन ललिताङ्गने बड़े खेदके साथ कहा,—पिताजी ! मेरे इतने दिन तो निष्फल गये ही, कि मैं आप गुरुजनोंकी सेवा न कर सका ; अब भी आपकी सेवासे मैं वंचित रहूँ, ऐसी आज्ञा मत सुनाइये। ऐसे राज्य या जीवनसे ही क्या लाभ, जिसमें प्रतिदिन पिताका प्रसन्न मुख और उनके चरणारविन्दोंके दर्शन न हों। जैसी अपार शोभा मुझे आपके सामने बैठनेसे प्राप्त होगी, उसका सौवाँ हिस्सा भी सिंहासनपर बैठनेसे नहीं मिलनेका। मैं आपकी सेवाका इच्छुक हूँ, इसलिये आप सिंहासनपर बैठकर प्रजाका पालन करें, राज्य चलायें और मुझे अपनी सेवा करनेका अवसर दें, जिससे मैं

आपकी सेवा कर सकूं । अब ऐसा करें, जिसमें मैं इन चरण-कमलोंसे फिर बिछुड़ने न पाऊँ ।"

पुत्रकी ये बातें सुन राजा तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ बन गये ; किन्तु कुछ देरके बाद धैर्यधारण कर बोले,—"प्यारे पुत्र तुम मुझे उत्तम कार्य करते हुए बाधा मत पहुँचाओ । आखिरकार तो ये दोनों राज्य तुम्हारे ही होंगे,इसलिये मुझे व्रतही लेना उचित है ।" इस तरह समझा-बुझाकर राजाने अपने विलक्षण तेजस्वी राजकुमारको बड़ी धूम धामके साथ गद्दीपर बैठा दिया । कुमारको सिंहासनपर बैठानेके पश्चात् राजाने उन्हें संक्षेपमें यह शिक्षा दी कि तुम इस तरह राज्यका पालन करो, जिसमें प्रजा मुझे भूल जाये,मेरी याद न करे। अनन्तर मन्त्री और सामन्त आदिको बुला कर कहा,—"आजसे तुमलोग राजकुमारकी ही आज्ञा मान कर चलना । इनकी आज्ञा कभी न टालना और जो कुछ मुझसे अपराध बन पड़ा हो, उसे क्षमा करना ।" इसके बाद राजाने सब लोगोंकी रायसे गुरुके पास जाकर दीक्षा-व्रत ग्रहण कर लिया ।

राज्यलक्ष्मी और पुत्र-कलत्र आदि परिग्रहोंको त्यागकर राजा नरवाहन अत्यन्त शोभित होने लगे । जलका त्याग कर देनेवाले मेघकी तरह वे मुनीश्वर पञ्चमहाव्रत धारी, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, विशुद्ध धर्माशय-युक्त, सद्धर्ममें श्रद्धावान्, ध्यानमें तत्पर बाईसों परिषहोंको जीतनेवाले, अल्पकालमें आगमके अभ्यासी और गुणोंमें गरिष्ठ हो गये । उनको ऐसा गुण-गरिष्ठ जानकर

गुरु महाराजने उन्हें सूरिपदसे अलंकृतकर आचार्य बना दिया। इसके बाद अनेक मुनियोंके परिवार सहित वे वसुधातलपर विहार करने लगे।

इधर ललिताङ्ग कुमार भी राज्यकी सम्पत्ति पाकर सबके लिये हर्षदायक बन गये। वे अपनी प्रजाको पुत्रवत् पालने लगे। कहते हैं कि शठका दमन, अशठका पालन और आश्रितोंका भरण-पोषण करना ही राजाका मुख्य कर्त्तव्य है। साथ ही दुष्टोंको दण्ड देना, स्वजनोंका सत्कार करना, न्यायसे राज्य-कोषकी वृद्धि करना, शत्रुओंसे देशकी रक्षा करना और पक्षपात नहीं करना, ये राजाओंके पाँच धर्म हैं। राजा ललिताङ्ग धर्मात्मा और पुण्यात्मा थे, इस लिये उनकी प्रजा भी धर्म पुण्य करने लगी। कहा भी है कि यदि राजा धर्मात्मा होता है, तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा पापी होता है, तो प्रजा भी पापी होती है और यदि राजा औसत दर्जेका होता है, तो प्रजा भी वैसीही होती है। प्रजा राजाका ही अनुकरण करती है। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह नीति-वचन यथार्थ है। ललिताङ्ग कुमार माताकी तरह प्रजाकी रक्षा करते, पिताकी तरह प्रजाको धन देते और गुरुकी तरह उसे धर्ममें लगाते थे। इसी तरहसे सुखके साथ उनका समय कटता रहा।

एक दिन उद्यानके रखवालेने आकर हाथ-जोड़े प्रसन्न मुखसे सभामें बैठे हुए राजासे कहा,—"हे स्वामी! मैं आपको बधाई देने आया हूँ। राजर्षि नर-वाहन भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते

हुए नगरके बाहरवाले उद्यानमें पधारे हैं।" यह सुन राजाने मन-ही-मन प्रसन्न हो उसे लाख रुपये इनाममें दिये। इसके बाद तुरत ही आनन्द और उत्साह-पूर्वक अन्तः पुरकी स्त्रियोंके साथ गुरु महाराजके चरणोंकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँचकर पाँचों अभिगमके साथ तीन बार प्रदक्षिणा दे, माथा जमीनमें टेककर नेत्रानन्द दायक गुरुकी विशुद्ध भावसे विधि-पूर्वक वन्दना कर हाथ जोड़े सामने बैठ गये। नगर-निवासीगण भी ज्ञानातिशयसे देदीप्यमान और अनेक मुनियोंसे सेवित चरण-कमलवाले मुनीश्वरको विनय पूर्वक वन्दना कर यथा स्थान बैठ गये। इसके बाद राजर्षि नरवाहनने कल्याणकारी धर्म-लाभरूपी आशीर्वाद देकर इस प्रकार धर्मदेशना प्रारम्भ की:—

"हे भव्य प्राणिओ! जो मूढ़ प्राणी दुर्लभ मनुष्य-देह पाकर प्रमादके वशमें होकर यत्न-पूर्वक धर्मका आचरण नहीं करता, वह मानो बड़े कष्टसे मिली हुई चिन्तामणिको मूर्खताके कारण समुद्रमें फेंक देता है। कितने प्राणी तो प्रवालकी भाँति स्वयं धर्मके रंगमें रंगे हुए होते हैं, कितने ही चूर्णकणकी तरह रङ्ग पाने योग्य होते हैं और कितने ही काश्मीरमें पैदा होनेवाली केसरकी तरह सुगन्धित और सब प्रकारसे आप रङ्गीन होते हुए दूसरोंको भी अपने रङ्गमें रंग देनेवाले होते हैं, इसलिये वे धन्य-वादके पात्र हैं। मनुष्यत्व, आर्य-देश, उत्तम जाति, इन्द्रिय-पटुता और पूर्ण आयु-ये सब कर्म लाघवसे बड़े कष्टसे मिलते हैं। इनकी प्राप्ति होनेपर भी सुखकी इच्छा रखनेवाले भव्य जीवोंको

भलीभाँति समझकर सम्यक्त्वको अविचलित रीतिसे हृदयमें धारण करना चाहिये।

सुदेवमें देव-बुद्धि, सुगुरुमें गुरु-बुद्धि और सुधर्ममें धर्म-बुद्धि रखनेको ही सम्यक्त्व कहते हैं। जो तीनों लोकसे पूज्य, रागादि दोषोंसे रहित, संसारसे तारनेवाला और वीतराग तथा सर्वज्ञ हो, वही सुदेव कहलाता है। जो संसार-सागरसे आप भी पार उतरे और औरोंको भी उतारनेमें नावका काम दे, जो संविग्न, धीर और सदा सदुपदेश देनेवाला हो, पंच महाव्रतको धारण करनेवाला, तथा भिक्षामात्रसे जीवन-निर्वाह करनेवाला हो, वही सुगुरु कहलाता है और दुर्गतिमें पड़े हुए प्राणियोंकी जो रक्षा करता है, वही धर्म कहलाता है। वह धर्म सर्वज्ञ कथित संयमादि दस प्रकारका है—वही मुक्तिका हेतु है। तीनो भुवनमें जिसके विषयमें कोई विवाद नहीं है, ऐसा धर्म वही है, जिसमें त्रस और स्थावर सभी जीवोंपर दया रखना मुख्य माना गया है।

इस प्रकार धर्म देशना श्रवणकर ललिताङ्ग राजाने कहा,—"हे भगवन्! मैं दीक्षा ग्रहण करनेमें असमर्थ हूँ, इसलिये मुझे देशविरति-व्रत दीजिये।" गुरु महाराजने कहा,—"पहले सम्यक्त्व अङ्गीकार करो बाद देशविरति लेना।" अनन्तर जब राजा ललिताङ्गने सम्यक्त्व अङ्गीकार किया, तब गुरु महाराजने कहा, "हे महानुभाव! मिथ्यात्वका सदात्याग करना चाहिये। कुदेवमें देव-बुद्धि, कुगुरुमें गुरु-बुद्धि और अधर्ममें धर्म-बुद्धिको ही

मिथ्यात्व कहते हैं। इसे और सम्यक्त्वके इन पाँचों अतिचारों को त्याग देना चाहिये :—

"शङ्का कांक्षा विचिकित्सा, मिथ्या दृष्टि प्रशंसनम्।
तस्य संस्तवश्च पञ्च, सम्यक्त्वं दूषयन्त्यमो॥"

अर्थात्—"शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्या दृष्टिकी प्रशंसा और उसका परिचय, ये पाँच अतिचार सम्यक्त्वको दूषित करते हैं।" इसलिये इन शङ्कादि चोरोंसे उसे बचाना चाहिये। यन्त्र-मन्त्र भी शङ्का करनेसे सिद्ध नहीं होते। इसके बारेमें मैं तुम्हें एक दृष्टान्त देता हूं, सुनो :—

"वसन्तपुर नामक नगरमें गन्धार नामक एक श्रावक रहता था। वह देव-पूजा, दया, दान और दाक्षिण्य आदि गुणोंसे विभूषित था। वह प्रतिदिन पूजाकी सामग्री साथ ले दूरके उद्यानमें बने हुए जिन-चैत्यमें जाकर जिन-पूजा किया करता था। वहाँ जिन-पूजा करता हुआ वह निरन्तर एक मनसे ध्यान लगाया करता था।

एक दिन जिनेश्वरका अभिषेक कर, सुगन्धित कुसुमादिसे अर्च्चित कर, प्रसन्न-मन होकर उत्तम स्तवनोंसे जिनस्तुति कर रहा था, इसी समय कोई महाजैन परमश्रावक विद्याधर वहाँ जिनेश्वर भगवान्‌की वन्दना करने आया। उसने गन्धार श्रावक को देख और उसकी स्तुति सुन बड़े ही आनन्दके साथ उसके पास आकर कहा;—"हे धार्मिक! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। आज मेरे कान और नेत्र तृप्त हो गये। इसलिये तुम जो कुछ

मांगो वह मैं तुम्हें दे सकता हूं। अदृश्य-करण, कुब्ज-रूपकरण, परकाय प्रवेश आदि बहुतसी विद्याएं संसारमें हैं, पर सबमें आकाश-गामिनी विद्या बड़ी दुर्लभ है, इसलिये तुम उसके योग्य हो, तुम यही विद्या सीख लो। इससे मुझे बड़ा आनन्द होगा।"

गन्धार श्रावकने कहा,—"मैं यह विद्या लेकर क्या करूँगा? मेरी तो धर्म-विद्या बनी रहे, यही बहुत है।"

विद्याधरने फिर कहा,—"मैं जानता हूँ कि तुम बड़े संतोषी हो; पर मैं तुम्हें अपना साधर्मिक समझकर तुम्हें यह विद्या सिखला कर कृतार्थ होना चाहता हूं।" यह सुन गन्धारने स्वीकार कर लिया। विद्याधरने उसे विधि-सहित मन्त्र दिया और दोनों अपने-अपने स्थानपर चले गये। अनन्तर परोपकारी गन्धारका समय सुखसे व्यतीत होने लगा।

कुछ दिन बीतनेपर गन्धारने सोचा, कि कहीं जंगली फूलकी तरह मुझे मिला हुआ मन्त्र व्यर्थ ही न हो जाये। यही सोचकर उसने स्कंदिल नामके अपने एक मित्रको विधि सहित वह मन्त्र बतला दिया। स्कन्दिल उस विद्याकी साधनाके लिये सब साम-ग्रियोंके साथ एक दिन रातको श्मशानमें पहुँचा। वहाँ बलिदान आदि करके उसने उस वृक्षपर एक सींका लटकाकर ठीक अग्नि-कुण्डके ऊपर उसीमें जाकर बैठ रहा। अनन्तर एक सौ आठबार अक्षत मन्त्र जाप करनेके बाद उसने ज्योंही सीकेकी एक डोरी छुरीसे काटी, त्योंही नीचेकी आग देखकर उसके मनमें शङ्का हुई कि कहीं सीकेकी चारों रस्सियाँ काट देनेपर भी मन्त्र-सिद्धि न

हुई, तो मैं आगमें जलकर मर जाऊँगा, इसलिये व्यर्थ क्यों प्राण गँवाऊँ ? जीते रहनेसे मनुष्यको सैकड़ों प्रकारके लाभ होते हैं।

यही सोचकर वह सींकेसे नीच उतर पड़ा और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर सोचने लगा,—"अब ऐसी दुर्लभ सामग्री कहाँ मिलेगी ? फिर मैं क्या करूं ?" यही सोचकर वह पुनः सींकेपर जा बैठा ; परन्तु फिर भी वही शंका होने लगी। इसी तरह वह चढ़ने उतरने लगा।

इसी समय कोई चोर राजाके महलसे गहनोंकी पेटी चुराये लिये उसी वनमें आ पहुँचा। वहाँ इधर उधर निगाह करते एक जगह आगका उँजेला देख उसी ओर चला। चोरने स्कन्दिलके पास पहुँचकर उसका हालचाल पूछा। उसने सच-सच सारा हाल सुना दिया। अब चोर विचार करने लगा,—"गन्धार जिन-धर्ममें बड़ा पक्का श्रावक है, इसलिये उसका कहा कभी झूठ नहीं हो सकता।" यही विचार कर उसने कहा,—"तुम यह ज्वाहि-रातकी पेटी ले लो और मुझे वह मन्त्र बतला दो, तो मैं उसका साधन कर तुम्हें और भी खुश करूँगा।" स्कन्दिलने तमाशा देखनेके लिये उसे ज्योंका-त्यों वह मन्त्र बतला दिया। चोरने सींकेपर बैठकर एकाग्रमनसे १०८ बार उस मन्त्रका जाप किया और बड़े साहसके साथ उस सींकेकी चारों रस्सियोंको एक ही साथ काट डाला। इतनेमें उस विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सन्तुष्ट होकर उसके लिये एक विमान ले आयी। चोर उसी विमान पर बैठ कर उसी समय आकाशमार्गमें उड़ चला।

इधर उस चोरके पीछे-पीछे राजाके सिपाही भी उस वनमें आये और चारों ओरसे उसको घेरकर खड़े हो रहे। सवेरा होतेही राजाके सिपाही जङ्गलमें घुस कर चोरको ढूँढ़ने लगे। इतनेमें पेड़ीके साथ स्कन्दिल दिखाई दिया। उसे देखते ही वे सब चिल्ला उठे,—"यही है वह चोर, इसे अभी पकड़ो।" यह कहते हुए वे सिपाही स्कन्दिलको गिरफ्तार कर राजाके पास ले आये।

इसी समय विद्याधर बना हुआ वह चोर एक बड़ीसी शिला हाथमें लिये आकाशसे ही राजाको सुनाकर बोला,—"यह स्कन्दिल मेरा गुरु है, इसलिये जो कोई इसकी बुराई करेगा, उसको मैं यही शिला फेंककर मार डालूँगा।" यह सुन राजा और सब लोग डर गये। राजाने डरके मारे बड़े आदरके साथ कहा,—"हे खेचराधीश! यह तुम्हारा गुरु कैसे हुआ? इसकी हाल कह सुनाओ।" चोरने सारा हाल कह सुनाया। सब लोग सुनकर बड़े ही आश्चर्यमें पड़ गये। इसके बाद राजाने स्कन्दिलको बड़े सम्मानके साथ उसके घर भिजवा दिया।

जैसे शङ्कासे स्कन्दिलकी विद्यासिद्ध नहीं हुई, वैसे ही शङ्का करनेसे सम्यक्त्वका नाश हो जाता है। इसलिये सोचकर निःशङ्क मनसे सम्यक्त्वका धारण करना चाहिये। चारित्र-थान टूट जानेपर भी भव्यजीव सम्यक्त्व-रुपी पटरेके सहारे तर जाते हैं। समकिति पुरुषोंको निसर्ग-रुचि आदि दश रुचियोंको भी हृदयमें धारण करनी चाहियें। इनका विवरण इस प्रकार है:—

१ निसर्ग-रुचि—जो बिना ही गुरुके उपदेशके निश्चयसे जी-

यादि नव तत्वोंको जानता हो, आस्रवको छोड़कर संवरका आदर करता हो, वीतराग देवके कहे हुए छः द्रव्योंको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सहित जानता हो, नामादि चार निक्षेपोंको स्वयं जानकर उनपर पूर्ण श्रद्धा करता हो, वीतरागके कहे हुए भावोंको सर्वथा सत्य मानता हो, उसे निसर्ग-रुचि समझना चाहिये।

२ उपदेश-रुचि—जो जीव गुरुके उपदेशसे वीतराग देवके कहे हुए तत्त्वोंको जानकर उनपर पूर्ण रूपसे श्रद्धा रखता हो, वह उपदेश-रुचि कहलाता है।

३ आज्ञा-रुचि—राग, द्वेष, अज्ञान आदि दोषोंसे रहित वीतराग देवकी आज्ञाको मानने वाला और उसपर पूरी श्रद्धा रखनेवाला जीव आज्ञारुचि कहा जाता है।

४ सूत्र-रुचि—जो जीव आगम-सूत्रोंको निर्युक्ति, भाष्य चूर्णि और टीका सहित मानता हो, उनके श्रवण और पठनकी अत्यन्त चाहना रखता हो, वह सूत्ररुचि कहलाता है।

५ वीज-रुचि—जो जीव गुरु-मुखसे एक पदके अर्थको सुनकर अनेक पदोंकी सद्दहणा कर सके वह वीजरुचि होता है।

६ अभिगम-रुचि—जो सूत्र-सिद्धान्तोंको अर्थ सहित जानता हो और अर्थ-विचार सुननेकी खूब ही अभिलाषा रखता हो, वह अभिगम-रुचि कहलाता है।

७ विस्तार-रुचि—जो जीव छओं द्रव्योंके गुण और पर्यायोंको चार प्रमाण और सात नयसे जानता हो, जाननेकी रुचि रखता हो, वह विस्तार-रुचि है।

८ क्रियारुचि—आत्म-धर्मके साथ तप वगैरः बाह्य क्रियाओंपर रुचि रखनेवाला जीव क्रियारुचि कहलाता है।

९ संक्षेप-रुचि—जो जीव थोड़ेसे अर्थको सुननेपर भी बहुत अर्थको जान सकता है और इससे कुमति-कदाग्रहमें नहीं फँसता, वह संक्षेपरुचि होता है;

१० धर्मरुचि—जो पांचों अस्तिकायके स्वरूपको श्रुतज्ञानसे जानकर चारको छोड़ दे और एक स्वभाव अन्तरङ्ग सत्ताके ऊपर सद्दहणा करे वह धर्म-रुचि कहलाता है।

इस प्रकार गुरुके उपदेश श्रवणकर, ललिताङ्ग राजाका मन सम्यक्त्वमें निश्चल हो गया। गुरुके वचन-रूपी अमृतसे सींचे जाकर वे सात क्षेत्रोंमें धन व्यय करने लगे और विशेष रूपसे संघ-भक्ति करने लगे; क्योंकि संघभक्ति करनेसे बहुत लाभ होते हैं। कहा भी है,—जो कल्याण-रुचि प्राणी गुण-राशिके क्रीड़ा-सदनके समान संघकी सेवा करता है, उसके पास लक्ष्मी आपसे आप आती है, कीर्त्ति उसका आलिङ्गन करती है, प्रीति उसीको भजती है, मति उससे मिलनेके लिये उतावली हो जाती है, स्वर्ग-लक्ष्मी उसीसे मिलना चाहती है और मुक्ति उसे बारम्बार देखती है। लोकमें राजा श्रेष्ठ होता है,उससे चक्रवर्ती श्रेष्ठ होता है,उससे इन्द्र श्रेष्ठ होता है और सबसे तीनों लोकके नायक जिनेश्वर देव श्रेष्ठ माने जाते हैं। वे ज्ञानकी मणिनिधिके समान जिनेश्वर भी श्री संघको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं। इसलिये जो वैरस्वामीकी तरह श्रीसंघकी उन्नति करता है, उसकी संसारमें बड़ी प्रशंसा

होती है।" अब ललिताङ्ग राजा भी श्रीसंघकी भक्ति करते एवं नित्य धर्म-कृत्य करते हुए दिन बिताने लगे।

एक दिन संसारकी असारताकी चिन्ता करते हुए राजाने श्रेष्ठ-रत्नोंके स्तम्भसे सुशोभित, सुवर्णकी भित्तिसे देदीप्यमान, चमकती हुई मणियोंसे जड़े हुए उत्तान और सुन्दर सोपानसे विभूषित, सर्वाङ्ग-सुन्दर, पवित्र, पुण्य-मन्दिरके समान, रङ्ग मण्डप, स्नात्रमण्डप, और नृत्यमण्डप आदि चौरासी मण्डपोंसे मण्डित और दिव्य शिखरोंसे सुशोभित एक सुन्दर जिनेन्द्रभवन बनाया और उसमें श्रीआदिनाथ भगवानके बिम्बकी विधि-पूर्वक प्रतिष्ठा करवाकर स्नात्र पूजा करवायी। अनन्तर अगर, चन्दन और कपूरसे मिले हुए सुगन्ध द्रव्योंका लेपन कर, भक्ति-पूर्वक आभूषण पहना, शतपत्र, जूही आदि पुष्पोंसे उस बिम्बकी अर्चा कर, राजाने कृष्णागरुका धूप जलाया। तदनन्तर उत्तरासङ्ग धारण कर शुद्ध प्रदेशमें स्थित हो, जिनेन्द्रके सामने भूमिमें घुटने टेक तीन बार नमन कर, हाथ जोड़े हुए राजाने इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की,—"हे युगादि परमेश्वर! हे त्रिभुवनाधीश! आपको जय हो। हे त्रैलोक्यतिलक! आपकी जय हो। हे वीतराग, आपको नमस्कार है। हे स्वामी! हे जगन्नाथ! हे प्रणत पाल! आप प्रसन्न हुजिये। हे विभो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे सदानन्दमय! हे स्वामी! हे करुणा-सागर! इस लोक और परलोकमें आप ही मेरी शरण हैं।" इस प्रकार जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति कर, आँखोंमें आनन्दके आँसू भरे खड़े होकर फिर इस

प्रकार कहने लगे,—"हे स्वामी ! हे त्रैलोक्य-नायक ! इस संसारसे मेरा निस्तार करो।"

प्रति दिन ऐसी ही भक्ति करते हुए बहुत दिन बीत गये। धीरे-धीरे उनका बुढ़ापा आ पहुँचा। कहते हैं कि बुढ़ापा आने पर देह दुबली हो जाती है, दाँत टूट जाते हैं, आँखोंसे कम दीखता है, रूप बिगड़ जाता है, मुँहसे लार टपकती रहती है, अपने घर वाले ही बात नहीं मानते, यहाँतक कि पत्नी भी सेवा नहीं करती। ओह ! कैसे खेदकी बात है, कि बुढ़ापेमें अपना बेटा भी अनादर करता है। और भी कहा है कि बुढ़ापा आते ही मुँहसे लार गिरने लगती है, दाँत गिर जाते हैं, मुँहपर तेजी नहीं रहती, शरीरसे जीर्ण हो जाता है, सिरके बाल पक जाते हैं, चाल धिमी पड़ जाती है, आँखोंकी ज्योति जाती रहती है, उनसे सदा पानी गिरता है, तो भी तृष्णा-रूपिणी स्त्री व्यर्थ मनुष्यको सताती है, अर्थात् ऐसी हालत हो जानेपर भी तृष्णा पीछा नहीं छोड़ती।

इस प्रकार बुढ़ापा आ जानेपर राजा ललिताङ्गने अपने राज्य का भार अपने पुत्रको सौंपकर तृणकी तरह राज्य छोड़ दिया और सद्गुरुके पास जाकर दीक्षा ले ली। इसके बाद छट्ठ और अट्ठम आदि तप करते, बाईस परिषहोंको पराजित कर विधि-पूर्वक चारित्रका पालन करते हुए अन्तमें अनशन करके ललिताङ्ग मुनिने औदारिक देहका त्याग किया और स्वर्गको चले गये। वहाँ देव-सुख भोग करते हुए महाविदेहमें सिद्ध-पद पावेंगे।

ललिताङ्ग कुमार-कथा समाप्त।

इस प्रकार हरिश्चन्द्र आचार्यकी देशना श्रवणकर बहुतेरे लोगोंको प्रतिबोध हुआ और सब अपने-अपने भावके अनुसार नियम और अभिग्रह ले, वन्दना कर, अपने-अपने स्थानको चले गये। उस समय प्रकृतिसे ही लघु-कर्मी मरुभूति विषयसे विरक्त होकर धर्ममें तत्पर हो गया। दक्षता, दाक्षिण्य, सौजन्य, सत्य, शौच और दया आदि गुणोंसे वह कनिष्ठ होकर भी ज्येष्ठ हो गया और ज्येष्ठ कमठ मिथ्यात्वकी कठिनताके कारण मगसलिया पत्थरके समान ही रहा। एक ही कुलमें जन्म लेनेवाले लड़के भी सब एक तरहके नहीं होते। कहा भी है कि कितनी ही तुम्बियाँ योगियोंके हाथमें जाकर पवित्र हो जाती हैं, कितनी ही शुद्ध बाँसके साथ लटकती हुई सरस और मधुर गानका आनन्द देती हैं, कितनी ही मज़बूत रस्सीमें बँधकर जलमें डूबते हुएका सहारा होती हैं, और कितनी ही हृदय जलाकर रक्तपान करनेके काममें आती हैं। उसी तरह यह भी कहा हुआ है कि गुणसे उज्ज्वल ऐसे दीपक और सरसों छोटे होनेपर भी प्रशंसा पाते हैं और प्रदीपन (अग्नि) तथा विभीतक (बेहरा) बड़े होनेपर भी श्रेष्ठ नहीं माने जाते।

भावयतिके समान मरुभूतिको स्वप्नमें भी काम-विकार नहीं होता था और उसकी पत्नी वसुन्धरा कामसे बड़ी व्याकुल रहती थी, कमठकी उसपर बहुत बुरी नीयत थी, इसलिये उसने छेड़-छाड़ करके उसे अपनी मुट्ठीमें कर लिया। दोनों कामान्ध होकर मनमानी मौज उड़ाने और काम-क्रीड़ा करने लगे। कमठकी स्त्री वरुणाने इन दोनोंका यह हाल देख मरुभूतिसे कह दिया। सब

सुनकर मरुभूतिने कहा,—"यह बात नहीं हो सकती।" जब वरुणा उसे बार-बार समझाने लगी, तब इस बातकी जाँच करनेके लिये एक दिन मरुभूतिने दूसरी जगह जानेका बहानाकर कमठसे बाहर जानेकी आज्ञा माँगी और थोड़ी ही दूर जाकर पीछे लौट आया। साँझको थके-माँदे भिखारीका रूप बनाये कमठके घर आया और पास ही कहीं रातभर रहनेकी आज्ञा माँगी। कमठने सोचा कि जिसके घरसे अतिथि निराश होकर चला जाता है, वह उसे अपना पाप देकर उसीका पुण्य लेकर चला जाता है। यही सोचकर उसने अपने मकानके एक कोनेमें उसे सोनेके लिये जगह दे दी। वह भी नींदका बहाना किये पड़ रहा। रातको मरुभूतिने उन दोनोंकी बदचलनी अपनी आँखों देख ली। सवेरे उठकर वहाँसे थोड़ी दूर जाकर वह फिर घर लौट आया और मनमें ही गुस्सा छिपाये रहा; क्योंकि स्त्रीका पराभव पशुओंसे भी नहीं सहा जाता।

होनहारकी बात—मरुभूतिने इन दोनोंके बदचलनीकी बात राजा अरविन्दसे कह सुनायी। यह सुन तेजस्वी राजाको बड़ा क्रोध हुआ। धर्मात्मा जनोंके लिये सौम्य, अन्यायके रास्तेपर चलने वालेके लिये यम और याचकोंके लिये कुबेरके समान राजाने उसी समय कोतवालको बुलाकर हुक्म दिया कि उस दुष्ट कमठको दण्ड दो। यमदूतकी तरह कोतवाल उसी समय कमठके घर जा पहुँचा और उसे पकड़कर गधेपर बिठा, सूपका छत्र माथेपर लगा, पापके फल-स्वरूप बेलके फलोंकी माला गलेमें पहना, सारे

नगरमें बाजा बजाते हुए घुमाया और उसकी खूब मिट्टी खराब की। इसके बाद ब्राह्मण, बालक, स्त्री, तपस्वी और रोगी चाहे जो अपराध कर दें, पर उनकी जान नहीं लेना, बल्कि उसे और दण्ड ही देना न्यायोचित है। यही सोचकर उसे नगरसे बाहर निकाल दिया और राजपुरुष अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद जंगलोंमें अकेला भटकता हुआ वह दुराचारी कमठ सोचने लगा,—"मेरे भाईने ही मेरी इस तरह मिट्टी खराब की, इसलिये मैं जरूर उसकी जान ले लूँगा।" ऐसा विचार रखते हुए भी वह खाने-पीने एवं सब तरहसे लाचार होनेके कारण मरुभूतिकी कुछ भी बुराई नहीं कर सका। कुछ दिन बाद वह एक तापसके आश्रममें पहुँचा और वहाँ शिव नामक एक मुख्य तपस्वीको प्रणाम कर अपना दुखड़ा कह सुनाया। अनन्तर उससे तापसी दीक्षा ले, पर्वतपर जाकर तप करने लगा। साथ ही तापसोंकी सेवा भी करने लगा।

इधर अपने बड़े भाईके परिणामकी बात सुनकर मरुभूतिको किसी तरह चैन नहीं पड़ता था। जैसे वृक्षके कोटरमें लगी हुई आग भीतर-ही-भीतर जला करती है, वैसेही वह भीतर-ही-भीतर जलने लगा। एक दिन कुछ लोगोंने आकर कहा कि कमठने शिव तापससे दीक्षा ले ली है और वह जंगलमें पञ्चाग्नी तपश्चर्या कर रहा है। यह सुन मरुभूतिने सोचा, कि विपाकमें क्रोधका मूल बड़ा भयङ्कर होता है। कहा भी है कि सन्तापको देनेवाले, विनयका नाश करनेवाले, मित्रताको नष्ट करनेवाले, उद्वेग उत्पन्न

कमठके पैरों झुककर उसने गद्गद कण्ठसे कहा :—भाई मुझे क्षमा करो। [पृष्ठ ५७]

मारते हुए मरुभूतिका कचूमर निकाल डाला। [पृष्ठ ५८]

करनेवाले, दुर्मति देनेवाले, पुण्योदयका नाश करनेवाले तथा दुर्गतिको देनेवाले ऐसे क्रोधका सन्तजनोंको सदा त्याग ही करना चाहिये। फिर जैसे दावाग्नि वृक्षोंको जला देती है, वैसे ही जो धर्मको जला देता है; जैसे हाथी लताको उखाड़ फेंकता है वैसे ही जो नीतिको उखाड़ फेकता है, जैसे राहु चन्द्रमाका ग्रास करता है, वैसेही जो मनुष्योंकी कीर्तिको मलिन करता है और जैसे हवा मेघको उड़ा देती है, वैसेही जो स्वार्थको चौपट कर देता है और जैसे गरमी प्यासको बढ़ाती है, वैसे ही जो आपत्तियोंको बढ़ा देता है और दयाका लोप कर देता है, ऐसे विनाशकारी क्रोधको मनमें स्थान देना कैसे उचित कहा जा सकता है?

करड और उकरड़ मुनिकी तरह क्रोधका फल महा हानि-कारक जानकर संयमी मरुभूतिने फिर अपने मनमें सोचा,—"चाहे जैसे हो वैसे कमठके पास जाकर क्षमा माँगनी चाहिये।" मनमें ऐसा विचार कर उसने राजासे जाकर कहा कि मेरी इच्छा होती है कि मैं कमठके पास जाकर क्षमा मागूँ। यह कह, राजाके मना करनेपर भी वह कमठसे क्षमा माँगनेके लिये जंगलमें चला गया। वहाँ पहुँचकर कमठके पैरों झुककर उसने गद्गद कण्ठसे कहा,—"भाई! मुझे क्षमा करो। उत्तम जन तभीतक क्रोध करते हैं, जबतक अपराधी आकर पैरोंपर नहीं गिरता। इसलिये अब आप मेरा अपराध क्षमा कर दो।" उसके इस प्रणाम और विनय-वाक्योंसे कमठको उलटा क्रोधही उत्पन्न हुआ। वह जलते हुए तेलपर पड़ी हुई जलकी बूँदकी तरह हो गया। उसी समय उसने

पासही पड़ी हुई पत्थरकी बड़ीसी शीला उठाकर मरुभूतिके सिरपर दे मारी ; किन्तु इससे भी उसे सन्तोष न हुआ । फिर भी एक दूसरी शिला उठाकर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र किये हुए उसने उसी पत्थरकी शिलासे बार-बार मारते हुए मरुभूतिका कचूमर निकाल डाला ।

दूसरा भव ।

मारकी तकलीफसे आर्त्तध्यानमें पड़कर मरा हुआ मरुभूति विन्ध्याचलमें भद्र जातिके हाथियोंका यूथनायक हाथी हुआ । स्थूल उपलके समान कुम्भस्थल वाला, गम्भीर मुखवाला, ऊपर उठी हुई दण्डाकार सुंड़वाला, अत्यन्त मद झरनेसे भूमागको पङ्किल करनेवाला, मदकी गन्धसे लुब्ध होकर आये हुए भ्रमरोंकी ध्वनिसे मनोहर, अनेक बाल—हस्तियोंसे परिवेष्टित और जङ्गम पर्वतके समान वह हाथी चारों ओर शोभित होने लगा । कम—ठकी स्त्री वरुणा भी कोपान्ध होकर मर गयी और यूथनायककी स्त्री हुई । वह हाथी उसके साथ पर्वत, नदी आदिमें सर्वत्र घूमता हुआ अखण्ड भोग-सुख अनुभव करता हुआ क्रीड़ा करने लगा ।

इधर पोतनपुरमें अनुपम राज्यसुख भोग करते हुए राजा अरविन्दने देखा कि शरद् ऋतु आ पहुँची । जलसे पूर्ण सरोवर और खिले हुए कास-पुष्प शोभित होने लगे । सर्वत्र सुभिक्ष हो गया और सब लोग सर्वत्र प्रसन्न चित्तवाले हो गये । उसी समय एक दिन राजा अरविन्द महलके ऊपर चढ़कर खिड़कीमें बैठे

हुए अपनी प्रियाओंके साथ स्नेह-रससे भरे आनन्द ले रहे थे। इसी समय आकाशमें गड़गड़ाहट सुनाई दी और इन्द्र धनुष तथा बिजलीके साथ बादल छाये दिखाई दिये। उस समय आकाशमें कहीं स्फटिक, शंख, चन्द्रमण्डल, रजत और हिमके पिण्डके समान उज्ज्वल अभ्रपटल दिखाई देता था, कहीं शुक-पिच्छ और इन्द्रनीलके समान प्रभावाला नील अभ्र-पटल दिखाई देता था। कहीं कज्जल, लाजवर्ग और रिष्टरत्नकी सी प्रभावाला श्याम अभ्र-पटल दिखाई देता था। इस प्रकार देखने योग्य भिन्न भिन्न रंगोंवाले बादलोंको देखते और उनका गर्जन सुनते हुए राजाने कहा,—"अहा! यह तो बड़ी विचित्र रमणीयता दिखाई दे रही है। इसी तरह वे सामनेकी ओर देख रहे थे कि एकाएक हवाके झोंकेसे सारे बादल उड़ गये। फिर आकाश ज्योंका-त्यों हो गया। यह देख राजाको वैराग्य उपजा और उन्होंने सोचा कि यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि इतने बादल सेमरकी रूईकी तरह देखते-देखते उड़ गये! ठीक इसी तरह संसारकी सभी चीज़ें क्षण-भरमें नष्ट हो जाती हैं। कहा भी है कि लक्ष्मी बिजलीकी चमकके समान है और जैसे राह चलते-चलते मुसाफ़िरोंको विश्राम लेनेके लिये वृक्ष मिल जाते हैं, वैसे ही इष्टोंका समागम होता है। इसके सिवा जो सवेरा दिखाई देता है, वह दो पहरमें नहीं और जो दो पहरमें दिखाई देता है, वह रातको नहीं दिखाई देता। इसी तरह इस संसारमें सभी पदार्थ अनित्य हैं। ऐसी सुन्दर जवानी इन्द्रचापकी तरह देखते-देखते नष्ट हो जाती है, प्रियजनोंके निर्वा-

ही भोगोंका अंत भी धतूरेके फलकी तरह है। विषय भी पहले तो मधुर लगते हैं, पर अन्तमें दुःख ही देते हैं। यह संसार सदा असार मालूम होता है—इसमें कोई चीज़ ठहरनेवाली नहीं है। मनुष्य शरीरको प्रतिदिन क्षीण होते नहीं देखता, पर यह पानीमें पड़े हुए कच्चा मिट्टीके घड़ेकी तरह क्षण-क्षण छीजता जाता है। पद-पदपर आघात प्राप्त होनेवाले वध्यजनकी भाँति दिन दिन मृत्यु प्राणियोंके पास आती है। ओह! माता-पिता, भाई और स्त्री-पुत्रके देखते-देखते प्राणी अशरण होकर अपने कर्म-पाशसे यमके घर चला जाता है। इस संसारमें सब कुछ अनित्य है। कहा भी है कि—"हे पामर प्राणी! जबतक तुम्हें जरा नहीं सताती, व्याधि नहीं व्यापती और इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं, तबतक धर्म कमा लो, ठीक है। वही महानुभाव पुण्यवान् है, जो राज्यको छोड़कर सद्गुरुके पास जाकर व्रत अङ्गीकार कर लेता है। मैं ही राज्यके लोभमें पड़ा हूँ। मेरा यौवन तो बीत ही गया, इसलिये अब मुझे शीघ्रही दीक्षा अङ्गीकार कर लेना चाहिये। स्त्री, पुत्र और राज्य भला कब किसके हुए हैं?

इस प्रकार विचार करते हुए राजा वैराग्यको प्राप्त हुए और उन्होंने अपने स्वजनोंके सामने ही पञ्चमुष्टि-लोच करना आरम्भ किया। इस तरह राजाको विरक्त और व्रतोत्सुक जान उनकी स्त्रियाँ बड़ी दुःखित होकर कहने लगीं,—"हे प्राणप्रिय! आपके राज्य परित्याग करनेकी वज्र-तुल्य बात सुनकर हमारे हृदयके सौ-सौ टुकड़े हो रहे हैं। हे स्वामी! हे प्राणेश्वर! आप प्रसन्न

हूजिये और इस इच्छाको त्याग कीजिये। क्लेशकारक तपमें भला क्या रक्खा है? कहाँ कठोर तप और कहाँ आपका सुन्दर कोमल शरीर! आप तो राज्य भोगते हुए प्रजाका पालन कीजिये— और वीरोंकी रक्षा कीजिये। "इस प्रकार प्रबल स्नेहमें पड़ी हुई प्रियतमाओंकी बात सुन राजाने उन्हें समझाते हुए कहा,— अपनी "प्यारियो! सुनो—

> "जन्मदुःख जरादुःखं, मृत्युदुःखं पुनः पुनः।
> संसार सागरे घोरे, तस्माज्जागृत जागृत॥"

अर्थात्—"इस भयङ्कर संसार-सागरमें जन्म, जरा और मरण का दुःख बारम्बार प्राणीको दुःख देता रहता है, इसलिये सदा जगे रहो। इस देहमें काम, क्रोध और लोभ-रूपी चोर छिपे हुए हैं, वह तुम्हारे ज्ञान-तन्तुओंको हर लेते हैं, इसलिये सदा जगे रहना। माता, पिता, स्त्री भाई धन और गृह-इनमेंसे कोई तुम्हारा सङ्गी नहीं है, इसलिये ग़ाफ़िल मत रहो,—जगे रहो। व्यवहारकी बड़ी चिन्ता रखने और आशासे बँधे रहनेके कारण मनुष्य दिन-दिन क्षीण होनेवाली अपनी आयुको देख नहीं सकता, इसलिये जगे रहो। हे चेतन! जरा, व्याधि और मृत्यु तीनों तुम्हारे पीछे लगी हैं, इसलिये प्रमाद न करो और बिना विलम्ब किये तुरत जागकर भागो। भागकर विश्राम लेनेके लिये भी न बैठो। इन्द्र और उपेन्द्र भी मृत्युके पंजेमें पड़ते हैं; तो इस कालके निकट प्राणियोंकी कौन रक्षा कर सकता है? दुःखरूपी दावानलसे

प्रज्वलित ज्वालामें भयङ्कर दीखते हुए इस संसार-रूपी वनमें बाल-मृगकी भाँति प्राणियोंको किसकी शरण है? किसीकी नहीं।"

इस प्रकार संवेगका रङ्ग चढ़नेसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय कर्मोंका क्षयोपशम होकर उनको अवधिज्ञान उत्पन्न हो आया। फिर तो उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्रको राज्यपर बैठाकर आप भद्राचार्य गुरुके पास जाकर दीक्षा ले ली। क्रमसे उन्होंने ग्यारह अंग और चौदह पूर्व सीख लिये। फिर गुरुकी आज्ञा ले निर्मल, निरहङ्कार, शान्तात्मा और गौरव-रहित होकर वे राजर्षि एकलविहारी और प्रतिमाधर होकर गाँवमें रातभर और शहरमें पाँच रात रहने लगे। शत्रु-मित्रमें समान वृत्तिवाले और पत्थर-सोनेमें तुल्य बुद्धि रखनेवाले उन महात्माको क्या बस्तीमें, क्या उजाड़ मैदानमें, क्या गाँवमें, क्या नगरमें—कहीं भी प्रतिबन्ध नहीं रहा। वे महीने, दो महीने, तीन महीनेका पारणा करते हुए क्रमसे बारह मासका पारणा करने लगे। इस प्रकार उग्र तपसे नाना लब्धियाँ उत्पन्न हुईं और उन पुण्यात्माकी देह धानकी भूसीकी तरह हलकी हो गयी। उस समय उन्हें चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

एक दिन वे अरविन्द मुनि अष्टापदकी यात्रा करने चले। राहमें जाते-जाते व्यापारके लिये परदेश जाता हुआ सागरदत्त नामका सार्थवाह मिला। सागरदत्तने मुनीश्वरसे पूछा,—"आप कहाँ जायँगे?" मुनिने कहा,—"अष्टापदपर भगवान्‌की वन्दना करने जाऊँगा।" सार्थपतिने पूछा,—"महाराज! पर्वतपर कौनसे

देवता हैं? यहाँको मूर्त्ति किसने बनवायी है? उनकी वन्दना करनेसे क्या फल होता है?" यह सुन उसे आसन्नभवी जानकर अरविन्द मुनिने कहा,—"हे महानुभाव! वहाँ देवताओंके सब गुणोंसे युक्त अरिहन्त नामके देवता हैं, उनमें अनन्त गुण भरे पड़े हैं और वे अठारह दोषोंसे रहित हैं। कहा है कि अज्ञान, क्रोध, मद, मान, लोभ, माया, रति, अरति, निद्रा, शोक, असत्यवचन, स्तेय मत्सर, भय, हिंसा प्रेम, क्रिया-प्रसङ्ग और हास्य—इन अठारहों दोषोंने जिनके द्वारा नाश पाया है, उन देवाधिदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। वहाँ अष्टापदके ऊपर ऋषभ आदि चौबीसों तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ हैं। इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न श्री आदिनाथ प्रथम तीर्थंकरके पुत्र भरत चक्रवर्त्तीने अष्टापदपर एक बड़ा भारी दिव्य चैत्य बनवाया है। उसमें ऋषभादि चौबीसों जिनेश्वरोंकी अपने-अपने वर्ण और प्रमाणके अनुसार रत्न-प्रतिमाएँ बनवाकर स्थापित की गयी हैं। उनकी वन्दना करनेसे राजत्व और स्वर्ग का साम्राज्य मिलना तो मामूली बात है, मुख्य लाभ मोक्ष प्राप्ति ही है। जिनका भाग्योदय होता है, वही उनके दर्श कर सकते हैं। उनकी पूजा करनेसे नर्क और तिर्यञ्च गतियोंसे छुटकारा हो जाता है। इसलिये हे सार्थेश! सुनो, जो भव्य प्राणि जिनाज्ञाको अपने सिरकी मुकुट-मणि मानते हैं, सद्गुरुके पास हाथ जोड़े खड़े रहते हैं, शास्त्र श्रवणको कानोंका भूषण मानते हैं, सत्यको जिह्वाका भूषण समझते हैं, प्रणामकी निर्मलताको हृदयका भूषण जानते हैं, तीर्थ यात्रा करना पैरोंका भूषण जानते

और जिन-पूजन तथा निर्विकल्प दानको हाथका भूषण मानते हैं, वेही झटपट इस संसार-रूपी समुद्रसे तर जाते हैं। जो विकल्प-पूर्ण चित्तसे देवार्चन करता है, वह अपना पुण्य गवाँ देता है। इस सम्बन्धमें एक वणिक् पुत्रका दृष्टान्त दिया जाता है वह सुनो—

"प्रतिष्ठानपुरमें वणिक् जातिके दो भाई, रहते थे। वे दोनों किसी समय अलग-अलग हो गये और अलगही दो दूकानें खोल बैठे। वे दोनोंही श्रावक थे। एकका नाम नन्दक और दूसरेका भद्रक था। भद्रक रोज सवेरे उठकर दूकानपर जाता और नन्दक जिन मन्दिरमें पूजा करने जाता। उस समय भद्रक अपने मनमें विचार करता,—"नन्दक धन्य है, जो और सब काम छोड़कर रोज सवेरे उठकर जिन पूजा करता है; पर मैं तो पापी हूं। इसीसे मुझे धनकी कमी है और मैं हाय धन—हाय धन करता रहता हूँ। रोज सवेरे दूकानपर आकर पापियोंके मुँह देखा करता हूँ, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है। इस प्रकार शुभ ध्यानरूपी जलसे वह अपने पापका मैल साफ करता था और उसके अनु-मोदन-रूपी जलसे अपने पुण्य-बीजको सींचता था। इससे उसने स्वर्गायु बाँधी। इधर नन्दक पूजा करता हुआ सोचता,—"जबतक मैं इधर पूजा-पाठ करता हूँ, तबतक भद्रक दूकानपर बैठा पैसा पैदा करता है; पर मैं क्या करूँ ? मैंने पहले ही अभिग्रह ले लिया है, इसलिये मुझे विवश हो, पूजा करनेके लिये जाना ही पड़ता है। इस देवपूजासे अच्छा फल मिलना तो दूर

रहा, बल्कि इस समय तो हानि ही हो रही है।" इसीतरह कुविकल्पके कारण पूजा करते हुए भी वह अपना पुण्य-धन गवाँ बैठा और उसने व्यन्तर जातिके देवकी आयु बाँधी। इधर जिन-पूजाका अनुमोदन करनेसे भद्रक तो सौधर्मलोकमें जाकर देवता हुआ और कुविकल्पके कारण नन्दक व्यन्तर-देव हुआ। इसलिये कुविकल्प करते हुए जिन-पूजा कभी नहीं करनी चाहिये—सदा शुभ भावसे ही जिनार्चन करना उचित है। अब कुविकल्पसे किये हुए दानका फल भी सुन लो।

"उज्जयिनीमें धन्य नामका एक बनिया व्यापारके लिये दूकान खोले बैठा था। इसी समय कोई अणगार मुनि मास-क्षमणके पारणाके लिये भिक्षा लेनेके लिये आये; क्योंकि मुनिको प्रथम पोरसीमें सज्झाय, दूसरीमें ध्यान, तीसरीमें गोचरी और चौथीमें पुनः सज्झाय करनेको कहा गया है। धन्य वणिक्‌ने भिक्षाके लिये घूमते हुए मुनिको देख उन्हें बड़े आदर-भावसे बुलाकर उनके पात्रमें घृतकी अखण्डधारा छोड़ी। इससे उसने उच्चगति उपार्जन की और उसके बढ़ते हुए पुण्यका विघात न हो, इसलिये मुनिने भी उसे नहीं रोका। इतनेमें उस सेठके मनमें यह बात आयी कि इस अकेले मुनिको इतना घी किस लिये चाहिये, जो यह चुपचाप लिये चला जा रहा है और मना नहीं करता?" उस समय उसने देवलोककी आयु बाँधी थी, इसीसे मुनिने कहा,—"रे मूर्ख! उच्चगतिसे नीचे गिरनेकी चेष्टा न कर।" उसने कहा,—"ऐसी अनुचित बात मत कीजिये।" मुनिने कहा,—

"भाई! सुनो, तुमने धीका दान करके देवलोककी आयु बाँधी थी,पर अब तुममें कुविकल्प आ जानेसे तुमने अधोगतिकी तैयारी कर ली।" श्रावकने फिर कहा,—"हे महात्मा! अब कहिये ना मैं फिर दान करूँ जिससे उत्तम गति मिले।" मुनिने कहा,—"लोभसे वैसा फल नहीं मिलता।" इसके बाद क्रमसे मरण पाकर वह धन्य सेठ आठवें सहस्रार नामक देवलोकमें जाकर देवता हुआ और फिर विकल्प रहित सुपात्र दानकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त हुआ।"

इस प्रकार अरविन्द राजाके साथ रहकर वह सार्थवाह प्रतिदिन धर्मकी बातें सुनने लगा। अन्तमें कल्पवृक्षके समान गुरुको पाकर उस सार्थवाहने सर्वथा मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वको ग्रहण किया।

क्रमशः अरविन्द मुनिके साथ जाते-जाते जिस जङ्गलमें मरुभूतिका जीव गजराज हुआ था, उसी वनमें सागरदत्त अपने साथियोंके साथ ठहर गया। वहाँ पासमें एक बड़ा भारी सरोवर था, उसके कमलोंमें गूँजते हुए भौंरे ऐसे मालूम होते थे, मानों मुसाफिरोंकी अगवानी कर रहे हों। शब्दायमान हंस, सारस और चक्रवाक पक्षी मानों उसी सरोवरके गुण गा रहे थे। वह सरोवर मुनियोंके मानसके समान निर्मल जलसे भरा था। उसी सरोवरके किनारे ये सब मुसाफिर ईंधन-पानीका प्रबन्ध कर रसोई बनाने लगे। इतनेमें हाथियोंका सरदार वह मरुभूति हाथियोंके साथ उसी सरोवरमें पानी पीने आया। बड़ी देरतक हाथि-

योंके साथ उस जलपूर्ण सरोवरमें विहार करनेके बाद वह बाहर निकलकर सरोवरके तटपर आया। वहाँ खड़े-खड़े उसने जो चारों ओर नज़र फेरी तो मुसाफिरोंको टिके देखा। देखते ही उसका चेहरा यमराजकी तरह हो गया, आँखें तमतमा आयीं, कान खड़े हो गये और वह सूँड़ हिलाकर, दिशाओंको अपने चिंग्घाड़से कँपाते हुए सबको डरवाने लगा। यह देख सभी पुरुष, स्त्री, वाहन आदि इधर-उधर भागने लगे। उस समय ज्ञानवान् अरविन्द मुनि अपने ज्ञान द्वारा उस हाथीका बोध-काल जानकर वहीं कायोत्सर्ग करके टिके रहे। अपने जाती स्वभावके कारण वह हाथी क्रोधके साथ दूरहीसे मुनिकी ओर दौड़ा। परन्तु पास आतेही वह मुनिके तप-स्तेजके प्रभावसे दुम दबाये नये चेलेकी तरह चुपचाप खडा हो रहा। अबके उसके उपकारके लिये कायोत्सर्ग किये हुए मुनि शान्त और गम्भीर वाणीमें उस हाथको प्रतिबोध देने लगे,—"हे गजेन्द्र! तुम अपने मरुभूतिवाले जन्मको क्यों नहीं याद करते? क्या तुम मुझ अरविन्द राजाको नहीं पहचानते? मरुभूतिवाले भवमें अङ्गीकार किये हुए अर्हत्-धर्मको क्यों भूले जा रहे हो? हे गजराज! यह सब बातें याद करो और श्वापद-जातिके मोहसे पैदा हुए इस अज्ञानको छोड़ दो।" मुनिके ये अमृतके समान वचन सुनकर शुभ अध्यवसायके द्वारा उस गजराजको तुरत ही जाति-स्मरण-ज्ञान हो आया। अनन्तर उसने हर्षके आँसू आँखोंमें भरे हुए, दूरहीसे शरीरको झुकाये हुए अपनी सूड़से मुनिराजके दोनों चरण छुए और संवेग प्राप्त उस गजराजने सिर

झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया। अबके मुनिने फिर गजेन्द्रसे कहा,—हे गजराज! सुनो—इस नाटकके समान संसारमें जीव नटकी तरह नाना रूप धारण किया करता है। तुम पूर्व भवमें ब्राह्मण और तत्त्वज्ञ श्रावक थे और अब अपनी जातिके अज्ञानसे मूढ़ हाथी बने हुए हो। इसका मुझे बड़ा भारी खेद है। अब तुम पूर्व जन्मकी तरह विषय और कषायका सङ्ग छोड़ दो और समता-रसको भजो। इस समय तुम सर्व-विरतिका तो पालन नहीं कर सकते; पर तोभी देश-विरति धारण कर सकते हो। इसलिये पूर्व भवमें अङ्गीकार किये हुए बारह व्रत-रूपी श्रावक-धर्म तुम्हें प्राप्त हों।"

इस प्रकार राजर्षि अरविन्दके बतलाये हुए धर्मके रहस्यको उसने सूँडके अग्रभागसे श्रद्धा-सहित स्वीकार कर लिया। वरुणा हास्तिनी भी उसीकी तरह जाति स्मरणको प्राप्त हुई। इस प्रकार उन्हें, देखकर मुनिने एक बार फिर धर्मोपदेश दिया। अनन्तर गजराज श्रावक हो, मुनिको नमस्कार कर परिवार सहित अपने स्थानको चला गया। फिर बहुतसे लोग वहाँ आकर इकट्ठे हुए और उस हाथीके बोधको देखकर विस्मय पाते हुए कितनोंने दीक्षा ले ली और कितने ही श्रावक हो गये। उसी समय सार्थ-पति सागरदत्त भी जिनधर्ममें दृढ़ चित्तवाला हो गया। इसके बाद राजर्षि अरविन्दने अष्टापद पर्वतपर पहुँचकर समस्त जिन-प्रतिमाओंका वन्दन किया और वहीं अनशन कर केवल-ज्ञान प्राप्त कर सिद्धि-स्थानको प्राप्त हुए।

उसी समय उस साँपने उसके कुम्भस्थलपर डँस दिया। [पृष्ठ ५६]

इधर उस हाथीने श्रावक होकर समभावकी भावना करते, जीवोंपर दया दिखलाते, छट्ठ आदि तप करते, सूर्यकी किरणोंसे गरम बने हुए अचित्त जलका पान और सूखे पत्तोंका पारण करते हुए हाथियोंके साथ क्रीड़ा करनेसे मनको हटाये हुए विरक्त होकर विचार करने लगा,—"अहा! जिन्होंने मनुष्य-भव प्राप्त कर दीक्षा अवलम्बनकी, वे भी धन्य हैं। गत भवमें मनुष्यका जन्म पाकर भी मैं उसे मुफ्त खो बैठा। अब मैं क्या करूँ? इस समय तो मैं पशु हूँ।" ऐसी भावना करते और जैसे-तैसे जङ्गली भोजनसे पेट भरते, राग-द्वेषसे दूर रहते और सुख-दुःखमें समभाव रखते हुए वह गजेन्द्र अपना समय बिताने लगा।

इधर कमठ, क्रोधमें आकर मरुभूतिको मारडालनेके कारण गुरुसे फटकार और अन्य तापसोंसे निन्दा पाकर, आर्त्तध्यानके वश हो मरणको प्राप्त हुआ और कुर्कट-जातिका उड़नेवाला साँप हुआ। वह इतना भयङ्कर हुआ कि जंगलमें आने-जानेवाले उसे देखकर ही डरने लगे। वह दाँत, पक्ष-विक्षेप, नख और चंचुके द्वारा यमकी भाँति जन्तुओंका संहार किया करता था।

एक दिन उस सर्पने सूर्यकी गरमीसे सूखते हुए कण्ठवाले गजराजको उसी सरोवरमें पानी पीनेके लिये आते देखा। वह साँप वहाँ पहलेसे ही मौजूद था। दैवयोगसे पानी पीते-पीते वह हाथी कीचड़में फँस गया और मारे गरमीके शरीर अशक्त होनेके कारण उसमेंसे निकल न सका। उसी समय उस साँपने उसके कुम्भस्थलपर डँस दिया। सारे शरीरमें तुरत ही ज़हर फैल

गया। इसी समय अपना अन्तिम समय निकट जान कर उस हाथीने पूर्व भवके अभ्यासानुसार 'भवचरिमं पच्चक्खामि' इस प्रकार चतुर्विध आहारका 'पच्चक्खाण' किया और सम्यक्त्वका स्मरण किया—"अरिहन्त मेरे देव, सुसाधु मेरे आजीवन गुरु और जिन प्रणीत धर्म जो सम्यक्त्व है उसे मैं अङ्गीकार करता हूँ।" साथही वह अठारहों पाप-स्थानोंको स्मरण करने लगा,—"प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद और मिथ्यात्वशल्य—इन अठारहों पाप-स्थानोंका मैं त्याग करता हूँ।" इसी प्रकार वह चिन्तवन करने लगा, तथा—

"खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे
मित्ति मे सव्व भूएड, वेर मज्झं न केणइ।"

अर्थात्—"मैं सब जीवोंको खमाता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। सब प्राणियों पर मेरा मैत्रीभाव बना है। किसीके साथ मेरा वैभाव नहीं हो। पुनः—"मैं सब प्राणियोंको क्षमा करता हूं। वे भी मुझे क्षमा करें। सब जीवोंके साथ मेरी मैत्री हो और मुझे श्री वीतराग देवका शरण प्राप्त हो।"

इसी प्रकारकी भावनाएँ करते-करते वह गजराज एक मनसे परमेष्टि नमस्कार मन्त्रका स्मरण करने लगा। उसने विचार किया,—"व्याधि अथवा मृत्युके मामलेमें दूसरा तो निमित्त मात्र होता है, परन्तु प्राणी स्वयं ही अपने कर्मानुसार शुभाशुभ फल प्राप्त करता है।"

तीसरा भव।

इस प्रकार विचार करते हुए शम-सुधासे सिक्त होकर धर्म ध्यान करते हुए वह हाथी मृत्युको प्राप्त होकर आठवें सहस्रार नामक देवलोकमें सतरह सागरोपमकी आयुवाला देव हुआ। वहाँ एक ही अन्तर्मुहूर्त्त में वह दो देवदूष्य वस्त्रोंके बीचमें उत्पन्न हो उठ खड़ा हुआ। उस समय वहाँ मौजूद रहनेवाले सेवक-देव और देवाङ्गनाएँ शय्या पर बैठे हुए, तरुण पुरुषाकार, सर्वाङ्ग विभूषित, रत्न-कुण्डल, मुकुट और उज्वल हार आदिसे अलङ्कृत शरीरवाले और तुरत उत्पन्न होनेवाले उस देवको देखकर इस प्रकार कहने लगे,— "हे नाथ! तुम्हारी सदा जय हो। तुम्हें सदा आनन्द प्राप्त हो। हमें आज्ञा देकर अनुगृहीत करें। हम अनाथोंके नाथ हो जाओ, हम तो आपके दास हैं। यह सारी लक्ष्मी आपके ही अधीन है। आप जिस तरह उचित समझें, उस तरह इसका उपयोग कीजिये।" इसके बाद वह देव स्नान-मङ्गलकर, अपना कल्प (आचार) ग्रन्थ पढ़ कर, शाश्वत चैत्यमें विराजमान प्रतिमाकी पूजा कर स्तुति करते हुए उसके सभा स्थानमें आया। वहां देवों और देवियोंके मङ्गल गानके साथ संगीतामृतमें लीन हो, वह दिव्य भोग भोगने लगा। कहा है कि, देवलोकमें देवताओंको जो सुख प्राप्त होता है, उसको मनुष्य यदि सौ वर्षतक सौ जिह्वाओं द्वारा कहा करे, तो भी वह पूरा वर्णन

न कर सके। देवताओंको केश, अस्थि, मांस, नख, रोम, रुधिर, वसा, (चर्बी,) चर्म, मूत्र और मल आदि अशुचियें नहीं होती। उनका श्वासोच्छ्वास सुगन्धित होता है, उनके पसीना नहीं आता, वे निर्मल देहवाले होते हैं, उनकी आंखोंकी पलक नहीं गिरती, मनमें जिस बातका सङ्कल्प होता है उसे वे झट पूरा कर लेते हैं। उनकी फूलमाला कभी मलीन नहीं होती और वे सदा भूमिसे चार अङ्गुल ऊपर उठे रहते हैं। यह जिनेश्वरोंकी कही हुई बात है।

इधर वरुणा हस्तिनी कठिन तपकर अन्तमें अनशन द्वारा मरणको प्राप्त हो, दूसरे देवलोकमें चली गयी। उस परम रूपलावण्यमयी देवीका मन किसी देव पर आता ही नहीं था। वह सदा उसी गजेन्द्रके जीवको, जो देव हुआ था, याद करती रहती थी। जब गजेन्द्रके जीवको भी उस पर अनुराग हो आया तो उसने अपने अवधिज्ञानके द्वारा यह मालूम कर लिया कि वह मुझपर अत्यन्त आसक्त है, तब वह उसके पास जाकर सहस्रार देवलोकमें उसे लिवा लाया। पूर्वजन्मके सम्बन्धके कारण दोनोंका एक दूसरे पर खूब गाढ़ा प्रेम हो गया। कहते हैं कि प्रथम दोनों देवलोकोंके देवता (मनुष्यकी तरह) शरीरसे विषयका सेवन करते हैं; तीसरे और चौथे देवलोकोंके देवता स्पर्श मात्रसे; पाँचवें और छठे देवलोकोंके देवता केवल रूप-दर्शनसे; सातवें और आठवें देवलोकोंके देवता केवल शब्द श्रवण कर और शेष चार देवलोकोंके देवता केवल मनसे ही विषयका

सेवन करते हैं। इनके ऊपर नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमानके देवता हैं,जो अतिशय प्रौढ़ विचारवाले और विषयसे निवृत्त रहनेवाले होते हैं, इसलिये पहलेवालोंसे ये अनन्त गुण सुखी होते हैं।

अब वह देव उस देवीके साथ कभी नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर शाश्वत जिन-प्रतिमाका अर्चन कर नाच-गान करते हुए, कभी महामुनियोंकी उपासना करते हुए, कभी नन्दन-वनकी दीर्घिकाओंमें जल-क्रीड़ा करते हुए और कभी नित्य गाने बजानेका मज़ा लेते हुए इच्छापूर्वक आनन्द-उपभोग कर रहा था। इस तरह विषय-सुख भोगते हुए उसने बहुतसा समय बिता दिया।

इधर बहुत समय व्यतीत होनेके बाद वह कुर्कट सर्प भी मर गया और धूम्रप्रभा नामकी पाँचवी नरक पृथ्वीमें सत्तर सागरोपमकी आयुवाला नारकी हो गया। उस नरकमें वह नाना प्रकारके कष्ट भोग करने लगा। सिद्धान्तमें कहा है कि नरकमें नारको जीव बड़े तीखे और महाभयङ्कर दुःख सहन करते हैं; फिर करोड़ वर्षोंमें वे कितना दुःख उठाते होंगे। इसको कौन वर्णन कर सकता है? अग्निदाह, शाल्मालीके वृक्ष परसे गिरना, आसेवन—अग्नीमें भ्रमण करना वैतरणीमें बहना, और इसीतरह सैंकड़ों प्रकारके कष्ट ये नारको जीव उठाया करते हैं। यह सब पूर्व भवमें किये हुए पाप और अधर्मका ही फल है। कमठका जीव नरकमें पहुंचकर घड़ीभर भी चैन नहीं पाने लगा।

———

द्वीतीय सर्ग।

पूर्व महाविदेहमें सुकच्छ नामक विजयमें, वैताढ्य पर्वतपर एक बहुत ही सुन्दर नगरी थी। उसका नाम तिलकपुरी था। वह ऊंचे और मनोहर प्रसादोंसे सुशोभित हो रही थी। उसके हाट, बाज़ार, गली और कूचे—सभी अनन्त शोभाके भण्डार थे, यही कारण था कि यहाँ विद्याधरोंकी टोलियाँ सदा-सर्वदा विचरण किया करती थीं। नगरी क्या थी, सुख और शान्तिको आगार थी। जो उसकी गोदमें जा पहुँचता, वही अपने दुःखोंको भूलकर आनन्द-सागरमें हिलोरें लेने लगता।

इस नगरीमें विद्युद्गति नामक एक परम प्रतापी राजा राज्य करता था। वह समस्त विद्याधरोंका स्वामी था। उसकी उज्ज्वल कीर्ति-पताका दिग्दिगन्तमें फहरा रही थी। वह जैसा आचार शील था, वैसा ही कर्तव्य निष्ट था। वह प्रजा-पालनमें कभी किसी प्रकारकी त्रुटि न होने देता था। इसीलिये वह शिष्ट, प्रशिष्ट, दृष्ट और न्याय-निष्ठ कहलाता था। उसके तिलकावती नामक एक रानी थी। वह रूप और लावण्यमें अद्वितीय थी।

राजा उसे बहुत ही प्रेम करता था। दोनों एक दूसरेपर पूर्ण अनुराग रखते थे। दोनों एक दूसरेको पाकर सुखी थे। दोनोंके दिन बड़े आनन्दसे व्यतीत हो रहे थे।

चौथा भव।

कुछ दिनोंके बाद गजका जीव देव-योनिसे च्युत होकर इन्हीं राज-दम्पतिके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। बत्तीस लक्षणोंसे युक्त इस पुत्रको देखकर राजा-रानीको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने इस कुमारका नाम किरणवेग रखा। इसके लालन-पालनका भार पाँच धात्रियोंको सौंपा गया। क्रमशः जब वह कुछ बड़ा हुआ तब पाठशालामें विद्याध्ययन करने लगा। युवावस्था प्राप्त होते-न-होते वह समस्त विद्या और कलाओंमें पारंगत हो गया। राजाने जब देखा कि कुमारने विद्या-कलाओंका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसकी अवस्था विवाह करने योग्य हो गयी है, तब उन्होंने सामन्त राजकी पद्मावती नामक कन्याके साथ उसका विवाह कर, उसी समय उसे युवराज भी बना दिया।

कुछ दिनोंके बाद गुरु-कृपासे राजाको संवेगकी प्राप्ति हुई। उसने किरणवेगको राज्य-भार सौंप देना स्थिर किया। इसके लिये मन्त्रियोंसे भी सलाह ली। उन्होंने कहा,—"राजन्! किरणवेग सभी तरहसे आपका यह गुरुतर भार सम्हालने योग्य हैं। आपका यह विचार बहुत ही उत्तम है। इसमें किसीको किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती।"

मन्त्रियोंकी यह बात सुन, राजाने किरणवेगको अपने पास बुला भेजा। किरणवेग उसी समय आ उपस्थित हुआ। राजाने बड़े प्रेमसे उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—देखो बेटा! मैं अब वृद्ध हो चला, इसलिये इस राज्य-भारसे मुक्त होता हूँ। तुम वीर हो, विद्वान् हो, सद्गुणी हो। सब तरहसे यह भार सम्हालने योग्य हो। इसलिये यह भार मैं तुम्हींको सौंपता हूँ। मेरे सभी मन्त्री बहुत पुराने और विश्वस्त हैं। वे राज-काजमें तुम्हें यथेष्ट सहायता पहुँचावेंगे। तुम भी सबका भली-भाँति पालन करना। कोई बड़ा अपराध करे तब भी केवल बाहर हीसे क्रोध दिखाना। समुद्रकी भाँति कभी मर्यादा न उलंघन करना। पण्डितोंकी संगति करना। द्यूतादि व्यसनोंसे सदा दूर रहना और दुर्गुणोंसे बचना। स्वामी, आमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल और मित्र—ये राज-लक्ष्मी के सप्ताङ्ग माने गये हैं। इनकी प्राण-पणसे रक्षा करना। राज करते समय स्वर्ग और नरकका ध्यान रखना भी आवश्यक है। राज्यके बाद नरककी प्राप्ति न हो, इसलिये धर्म-कार्यमें भी दत्तचित्त रहना। हे पुत्र! यदि इन सब बातोंपर ख़याल रखोगे, तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तुम भी सुखी रहोगे और अपने आदर्श कार्यों द्वारा अपने पूर्वजोंका मुख भी उज्ज्वल कर सकोगे।

किरणवेगने नत मस्तक हो कहा—पिताजी! यद्यपि मैं इस गुरुतर भारको किसी प्रकार उठाने योग्य नहीं हूँ, फिर भी आप की आज्ञा शिरोधार्य करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

यदि आपकी यही इच्छा है कि मैं इस भारको सम्हाल लूँ, तो मैं इसके लिये तैयार हूँ।

किरणवेगकी यह बात सुन राजाको बहुत ही आनन्द हुआ। उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ राज-काजकी सभी बातें किरणवेगको समझा दीं। किरणवेगने भी सारी बातें बड़ी आसानीसे समझ ली। अनन्तर राज्य-भारसे निवृत्त हो, राजाने श्रुतसागर नामक चारणमुनिके निकट दीक्षा ले ली और निरतिचार चरित्र एवम् अनशन द्वारा कैवल्य-ज्ञानकी प्राप्ति कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया।

इधर किरणवेग अपने पिताकी राज-सम्पत्ति प्राप्त कर न्याय और नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगा। वह ज्ञानी होनेपर भी मौन रहता था। शक्तिमान होनेपर भी क्षमासे ही काम लेता था और दानी होनेपर भी आत्म-श्लाघाको अपने निकट न आने देता था। इन्हीं गुणोंके कारण चारों ओर उसकी प्रशंसा होती थी और प्रजा उसके लिये प्राण देनेको तैयार रहती थी। उसका दृढ़ निश्चय यह था कि :—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात्—"नीति-निपुण लोग निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी आये या जाये और मृत्यु इसी समय हो या युगान्तरमें हो, धीर पुरुष किसी भी अवस्थामें न्याय-पथसे विचलित नहीं होते।" इसी

मुद्रालेखको सदा दृष्टिके सम्मुख रख, यह राज्यके समस्त कार्य सुचारु रूपसे सम्पादन किया करता था।

पाठकोंको हम पहले ही बतला चुके हैं कि युवावस्था प्राप्त होनेपर किरणवेगके पिताने पद्मावती नामक राज कन्याके साथ उसका ब्याह कर दिया था। सौभाग्यवश किरणवेगकी यह सहधर्मिणी भी उसके अनुरूप ही था। अपने पतिको अच्छी सलाह देना और उसे सद्प्रवृत्तियोंमें लगाये रखना यह अपना कर्तव्य समझती थी। किरणवेग भी ऐसी पत्नीको पाकर अपने भाग्यकी सराहना करता था। दोनोंमें बड़ाही प्रेम था। उसके प्रेमके फलस्वरूप यथा समय उनके एक पुत्र भी हुआ था। किरणवेगने उसका नाम धरणवेग रखा था। किरणवेग और पद्मावती, इस पुत्रको देखकर बहुत ही प्रसन्न होते थे। इससे घर और बाहर—सर्वत्र उनको सुख और आनन्दकी ही प्राप्ति होती थी। वे सब तरहसे सुखी और सन्तुष्ट थे।

इसी तरह दिनके बाद दिन और वर्षके बाद वर्ष आनन्दमें व्यतीत हो रहे थे, इतनेमें एक दिन विचरण करते हुए विजयभद्र नामक आचार्य वहाँ आ पहुँचे। नगरके बाहर किरणवेगका नन्दन वन नामक एक सुन्दर उद्यान था। उसी उद्यानमें उन्होंने डेरा डाला। उनके साथ अनेक स्वाध्याय निष्ठ साधु भी थे। उन्हें देखते ही उद्यान-रक्षक किरणवेगके पास आया और उसे उनके आगमन समाचार कह सुनाया। विजयभद्र बहुत ही लब्ध प्रतिष्ठ और विख्यात मुनि थे। संसारमें ऐसा कौन होगा,

जिसने उनका नाम न सुना हो। किरणवेग भी उनका नाम बहुत दिनोंसे सुन रहे थे। अतएव उनका आगमन-समाचार सुनते ही वे उनके दर्शन करनेके लिये लालायित हो उठे। उन्होंने उसी समय उद्यानमें पहुँचकर विजयभद्र और समस्त मुनियोंको सविनय वन्दना किया। देखते-ही-देखते यह समाचार समूचे नगरमें फैल गया। फलतः चारों ओरसे लोगोंके दल आचार्यको वन्दना करनेके लिये उद्यानमें पहुँचने लगे। कुछ ही समयमें वह स्थान लोगोंसे भर गया। लोग आचार्यके केवल दर्शनोंसे ही सन्तोष-लाभ न कर सके। वे उनका उपदेश भी श्रवण करना चाहते थे। सभी लोग इसके लिये आचार्यसे विनय-अनुनय कर रहे थे। राजा किरणवेगने भी नम्रता पूर्वक कुछ वचनामृत पान करानेको उनसे प्रार्थना की। विजयभद्र भला कब इन्कार करनेवाले थे! लोगोंको धर्मदेशना देकर उन्हें सन्मार्गपर लाना ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। अतः उन्होंने उसी समय धर्मोपदेश देनी आरम्भ किया। यथा :—

आसाद्यते भवांभोधौ, भ्रमद्भिर्यत्कथचन।
मुग्धैस्तत्प्राप्य मानुष्य, हा! रत्नमिव हार्यते॥

अर्थात्—"भव-सागरमें भ्रमण करते-करते, न जाने कितने दिनोंके बाद मनुष्यका जन्म मिलता है, किन्तु जिस प्रकार भ्रममें पड़ा मनुष्य रत्नको खो देता है, उसी प्रकार प्राणी इस मनुष्य जन्मको व्यर्थ गंवा देते हैं।" इस संसारमें मनुष्य जन्म मिलनेपर जो प्राणी धर्म-साधना न कर केवल विषय-भोगमें ही तन्मय बने

रहते हैं, वे मानों समुद्रमें डूबते समय नौकाको छोड़कर लहरोंको पकड़नेकी चेष्टा करते हैं। उत्तराध्ययन सूत्रमें भी कहा गया है कि जिस प्रकार कौड़ीके पीछे एक मनुष्यने हजार रत्न खो दिये थे और कच्चे आमके पीछे एक राजा अपने राज्यसे हाथ धो बैठा था, उसी तरह विषय-सुखके पीछे प्राणी अपना मनुष्य जन्म खो देते हैं। हे भव्य प्रणियो! इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिकांश मनुष्य इसी तरह निर्मूल्य और तुच्छ वस्तुओंके पीछे अपना बहुमूल्य और दुर्लभ जीवन नष्टकर दिया करते हैं। उत्तराध्ययन सूत्रमें कौड़ीके पीछे रत्न खोनेवाले मनुष्यकी जो कथा अंकित है, वह बहुत ही रोचक होनेके कारण मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

सोपारक नगरमें धनदत्त और देवदत्त नामक दो भाई रहते थे। वे श्रावक थे और हिल-मिलकर एक साथही व्यापार करते थे। इनमेंसे छोटा भाई जिनधर्म पर बहुत ही श्रद्धा रखता था। वह रोज दो वार प्रतिक्रमण और त्रिकालपूजा करता। इनसे जब समय मिलता तब वह व्यापारमें भी ध्यान देता। किन्तु बड़े भाईको यह पसन्द न था। वह चाहता था कि सारा समय व्यापारमें ही लगाया जाय। यह बात बहुत दिनोंतक उसके मनमें घूमती रही। अन्तमें एक दिन उसने अवसर पाकर छोटे भाईसे कहा कि-हे बन्धु! धन इकट्ठा करनेका उपयुक्त समय युवावस्था ही है, इसलिये अपनी समस्त शक्तियोंको इसी काममें लगाना उचित है। वृद्धावस्था आने पर, शरीर जब परिश्रम पूर्वक धनोपार्जन करने योग्य न रहे, तब सानन्द धर्मानुष्ठान किया जा सकता है।

बड़े भाईकी यह बातें सुन छोटे भाईने नम्रता पूर्वक कहा :- "मेरी धारणा आपके कथनसे बिलकुल विपरीत है। जिस प्रकार धनोपार्जनके लिये युवावस्था उपयुक्त है, उसी प्रकार धर्मानुष्ठानके लिये भी युवावस्था ही उपयुक्त है। वृद्धावस्था में कोई भी कार्य अच्छा नहीं हो सकता, इसलिये मेरी समझमें, यह दोनों कार्य जिस-प्रकार मैं कहता हूं, उसी प्रकार साथ-साथ चलने दीजिये। यद्यपि धनोपर्जनकी अपेक्षा धर्मानुष्ठान अधिक उपयोगी है, इसलिये धनोपार्जनको छोड़ कर भी धर्मानुष्ठान करना उचित है; किन्तु यह हम जैसे साधारण अवस्थावाले मनुष्योंके लिये असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हैं। इसीलिये मैं दोनों कामोंको साथ-साथ करता हूं। धर्मानुष्ठानकी, जैसी आप चाहते हैं, वैसी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह वृद्धावस्थाके लिये रख छोड़ने योग्य कार्य नहीं। देखिये शास्त्रकार क्या कहते हैं:—

> यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
> यावच्चेन्द्रिय शक्ति प्रहिता यावत्क्षयो नायुषः।
> आत्मश्रेयसि तावदेवविदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
> सदीप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः?

अर्थात्—"जब तक यह शरीर निरोग और स्वस्थ रहे, जबतक बुढ़ापा न आये, जबतक इन्द्रियोंमें शक्ति हो और जबतक आयुष्य क्षीण न होने पाये, तब तकमें समझदार लोगोंको आत्मकल्याणका उपाय कर लेना चाहिये। घरमें आग लगने पर कुंआ खोदनेकी तरह अन्तमें फिर क्या हो सकता है?"

छोटे भाईकी यह बातें सुन बड़े भाईको सन्तोष तो न हुआ, किन्तु फिर भी वह चुप हो रहा। वह समझ गया कि छोटा भाई अपनी धुनका पक्का है, इसलिये उसे समझाना-बुझाना व्यर्थ है। किन्तु इससे उसके चित्तको शान्ति न मिली। उसे शान्ति मिल ही कैसे सकती थी? वह तो धनका भूखा था। उसने सोचा कि छोटे भाईके सिर घर-गृहस्थीका सारा भार छोड़ कर परदेश चल देना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे। एक तो अपने सिर आ पड़ने पर छोटा भाई भी सुधर जायगा और दूसरे ईश्वरने चाहा तो भी मैं कुछ धन पैदा कर लूँगा। यह सोचकर उसने शीघ्र ही सब बातें भाईको समझा कर, उसके हजार मना करने पर भी, वह विदेशके लिये चल दिया।

इस प्रकार धनदत्त घरसे प्रस्थान कर घूमता-घूमता रोहणाचल पहुँचा और वहां परिश्रम पूर्वक धनोपार्जन करने लगा। पन्द्रह वर्षमें उसने एक हजार रत्न कमा लिये। इतना धन एकत्र कर लेने पर अब उसे कुछ सन्तोष हुआ। इधर घर छोड़े भी पन्द्रह वर्ष हो चुके थे, इसलिये उसने सोचा कि अब घर चलना चाहिये। यह सोच उसने बांसकी एक पोली नलीमें वह सब रत्न भरकर उसे अच्छी तरह कमरमें बांध लिया और घरकी ओर प्रस्थान किया।

कुछ दिनोंके बाद जब वह अपने गांवके पासवाले एक गांवमें पहुंचा और उसका गांव केवल एकही मंजिल दूर रह गया, तब उसने सोचा कि यहां ठहर कर भोजनादिसे निवृत्त हो लेना चाहिये। निदान वह वहां ठहर गया। उसने अपना सामान एक बनियेके

यहां रख दिया और उसके यहांसे आटा दाल आदि चीजें लेकर, वह भोजन बनानेके लिये एक तालावके किनारे गया। आटे दाल-का मूल्य चुकानेके बाद उसके पास केवल एक फूटी कौड़ी ही बची हुई थी। उस कौड़ीको तालावकी पाल पर रख, उसने भोजन बनाया खाया; किन्तु चलते समय वहांसे वह कौड़ी उठाना भूल गया। वहांसे वह बनियेकी दूकान पर आया और उससे अपना सारा सामान ले, अपने गांवकी ओर चला।

शाम हो चली थी और धनदत्त आजही अपने घर पहुंचना चाहता था, इसलिये शीघ्रतापूर्वक वह रास्ता तय कर रहा था। दुर्भाग्यवश कुछ दूर जानेके बाद, उसे उस कौड़ीकी याद आ गयी। धनदत्त भला उसे कब छोड़नेवाला था। वह कहने लगा कि कौड़ीसे ही पैसा बनता है, इसलिये कौड़ीको योंही छोड़ देना ठीक नहीं; यह सोच वह उसी समय पीछेको लौटा, किन्तु उसी समय उसे यह विचार हो आया कि रात हो चली है, इसलिये रत्नोंकी यह नली साथ रखना ठीक नहीं। रास्तेमें कोई लूट लेगा तो मैं कहींका न रहूंगा। अतः उसने उस नलीको वहीं एक बड़े पीपलके नीचे गाड़ दिया और उस तालावकी ओर प्रस्थान किया। किन्तु तालाव तक पहुँचते-ही-पहुँते रातकी अँधेरी झुक आयी और रास्ता चलने लायक न रहा। फलतः उसे लाचार हो, रात भरके लिये, उसी गांवमें रुक जाना पड़ा।

उधर जिस पीपलके नीचे धनदत्तने अपनी नली गाड़ी थी, उस पर संयोगवश एक लकड़हारा बैठा हुआ था। जब धनदत्त

वहांसे चला गया, तब वह वृक्ष परसे नीचे उतरा। उसने कौतूहलवश वह नली खोद ली और उसे अपने घर ले गया। अनन्तर उसने वहां दीपकके प्रकाशमें उन रत्नोंको निकालकर देखा। जन्मभर लकड़ियाँ काट-काटकर बेचनेवाला वह बेचारा रत्नोंका हाल क्या जाने। उन्हें बहुत देरतक उलट पलटकर देखनेके बाद उसने स्थिर किया, कि यह कांचके चमकीले टुकड़े मालूम होते हैं। मेरे लिये तो बेकार हैं, अतः कल इन्हें किसीको दे दूंगा। शायद इनके बदले मुझे कुछ अन्न मिल जाय। यह सोचकर दूसरे दिन सवेरे ही वह लकड़ियोंका गट्ठर माथे रख, उस नलीको धोतामें बांध, शहरकी ओर चला।

इधर धनदत्तका भाई देवदत्त पूर्ववत् घरका काम देख रहा था। जब कई वर्ष बीत गये और धनदत्तके कोई समाचार न मिले, तब उसे चिन्ता होने लगी। घरमें उसकी माता भी उसे जब-तब धनदत्तका पता लगानेको कहा करती थी; किन्तु परदेशीका पता लगाना कोई सहज काम न था। देवदत्तको सूझ ही न पड़ता था कि किसप्रकार पता लगाया जाय। बहुत दिनोंतक विचार करनेके बाद उसने सोचा कि रोज सुबह शहरके बाहर बैठा जाय, और परदेशसे लौटे हुए लोगोंसे पूछताछ की जाय, तो शायद किसी प्रकार पता लग जाय। दूसरे ही दिन सुबह उसने पानीका लोटा उठाया और शहरके बहरकी राह ली।

संयोगवश शहरके बाहर सर्वप्रथम वह लकड़हारा ही देवदत्त को सामने मिला। लकड़हारेको उस समय बड़ी प्यास लगी हुई

थी। देवदत्तके हाथमें पानीका लोटा देखकर, न रहा गया और उसने गिड़गिड़ा कर पानी माँगा। देवदत्त बड़ा ही दयालु मनुष्य था। अतः उसने तुरत वह पानी लकड़हारेको पिला दिया। इससे लकड़हारेको बड़ी शान्ति मिली। इसके बाद स्वस्थ होनेपर उसने अपने कपड़ेसे वह नली निकालकर देवदत्तको दिखाया, उस नली पर धनदत्तका नाम लिखा हुआ था; उसे देखते ही देवदत्तने लकड़हारेसे पूछा—"भाई! यह नली तूने कहाँ पायी?"

लकड़हारेने तुरत सब सच्चा हाल देवदत्तको बतला दिया। अन्तमें उसने कहा,—"मैं समझता था कि शायद इसमें कुछ रुपये पैसे होंगे, इसीलिये मैं इसे चुराकर खोद लाया; पर मेरा ऐसा भाग्यही कहाँ कि इसप्रकार अनायास मुझे धन मिल जाय, घर आकर देखा तो नलीमें यह काँच निकले। मैं चाहता हूँ कि किसीको इनकी आवश्यकता हो, तो इन्हें दे दूँ और इनके बदलेमें कुछ मिल जाय तो लेलूँ।

लकड़हारेकी बातें सुन देवदत्तको बड़ाही आनन्द हुआ। उसने तुरत उसे कुछ धन देकर वह रत्नोंकी नली ले ली। लकड़हारे को अशातीत धनकी प्राप्ति हुई, इसलिये वह खुशी मनाता शहरकी ओर चला। उधर देवदत्तका हृदय भी मारे आनन्दके बल्लियों उछल रहा था। उसे इन रत्नोंकी प्राप्तिके कारण उतना आनन्द न होता था, जितना भाईका पता पानेके कारण। लकड़हारेने जिस पीपलका पत्ता बताया था, उसकी ओर वह लपका। उसे यह न मालूम था कि धनदत्त उस नलीको वहाँ गाड़कर कहाँ

चला गया था फिर भी उसको धारणा थी कि उस वृक्षके आस-पास कहीं-न कहीं उससे अवश्य भेंट होगी।

इधर धनदत्तने बड़ी बेचैनीके साथ वह रात उस गाँवमें काटी। एक तो वह घर पहुँचनेके लिये उत्सुक हो रहा था, दूसरे उसको जन्म भरकी कमाई, जिसके लिये कहना चाहिये कि वह उसीको देखकर जीता था, एकान्त जंगलमें गड़ी पड़ी थी। प्रातः काल होते ही वह उस गाँवसे चल पड़ा और सूर्य निकलते निकलते उस पीपलके पास आ पहुँचा। किन्तु यह क्या? वह नली कहाँ गयी? उसे कौन खोद ले गया? धनदत्तने जिस स्थानपर नली गाडी थी, उस स्थानपर खाली गढ़ा देखकर उसके प्राण ही उड गये। जिसने एक कौड़ीके लिये कोसोंकी दौड लगायी थी, वह इस वज्रपातको बरदास्त ही कैसे कर सकता था। वह मारे दुःखके पागल हो गया और माथा पटक-पटक कर विलाप करने लगा।

इसी समय देवदत्त वहाँ आ पहुँचा,। उसने तुरतही धनदत्तको पहचान लिया। उसको इस दुरवस्थाका कारण भी समझनेमें उसे देरी न लगी। किन्तु धनदत्तके होश ठिकाने न थे। वह अपनी भ्रमित अवस्थाके कारण देवदत्तको पहचान भी न सका। देवदत्तने उससे कुछ पूछना चाहा, किन्तु वह पागलकी तरह उसकी ओर ताककर पुनः रोने लगा। देवदत्तने उसकी यह अवस्था देखकर तुरन्त उसके सामने वह नली रख दी। नलीको देखते ही मानों अन्धेको आँखें मिल गयीं, धनदत्त होशमें आकर

उठ बैठा। उसने उस नलोको हृदयमें लगा लिया। उसके रोते चेहरेपर हँसी दिखायी देने लगी। अब उसे अपने भाईको भी पहचाननेमें कोई कठिनाई न पड़ी। दोनों भाई बड़े प्रेमसे मिले, देवदत्तने सर्वप्रथम यह नलो मिलनेका वृत्तान्त कह सुनाया। फिर दोनों जन इधर उधरकी बातें करते हुए घर आये।

घरमें स्नान और भोजनादिसे निवृत्त होनेपर फिर दोनों भाइयोंमें बातें होने लगीं। धनदत्तने पूछा,—"देवदत्त! तुमने इतने दिनोंमें क्या उपार्जन किया?"

देवदत्तने कहा,—"मैं धन नहीं इकट्ठा कर सका, किन्तु यथाशक्ति धर्मानुष्ठान करनेमें मैंने कोई कसर नहीं रखी। मैं इसे ही अपना जीवन सर्वस्व समझता हूँ।"

धनदत्तने कहा,—"तुमने कुछ न किया। देखो मैंने इतने दिनोंमें कितना धन पैदा किया!"

देवदत्तने कहा,—"भाई! क्षमा कीजियेगा, कहना तो न चाहिये पर कहना पड़ता है कि आपने जो कुछ उपार्जन किया था वह सब नष्ट हो गया था, किन्तु मेरे पुण्य बलसे वह फिर आपको मिल सका है।"

देवदत्तकी यह बात सुन धनदत्तको ज्ञान हुआ और वह भी देवदत्तकी तरह जीवन बिताने लगा। इससे दोनों भाई सुखी हुए और दूसरे जन्ममें उन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई।

हे प्राणियो! जिस प्रकार एक कौड़ीके पीछे धनदत्तने अपनी सारी कमाई खो दी था, उसी तरह भोग-विलासके पीछे मनुष्य

चला गया था फिर भी उसको धारणा थी कि उस वृक्षके आस-पास कहीं-न-कहीं उससे अवश्य भेंट होगी।

इधर धनदत्तने बड़ी बेचैनीके साथ वह रात उस गाँवमें काटी। एक तो वह घर पहुँचनेके लिये उत्सुक हो रहा था, दूसरे उसको जन्म भरकी कमाई, जिसके लिये कहना चाहिये कि वह उसीको देखकर जीता था, एकान्त जंगलमें गड़ी पड़ी थी। प्रातः काल होते ही वह उस गाँवसे चल पड़ा और सूर्य निकलते निकलते उस पोपलके पास आ पहुँचा। किन्तु यह क्या? वह नली कहाँ गयीं? उसे कौन खोद ले गया? धनदत्तने जिस स्थानपर नली गाड़ी थी, उस स्थानपर खाली गढ़ा देखकर उसके प्राण ही उड गये। जिसने एक कौड़ीके लिये कोसोंकी दौड लगायी थी, वह इस वज्रपातको बरदास्त ही कैसे कर सकता था। वह मारे दुःखके पागल हो गया और माथा पटक-पटक कर विलाप करने गला।

इसी समय देवदत्त वहाँ आ पहुँचा,। उसने तुरतही धन-दत्तको पहचान लिया। उसको इस दुरवस्थाका कारण भो समझ-नेमें उसे देरी न लगी। किन्तु धनदत्तके होश ठिकाने न थे। वह अपनी भ्रमित अवस्थाके कारण देवदत्तको पहचान भी न सका। देवदत्तने उससे कुछ पूछना चाहा, किन्तु वह पागलकी तरह उसकी ओर ताककर पुनः रोने लगा। देवदत्तने उसकी यह अवस्था देखकर तुरन्त उसके सामने वह नली रख दी। नलीको देखते ही मानों अन्धेको आँखें मिल गयीं, धनदत्त होशमें आकर

(१) वध (२) वन्धन (३) विच्छेद (४) अतिभार आरोपण किंवा प्रहार और (५) अन्नादिकका निरोध। यह पांचो अतिचार भी हिंसाही माने गये हैं। पशुप्रभृति प्राणियोंकी निर्दयता पूर्वक हत्या करनेको वध कहते हैं। रस्सी आदिसे बांध रखनेको बन्धन कहते हैं। कान, नाक गला या पूंछ आदि अंगोंको छेदने या काटनेका नाम विच्छेद है। दण्ड आदिसे निर्दयता पूर्वक पशुओंको पीटना और इनपर शक्तिसे अधिक भार लादना अतिभार आरोपण कहलाता है। यथा समय पशुओंको खाने पीनेको न देना अन्नादिकका निरोध है। यह पांचो अतिचार त्याज्य हैं। जो प्राणी स्वयं जीव रक्षा करता है और दूसरेसे कराता है, वह अद्भुत समृद्धिका अधिकारी होता है। इस सम्बन्धमें भीमकुमारकी कथा सुनने योग्य है। वह मैं सुनाता हूं।

कमलपुर नामक नगरमें किसी समय हरिवाहन नामक एक राजा राज करता था। वह बहुतही न्याय-निष्ट और प्रजापालक था, उसके मदनसुन्दरी नामक एक पटरानी थी, वह अपने महलमें एक दिन जब सुखकी नींद सो रही थी, तब स्वप्नमें उसे एक सिंह अपने पास खड़ा दिखायी दिया। नींद खुलनेपर उसने यह हाल राजासे कहा। राजाने कहा—मालूम होता है कि यह स्वप्न बहुत ही अच्छा है, फिर भी मैं किसी योग्य विद्वानको बुलाकर इसका फल पूछूंगा।

भोजनादिसे निवृत्त होनेपर राजा जब राज-सभामें गया, तब एक विद्वान ब्राह्मणसे उसने स्वप्नका फल पूछा।

मोक्ष-सुखको खो देता है। इसलिये मनुष्यको धर्मके लिये यत्न करना चाहिये और प्रमादको त्याग देना चाहिये, क्योंकि प्रमाद परम द्वेषी है, प्रमाद परम शत्रु है, प्रमाद मुक्ति-मार्गका डाकू है और प्रमाद ही नरक ले जानेवाला है। इसलिये प्रमादका त्यागकर धर्म करना चाहिये।

धर्म दो प्रकारका है—यति धर्म और गृहस्थ धर्म, इसमें यति धर्म कठिन और गृहस्थ किंवा श्रावक धर्म सहज है। श्रावक धर्ममें १२ व्रत हैं जिसमेंसे पाँच अणुव्रत मुख्य हैं। वे अणुव्रत यह हैं—(१) अहिंसा अर्थात् प्राणातिपात विरमण (२) मृषा-वाद विरमण (३) अदत्ता दान विरमण (४) मैथुन विरमण (५) परिग्रहका प्रमाण किंवा विरमण।

शास्त्रोंमें प्राणातिपात विरमण व्रतका फल बतलाते हुए कहा गया है, कि चित्तको दयार्द्र रखनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति होती है; श्रेष्ठ शरीर, उच्च गोत्र, विपुल धन और बाहुबल प्राप्त होता है; उच्च कोटिका स्वामित्व, अखण्ड आरोग्य और सुयश मिलता है एवं संसार-सागरका पार करना सहज होजाता है। संसारमें धन, धेनु, और धराके देनेवाले लोग सुलभ हैं; किन्तु प्राणियोंको अभय देनेवाले दुर्लभ हैं। मनुष्यको कृमि, कीट पतंग और तृण वृक्षादिकपर भी दया करनी चाहिये और अपने ही आत्माके समान दूसरोंको भी समझना चाहिये। प्राणातिपात विरमण नामक व्रतमें पाँच अतिचार त्याज्य माने गये हैं। वे पाँच अति-चार यह हैं:—

(१) वध (२) बन्धन (३) विच्छेद (४) अतिभार आरोपण किंवा प्रहार और (५) अन्नादिकका निरोध। यह पांचो अतिचार भो हिंसाही माने गये हैं। पशुप्रभृति प्राणियोंकी निर्दयता पूर्वक हत्या करनेको वध कहते हैं। रस्सी आदिसे बांध रखनेको बन्धन कहते हैं। कान, नाक गला या पूंछ आदि अंगोंको छेदने या काटनेका नाम विच्छेद है। दण्ड आदिसे निर्दयता पूर्वक पशुओंको पोटना और इनपर शक्तिसे अधिक भार लादना अतिभार आरोपण कहलाता है। यथा समय पशुओंको खाने पीनेको न देना अन्नादिकका निरोध है। यह पांचों अतिचार त्याज्य हैं। जो प्राणा स्वयं जीव रक्षा करता है और दूसरेसे कराता है, वह अद्भुत समृद्धिका अधिकारी होता है। इस सम्बन्धमें भोमकुमारकी कथा सुनने योग्य है। वह मैं सुनाता हूं।

कमलपुर नामक नगरमें किसी समय हरिवाहन नामक एक राजा राज करता था। वह बहुतही न्याय-निष्ट और प्रजापालक था, उसके मदनसुन्दरी नामक एक पटरानी थी, वह अपने महलमें एक दिन जब सुखकी नींद सो रही थी, तब स्वप्नमें उसे एक सिंह अपने पास खड़ा दिखायी दिया। नींद खुलनेपर उसने यह हाल राजासे कहा। राजाने कहा—मालूम होता है कि यह स्वप्न बहुत ही अच्छा है, फिर भी मैं किसी योग्य विद्वानको बुलाकर इसका फल पूछूंगा।

भोजनादिसे निवृत्त होनेपर राजा जब राज-सभामें गया, तब एक विद्वान ब्राह्मणसे उपरोक्त स्वप्नका फल पूछा।

मोक्ष-सुखको खो देता है। इसलिये मनुष्यको धर्मके लिये यत्न करना चाहिये और प्रमादको त्याग देना चाहिये, क्योंकि प्रमाद परम द्वेषी है, प्रमाद परम शत्रु है, प्रमाद मुक्ति-मार्गका डाकू है और प्रमाद ही नरक ले जानेवाला है। इसलिये प्रमादका त्यागकर धर्म करना चाहिये।

धर्म दो प्रकारका है—यति धर्म और गृहस्थ धर्म,। इसमें यति धर्म कठिन और गृहस्थ किंवा श्रावक धर्म सहज है। श्रावक धर्ममें १२ व्रत हैं जिसमेंसे पाँच अणुव्रत मुख्य हैं। वे अणुव्रत यह हैं—(१) अहिंसा अर्थात् प्राणातिपात विरमण (२) मृषावाद विरमण (३) अदत्ता दान विरमण (४) मैथुन विरमण (५) परिग्रहका प्रमाण किंवा विरमण।

शास्त्रोंमें प्राणातिपात विरमण व्रतका फल बतलाते हुए कहा गया है, कि चित्तको दयार्द्र रखनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति होती है; श्रेष्टशरीर, उच्च गोत्र, विपुल धन और बाहुबल प्राप्त होता है; उच्च कोटिका स्वामित्व, अखण्ड आरोग्य और सुयश मिलता है एवं संसार-सागरका पार करना सहज होजाता है। संसारमें धन, धेनु, और धराके देनेवाले लोग सुलभ हैं; किन्तु प्रणियोंको अभय देनेवाले दुर्लभ हैं। मनुष्यको कृमि, कीट पतंग और तृण वृक्षादिकपर भी दया करनी चाहिये और अपने ही आत्माके समान दूसरोंको भी समझना चाहिये। प्राणातिपात विरमण नामक व्रतमें पाँच अतिचार त्याज्य माने गये हैं। वे पाँच अतिचार यह हैं :—

बुद्धिसागर मन्त्रीके मतिसागर नामक पुत्रसे उसकी मित्रता हो गयी। इन दोनोंमें बड़ा ही प्रेम रहने लगा। खाते-पीते उठते-बैठते सब समय एक साथही रहते। यदि कभी क्षण भरके लिये भी वे एक दूसरेसे पृथक हो जाते तो उनका जी तड़फड़ाने लगता। दोनोंने यथा समय शस्त्र और शास्त्र प्रभृति विद्या-कलाओंमें भी पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

एक दिन राजा अपने पुत्रके साथ राज-सभामें बैठे हुए थे। उसी समय वनपालकने आकर सूचना दी कि चम्पक उद्यानमें देव-चन्द्र नामक मुनीन्द्र पधारे हैं। यह शुभ समाचार सुन राजाको बड़ा आनन्द हुआ और उसने वनपालको मुकुट छोड़कर अपने शरीरके समस्त भूषण उतारकर उपहार दे दिये। इसके बाद कुमार, मन्त्री और सभाजनोंके साथ राजा मुनीन्द्रकी वन्दना करने गया। उत्तरासंग धारण कर अंजलि पूर्वक गुरु महाराजकी वन्दना कर राजा यथास्थान बैठ गया। अनन्तर मुनीन्द्रने धर्मलाभ प्रदान कर इस प्रकार धर्म देशना आरम्भ की।

"हे भव्य जनो! किसी सरोवरमें एक कछुआ रहता था। उस सरोवरके जलमें काई-पडी हुई थी। रात्रिके समय जब वायुका झोंका लगा और काई फट गयी, तब उस कछुएको चन्द्रके दर्शन हो गये। कुछ देरमें जब पुनः काई सिमट कर बराबर हो गयी, तब उसके लिये चन्द्रदर्शन दुर्लभ हो गये। ठीक यही अवस्था मनुष्य-जन्मकी है। अनुत्तर विमान वासी देवताओंको भी बड़े यत्नसे इसकी प्राप्ति होती है। इसीलिये मनुष्य जन्म

ब्राह्मणने कहा—"हे राजन्! शास्त्रमें लिखा है कि स्वप्नमें यदि कोई अपनेको गाय, बैल, वृक्ष, पर्वत, महल या हाथीपर चढ़ता हुआ, रुदन करता हुआ और अगम्य स्थानमें जाता हुआ देखे, तो समझना चाहिये कि शीघ्रही मृत्यु होनेवाली है, क्योंकि यह सब बातें मृत्युसूचक मानी जाती हैं। यदि स्वप्नमें मन्त्र-बलसे अन्न, वस्त्र, फल, ताम्बूल, पुष्प, दीप, दधि, ध्वजा, रत्न, चामर और छत्र प्रभृति चीजोंकी प्राप्ति होती दिखायी दे, तो समझना चाहिये, कि शीघ्रही कुछ धन मिलनेवाला है। देवदर्शन शुभ और देव-पूजा बहुत ही शुभ मानी जाती है। राज्यलाभ, पयपान, और सूर्य या चन्द्रके दर्शनसे भी धन प्राप्त होता है। अपनेको तैल या रोलीसे लिप्त, नृत्य गीतादिमें लीन या हंसता हुआ देखनेसे दुःखकी प्राप्ति होती है। स्वप्न शास्त्रमें यह भी बतलाया गया है कि प्रशंसनीय सुफेद वस्तुओंका दर्शन सदा शुभ होता है और काली चीज़ोंका दर्शन होना ठीक नहीं। इन सब बातोंपर ध्यान देनेसे मालूम होता है कि रानीने जो स्वप्न देखा है, वह बहुत ही शुभ है। इससे वे शीघ्रही एक पुत्र-रत्नको जन्म देंगी।

ब्राह्मणकी यह बातें सुन राजाको बड़ा आनन्द हुआ और उसने उसे विपुल धन देकर विदा किया। कुछ समयके बाद उसके कथनानुसार रानीने यथा समय एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। राजाने उसका नाम भीमकुमार रखा। उसके लालन-पालनके लिये पांच धात्रियां नियुक्त की गयीं। जब यह कुमार बड़ा हुआ, तब

बुद्धिसागर मन्त्रीके मतिसागर नामक पुत्रसे उसकी मित्रता हो गयी। इन दोनोंमें बड़ा ही प्रेम रहने लगा। खाते-पीते उठते-बैठते सब समय एक साथही रहते। यदि कभी क्षण भरके लिये भी वे एक दूसरेसे पृथक हो जाते तो उनका जी तड़फड़ाने लगता। दोनोंने यथा समय शस्त्र और शास्त्र प्रभृति विद्या-कलाओंमें भी पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

एक दिन राजा अपने पुत्रके साथ राज-सभामें बैठे हुए थे। उसी समय बनपालकने आकर सूचना दी कि चम्पक उद्यानमें देव-चन्द्र नामक मुनीन्द्र पधारे हैं। यह शुभ समाचार सुन राजाको बड़ा आनन्द हुआ और उसने वनपालको मुकुट छोड़कर अपने शरीरके समस्त भूषण उतारकर उपहार दे दिये। इसके बाद कुमार, मन्त्री और सभाजनोंके साथ राजा मुनीन्द्रकी वन्दना करने गया। उत्तरासंग धारण कर अंजलि पूर्वक गुरु महाराजकी वन्दना कर राजा यथास्थान बैठ गया। अनन्तर मुनीन्द्रने धर्मलाभ प्रदान कर इस प्रकार धर्म देशना आरम्भ की।

"हे भव्य जनो! किसी सरोवरमें एक कछुआ रहता था। उस सरोवरके जलमें काई-पड़ी हुई थी। रात्रिके समय जब वायुका झोंका लगा और काई फट गयी, तब उस कछुएको चन्द्रके दर्शन हो गये। कुछ देरमें जब पुनः काई सिमट कर बराबर हो गयी, तब उसके लिये चन्द्रदर्शन दुर्लभ हो गये। ठीक यही अवस्था मनुष्य-जन्मकी है। अनुत्तर विमान वासी देवताओंको भी बड़े यत्नसे इसकी प्राप्ति होती है। इसलिये मनुष्य जन्म

मिलनेपर उत्तम पुरुषोंको आत्मकल्याण अवश्य साधन करना चाहिये।"

इस प्रकार धर्मोपदेश श्रवण कर राजाने भक्ति पूर्वक गुरुदेवको वन्दना किया। साथ ही उसने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की, कि हे प्रभो! मैं यति धर्म ग्रहण करनेमें असमर्थ हूँ। इसलिये कृपया मुझे गृहस्थ धर्मका उपदेश दीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो।

राजाकी यह बात सुन मुनीन्द्रने उसे बारह व्रतोंसे युक्त गृहस्थधर्मकी शिक्षा दी। राजाने उसे सम्यक् भावसे स्वीकार किया। मुनिराजका उपदेश इतना सुन्दर और हृदयग्राही था, कि भीमकुमारको मुनिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। भीमकुमारका यह भाव मुनिराज तुरतही ताड़ गये। उन्होंने उसे योग्य पात्र समझ कर कहा—वत्स! मैं तुझे भी दो एक बातें ऐसी बतलाता हूँ, जिससे तेरा कल्याण होगा। ध्यान देकर सुन।

धर्मस्य दया जननी, जनकः किलकुशलकर्म विनियोगः
श्रद्धाति वल्लभेयं, सुखानि निखिलान्यपत्यानि॥

अर्थात्—"दया धर्मकी माता है, कुशल कर्मका विनियोग उसका पिता है, श्रद्धा उसकी वल्लभा है और समस्त सुख उसके अपत्य-संतान हैं। इसलिये हे कुमार! सदा-दयाको धारण करना। निरपराध प्राणियोंकी हिंसा न करना और मृगया प्रभृतिका तो स्वप्नमें भी अभ्यास न करना।

मुनिराजका यह उपदेश सुन भीमकुमारने निरपराध पशुओंकी हत्या न करनेका नियम लिया। साथ ही उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति

हुई। यह देखकर मुनिने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा—"हे कुमार! तुझे धन्य है। बालक होने पर भी तेरी मति वृद्धोंके समान है।" इस प्रकार भीमकुमारको प्रोत्साहन दे उसे व्रतमें स्थिर करनेके लिये मुनिने पुनः उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा—"हे भद्र! निरपराध प्राणियोंकी हिंसा न करनेके सम्बन्धमें मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं। ध्यानसे सुन।

"छः मनुष्य एक बार एक गांवको लूटने चले। एक मनुष्यने कहा-हमें सभी मनुष्य और पशुओंका नाश करना होगा। दूसरेने कहा यह ठीक नहीं। हमें केवल मनुष्योंका ही नाश करना चाहिये। पशुओंका क्या दोष! तीसरेने कहा-मनुष्योंमें भी हमें केवल पुरुषोंकोही मारना उचित है। स्त्रियोंको नहीं। चौथेने कहा यह भी ठीक नहीं। पुरुषोंमेंसे हमें केवल उन्हीं पुरुषोंको मारना चाहिये, जिनके हाथमें कोई शस्त्र हो। पांचवेंने कहा-मेरी रायमें हमें केवल उन्हीं पुरुषोंपर प्रहार करना चाहिये,जो हमारा मुकाबला करें या हम पर वार करें। अन्यान्य शस्त्रधारियोंकी ओर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। छठेने कहा—धन लूटना ही हमारा प्रधान कार्य है, इसलिये हम लोगोंको केवल इसी बात पर ध्यान देना चाहिये। मारकाटसे हमे क्या मतलब? लुटेरोंके मनोभावोंकी इस भिन्नताके कारण कृष्ण, नील, कपोत, तेजस, पद्म और शुक्ल यह छः लेश्यायें हुई। इसलिये सदा शुक्ल लेश्या ही धारण करनी चाहिये। यह उदाहरण बहुतही छोटा होने पर भी उत्तमजनोंको कुप्रवृत्तिसे निवृत्त करनेके लिये बहुत उपयोगी है।"

इस उदाहरणका भीमकुमार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे बड़ी देरतक इस पर विचार करते रहे। तदनन्तर उन्होंने मुनीश्वरसे पूछा-"प्रभो! आपको इस तरुणावस्थामें वैराग्य कैसे उत्पन्न हुआ?" मुनीश्वरने कहा—यह मैं तुम्हें सुनाता हूं, सुनो।

"कुंकण-देशमें सिद्धपुर नामक एक नगर है। वहां भुवनसार राजा राज करता था। एक दिन वह राज सभामें बैठा था, उसी समय वहां दक्षिण देशके नर्तकोंने उपस्थित हो, राजासे अपना अभिनय देखनेकी प्रार्थना की। राजाने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर क्या था, राज सभा नाट्य मण्डपके रूपमें परिणत हो गयी। ताल, स्वर, छन्द और लयके अनुसार मृदंगादिक बाजे बजने लगे और नर्तकोंने "ताता, ड्रेंग ड्रेंगति, धप-मप, धों धोंता, थगनि थंगनि, धिधिकटि धिधिकटि" से आलाप आरंभकर सभा जनोंको अभिनय दिखाना शुरू किया। अभिनय इतना सुन्दर था, कि सभी सभाजन और राजा उसीको देखनेमें तन्मय हो गये।

इसी समय राजाको द्वारपालने अष्टाङ्ग निमित्तको जाननेवाले किसी नैमित्तिकके आगमनकी सूचना दी। उसने यह भी कहा कि वह शीघ्र ही आपसे मिलना चाहता है। द्वारपालकी बात सुनकर राजा झुंझला उठा। उसने कहा—क्या तू देखता नहीं है कि इस समय अभिनय हो रहा है। क्या यह भी कोई नैमित्तिकके मिलने का समय है? राजाकी बात सुन द्वारपालका चेहरा उतर गया। वह मनमें सोचने लगा कि मैंने राजाको इस समय यह समाचार पहुंचानेमें बड़ी भूल की। वह चाहता ही था कि लौटकर नैमित्तिक

को जवाब दे दे; किन्तु मन्त्रीने उसे रोक लिया। उसने राजाको समझाते हुए कहा—राजन्! यह आप बहुत ही अनुचित कर रहे हैं। नैमित्तिकको इस प्रकार लौटाना ठीक नहीं। नाट्याभिनय तो हम लोग जब चाहें तब देख सकते हैं, किन्तु यह नैमित्तिक बारंबार थोड़े ही आयेगा?"

मन्त्रीकी यह बात सुन राजाको तुरन्त चेत आ गया। उसने कहा—"मन्त्री! तुम ठीक कह रहे हो,मैं यह बड़ी भारी भूल करने जा रहा था। नैमित्तिकको इसी समय बुलाकर उसकी बातें सुन लेना चाहिये।" अनन्तर शीघ्रही राजाके आदेशानुसार द्वारपाल उस नैमित्तिको राज-सभामें ले आया। नैमित्तिक देखनेमें बहुतही सुन्दर मालूम होता था। उसने श्वेत वस्त्र धारण किये थे। हाथमें पुस्तक लिये हुए था। सभामें प्रवेश करते ही उसने मन्त्रोच्चारण कर राजाको शुभाशीष दी। राजाने भी प्रणाम कर उसे उचित आसनपर बैठाया। नैमित्तकके बैठनेपर राजाने पूछा,—"कहिये महाराज! सब कुशल तो है?" राजाका यह प्रश्न सुनकर नैमित्तिकने दीनता पूर्वक कहा,—"राजन्! कुशलका हाल न पूछिये।" कुशल तो ऐसी है कि कुछ कहते-सुनते नहीं बनता। राजाने चिन्तित हो पूछा,—"महाराज! ऐसी टूटी-फूटी बातें क्यों कह रहे हैं?" क्या कोई आफत आनेवाली है या वज्रपात होनेवाला है? नैमित्तिकने कहा,—राजन्! वास्तवमें जो आपने कहा वही होने वाला है। राजाने पुनः सशंकित हो कहा,—"हे भद्र! जो बात आप जानते हों, वह नि.शंक होकर साफ-साफ कहिये।

नैमित्तिकने कहा,—"राजन्! यदि आप जानना ही चाहते हैं तो मैं आपको साफ बतला देता हूँ कि एक मुहूर्तके बाद पृथ्वी पर ऐसी घोर वृष्टि होगी कि यह महल, सभा-भवन और सारा नगर जलमग्न हो जायगा।"

नैमित्तिककी बात सुनकर सभीके कान खड़े हो गये और वे एक दूसरेकी ओर ताकने लगे। लोगोंको अपना कर्तव्य स्थिर करनेका भी समय न मिला। इतनेमें एकाएक उत्तर ओरकी हवा चलने लगी, साथ ही ईशान कोणसे कुछ बादल भी उठते दिखायी दिये। नैमित्तिकने उन बादलोंको दिखाते हुए कहा,—"क्षणभरमें इन्हीं बादलोंसे सारा आकाश भर जायगा और यही इस दुनियाको समुद्रके रूपमें परिणत कर देंगे।

नैमित्तिककी बात पूरी होते-न-होते सारा आकाश बादलोंसे भर गया और चारों ओरसे श्रावणकी सी घोर घटा घिर आयी। राज-सभामें इससे बड़ी हलचल मच गयी। सभा तुरन्त भंगकर दी गयी और नाट्याभिनय रोक दिया गया। तुरत ही सभाजनोंने अपने-अपने घरकी राह ली। बिजलीकी चमक और बादलोंकी गर्जनासे लोगोंके हृदय काँप उठे। घनघोर घटाके कारण अँधेरा छा गया और क्षणभरके बादही मूसलाधार वृष्टि होने लगी। फलतः समूचे शहरमें पानी भर गया। लोग हाहाकार करने लगे। शहरके रास्ते भी बन्द हो गये। पानीका कोई वारापार ही न था। अतः लोग बड़े ही दुःखी हो रहे। सबको अपने-अपने प्राणोंकी पड़ी थी। किसीका धन और जीवन सुरक्षित न था। घरोंमें

पानी भर जानेके कारण लोग मकानकी छतों और पेड़ोंपर चढ़ गये। इस समय धनी और गरीब सबकी एक ही अवस्था थी। सबपर समान दुःख आ पड़ा था। सब एकही दुःखसे दुःखित थे।

राजा, मन्त्री और नैमित्तिक भी इस आपत्तिसे अछूते न बचे थे। इन तीनोंने राजमहलके सातवे खण्ड पर आश्रय ग्रहण किया था, किन्तु अब पानी बढ़ते-बढ़ते वहां तक जा पहुंचा, तब राजा और मन्त्री दोनोंका हृदय कांप उठा। प्रजाका करुण क्रन्दन सुन राजाकी आंखोंमें भी आंसू आ गये। वह अपने मनमें कहने लगा—हो न हो, यह मेरे किसी पापका ही उदय हुआ है। यदि मैंने कोई धर्म-कार्य किया होता, तो आज यह दुरवस्था न होती। किन्तु अफ़सोस, सारी जिंदगी बीत गयी। अब मैं कर ही क्या सकता हूं। किसीने सच ही कहा है कि मनुष्यका जीवन परिमित अधिकसे अधिक सौ वर्षका है। इसमेंसे आधा तो रात्रिके ही रूपमें बेकार चला जाता है। शेष आधेका आधा बचपन और बुढ़ापेमें बीतता है और बाकी जो रहता है वह व्याधि वियोग और दुःखमें पूरा हो जाता है। अहो! जलतरंगकी तरह इस चपल जीवनमें प्राणियोंको सुखकी प्राप्ति ही कब होती है। मैंने थूहड़के पीछे कल्पवृक्ष खो दिया, कांचके पीछे चिन्तामणि खो दिया। इस असार संसारके मोहमें लीन होकर मैंने धर्मको भुला दिया। अब मैं क्या करूं और कहां जाऊं?

दुःखके कारण राजाका गला भर आया। उसे अब चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देने लगा। उसे इस प्रकार मरना

पसन्द न था किन्तु इससे बचनेका भी कोई उपाय सुझाई न देता था। वह दोनों हाथसे माथा पकड़ कर बैठ गया और बड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। अन्तमें उसे कोई बात याद आ गयी। स्मरण आते ही वह कुछ प्रसन्न हो उठा। मानों डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया। उसने आकाशकी ओर देखकर कहा— "मुझे अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली भाषित धर्मकी शरण प्राप्त हो—इस धर्म बलसे मेरी रक्षा हो!" यह कह, राजा अपने मनमें नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करने लगा। फल यह हुआ कि उसी समय वहां एक नौका आ उपस्थित हुई। उसे देखकर मन्त्रीने कहा—"राजन्! मालूम होता है कि किसी देवताने आप पर प्रसन्न होकर यह नौका भेज दी है। इसमें बैठकर अविलम्ब अपने प्राणकी रक्षा कीजिये।"

मन्त्रीकी यह बात सुन, नौका पर चढ़नेके लिये ज्यों हीं राजाने पैर उठाया, त्यों ही मानो दुनिया ही पलट गई। न कहीं बिजली, न कहीं पानी। बादलोंकी वह काली घटा, मेघोंकी वह *भीषण गर्जना और वह मूशलधार वृष्टि न जाने कहां गायब हो* गयी। राजा देखता है कि वह फिर उसी तरह सभाजनोंसे परिवेष्ठित अपनी राज सभामें बैठा है और उसी तरह नाट्याभिनय हो रहा है। यह कौतूक देखकर राजाके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा। वह बारंबार अपनी आँखें मलकर इस बातकी परीक्षा करने लगा, कि मैं जागता हूं या निद्रामें पड़ा पड़ा कोई स्वप्न देख रहा हूं। अन्तमें जब उसे विश्वास हो गया कि वह जागृता-

वस्थामें ही था, तब उसने नैमित्तिकसे पूछा—"हे दैवज्ञ ! मेरी बुद्धि इस समय चकरा रही है। क्या देख रहा हूं और यह क्या हो रहा है सो कुछ भी मुझे समझ नहीं पड़ता। क्या आप कुछ बतानेकी दया करेंगे ?"

नैमित्तिकने कहा—"राजेन्द्र ! मैंने आपको उपदेश देनेके लिये ही यह इन्द्र जाल दिखाया है। यदि आप आतमकल्याण साधन करना चाहते हों तो इसी समय सजग हो जाइये। अन्यथा पश्चा-तापके सिवा और कोई उपाय न रहेगा।

नैमित्तिकको बात सुन राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने उसे विपुल सम्पत्ति दे विदा किया। नैमित्तिक चला गया; पर उसके कार्यका गहरा प्रभाव राजाके हृदय पर पड़ा रह गया। वह अपने मनमें कहने लगा "अहो ! जैसे इस इन्द्रजालके दृश्य, क्षणिक हैं, उसी तरह यह यौवन, प्रेम, आयु और ऐश्वर्य भी क्षणिक है। इसके अतिरिक्त यह शरीर भी अपवित्र है; क्योंकि यह रस, रक्त, मांस, चरबी, मज्जा, अस्थि, शुक्र, अन्त्रावली और चर्म प्रभृति दूषित पदार्थोंसे ही बना है। यह भी संसारकी एक विचित्रता ही है, कि लोग जिस स्थानसे उत्पन्न होते हैं, उसी स्थानसे अनुराग करते हैं ! जिसका पान करते हैं, उसीका मर्दन करते हैं ! फिर भी उन्हें वैराग्य नहीं आता। जब इस बात पर विचार किया जाता है कि मैं कौन हूं और कहांसे आया हूं, मेरी माता कौन है और मेरा पिता कौन हैं, तब इस संसारका समस्त व्यवहार स्वप्न-सा प्रतीत होता है। फूटे हुए घड़ेके पानीकी तरह आयु निरन्तर

क्षीण हुआ करती है। वायुसे जिस प्रकार दीपककी ज्योति चलित रहती है, उसी प्रकार लक्ष्मी भी चलाचल रहती है। ठीक इसी तरह सारे संसारकी अवस्था बनी रहती है, अतएव बुद्धिमान मनुष्यको भूलकर भी इसमें अनुरक्त न होना चाहिये। इस प्रकार अनेक बातें सोचकर राजाने यतिधर्म ग्रहण करनेका निश्चय किया। उसने उसी समय अपने हरिविक्रम नामक कुमारको राज्यकी बागडोर सौंप दी। तदनन्तर वह तिलकाचार्य गुरुके पास गया और उनसे दीक्षा ग्रहण कर साधु हो गया।

मुनीन्द्रने भुवनसार राजाका यह वृत्तान्त भीमकुमारको बतलाकर अन्तमें कहा—"हे भद्र! वह भुवनसार राजा मैं ही हूं अब मैं तुझे भी यही उपदेश देता हूं कि तेरे हृदयमें आत्मकल्याणकी भावना विद्यमान हो, तो तूने जिस व्रतको अंगीकार किया है, उस पर आ जीवन दृढ़ रहना। इससे तेरे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।" मुनिराजकी यह बात सुन, भीमकुमारने शिर झुका कर कहा-"प्रभो! आपका आदेश मैं निरंतर पालन करता रहूंगा।"

इसके बाद मुनिराजकी धर्मदेशना समाप्त होने पर सब लोग उन्हें वन्दन कर अपने-अपने घर लौट आये और भीमकुमार भी देवपूजा, दया, दानादिक अगणित पुण्य कार्य करता हुआ युवराजका पद सुशोभित करने लगा।

एक दिन भीमकुमार अपने महलमें मित्रोंके साथ हास्यविनोद कर रहा था। इतनेमें वहां एक कापालिक आ पहुँचा। उसने भीमकुमारको आशीर्वाद दे, उन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा-"राज-

कुमार! आप बड़े ही परोपकारी पुरुष हैं। मैं आपका नाम सुनकर बड़ी दूरसे आया हूं। देखिये, मेरे पास भुवन क्षोभिणी नामक एक श्रेष्ट विद्या है। बारह वर्ष पहले मैंने इसकी पूर्वसाधना की थी। अब आगामी कृष्ण चतुर्दशीके दिन श्मशानमें मैं इसकी उत्तर साधना करना चाहता हूं। यदि आप उत्तर साधक हों तो मेरी यह विद्या आसानीसे सिद्ध हो सकती है।" कापालिककी यह बात सुन, भीमकुमारने अपने मनमें सोचा कि इस विनश्वर और असार शरीरसे यदि किसीका भला होता हो, तो नाहीं क्यों की जाय? यह सोचकर उन्होंने कापालिकको बात मान ली। अपना अभिष्ट सिद्ध होते देख, उस पाखण्डीने पुनः कहा—"हे कुमार! अभी कृष्ण चतुर्दशीको दस दिनकी देरी है। तबतक मैं आपके साथ रहना चाहता हूं। आशा है, इसके लिये मुझे अनुमति देंगे।" कुमारने इसके लिये भी अनुमति दे दी; किन्तु मन्त्री पुत्रको यह अच्छी न लगी। उसने कहा—"कुमार! यह मनुष्य मुझे अच्छा नहीं मालूम होता। इसके साथ आपको बातचीत करना उचित नहीं; क्योंकि दुर्जनकी संगति मनुष्यके लिये विषकी तरह घातक होती है।" कुमारने कहा—"मित्र! तुम्हारा कहना यथार्थ है; किन्तु मैं उसे वचन दे चुका हूं, अतः उसका निर्वाह करना मेरा कर्त्तव्य है।" इस प्रकार कुमारका स्पष्ट उत्तर मिल जानेपर भी मन्त्री पुत्रने उन्हें बारंबार समझाया, किन्तु कुमार एकके दो न हुए। इतनेमें वह कृष्ण चतुर्दशी भी आ पहुँची, जिस दिन कापालिक उत्तर साधनाके लिये श्मशान

जानेको था। कापालिककी इच्छानुसार, एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर कुमारने वीरवेश धारण कर उसके साथ श्मशानको ओर प्रस्थान किया। श्मशान पहुँचने पर कापालिकने सर्व प्रथम वहां मण्डल बनाया। इसके बाद किसी देवताका स्मरण कर वह भीमकुमारकी शिखा बांधने लगा; किन्तु भीमकुमार ऐसे कच्चे न थे, कि पहली ही चालमें मात हो जायँ। उन्होंने तुरन्त म्यानसे तलवार खींच ली और सिंहकी तरह पैंतरा बदलकर कहने लगे—"मेरा शिखाबन्ध कैसा? मेरे लिये तो सत्व ही शिखा-बन्ध है।"

कापालिककी पहली चाल बेकार गयी। उसने देखा कि छलसे भीमकुमारका शिर लेना कठिन है, इसलिये अब बलसे काम लेना चाहिये। यह सोच कर उसने भी तलवार खींच ली और आकाशके समान महान रूप धारण कर, क्रोधसे गर्जना करते हुए भीमसे कहा—"कुमार! मैं तेरा शिर लिये बिना तुझे न छोड़ूंगा। किन्तु मैं चाहता हूं कि तू स्वेच्छासे अपना शिर दे दे। इससे तू दूसरे जन्ममें सुखी होगा।" कापालिककी यह बात सुन भीमने तड़प कर कहा—"हे चाण्डाल! पाखंडी! नीच! तू मेरा शिर क्या लेगा, पहले अपनी जान तो बचा ले।"

भीमकुमारके मुंहसे यह शब्द निकलते न निकलते कापालिकने उस पर शस्त्र प्रहार किया। भीमने उससे अपनेको बचा लिया। साथ ही वह अपनी तलवारको चमकाता हुआ कापालिकके कंधे पर चढ़ बैठा। अगर भीम चाहता, तो उसे इस समय आसानीसे

मार डालता; किन्तु उसने सोचा कि इसे जो जानसे मार डालना ठीक नहीं। यदि यह जीवित रहकर मेरी सेवा करना स्वीकार कर ले, तो इसे यों ही छोड़ दिया जाय; किन्तु कुमार जिस समय यह विचार कर रहा था, उसी समय उसकी असावधानीसे लाभ उठाकर, कापालिकने उसके दोनों पैर पकड़कर आकाशकी ओर उछाल दिया। भीम इस समय यदि जमीन पर आ पड़ता तो उसकी हड्डियां भी ढूंढे न मिलती; किन्तु सौभाग्य वश किसी यक्षिणीने बीच हीमें उसे अपने हाथोंपर उठा लिया। अतः भीम न तो जमीन पर ही गिरा न उसे किसी प्रकारकी चोटही आयी। अनन्तर यक्षिणी उसे अपने मन्दिरमें उठा ले गयी। वहां उसे एक रत्नजड़ित मनोहर सिंहासनपर बैठाकर उसने कहा—"हे सुभग! यह विन्ध्याचल पर्वत है और इसपर यह मेरा भवन है। मैं कमला नामक यक्षिणी हूँ और क्रीड़ाके लिये यहां रहती हूँ। आज मैं सपरिवार अष्टापद पर्वतपर गयी थी। वहांसे लौटते समय रास्तेमें मैंने तुम्हें कापालिकसे युद्ध करते हुए देखा। जब तुम्हें उसने ऊपर उछाल दिया तब मैंने ही तुम्हें अपने हाथोंपर रोककर बचाया। हे कुमार! इस समय तुम मेरे अतिथि हो। ईश्वर कृपासे तुम्हें अपार यौवन और रूपकी प्राप्ति हुई है। तुम्हारा रूप और यौवन देखकर मेरे हृदयमें कामने बड़ी उथल-पुथल मचा दी है। हे सुभग! आओ, मेरे गलेसे लगकर मेरे जले हुए हृदयको शीतल कर दो। अपने इस कार्यमें बाधा देने-वाला यहां कोई नहीं है।"

यक्षिणीकी बात सुन कुमारको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"हे देवी! मैं मनुष्य और तुम देवाङ्गना हो। मेरा और तुम्हारा इस प्रकार मिलन हो ही कैसे सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि विषय-सुख अन्तमें अत्यन्त दुःखदायी होता है। विषयी जीव नरक और तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण करता है। सिद्धान्तमें भी कहा है कि विषय रूपी विष हलाहलसे भी अधिक भयंकर है। इसका पान करनेपर प्राणियोंकी बारंबार मृत्यु होती है। विषय विषके कारण अन्न भी विशूचिका रूप हो जाता है। काम शल्य है, एक प्रकारका विष है और वह आशी विषके समान है। इसलिये इसका तो त्याग ही करना उचित है। इसके त्याग करनेसे तिर्यंच जीवको भी स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतः मैं तुम्हें अपनी माता समझता हूँ। तुम भी मुझे अपना पुत्र मानकर इसके लिये क्षमा करो। कुमारने यह कहते हुए यक्षिणीके दोनों पैर पकड़ लिये।

कुमारकी बातोंसे यक्षिणीके हृदयपर यथेष्ट प्रभाव पड़ा था, इस लिये उसने भी अपना दुराग्रह छोड़ दिया। साथ ही उसने प्रसन्न होकर कुमारसे कहा—"तुम्हारी बातें सुनकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है, यदि तुम्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो मांग सकते हो।" कुमारने हाथ जोड़कर कहा—"देवि! तुम्हारी दयासे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। किन्तु यदि तुम कुछ देना ही चाहती हो, तो मुझे उत्तम आशीर्वाद दे सकती हो। माताका आशीर्वाद ही पुत्रके लिये यथेष्ट है। यक्षिणीने प्रसन्न

होकर कहा—"हे वत्स! तुम अजेय होगे। यही मेरा आशीर्वाद है।" कुमारने कहा—"जिनेश्वरकी कृपासे मैं अजेयही हूं फिर भी तुम्हारे आशीर्वादसे मुझे अब दूने बलकी प्राप्ति होगी और मैं दूने उत्साहसे अपना कर्तव्य पालन करूंगा।"

जिस समय यक्षिणी और भीमकुमारमें यह बातचीत हो रही थी, उसी समय कहींसे कुमारको मधुर ध्वनि सुनायी दी। उसी समय उन्होंने चकित हो यक्षिणीसे पूछा—"माता! यह ध्वनिः किसकी है और कहांसे आ रही है?" यक्षिणीने कहा—"इसी विन्ध्याचलपर अनेक मुनि चातुर्मासके कारण उपवास और स्वाध्याय कर रहे हैं, उसीको यह ध्वनि है। भीमने कहा—"यदि आज्ञा हो तो मैं उन्हें बन्दन कर अपने जन्मको सार्थक कर आऊं।" यक्षिणीने तुरत ही उसको आज्ञा दे दी। इसके बाद वह यक्षिणीके बताये हुए मार्गसे उन मुनिओंके पास जा उनकी वन्दनाकर वहीं बैठ गया। उसी समय यक्षिणी भी सपरिवार वहां आयी और मुनिओंको श्रद्धा पूर्वक वन्दन कर वह भी धर्मोपदेश श्रवण करने लगी।

उसी समय भीमको आकाशसे एक बड़ी भुजा पृथ्वीकी ओर आती हुई दिखायी दी। तुरत ही काल दण्डके समान वह भुजा अचानक भीमकुमारके पास आ पड़ी। आश्चर्य-चकित हो वह उसकी ओर देख ही रहा था कि वह भुजा भीमका खड्ग लेकर वहांसे फिर आकाशकी ओर चल दी। भीम इसका कुछ भी रहस्य न समझ सका। उसका हृदय कौतूहलसे भर

गया था। उसे यह जाननेकी बड़ी इच्छा हुई कि यह भुज कहांसे आयी है और कहां जा रही है। यह जाननेके लिये वह उसी समय उस भुजापर सवार हो गया। अनेक नदी नाले और वन पर्वत पार करनेके बाद यह भुजा एक ऐसे स्थानमें जा पहुंची जहां हड्डियोंकी दीवालें, नर-मस्तकके कंगूरे, कंकालके द्वार, हाथी दाँतके तोरण, केश पाशोंकी ध्वजायें, और व्याघ्र चर्मका वितान बना हुआ था। वहांकी समस्त भूमि रक्त-रञ्जित हो रही थी। यह देख, भीमकुमारको ज्ञात हो गया कि यह एक कालिका-भवन था। उस भवनमें मुण्डमाला और अस्त्र धारिणी क्रूराक्षी और महिषपर सवार एक कालिकाकी मूर्ति थी। भीमने देखा कि इस मूर्तिके सम्मुख वही पापिष्ट, दुष्ट, धृष्ट और पाखण्डी कापालिक अपने बायें हाथसे एक सुन्दर पुरुषको पकड़े खड़ा है। जिस भुजापर भीम आरूढ़ होकर आया था, वह इसी कापालिककी दाहिनी भुजा थी। भीमने एकाएक इस कापालिकके सम्मुख उपस्थित होना उचित न समझा। और उसने सोचा कि पहले कहीं छिप कर यह देखना चाहिये, कि कापालिक इस मनुष्यकी क्या गति करता है। निदान, वे भुजासे उतर कर वहीं मन्दिरके पीछे एक स्थानमें छिप रहे।

कापालिकको यह हाल कुछ भी मालूम न हो सका। उसने भुजासे वह खड्ग लेकर उस पुरुषसे कहा—"अब तू अपने इष्ट-देवका स्मरण कर ले, क्योंकि अब तू थोड़े ही क्षणोंका मेहमान है। मैं इसी खड्गसे तेरा शिरच्छेद कर देवीकी पूजा करूंगा।"

कापालिककी बात सुन, उस पुरुषने कहा—"मैं इस समय तीन लोकके नाथ श्रीवीतराग देवकी शरण चाहता हूं। और अपने परम उपकारी, पुण्यवान, दयावान और जिनधर्म-परायण अपने उस प्रिय मित्रकी शरण चाहता हूं, जिसका नाम भीमकुमार है और जिसने मेरी बात न मान कर कापालिकके साथ प्रस्थान किया। अब मुझे और किसीका स्मरण नहीं करना है। तुझे जो कुछ अपना कर्तव्य करना हो, खुशीसे कर।"

उस पुरुषकी यह बातें सुन भीमकुमार सजग हो गया। और शीघ्र ही अपने मित्रको पहचानते हुए वह तड़प कर एक ही छलांगमें कापालिकके सामने जा पहुंचा। उसे देखते ही कापालिक मन्त्री-पुत्रको छोड़ कर भीमसे आ भिड़ा। भीमने उसे तुरन्त जमीनपर पटक दिया, किन्तु ज्योंही वह उसके केश पकड़ कर उसकी छातीपर पाद प्रहार करने लगा, त्योंही देवी-प्रतीमा व्याकुल हो बोल उठी—"हे भीम! इसे मत मार। यह कापालिक मेरा परम भक्त है। यह मस्तक रूपी कमलोंसे मेरी पूजा करता है। जब यह १०८ मस्तक मुझपर चढ़ा देगा, तब मेरी पूजा समाप्त होगी और उसी समय मैं इसे इच्छित वर दूंगी। हे वत्स! तेरी वीरता देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इसलिये मैं तुझे वांछित वर दे सकती हूं। तेरी जो इच्छा हो वह मांग ले?" भीमने प्रणाम कर कहा—"हे जगदम्बे! यदि तू वास्तवमें मुझपर प्रसन्न है और मुझे इच्छित वर देना चाहती है, तो मैं यही मांगता हूं, कि तू तन, मन और वचनसे जीव हिंसा-

का त्याग कर। हे माता! धर्मका मूल जीव दया ही है, इससे सभी समीहित सिद्ध होते हैं। तुझे भी केवल जीव दया ही धारण करनी चाहिये। हिंसासे इस संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है, इसलिये हे देवि! हिंसा छोड़कर उपशम धारण कर।"

भीमकी यह बातें सुनकर देवी लज्जित हो गयीं। वे मन-ही-मन कहने लगीं—"अहो! इसमें यह कैसा पुरुषार्थ है! कैसा सत्व है! मनुष्य होकर भी इसकी मति कैसी विलक्षण है! मुझे अवश्य ही इसकी बात माननी चाहिये। यह सोचकर उसने कहा—"हे वत्स! मैं आजसे सब जीवोंको आत्मवत् समझ कर उनकी रक्षा करूंगी।" यह कह देवी अन्तर्धान हो गयीं। भीमने अब अपने मित्र मतिसागरकी ओर देखा और उसे हृदयसे लगाकर उसका कुशल समाचार पूछा। मतिसागरने कहा—"हे प्रभो! मेरा हाल न पूछिये। जब आप महलसे चले आये और आपकी प्रियतमाने आपको वहां न देखा, तब उसने चौकीदारोंसे कहा। चौकीदारोंने रातभर आपको खोजा, पर जब आप न मिले, तब यह समाचार राजाको पहुंचाया गया। राजाने भी चारों ओर आपकी खोज करायी, पर जब कहीं आपका पता न चला, तब वे बहुत हताश हो गये। उन्होंने सोचा कि अवश्य आपको कोई हरण कर ले गया है। इस विचारसे राजाको बड़ा दुःख हुआ और वे मूर्च्छित हो गये। आपकी मातायें भी इस शोक-संवादसे मूर्च्छित हो गयीं। चन्दनादिके सिंचनसे जब सबको किसी तरह होश आया, तब वे विलाप करने लगे। इसी

समय वहां एक स्त्रीने प्रकट होकर कहा—"हे राजन्! चिन्ता न कीजिये। मैं तुम्हारी कुल देवी हू। तुम्हारे पुत्रको एक पाखण्डी धोखा देकर श्मशानमें ले गया था। वहां उसने उसका शिर लेनेकी चेष्टा की थी, किन्तु सौभाग्यवश वह बच गया है। इस समय वह सकुशल है और शीघ्र ही बडी सम्पत्तिके साथ तुम्हें आ मिलेगा। यह कहते हुए वह स्त्री अन्तर्धान हो गयी; किन्तु उसकी बातें सुन मुझसे न रहा गया। मैं उसी समय आपकी खोजमें श्मशानकी ओर चल पडा। वहां आप तो न मिले, किन्तु यह पापी कापालिक उपस्थित था। मैं इसके हाथमें फंस गया। और यह मुझे यहां उठा लाया। इसने मुझे बहुत तंग किया। यदि यथासमय आप न आ पहुंचते तो यह मुझे मारही डालता।

मतिसागरकी यह बातं सुन भीमकुमारको कापालिकपर बडा ही क्रोध हुआ। उसने क्रोधपूर्ण नेत्रोंसे कापालिककी ओर देखा। भीमकी कुटिल भ्रकुटियोंको देखकर कापालिक कांप उठा। उसने हाथ जोडकर गिडगिडाते हुए कहा,—"हे सात्विक शिरोमणि! आपने भगवती कालिकाको जिस दया धर्मका उपदेश दिया है। उसे मैं भी स्वीकार करता हू। इस धर्म-ज्ञानके कारण मैं आपको अपना गुरु समझूँगा और सदा सेवककी तरह रहूँगा। कृपया मुझपर दया कर मेरा यह अपधराध क्षमा करें।" कापालिकके दीन वचन सुन, भीमकुमारने क्षमा कर दिया। इसी समय सूर्यादय हुआ। भीमकुमार और मतिसागर विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये और कहां जाना चाहिये। किन्तु उन्हें अधिक

समय तक यह चिन्ता न करनी पड़ी। शीघ्र ही वहाँ एक सप्ताङ्ग मज्जित हाथी आ पहुँचा और उसने उन दोनोंको अपनी सूँडसे पीठपर बैठाकर आकाश मार्गसे एक ओर ले चला। हाथीका यह कार्य देख, कुमारने चकित हो कहा—"मित्र! देखो, इस संसारमें कैसे कैसे हाथी वर्तमान हैं! मैंने आजके पहले कभी ऐसा हाथी देखा न था। न जाने यह हम लोगोंको कहा ले जायगा। मित्र ने कहा—"कुमार! मुझे यह हाथी नहीं मालूम होता। बल्कि यह कोई देवता है। संभव आपके पुण्योदयसे यहा आया हो। अस्तु। अब तो यह जहा ले जाय वहा हमलोगोंको चलना चाहिये। पुण्यके प्रतापसे सब कुछ अच्छा ही होगा।

कुमार और मन्त्री पुत्रमें इस तरहकी बातें हो ही रही थीं, कि वह हाथी एक निर्जन नगरके द्वारपर नीचे उतरा और उन दोनोंको वहा बैठाकर कहीं चलता बना। कुमारने मन्त्री पुत्रको वहीं छोड नगरमें प्रवेश किया। नगरमें चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हाट-बाट धन धान्य और विविध वस्तुओंसे पूर्ण होनेपर भी वहा किसी मनुष्यका पता न था। आश्चर्य पूर्वक यह दृश्य देखता हुआ कुमार नगरके मध्य भागमें पहुँचा, वहा उसने देखा कि एक सिंह अपने मुखमें किसी मनुष्यको पकडे खडा है। भीमने यह सोचकर, कि यह कोई विचित्र मामला है, सिंहसे विनय पूर्वक कहा—"हे सिंह! इस पुरुषको छोड दे!" सिंहने यह सुन उस मनुष्यको अपने दोनों पैरोंके बीचमें दबा लिया और कुमारसे कहा—"हे सत्पुरुष! मैं बहुत दिनोंका भूखा हूं। अब यह हाथ

में आया हुआ शिकार मैं कैसे छोड़ सकता हूं ?" कुमारने कहा—"मुझे मालूम होता है कि तू कोई देव है किन्तु किसी कारणवश तूने यह रूप धारण किया है। परन्तु देव कवलाहार नहीं करते। उन्हें किसीकी हिंसा न करनी चाहिये। अगर तू मनुष्यका मांस ही खाना चाहता है, तो तुझे मैं अपना मांस देता हूं। तू उससे अपनी क्षुधा तृप्त कर, किन्तु इसे छोड़ दे। यह सुनकर सिंहने कहा—"हे सज्जन! तेरा कहना ठीक है, किन्तु इसने पूर्वजन्ममें मुझे इतना दुःख दिया है, कि मैं कह नहीं सकता। इस पापीको मैं सौ जन्मतक मारता रहूँ, तब भी मेरा कोप शान्त होना कठिन है।" कुमारने कहा—"हे भद्र! यह मनुष्य बड़ा ही दीन दिखाई देता है। दीनपर क्रोध कैसा? तू इसे छोड़ दे। यदि तू कषाय जन्य पापोंसे दूर रहेगा तो दूसरे जन्ममें तुझे मोक्षकी प्राप्ति होगी।"

इस प्रकार राजकुमारने सिंहको बहुतेरा समझाया, किन्तु वह उस मनुष्यको छोड़नेके लिये राजी न हुआ। यह देखकर कुमारने सोचा, कि इसे ताड़ना दिये बिना काम न चलेगा। अतएव वह तलवार खींच कर सिंहकी ओर झपटा। सिंहने भी अपने शिकारको अपनी पीठपर रख लिया और मुंह फैलाकर भीमपर आक्रमण किया। किन्तु भीमपर सफलता प्राप्त करना कोई सहज काम न था। सिंह ज्योंही समीप आया त्योंही भीमने दोनों हाथसे दोनों पैर पकड़कर उसे उठा लिया और शिरपर घुमाना आरम्भ किया। सिंहने जब देखा कि इससे कोई

बस न चलेगा तब वह सूक्ष्म रूप धारण कर भीमके हाथसे निकल कर अन्तर्धान हो गया। सिंहने जिस पुरुषको पकड़ा था वह वहीं बैठ रहा। भीमने अब उस पुरुषको साथ ले राज-मन्दिरमें प्रवेश किया। राज-मन्दिर बिलकुल सूना था। भीम उसे देखता हुआ उसके सातवें खण्डपर पहुँचा। वहां काष्ठकी कई पुतलियां थीं। उन्होंने उसे स्वर्ण सिंहासनपर बैठाकर उससे स्नान करनेकी प्रार्थना की। भीमने कहा—"मेरा मित्र मतिसागर शहरके बाहर बैठा हुआ है। उसे भी यहां बुलवा दीजिये तो मैं स्नान कर सकता हूँ। भीमकुमारकी यह बात सुन पुतलियां मतिसागरको भी वहीं बुला लायीं। दोनों मित्रोंके एकत्र होनेपर पुतलियोंने अच्छी तरह स्नान और भोजन करा, उन्हें एक पलंगपर बैठाया। भीम और मतिसागर वहां बैठकर चकित दृष्टिसे चारों ओर देखने लगे। यह सारा नगर और महल सूना क्यों पड़ा है, यह जाननेके लिये वे बड़े उत्कंठित हो रहे थे, किन्तु उन्हें वहां कोई भी ऐसा मनुष्य दिखायी न देता था, जिससे वे इसका भेद पूछते। किन्तु उन्हें इस प्रकार अधिक समय तक उत्कंठित न रहना पड़ा, शीघ्रही वहां कुण्डलादि भूषणसे विभूषित एक देव प्रकट हुआ। उसने भीमसे कहा—"हे राजकुमार! तेरा बलविक्रम देखकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता प्राप्त हुई है। तुझे जो इच्छा हो वह तू मांग सकता है। भीमने कहा—"यदि आप मुझपर वास्तवमें प्रसन्न हैं, तो कृपया पहले मुझे यह बतलाइये, कि आप कौन हैं और यह नगर इस प्रकार सूना क्यों

हो रहा है ? भीमका यह प्रश्न सुनकर देवने कहा—"हे राजकुमार! यदि तू यह सब बातें जानना ही चाहता है, तो मुझे सुनानेमें कोई आपत्ति नहीं। इस नगरका नाम हेमपुर है। यहां हेमरथ नामक एक राजा राज करता था। उसके चंड नामक एक पुरोहित था। वह सब लोगोंपर बड़ा द्वेष रखता था। राजाका स्वभाव भी बड़ा क्रूर और अविश्वासी था। यदि कोई साधारण अपराध भी करता, तो उसके लिये वह उसे बहुत कड़ी सजा देता था। एक दिन किसीने राजासे झूठ-मूठ चंडके सम्बन्धमें कोई चुगली की। राजाने तुरन्त ही उसपर विश्वास कर लिया और चंड पुरोहितपर गरम तेल छिड़क-छिड़क कर मार डाला। चंड अकाम निर्जरासे मृत्यु प्राप्त कर सर्वगिल नामक राक्षस हुआ। वह राक्षस स्वयं मैं ही हूँ। पूर्वजन्मके बैरके कारण इस नगरमें आकर मैंने सर्वप्रथम यहांके लोगोंको अन्तर्धान कर दिया इसके बाद सिंहका रूप धारण मैंने इस राजाको पकड़ा था। इसके बाद जो कुछ हुआ, वह तुझे ज्ञात ही हैं। तेरे पुण्य प्रतापसे मैंने इसे छोड़ दिया। इसके बाद मैंने ही गुप्त रूपसे तेरा और तेरे मित्रका सत्कार किया और अब तेरी ही इच्छाके कारण मैं नगरके लोगोंको पुनः प्रकट कर रहा हूँ। कुमारने इस समय नज़र उठाकर देखा, तो वास्तवमें राजमहल और नगरको स्त्री-पुरुषोंसे भरा हुआ पाया। सब लोग अपने-अपने काममें इस तरह लगे हुए थे मानों उन्हें इस घटनाका कुछ ज्ञान ही नहीं है। यह देखकर भीमकुमार और मतिसागरको

अप्रत्याख्यान एक वर्षतक और अनन्तानुबन्धी जन्म पर्यन्त रहता है। इन चारों कषायोंके रूपको समझ कर इनका त्याग करना चाहिये। इन चारों कषायोंमें क्रोध बहुतही भयंकर है। कहा भी है कि क्रोध विशेष सन्ताप कारक है, क्रोध वैरका कारण है, क्रोधही मनुष्यको दुर्गतिमें फँसा रखता है और क्रोध ही शम-सुखमें बाधा डालता है। इसलिये क्रोधका त्याग कर शिवसुख देनेवाले शमको भजो। यही मोक्षका देनेवाला है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार द्राख, ईख, क्षीर और चीनी आदि बलिष्ट रस भी सन्निपात में दोषकी वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार उपरोक्त कषायोंसे भी संसार की वृद्धि होती है। सिद्धान्तमें कहा गया है कि मर्म वचनसे एक दिनका तप नष्ट होता है, आक्षेप करनेसे एक मासका तप नष्ट होता है, शाप देनेसे एक वर्षका तप नष्ट होता है और हिंसाकी ओर अग्रसर होनेसे समस्त तप नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य क्षमा रूपी खड्गसे क्रोधरूपी शत्रुका नाश करता है, उसीको सात्विक, विद्वान्, तपस्वी और जितेन्द्रिय समझना चाहिये।"

मुनिराजके इस धर्मोपदेशका सर्वङ्गिल राक्षसपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। उसने कहा—"भगवन्! कुमारके प्रताप और आपके उपदेशसे प्रभावित होकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अब मैं कभी किसीपर क्रोध न करूँगा।" सर्वंगिल जिस समय यह प्रतिज्ञा कर रहा था, उसी समय एक हाथी चिंघाड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। यह देख सब लोग घबरा गये; किन्तु हाथीने किसीको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचायी। उसने प्रथम मुनिराजको

बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसी समय कोई चारण श्रमण मुनि आकाशसे उतरते हुए कुमारको दिखाई दिये। उन्होंने नगरके बाहर डेरा डाला। कुमारने उन्हें देखते ही पहचान लिया कि यह मेरे गुरु हैं। उसने राक्षससे कहा—"हे राक्षसेन्द्र! यह मेरे गुरु हैं। यदि तू अपने जन्मको सार्थक करना चाहता हो, तो इनकी वन्दना कर। शास्त्रोंमें भी कहा है कि :—

"जिनेन्द्र प्रणिधानेन, गुरूणां वन्दनेन च।
न तिष्ठति चिरं पापं, छिद्र हस्ते यथोदकम्॥"

अर्थात्—"जिनेन्द्रके ध्यानसे और गुरुके वन्दनसे जिस प्रकार छिद्रयुक्त हाथमें जल नहीं ठहरता उसी तरह पाप अधिक समय तक नहीं ठहरते।"

इसके बाद कुमार, मन्त्री, राक्षस और हेमरथ राजा सब मिल कर मुनिराजके पास जा उन्हें वन्दनकर यथा स्थान बैठ गये। मुनिराजका आगमन समाचार सुन अनेक नगर-निवासी भी वहाँ जा पहुँचे थे। सब लोगोंके इकट्ठा हो जानेपर मुनिराजने इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया।

"हे भव्य प्राणियो! संसार रूपी जेलखानेके कषायरूपी चार चौकीदार हैं। जबतक यह चारों जाग्रत हों, तबतक मनुष्य उसमेंसे छूटकर मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है? हे भव्यात्माओ! वे चार कषाय इस प्रकार हैं—(१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ। यह चारों कषाय संज्वलनादि भेदोंसे चार-चार प्रकारके हैं। संज्वलन कषाय एक पक्ष तक, प्रत्याख्यान चार मास तक,

अप्रत्याख्यान एक वर्षतक और अनन्तानुबन्धी जन्म पर्यन्त रहता है। इन चारों कषायोंके रूपको समझ कर इनका त्याग करना चाहिये। इन चारों कषायोंमें क्रोध बहुतही भयंयर है। कहा भी हैं कि क्रोध विशेष सन्ताप कारक है, क्रोध वैरका कारण है, क्रोधही मनुष्यको दुर्गतिमें फँसा रखता है और क्रोध ही शम-सुखमें बाधा डालता है। इसलिये क्रोधका त्याग कर शिवसुख देनेवाले शमको भजो। यही मोक्षका देनेवाला है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार द्राख, ईख, क्षीर और चीनी आदि बलिष्ट रस भी सन्निपात में दोषकी वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार उपरोक्त कषायोंसे भी संसार की वृद्धि होती है। सिद्धान्तमें कहा गया है कि मर्म वचनसे एक दिनका तप नष्ट होता हैं, आक्षेप करनेसे एक मासका तप नष्ट होता हैं, श्राप देनेसे एक वर्षका तप नष्ट होता है और हिंसाकी ओर अग्रसर होनेसे समस्त तप नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य क्षमा रूपी खड्गसे क्रोधरूपी शत्रुका नाश करता है, उसीको सात्विक, विद्वान्, तपस्वी और जितेन्द्रिय समझना चाहिये।"

मुनिराजके इस धर्मोपदेशका सर्वङ्गिल राक्षसपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। उसने कहा—"भगवन्! कुमारके प्रताप और आपके उपदेशसे प्रभावित होकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अब मैं कभी किसीपर क्रोध न करूँगा।" सर्वंगिल जिस समय यह प्रतिज्ञा कर रहा था, उसी समय एक हाथी चिंघाड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। यह देख सब लोग घबरा गये; किन्तु हाथीने किसीको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचायी। उसने प्रथम मुनिराजको

वन्दन किया। इसके बाद उसने हाथीका रूप त्याग कर यक्षका रूप बना लिया। यही उसका प्रकृत रूप था। उसे देखते ही मुनिराजने कहा—"अहो यक्षराज! मालूम होता है कि तुम्हीं अपने पुत्र हेमरथको बचानेके लिये गजका रूप किये भीमकुमारको यहाँ ले आये थे?" यक्षने कहा—"मुनिराज! आपकी धारणा ठीक ही है। पूर्व जन्ममें हेमरथ मेरा पुत्र और मैं उसका पिता था। इसी स्नेहके कारण मैं हेमरथको बचानेके लिये व्याकुल हो उठा और भीमकुमारको यहाँ ले आया। पूर्व जन्ममें सम्यक्त्व स्वीकार कर उसे मैंने कुसंसर्गमें पड़कर दूषित किया था, इसीलिये मैं व्यन्तर हुआ हूँ। कृपया मुझे फिर सम्यक्त्व प्रदान कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो।" यक्षकी बात सुन मुनिराजने उसको और साथ ही राक्षस तथा राजा आदिको भी विधिपूर्वक सम्यकत्व प्रदान किया। इसके बाद भीमने पाखण्डोके संसर्गसे मलीनता प्राप्त सम्यकत्वके लिये शुद्धि माँगी। मुनिराजने उसे तदर्थ भी आलोचना प्रदान की। अनन्तर कुमार प्रभृति सब लोग मुनीश्वरको वन्दन कर हेमरथके महलको लौट आये।

महलमें आनेपर हेमरथने कुमारको प्रणामकर कहा—"हे कुमार! मैं आपकी कृपासे ही जी रहा हूँ और राज्य कर रहा हूं। आपने मुझपर जो उपकार किया है, उसके लिये मैं आजन्म आपका ऋणी रहूँगा। आपके इन उपकारोंका बदला किसी तरह चुकाया ही नहीं जा सकता, फिर भी मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूं। वह यह कि मेरे मदालसा नामक एक कन्या है, वह सर्वगुण सम्पन्न

ओर रूप गुणमें अद्वितीय है। यदि आप उसका पाणिग्रहण करेंगे, तो मुझपर बड़ी कृपा होगी। कुमारने हेमरथको यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। अतः मदालसा और भीमकुमारका परिणय बड़े समारोहके साथ सम्पन्न किया गया। इसी समय कापालिकके साथ बीस भुजावाली कालिका विमानमें बैठकर वहाँ आ पहुँची। उन्होंने कुमारको एक हार देते हुए कहा—"हे कुमार! यह अपना एक हार मैं तुझे देती हूँ। इस हारमें नवरत्न हैं। उनके प्रभावसे तुझे तीन खंडका राज्य और आकाश गमनकी शक्ति प्राप्ति होगी। साथ ही सब राजा तेरी अधीनता स्वीकार करेंगे। मुझे एक बात और भी कहनी है—तेरे माता पिता और पुरजन परिजन तेरे विरहसे बड़ेही दुःखित हो रहे हैं। वे तेरा दर्शन करना चाहते हैं। मैं जिस समय विमानमें बैठकर तेरे नगरके ऊपरसे निकली, उस समय मैंने देखा कि तेरे माता पिता और नगरनिवासी तेरा नाम ले ले कर विलख रहे हैं। मैंने यह देखकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि,—"तुम लोग चिन्ता न करो, मैं दो रोज़में भीमको यहाँ लाकर तुमसे मिला दूंगी।" इसलिये अब तुम्हें शीघ्र ही अपने नगरकी ओर प्रस्थान करना चाहिये।

कालिकाकी यह बात सुन भीमकुमार वहाँसे चलनेके लिये उत्कंठित हो उठा। यह जानकर उस यक्षने विमानका रूप धारण कर कहा,—"हे कुमार! आओ, विमानमें बैठ जाओ, मैं तुम्हें क्षणभरमें तुम्हारे पिताके पास पहुँचा दूँगा।" कुमारको जानेकी तैयारी करते देख हेमरथने अनेक हाथी, वस्त्राभूषण और रत्नादि

देकर अपनी पुत्रीको भी विदा करनेकी तैयारी की। सब तैयारी समाप्त हो जानेपर भीमकुमारने हेमरथके साथ आकाश मार्गसे अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया। एवं हाथी, घोड़े और नौकर चाकर प्रभृति भूमि मार्गसे वहांके लिये रवाना हुए। यह लोग जिधर हीसे निकलते उधर ही हाथीके चित्कार और घोड़ोंकी हिन-हिनाहटसे दशो दिशायें पूरित हो जातीं। शीघ्रही कुमार बड़े ठाट-बाटके साथ सदलबल कमलपुरके समीप आ पहुँचे। वहाँ एक उद्यानमें उतरकर कुमार पहले जिनचैत्यमें गये और राक्षस तथा यक्षादिके साथ इस प्रकार स्तुति करने लगे :—

"मुनीन्द्रोंके आनन्द-कन्दको बढ़ानेके लिये मेघ तुल्य और विकल्पकी कल्पना रहित ऐसे हे वीतराग! आपको नमस्कार है! विकसित मुखकमलवाले हे जिनेश! आपका जो ध्यान करता है वह इस संसारमें उत्तम और अनन्त सुख प्राप्त करता है। हे परमेश्वर! आपको देखते ही इस संसारके मार्गकी मरुभूमि नष्ट हो जाती है। हे भगवन्! आप ही ज्योतिरूप हैं और आपही योगियोंके ध्येय हैं। आपहाने अष्टकर्मोंका विघात करनेके लिये अष्टाङ्ग योग बतलाया है। जलमें, अग्निमें, वनमें, शत्रुओंमें, सिंहादि पशुओंके बीचमें और रोगोंकी विपत्तिके समय आप ही हमारे अवलम्बन हैं—आप हो हमारे आश्रयस्थान हैं।" इस प्रकार जगन्नाथकी स्तुति कर वहांसे पैदल चलता हुआ भीमकुमार अपने पिताको वन्दन करने चला। उस समय भेरी, मृदंग प्रभृति बाजे बजने लगे और चारों ओर आनन्द एवम्

उत्साहकी नदी उमड़ने लगी। बाजोंका यह मधुर घोष सुनकर राजा चौंक पड़े। उस समय कुमारके वियोगके कारण चारों ओर शोकके घने बादल छाये हुए थे। एकाएक उदासीनताके वायुमण्डलमें बाजोंकी घोष सुन उन्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। फलतः शीघ्र ही हरिवाहन राजाने अपने मन्त्रीसे इस सम्बन्धमें पूछताछ की; किन्तु राजाकी भांति मन्त्री भी इस बातसे अनभिज्ञ था, अतएव वह भी कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। इतने ही में वनपालने उपस्थित होकर राजाको यह शुभ समाचार सुनाया। राजाको इससे इतना आनन्द हुआ, कि उन्होंने अपने शरीरके समस्त आभूषण वनपालकको इनाम दे दिये। क्षणभरमें विद्युत वेगसे यह आनन्द समाचार समूचे नगरमें फैल गया। जहां एक क्षण पूर्व शोककी घटा घिरी हुई थी, वहां अब प्रसन्नताका सूर्य चमकने लगा। सारा नगर बातकी बातमें ध्वजा पताकाओंसे सजा दिया गया और राजाकी आज्ञासे मन्त्री प्रभृति अनेक गण्यमान्य सज्जन कुमारको लेनेके लिये सम्मुख पहुँचे। भीमकुमारने मदालसाके साथ आकर माता पिताको प्रणाम किया उस समय उन लोगोंका हृदय आनन्दसे पूरित हो उठा--सबकी आंखोंसे हर्षाश्रुकी धारा बह चली। शीघ्र ही राजाने सभा विसर्जित की। सब लोग हँसी खुशी मनाते अपने-अपने घर गये। भोजनादिसे निवृत्त होनेके बाद भीमके अभिन्न हृदय मित्र मतिसागरसे राजाने सब हाल पूछा। मतिसागरने उन्हें आद्योपान्त सब हाल कह सुनाया। भीमकी वीरताका समाचार सुन राजाको बड़ा ही

आनन्द हुआ। ऐसे पुत्रको प्राप्त करनेके कारण वे अपनेको धन्य समझने लगे। शीघ्र ही उन्होंने अनेक राजकुमारियोंके साथ भीमका ब्याह कर दिया और कुछ दिनोंके बाद भीमको राजसिंहासन पर बैठाकर उन्होंने गुरु महाराजके निकट दीक्षा ग्रहण करली। भीमराजा जैन धर्मका बड़ा प्रभावक हुआ और क्रमशः तीनों खण्डका स्वामी हुआ।

दोगंदुक देवकी भांति भीमको सांसारिक सुख उपभोग करते हुए जब पैंतीस हजार वर्ष हुए, तब एक दिन वहांके सहस्राम्रवनमें क्षमासागर नामक एक ज्ञानी मुनिका आगमन हुआ। वनपाल द्वारा यह समाचार सुनते ही राजा सपरिवार उन्हें वन्दन करने गया। वहां गुरु और अन्यान्य साधुओंको वन्दनकर भीम प्रभृतिने जब समुचित आसन ग्रहण किया, तब गुरु महाराजने धर्मोपदेश देते हुए कहा—"हे भव्य जीवो! धर्मका अवसर प्राप्त होने पर विवेकी पुरुषको आडम्बरके लिये विलम्बन न करना चाहिये। बाहुबलिने इसी प्रकार रात्रि बिता दी थी, फलतः उसे आदिनाथ स्वामीके दर्शन न हो सके थे। इसके अतिरिक्त मनुष्य मात्रको चाहिये कि विषय वासनाओंके प्रलोभनमें न पड़े, धर्मका साधन करें। मनुष्य जन्म मिलनेपर भी जो प्राणिधर्म साधना नहीं करता, वह मानो समुद्रमें डूबते समय नौकाको छोड़कर पत्थर पकडता है।" इस प्रकार धर्मोपदेश सुन, राजाको वैराग्य हो आया। उसने मुनिराजसे पूछा—"हे भगवन्! मैंने पूर्वजन्ममें कौनसा पुण्य किया था, जिसके कारण मुझे यह ऐश्वर्य-सुख प्राप्त हुआ है?

मुनिराजने कहा—"राजन्! यदि तुझे पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुननेकी इच्छा हुई है तो सुन। किसी समय प्रतिष्ठानपुरमें देवदत्त और सोमदत्त नामक दो भाई रहते थे। पूर्वजन्मके वैर-विरोधके कारण उन दोनोंमें अत्यन्त ईर्षा द्वेष रहता था। बड़े भाई देवदत्तने सन्तान प्राप्तिकी इच्छासे अनेक विवाह किये, किन्तु किसी स्त्रीके सन्तान न हुई और वह धीरे धीरे वृद्ध हो गया। एक दिन वह कहीं कामसे जा रहा था, रास्तेमें उसने देखा कि दावानलमें एक सर्प जला जा रहा है। उसे उस पर दया आ गयी अतः शीघ्र ही उसने अग्निसे बाहर निकाल कर उसका प्राण बचाया, इसके बाद एक दिन वह अपने घरमें बैठा हुआ भोजन कर रहा था, इसी समय वहां एक ऐसे मुनि आ पहुँचे, जिन्होंने एक मास तक उपवास किया था। देवदत्तने उन्हें बड़े आदरके साथ बैठाया और उनका यथोचित आतिथ्य कर उन्हें अच्छी तरह अहार दान दिया। हे राजन! यह देवदत्त और कोई नहीं, तू ही था। तूने पूर्वजन्ममें मुनिराजको आहार दान दिया था, इसलिये इस जन्ममें तुझे राज्यकी प्राप्ति हुई है। पूर्वजन्ममें तूने सर्पको कष्टसे बचाया था, इसलिये इस जन्ममें तेरे भी सब कष्टदूर हुए। तेरा पूर्व-जन्मका भाई सोमदत्त इस जन्ममें कापलिक हुआ। पूर्वजन्मके अभ्यासके कारण इस जन्ममें भी वह तुझ पर द्वेष रखता है। इसीलिये उसने तुझे अनेक प्रकारके कष्ट देनेकी चेष्टा की, किन्तु सर्पको बचानेके कारण तुझे जो पुण्य हुआ था, उस पुण्य बलसे तेरे सब कष्ट दूर हो गये। यही तेरे पूर्वजन्मकी कथा है। हे भीम-

क्या नहीं करना पड़ता ? किसीने सच ही कहा है कि पेटके कारण पुरुषको मर्यादाका त्याग करना पड़ता है, पेटके कारण वह नीच जनोंकी सेवा करता है, पेटके कारण वह दिनवचन बोलता है, पेटके कारण उसका विवेक नष्ट हो जाता है, पेटके कारण उसे सत्कीर्तियोंकी इच्छा त्याग देनी पड़ती है और पेटहीके कारण उसे नाच सीखकर भांड तक बनना पड़ता है। सिद्धड़के परिवारकी भी यही दशा थी। उनके लिये उनका घर ही जंगल हो रहा था। किसीने कहा भी है कि जहां उच्च कोटिके स्वजनोंका संग नहीं होता, जहां छोटे-छोटे बच्चे खेलने-कूदते न हों, जहां गुणोंका आदर-सत्कार नहीं होता हो, वह घर जंगलसे भी बढ़कर है।

सिद्धड़ इसी तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा था ; किन्तु उसे बहुत दिनोंतक इस अवस्थामें न रहना पड़ा। कुछ ही दिनोंमें उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु क्या हो गयी, मानों वह इस दुःसह दुःखोंसे छुटकारा पा गया। अब उसके घरमें उसकी स्त्री चन्द्रा और उसका पुत्र सर्ग यही दो जन रह गये। इनका रहा सहा सहारा भी इस प्रकार छिन जानेसे इन्हें दूसरेही दिनसे अपने-अपने पेटकी चिन्ताने आ घेरा। चन्द्रा दासी वृत्ति करने लगी। किसीका पानी भर देती, किसीके बर्तन मल देती, तो किसीका कोई और काम कर देती और सर्ग लकड़हारेका काम करने लगा। वह रोज जंगलसे लकड़ियां काट लाता और उन्हें शहरमें बेचकर किसी तरह पेट पालता। एक दिन किसी साधु-

कारके यहां उसका दामाद आया, इसलिये उसने चन्द्राको जल भरनेके लिये बुलाया। सर्ग उस समय जंगल गया था, इसलिये चन्द्राने उसके लिये रोटियां और मट्ठा एक छींकेपर रख दिया और दरवाजेको जंजीर चढ़ाकर वह साहूकारके यहां जल भरने चली गयी। दोपहरको यथा समय सर्ग अपने घर आया। उस समय उसे बहुत ही भूख प्यास लगी थी; किन्तु घरमें माताको न देख, वह मारे भूखके छटपटाने लगा। उधर चन्द्रा जल भरते-भरते थक गयी, किन्तु साहूकारके सब आदमी अपने-अपने काममें व्यस्त थे, इसलिये किसीने उसे एक दानेको भी न पूछा। निदान, वह भी खाली हाथ घर लौट आयी। किसीने सच कहा है कि दूसरेकी सेवामें जो पराधीनता आ जाती है, वह बिना मृत्युकी मृत्यु, बिना अग्निके प्रज्वलन, बिना जंजीरका बन्धन, बिना पंककी मलीनता और बिना नरककी तीव्र वेदनाके समान बल्कि यों कहिये कि इनसे भी बढ़ कर है।

सर्ग क्षुधाके कारण पहलेहीसे व्याकुल हो रहा था। उससे किसी तरह रहा न जाता था। एक-एक पल वर्षके समान बीत रहा था। माताको देखते ही वह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। उसने तड़पकर कहा—"पापिनी! क्या साहूकारके यहां तुझे फांसी दे दी गयी थी जो तू अबतक वहां बैठी रही?" पुत्रके यह क्रोध युक्त वचन सुनकर चन्द्राको भी क्रोध आ गया। उसने भी उसी तरह उत्तर दिया—"क्या तेरे हाथ न थे जो छींके परसे रोटियां भी उतारकर खाते न बनी!" इस प्रकार कठोर वचनोंका

कुमार! यह कथा जान कर तुझे हिंसाका सर्वथा त्याग करना चाहिये और निरन्तर जीव दयाका पालन करना चाहिये।"

अपने पूर्वजन्मका यह वृत्तान्त सुन राजाको उसी समय जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसका हृदय वैराग्यसे पूरित हो गया। उसने गुरु देवसे कहा—"हे भगवन्! यदि आप दया कर यहीं चतुर्मास व्यतीत करें, तो मेरा बड़ा उपकार हो!" मुनिराजने उसके अनुरोधसे वहीं शुद्ध उपाश्रयमें चतुर्मास व्यतीत किया। अनन्तर राजाने सब देशोंमें अमारिपडहकी घोषणा करायी। जिन मन्दिर बनवाये और नित्य गुरुके निकट धर्मोपदेश सुना। चतुर्मास पूर्ण होनेपर उसने चारित्र ग्रहण कर लिया और गुरुके साथ विहार करता रहा। अन्तमें केवल ज्ञान प्राप्तकर उसने परमपद प्राप्त किया। भीमकुमारका यह दृष्टान्त सुनकर धर्मार्थी पुरुषोंको निरन्तर दया धर्मका पालन करना चाहिये।

विचारशील पुरुषको चाहिये कि कभी कठोर वचनोंका भी प्रयोग न करे। कठोर वचनोंका प्रयोग करनेसे कैसी हानि होती है यह चन्द्रा और सर्गकी कथा श्रवण करनेसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। वह कथा इस प्रकार है:—

चन्द्रा और सर्गकी कथा।

इसी भरतक्षेत्रमें वर्धमानपुर नामक एक सुन्दर नगर है। वहाँ सिद्धड़ नामक एक कुल पुत्र रहता था। उसे चन्द्रा नामक एक स्त्री थी। कुछ दिनोंके बाद उन्हें एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। उस पुत्रका नाम सर्ग था। कर्मवशात् यह तीनों बड़ेही दुःखी थे। वे जहाँ जाते और जो कुछ करते, वहां मानो पहलेसे ही उन्हें दुःख भेटनेके लिये तैयार रहता था। वास्तवमें दुःखी मनुष्यको इसी तरह पद-पदपर दुःखका सामना करना पड़ता है। कहा भी है,कि एक मनुष्यके शिरमें टाल थी, इसके कारण वह धूपसे व्याकुल हो कोई छायायुक्त स्थान खोजने लगा। खोजते-खोजते वह एक बेलके नीचे पहुँचा, परन्तु दुर्भाग्यवश उसे वहां भी सुख न मिल सका। ज्योंही वह वहां जाकर खड़ा हुआ, त्योंही वृक्षसे एक बेल टपककर उसके शिरपर आ गिरा और उससे उसका शिर फट गया! इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाग्यहीन पुरुष जहां जाता है, वहीं आपत्तियां उसे घेरे रहती हैं।

सिद्धड़, चन्द्रा और सर्ग बड़ी कठिनाईसे अपनी जीविका अर्जन करते थे। उदरपूर्तिके निमित्त उन्हें न जाने क्या-क्या करना पड़ता था फिर भी उन्हें दोनों वक्त भरपेट भोजन भी न मिलता था। वास्तवमें पेट है भी ऐसा ही। इसके लिये मनुष्यको

प्रयोग कर दोनोंने दारुण कर्मोंकी नींव डाली। इसके बाद यथा समय उन दोनोंको सद्गुरुके योगसे श्रावकत्वकी प्राप्ति हुई। इस अवस्थामें दोनोंने विधिपूर्वक अनशन कर समाधि द्वारा मृत्यु प्राप्त की। मृत्युके बाद दोनों स्वर्ग गये। वहांसे सर्पका जीव च्युत होकर कुमारदेव नामक एक सेठके यहां पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम अरुणदेव रखा गया। चन्द्राने पाटलिपुरके जसादित्य नामक महाजनके यहां पुत्री रूपमें जन्म लिया। यहां उसका नाम देविणी पड़ा। दैवयोगसे इन दोनोंके विवाहकी बात पक्की हो गयी और कुछ दिनोंके बाद दोनोंका विवाह कर देना स्थिर हुआ। किन्तु विवाह होनेके पहले ही अरुणदेवको व्यापार करनेकी सूझी अतएव उसने समुद्र मार्गसे कटाह द्वीपकी ओर प्रस्थान किया। दैवदुर्विपाकसे समुद्रमें तूफान आया और उस तूफानमें अरुणदेवकी नौका चूर-चूर हो गयी। अरुणदेव समुद्रमें जा पड़ा, किन्तु महेश्वर नामक अपने एक मित्रकी सहायतासे किसी तरह उसके प्राण बच गये। दोनों जन वहांसे घूमते घामते कुछ दिनोंमें पाटलिपुर पहुँचे। वहां महेश्वरने अरुणदेवसे कहा—"हे मित्र ! इस नगरमें तेरी ससुराल है। चलो हम लोग वहीं चल कर आरामसे रहें।" अरुणदेवको मित्रकी यह बात अच्छी न लगी। उसने कहा—"इस दुखी अवस्थामें ससुराल जाना ठीक नहीं।" महेश्वरने कहा—"अच्छा, तब तू यहां नगरके बाहर कहीं आराम कर। मैं नगरसे कुछ खाने-पीनेका समान ले आऊं। यह कहकर महेश्वर नगरमें गया और

अरुणदेव नगरके बाहर एक उपवनके पुराने चैत्यमें सो रहा। थका होनेके कारण उसे शीघ्रही वहां निद्रा आ गयी।

इतनेमें उसके पूर्व जन्मकी माता देयिणी उसी उपवनमें क्रीड़ा करनेके लिये आ पहुँची। यहां उसके पूर्व संचित कर्म प्रकट रूपसे उदय हुए। फलतः उसी उपवनमें छिपे हुए किसी चोरने उसके दोनों हाथ काट डाले और उसके दो सोनेके कड़े लेकर वह वहांसे चम्पत हुआ। यह देख कर बनपालने शोर मचाया। फलतः चारों ओरसे राजाके सिपाही दौड़ पडे। चोरने जब देखा कि अब भाग कर जान बचाना कठिन है, तब वह उस पुराने चैत्यमें घुस गया और सोते हुए अरुणदेवके पास दोनों कड़े व छूरी रखकर आप उसी चैत्यके शिखरमें छिप रहा। इतनेमें अरुणदेवकी आंख खुली। कड़े और छूरीको अपने पास देखकर वह उनके सम्बन्धमें विचार करने लगा। इसी समय वहां सिपाही आ पहुंचे। उन्हें देखकर अरुणदेवको क्षोभ हुआ। उन्होंने ललकार कर कहा—"अरे! अब तू कहां जा सकता है?" इसके बाद उन्होंने छूरी और कड़ों समेत अरुणदेवको गिरफ्तार कर राजाके सम्मुख उपस्थित किया। राजाने अपने अनुचरोंके मुंहसे कड़ेकी चोरीका हाल सुनकर, उसी समय अरुणदेवको शूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। शीघ्रही राज-कर्मचारी उसे शूलीके पास ले आये।

इसी समय नगरसे अन्न लेकर महेश्वर बगीचेमें पहुंचा किन्तु वहां अरुणदेवको न देखकर उसने उसके सम्बन्धमें उद्यान रक्ष-

कोंसे पूछताछ की। उद्यान रक्षकोंने कहा—"हम अरुणदेवके सम्बन्धमें तो कुछ नहीं जानते, किन्तु सिपाही यहांसे एक चोरको अवश्य पकड़ ले गये हैं और शायद उसे शूलीकी सजा भी दे दी गयी है।" यह संवाद सुनकर वह तुरन्त शूलीके पास गया। अरुणदेवको शूलीके पास खड़ा देखकर वह करुणक्रन्दन करने लगा और वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देरमें शीतल वायुसे जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब लोगोंने उससे विलाप करनेका कारण पूछा। महेश्वरने लोगोंको बतलाया कि यह ताम्रलिप्ति नगरीके कुमारदेव नामक व्यवहारीका पुत्र और इस नगरके जसादित्य श्रेष्ठीका जमाता है, नौका टूट जानेसे यह आजही मेरे साथ यहां आया है" यह सब हाल सुनकर सिपाहियोंने समझा कि अब अवश्य हमारी भूल पकड़ी जायगी और उसके लिये शायद हमें सजा भी मिलेगी। यह सोचकर वे उन्हे पत्थरोंसे मारने लगे। किन्तु इसी समय यह बात उड़ती हुई जसादित्यके कानोंमें जा पहुँची और वह भी अपनी पुत्री देयिणीके साथ वहां आ पहुँचा, उसने राजाकी आज्ञा प्राप्त कर अरुणदेवको शूलीके दण्डसे मुक्त कराया। इसी समय आकाश मार्गसे चन्द्र धवल नामक मुनीश्वर वहां आ पहुँचे। उनका आगमन समाचार सुनते ही राजा उनके पास गया। देवोंने वहां कमलकी रचना की। मुनीश्वर उसपर बैठकर इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे :—

"धर्मोऽयं जगतः सारः, सर्व सुखानां प्रधानहेतुत्वात्।
तस्योत्पत्तिमनुजाः, सारं तेनैव मानुष्यम्॥"

अर्थात्—"सब सुखोंका प्रधान हेतु होनेके कारण धर्म ही इस संसारमें सार वस्तु है; किन्तु उसका उत्पत्ति स्थान मनुष्य हैं, इसलिये मनुष्यत्वही सार वस्तु है।" हे भव्य जनो! मोहनिद्रा का त्याग करो। ज्ञान जागृतिसे जागृत हो, प्राण-घातादिका त्याग करो, कठोर वचन न बोलो। कठोर वचन बोलनेसे दूसरे जन्ममें देयिणी और अरुणदेवकी तरह दुःखकी प्राप्ति होती है।" मुनिराजकी यह बात सुन राजा आदिने पूछा—"देयिणी और अरुणदेवने पूर्व-जन्ममें क्या किया था?" यह सुनकर मुनिराजने उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर सबको संवेग प्राप्त हुआ। देयिणी और अरुण देवको भी जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अतएव उन दोनोंने एक दूसरेको क्षमा कर दिया। इसके बाद अनशन और धर्म ध्यानके कारण दोनोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई। देयिणी और अरुणदेवका वृत्तान्त सुनकर राजाको भी वैराग्य आ गया। वह कहने लगा—"अल्पमात्र कठोर वचन बोलनेसे जब ऐसी अवस्था होती है, तब मेरी क्या गति होगी? अहो! इस संसारको धिक्कार है।" यह कहकर राजा और जसादित्यने चारित्र अङ्गीकार किया। अनन्तर जिस चोरने देयिणीके हाथ काटकर कड़े चुराये थे, उस चोरने भी वहाँ आकर अपना अपराध स्वीकार कर चारित्र ग्रहण कर लिया। बहुत दिनोंतक उग्र तप करनेपर इन तीनोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई।

कठोर वचनका यह फल जानकर, स्वप्नमें भी उनका प्रयोग न करना चाहिये; क्योंकि वचन और कायासे की हुई हिंसा तो

दूर रही, मनसे चिन्तन की हुई हिंसा भी जीवका विघात करनेवाली और नरकके दुःख देनेवाली सिद्ध होती है। इस सम्बन्धमें एक भिक्षुककी कथा इस प्रकार है।

वैभारगिरिके उद्यानमें उद्यान-भोज करनेके लिये आये हुए लोगोंके पास एक भिक्षुक भिक्षा माँगने गया। किन्तु कर्म-दोषसे उसे भिक्षा न मिली, इससे वह अपने मनमें कहने लगा,—"खाने पानेकी चीजें अधिक होनेपर भी यह लोग मुझे भिक्षा नहीं देते इसलिये इन सबोंको मार डालना चाहिये।" यह सोचकर वह पहाड़पर चढ़ गया और वहाँसे एक बड़ा शिला नीचेकी ओर लुढ़का दी। शिला नीचे आ पड़नेपर न केवल उद्यानके बहुतसे मनुष्यही उसके नीचे दब गये, बल्कि उस शिलाके साथ वह भिक्षुक भी नीचे आ गिरा और वह भी उसी शिलाके नीचे दब कर मर गया। इसलिये तन, मन और वचन तीनों प्रकारकी जीव हिंसाका त्याग करना चाहिये। इस प्रकार जीवहिंसाके त्यागरूपी प्रथम अणुव्रतके सम्बन्धमें व्याख्यान देनेके बाद, गुरु-देव दूसरे व्रतके सम्बन्धमें व्याख्यान देने लगे।

दूसरे अणुव्रतका नाम मृषावाद विरमण है। उसके पाँच अतिचार वर्जन करने योग्य हैं। वे पाँच अतिचार यह हैं— (१) मिथ्या उपदेश (२ कलंक लगाना (३) गुह्य कथन (४) मित्र वस्त जनोंका गुप्त भेद जाहिर करना और (५) कूटलेख लिखना। यह पाचों अतिचार सर्वथा त्याज्य हैं। सत्य वचनसे देवता भी सहायता करते हैं। किसीने कहा भी है कि—"सत्यके प्रभावसे

नद। जल पूर्ण होकर बहती है, अग्नि शान्त हो जाती है, सिंह, हाथी और महासर्प भी उस सत्यवादीकी खींची हुई रेखाको उल्लंघन करनेका साहस नहीं करते। विष, भूत या महा आयुधका भी उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और दैव भी सत्यवादीसे दूर ही रहनेकी चेष्टा करता है। जो सत्य वचन बोलता है, उसके लिये अग्नि जलके समान, समुद्र स्थलके समान, शत्रु मित्रके समान, देवता नौकरके समान, जंगल नगरके समान, पर्वत गृहके समान, सर्प पुष्पमालाके समान, सिंह मृगके समान, पाताल बिलके समान, अस्त्र कमल-दलके समान, विकराल हाथी शृगालके समान, विष अमृतके समान और विषम भी अनुकूल हो जाता है। इसके अतिरिक्त मन्मनत्व, काहलत्व, मूकत्व और मुखरोग प्रभृति असत्यके फल देखकर भी कन्या अलीक आदि असत्योंका त्याग करना चाहिये। कन्या, गाय, और भूमि विषयक असत्य, धरोहरके सम्बन्धमें विश्वासघात और झूठी गवाही—यह पांच स्थूल असत्य कहलाते हैं। देखो, नारद और पर्वत नामक दो मित्रोंके सम्बन्धमें गुरु पत्नीकी अभ्यर्थनाके कारण लेशमात्र असत्य बोलनेसे भी वसुराजाकी बड़ी दुर्गति हुई। झूठी गवाही देनेसे ब्रह्मा अर्चा रहित हुए और कितने हो देवताओंका नाश हुआ। सत्यकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर मनुष्यकी साक्षात् हरिकी तरह पूजा हो सकती है। इस व्रतके सम्बन्धमें वसुराजकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध है। वह कथा इस प्रकार है :—

वसुराजाकी कथा।

इस भारतवर्षमें शुक्तिमती नामक एक नगरी थी। उस नगरीमें अभिचन्द्र नामक परम प्रतापी राजा राज करता था। उसके कमलावती नामक एक पटरानी थी। कुछ दिनोंके बाद इस रानीके उदरसे वसु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वसु बाल्यावस्थासे ही परम चतुर और सत्यवादी था। खेल-कूदमें भी वह सदा सत्य ही बोलता था। यद्यपि वह विनयी, न्यायवान्, गुण सागर और समस्त कलाओंमें कुशल था, तथापि सत्यव्रत पर उसकी विशेष अनुरक्ति थी, वह स्वप्नमें भी असत्यकी इच्छा न करता था।

इसी नगरमें क्षीरकदम्बक नामक एक उपाध्याय रहते थे। वे ब्रह्मविद्यामें निपुण और समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता थे। उनके पर्वत नामक एक पुत्र था। वसु, पर्वत और विदेशसे आया हुआ नारद यह तीनोंही क्षीरकदम्बके पास विद्याध्ययन करते थे। तीनोंकी गुरुपर अत्यन्त श्रद्धा भक्ति थी। कहा भी है कि "जिससे एक अक्षर भी सीखनेको मिले उसको गुरु मानना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता वह सो बार श्वान योनिमें जन्म लेनेके बाद चाण्डाल होता है। संसारमें एक भी ऐसी वस्तु नहीं है जो एक अक्षर भी सिखानेवाले गुरुको देकर उसके ऋणसे मुक्त हुआ जाय। क्षीरकदम्बकके निकट यह तीनों नाना प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन

करते थे। शास्त्राभ्यास करनेसे ही पुरुष सर्व समीहितको प्राप्त करते हैं। क्योंकि विद्या ही पुरुषका रूप है, विद्या ही पुरुषका गुप्त धन है, विद्यासे ही भोग, यश और सुखकी प्राप्ति होती है। विद्या गुरुको भी गुरु है, विदेशमें विद्याही बन्धुके समान काम देती है, विद्या ही परम दैवत है, विद्या ही राजाओंमें पूजी जाती है—धन नहीं, इसलिये विद्याहीन पुरुषको पशु ही समझना चाहिये।

उपाध्याय अपने तीनों शिष्योंको बड़े प्रेमसे पढ़ाते थे और रात दिन उनका शुभचिन्तन किया करते थे। एक दिन रात्रिका समय था। तीनों शिष्य पढ़ते-पढ़ते सो गये ; किन्तु उपाध्याय अभी तक जाग रहे थे। इसी समय आकाश मार्गसे कहीं जाते हुए दो मुनि उधरसे आ निकले। इनमेंसे एक मुनिने उपाध्यायके तीनों शिष्योंको देखकर दूसरे मुनिसे कहा—"इन तीनमेंसे एक शिष्य मोक्षगामी है और दो नरकगामी हैं।" मुनिकी यह बात क्षीरकदम्बकने भी सुन ली। सुनकर उनका मुख-मण्डल कुछ मलीन हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे—वास्तवमें यह बड़े दुःखकी बात है। मुझे धिक्कार है कि मैं अध्यापक होनेपर भी मेरे शिष्य नरकमें जायें ; किन्तु यह बात किसी जैसे तैसे मनुष्यने नहीं कही। यह बात तो अकारण ही किसी ज्ञानी मुनिके मुखसे निकल पड़ी है, अतएव यह मिथ्या भी कैसे हो सकती है? खैर, कुछ भी हो, मुझे एक बार परीक्षा कर यह तो जान लेना चाहिये, कि कौन-कौन नरक जायँगे और किसे मोक्षकी प्राप्ति होगी?

यह सोचकर उपाध्यायने सवेरा होते ही तीनों शिष्योंको अपने पास बुलाया और उन्हें आटेका एक-एक मुर्गा देकर कहा—"जहां कोई न देखे वहां ले जाकर इसे मार डालो!" गुरुकी यह बात सुनकर वसु और पर्वत तो अपने-अपने मुर्गेको लेकर किसी एकान्त स्थानमें गये और वहां उसे मार डाला; किन्तु नारदसे ऐसा न हो सका। वह मुर्गेको लेकर नगरके बाहर एकान्तमें गया, किन्तु वहां वह सोचने लगा कि गुरुदेवने कहा है, कि जहां कोई न देखे वहां ले जाकर इसे मारना; किन्तु यहां तो पक्षी और वृक्ष देखते हैं। इसलिये यह स्थान इसे मारने योग्य नहीं। इसके बाद वह उस मुर्गेको पर्वतकी एक गुफामें ले गया, किन्तु वहां उसे विचार आया कि यहां तो इसे लोकपाल और सिद्ध देखते हैं, इसलिये इसका घात कैसे हो सकता है! साथ ही उसे यह भी विचार आया कि गुरुदेव तो बड़े दयालु और हिंसासे सर्वथा विमुख हैं। वे किसीकी हिंसा करनेका आदेश दे ही कैसे सकते हैं? अवश्य उन्होंने मेरी परीक्षा लेनेके लिये ही मुझे यह कार्य सौंपा है। यह सोचते हुए वह मुर्गा लेकर वैसे ही गुरुके पास लौट आया और उनसे उसे न मारनेका कारण निवेदन किया। गुरु उसकी बातें सुनकर तुरत समझ गये, कि अवश्य इसीको मोक्षकी प्राप्ति होगी। उन्होंने नारदकी पीठपर हाथफेरते हुए उसे आशीर्वाद दिया और उसकी सद्बुद्धिके लिये बार-बार उसकी खूब प्रशंसा की।

इसी समय वसु और पर्वत आ पहुँचे। इन दोनोंने कहा—

"गुरुदेव! हमलोग एकान्तमें—जहां कोई भी न देख सके ऐसे स्थानमें मुर्गेको मार आये।" गुरुने कहा—"और कोई नहीं तो कम-से-कम स्वयं तुम और विद्याधर आदि तो देखते थे। फिर भी, कोई नहीं देखता यह मानकर तुम लोगोंने अपने-अपने मुर्गेको मार डाला। धिक्कार हैं तुम्हें और धिक्कार है तुम्हारी इस समझ को!" इसके बाद क्षीरकदम्बक अपने मनमें सोचने लगे—"मुनिने जो कहा है वह सत्य ही है। निःसन्देह इन दोनोंको नरक की प्राप्ति होगी। जब इनकी यही गति होनी बदी है, तो इन्हें पढ़ानेसे भी क्या लाभ? इनको पढ़ाना—अन्धेको काच दिखाना, बधिरके सामने शंख बजाना, वनमें बैठकर रोना, पत्थरपर कमल रोपना यह सब क्षार भूमिमें जलवृष्टि होनेके समान है। कहा भी है कि जिन गुणोंके विद्यमान होनेपर भी अधोगति हो, उन गुणोंमें आग लगे, वैसा श्रुत पातालमें जाय, और वैसा चातुर्य विलय हो जाय; क्योंकि इससे उलटी हानिही होती है। जल वही जिससे तृषा शान्त हो, अन्न वही, जिससे क्षुधा दूर हो, बन्धु वही जो दुःखमें सहायता करे और पुत्र वही जिससे पिताको निवृत्ति प्राप्त हो। सोचना और सुनना उसी श्रुतका सार्थक है, जिससे आत्मा नरकगामी न हो। शेष सभी विडम्बना रूप है। जब मेरा पुत्र पर्वत और राजपुत्र वसु—जिन्हें मैंने इतने प्रेमसे पढ़ाया है—नरक-गामी होंगे तो मेरे गृहवाससे ही क्या लाभ!" इस प्रकार सोचते हुए उन्हें वैराग्य हो आया और उन्होंने प्रवज्या अंगीकार कर ली। इसके बाद उनका स्थान पर्वतको मिला। पर्वत शास्त्रोंकी

व्याख्या करनेमें बड़ा ही निपुण निकला। विशुद्ध मति नारद गुरु प्रसादसे समस्त शास्त्रोंमें विशारद हो अपने देश चला गया। इधर गुरुका योग मिलनेपर क्षमिचन्द्र राजाने भी दीक्षा ले ली। इसलिये वसु वसुदेवके समान राजा हुआ। यह वसु संसारमें सत्यवादीके नामसे प्रसिद्ध हुआ और बाल्यावस्थाकी भांति इस समय भी वह सत्यवचनको दृढ़ताके साथ पालन करता रहा।

किसी समय एक व्याध जंगलमें शिकार खेलने गया। वहां उसने एक मृगपर कई बाण छोड़े, किन्तु वे बाण उसे न लगकर बीचहीमें किसी वस्तुसे टकरा कर गिर गये। यह देख व्याध इसका पता लगानेके लिये उस स्थानमें गया। वहां हाथ लगानेपर उसे मालूम हुआ कि उस स्थानमें एक ऐसी शिला थी, जो न केवल पारदर्शक ही थी, बल्कि वह ऐसी भी थी कि आंखोंसे दिखाई भी न पड़ती थी। जब उसे हाथ लगाया जाता तो केवल यही मालूम होता, कि वहांपर कोई शिला है। व्याधने इसी शिलाके इस पारसे मृगको देखा था, किन्तु बीचमें वह शिला आ जानेके कारण वे बाण मृगतक न पहुँच सके। व्याधने सोचा कि यह शिला वसुधापति वसुराजाको भेंट देनी चाहिये। यह सोचकर वह उस शिलाको अपने घर उठा लाया और गुप्त रीतिसे वसुराजाको वह भेंट दे दी। राजाको यह शिला देखकर बहुत ही आनन्द हुआ और उसने उस व्याधको बहुत कुछ इनाम देकर उसे भलीभांति सन्तुष्ट किया। इसके बाद राजाने गुप्त रीतिसे उस शिला द्वारा आसनकी वेदिका तैयार करायी। साथ ही यह

भेद किसी तरह खुल न जाय इसलिये उसने उस वेदिकाके बनाने वाले शिल्पीको भी मरवा डाला। इसके बाद वह उस वेदिकापर सिंहासन स्थापित कराकर उसपर बैठने लगा। लोगोंको वह वेदिका दिखायी न देती थी, इसलिये सब लोग यही समझते थे कि राजाका सिंहासन सत्यके प्रभावसे जमीनसे कुछ ऊंचा उठा रहता है। इसके अतिरिक्त सत्यके प्रभावसे देवता भी वसुराजा को सहायता करने लगे। इससे दिग दिगन्तरमें उसका यश छा गया और अनेक नृपतियोंने भयभीत होकर अधीनता स्वीकार कर ली। वसुराजाकी सवत्र जय होने लगी।

एक दिन नारद अपने मित्र एवम् गुरुभाई पर्वतको मिलने आया। उस समय पर्वत अपने शिष्योंको "अजैयष्टव्यं" इस पदका अर्थ सिखा रहा था। उसने अपने शिष्योंको बतलाया कि—"अज अर्थात् बकरेसे यजन करना चाहिये" पर्वतके मुँहसे अजैयष्टव्यं पदका यह अर्थ सुनकर नारदने कहा—"हे बन्धु! भ्रांतिवश तू असत्य क्यों बोलता है? गुरुजीने तो हम लोगोंको यह सिखाया था कि अज अर्थात् न उगने योग्य तीन वर्षके पुराने व्रीहि। इन्हींसे यज्ञ करनेको उन्होंने बतलाया था। उन्होंने "अज" शब्दकी व्याख्या इस प्रकार की थी—"न जायन्ते इत्यजा" अर्थात् "जो न उगे वही अज" क्या यह व्याख्या तू भूल गया?" पर्वतने कहा—"नहीं नारद! पिताजीने ऐसा न कहा था। उन्होंने अजका अर्थ बकरा ही बतलाया था।" नारदने कहा—"नहीं इसमें कोई सन्देह नहीं कि शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु गुरुजी बड़े

दयालु थे उन्होंने अजका अर्थ बकरा न बतलाया था। इसलिये हे मित्र! तू ऐसा अर्थ करके वृथा ही पाप भागी न बन! किन्तु इन बातोंका पर्वतपर कोई प्रभाव न पडा। उसने कहा—नारद! तू झूठ बोलता है। इस प्रकार यह वाद विवाद बढ गया। दोनोंने अपने अपने पक्षको सत्य प्रमाणित करनेके लिये जिह्वा छेदकी प्रतिज्ञा की, और यह तय किया कि वसुराजा सत्यवादी है और दोनोंका सहाध्यायी भी है, अतएव वह जो अर्थ बतलाये वही सत्य माना जाय।

नारदके चले जानेके बाद पर्वतकी माताने पर्वतको एकान्तमें बुलाकर कहा—"हे वत्स! नारदका कहना ठीक है। तेरे पिताने अजका अर्थ तीन वर्षके पुराने चावल ही बतलाया था। तूने जिह्वा छेदनकी प्रतिज्ञा क्यों की? बिना विचार किये काम करनेपर इसी तरह संकटका सामना करना पडता है। निःसन्देह इस मामलेमें तेरी हार होगी।" पर्वतने कहा—"माता! अब क्या हो सकता है? जो कुछ बदा होगा वही होगा।" अभिमानी जीवको कृत्याकृत्यका ज्ञान ही कहां हो सकता है!

पर्वतकी माताको इससे बडा दुःख हुआ। वह चुपचाप उसी समय वसुराजाके पास गयी, उसे देखते ही वसु खडा हो गया और प्रणाम करनेके बाद नम्रता पूर्वक आनेका कारण पूछा। पर्वतकी माताने कहा—"राजन्! मुझे पुत्र भिक्षा दीजिये। पुत्रके बिना धन धान्य किस काम आ सकते हैं?" वसुने कहा—"माता! आपके पुत्रको मैं अपने भाईसे भी बढकर मानता हूँ। शीघ्र कहिये,

उसपर कौन विपत्ति आ पड़ी है? कौन उसे मारनेको तैयार हुआ है?" पर्वतकी माताने यह सुनकर राजाको नारदके वाद-विवाद और पर्वतके जिह्वाछेदनका हाल कह सुनाया। अन्तमें उसने कहा—"दोनोंने इस सम्बन्धमें आपको प्रमाणभूत माना है, इसलिये पर्वतको बचानेके लिये आप अजका अर्थ बकरा ही बतलायें। सज्जन तो प्राण देकर भी दूसरोंका उपकार करते हैं, आपको तो केवल वचन ही बोलना है।" राजाने कहा—"माता! आपका कहना ठीक है। किन्तु मैं बिलकुल झूठ नहीं बोलता। सत्यवादी पुरुष प्राण जानेपर भी असत्य नहीं बोलते। गुरुवचन को भी लोप करना पाप भीरु मनुष्यके लिये सहज काम नहीं है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोंका कथन है कि झूठी गवाही देनेवाला नरकगामी होता है। बतलाइये, ऐसी अवस्थामें मैं झूठ कैसे बोल सकता हूं?" वसुको यह बातें सुन पर्वतकी माताने कहा—"राजन्! मैंने आपसे कभी किसी वस्तुकी याचना नहीं की। अपने जीवनमें आज ही मैं आपसे यह याचना करने आयी हूं, जैसे हो वैसे मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनी ही होगी।"

गुरु पत्नीका इस प्रकार अनुचित दबाव पड़नेपर वसुने झूठ बोलना स्वीकार कर लिया। वचन मिलनेपर क्षीरकदम्बककी पत्नी आनन्द मनाती अपने घर गयी। थोड़ी देरके बाद नारद और पर्वत दोनोंने राज-सभामें प्रवेश किया। वसुने दोनोंको बड़े सत्कारसे ऊंचे आसनोंपर बैठाकर कुशल समाचार और आगमनका कारण पूछा। उत्तरमें दोनोंने अपना अपना वक्तव्य

उपस्थित कर अन्तमें कहा,—"हे राजन्! तू हमारा महाध्यायी और सत्यवादी है, इसलिये सच-सच बतला कि गुरुजीने अज शब्द की क्या व्याख्या की थी? तू हमारा साक्षी है। साथ ही तू अच्छी तरह जानता है, कि सत्यसे सभी अभिहित सिद्ध होता है। राज्याधिष्ठायक देव, लोकपाल और दिक्पाल सभी सुनते हैं, इसलिये हे राजन्! सत्य ही बोलना। सूर्य चाहे पूर्व दिशा छोड़कर किसी दूसरी दिशामें उदय हो, मेरु चाहे चलित हो जाय, किन्तु सत्यवादी पुरुष कदापि झूठ नहीं बोलते।"

इस प्रकार उत्साह वर्धक शब्द सुननेपर भी, भाग्यमें दुर्गति बदी थी, इसलिये वसुने अपना कीर्तिका भी कोई खयाल न किया। उसने कहा—"गुरुजीने अजका अर्थ बकराही बतलाया था।" इस प्रकार राजाने झूठी साक्षी दी, इसलिये देवता उससे असन्तुष्ट हो गये और उसे सिंहासनपरसे नीचे ढकेल कर स्फटिकको शिला उठा ले गये। वसुराजा रक्तवमन करता हुआ ज्यों ही नीचे गिरा, त्योंही नारद यह कहता हुआ, कि चाण्डालकी तरह झूठी साक्षी देनेवालेका मुँह देखना भी पाप है—अपने निवास स्थानको चला गया। वसुराजाकी शीघ्रही मृत्यु हो गयी और वह नरक गामी हुआ। उस अपराधीके सिंहासनपर बैठनेवाले उसके आठ पुत्रोंको भी क्रुद्ध देवताओंने इसी तरह सिंहासनसे नीचे गिरा कर मार डाला।

इस प्रकार असत्य वचनका फल जानकर सुज्ञ पुरुषको स्वप्नमें भी असत्य न बोलना चाहिये। जिस प्रकार छन्नेसे जल, विवेकसे

गुण और दानसे गृहस्थ शुद्ध होता है उसी प्रकार सत्यसे वचन शुद्ध होता है। सत्यके प्रभावसे देवता भी प्रसन्न होते हैं। पांच प्रकारके सत्यसे द्रौपदीको आम वृक्षने सत्वर फल दिये थे। जिस प्रकार सुवर्ण और रत्नादिसे वाह्य शोभा बढ़ती है उसी प्रकार सत्यसे आन्तरिक शोभा बढती है। कहा भी है कि झूठी साक्षी देनेवाला, दूसरोंका घात करनेवाला, दूसरोंके अपवाद बोलनेवाला मृषावादी और नि सार बोलनेवाला—निःसन्देह नरक जाता है। हँसी दिल्लगीमें भी असत्य बोलनेसे दुःखकी ही प्राप्ति होती है। देखिये, यदि हंसीमें विष खा लिया जाय, तो क्या उससे मृत्यु न होगी ? इसी तरह जो कर्म हँसीमें भी गले बँध जाता है, वह फिर किसी तरह छुडाये नहीं छूटता। यह सिद्धान्तका कथन है। अतएव चतुर पुरुषको मृषावाद रूपी कीचडसे बचना चाहिये। मृषावादके सम्बन्धमें एक संन्यासीका उदाहरण भी विशेष प्रसिद्ध है। वह उदाहरण इस प्रकार है :—

सुदर्शनपुरमें एक नापित रहता था। उसने किसी योगीकी सेवा कर उससे एक विद्या प्राप्त की। उस विद्याके प्रभावसे वह अपने धोये हुए वस्त्रोंको आकाशमें बिना किसी आधारके योंही रख सकता था। एक बार किसी संन्यासीने उससे वह विद्या सिखा देनेकी प्रार्थना की। नापितने उसे सुपात्र समझ कर वह विद्या सिखा दी। अब वह संन्यासी देश देशान्तरमें भ्रमण कर इस विद्याका चमत्कार दिखाने लगा। वह जहा जाता वहीं अपने वस्त्र धोकर आकाशमें निराधार रखकर सुखाता। इससे लोगोंको

बड़ाही आश्चर्य होता। एक बार कुछ लोगोंने कौतूहल वश उससे पूछा—"भगवन्! आपने यह महाविद्या कहां सीखी थी?" संन्यासीने अपनी महिमा बढ़ानेके उद्देशसे सत्य बातको छिपाते हुए कहा—"यह किसी विद्या या गुरुका प्रभाव नहीं है। यह तो मेरे तपका प्रभाव है—तपसे ही मैंने अपने वस्त्रोंको आकाशमें निराधार रखनेकी शक्ति प्राप्त की है।" इस प्रकार संन्यासीने असत्य भाषण किया, किन्तु इसका फल भी उसे उसी क्षण हाथो हाथ मिल गया। बात यह हुई कि उसके वस्त्र जो आकाशमें निराधार अवस्थामें सूख रहे थे,वे उसके मुखसे असत्य वचन निकलते ही नीचे आ गिरे और उसकी विद्या भी सदाके लिये नष्ट हो गयी। हे भव्य जनो! इस प्रकार मृषावादसे विद्या भी अविद्याके रूपमें परिणत हो जाती है, इसलिये आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवालोंको उसका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।

अब हम लोग तीसरे अणुव्रत अदत्तादान विरमणके सम्बन्धमें विचार करेंगे। अदत्तादान विरमणके भी पांच अतिचार वर्ज-नीय हैं। वे पांच अतिचार यह हैं—(१) चोरको अनुमति देना (२) चोरीका माल लेना (३) राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करना (४) चीजोंमें मिलावट करके बेचना और (५) तौल-नापमें धोखा देना। पड़ा हुआ, भूला हुआ, खोया हुआ, छूटा हुआ और रखा हुआ पर धन अदत्त कहलाता है। सुज्ञ पुरुषोंको यह कदापि न लेना चाहिये। जो अदत्त वस्तुको ग्रहण नहीं करता उसीको सिद्धि चाहती है और उसीको वरण करती है। कीर्त्ति उसकी

चिर संगिनी वनती है, रोग-दोष उससे दूर रहते हैं, सुगति उसकी स्पृहा करती है, दुर्गति उसकी ओर देख भी नहीं सकती, और विपत्ति तो उसका सर्वथा त्याग ही करती है। चोर जिसे दूसरों के हिताहितका ज्ञान नहीं होता, वह भी वैराग्य रूप कर्मरूपी शस्त्रोंसे मोहरूपी तिमिर और कर्मरूपी मल नष्ट करनेमें समर्थ होता है। ऐसा होनेपर उसको अन्तर्दृष्टि प्रकट होती है, फलतः दृढ़प्रहारीकी भांति समभावसे वह भी शुद्ध हो जाता है। विचार करो, क्या भयंकरसे भयंकर दावानल भी मेघसे शान्त नहीं होता? अवश्य होता है। जो ज्ञानी हैं—सज्जन हैं, वे एक तिनका भी विना किसीके दिये (अदत्त) ग्रहण नहीं करते। जिस प्रकार चाण्डालको एक अंगुली भी छू जानेसे समूचा शरीर अपवित्र हो जाता है, उसी तरह किञ्चितमात्र भी अदत्त ग्रहण करनेसे दोष-भागी होना पड़ता है। वैर, वैश्वानर (क्रोध किंवा अग्नि) व्याधि, व्यसन और वाद यह पांच वकार बढ़ने पर बड़ाही अनर्थ करते हैं। चोरीका पाप तप करनेपर भी प्रायः भोग किये विना नहीं छुटता। इस सम्वन्धमें महावलकी कथा मनन करने योग्य है। वह कथा इस प्रकार है :—

भारतवर्षके श्रीपुर नामक नगरमें मानमर्दन नामक एक राजा राज करता था। जैसा उसका नाम था वैसाही उसमें गुण भी था। उस नगरमें महाबल नामक एक बलिष्ट कुल पुत्र रहता था। उसके मातापिता बाल्यावस्थामें ही मर गये थे, अतएव वह परम स्वतन्त्र हो रहा था। कुसंगतिके प्रभावसे उसे द्यूतका व्यसन लग गया और धीरे धीरे वह सातो व्यसनोंमें लिप्त हो गया। किसीने सच हा कहा है कि:—

> द्यूत च मांस च सुरा च वेश्या,
> पापार्द्धि चौर्य परदार सेवा।
> एतानि सप्त व्यसनानि लोके,
> घोराति घोरं नरकं नयति॥

अर्थात्—"जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या-गमन, शिकार, चोरी परदार-सेवा—यह सातों व्यसन मनुष्यको भयंकर नरकमें ले जानेवाले होते हैं।"

इन व्यसनोंके फेरमें पड़कर महाबल एक दिन रात्रिके समय

चोरी करनेके लिये बाहर निकला। इधर उधर घूमते हुए उसने किसी घरकी खिड़कीसे उसमें देखा, तो क्या देखता है कि एक दोकड़ेकी भूलके कारण दत्त नामक एक महाजन अपने पुत्रसे कलह कर रहा है, यह देख कर चोरने अपने मनमें विचार किया, कि एक दोकड़ेके लिये, मध्यरात्रिके समय, निद्राको छोड़ कर जो अपने पुत्रसे इस प्रकार कलह कर रहा है, उसका यदि धन हरण करूंगा, तो अवश्य उसका हृदय विदीर्ण हो जायगा और वह मर जायगा, इसलिये इसका धन न चुरा कर कहीं अन्यत्र चलना चाहिये। यह सोचकर वह कामसेना नामक एक वेश्याके यहां गया। वहां उसने देखा, कि कामसेना रतिसे भी अधिक सुन्दर है, किन्तु धन लोलुपताके कारण एक कोढ़ीसे नाना प्रकार का हासविलास कर रही है। यह देखकर उसने स्थिर किया, कि धनके कारण जो स्त्री कोढीको भी गले लगा रही है, उसका धन हरण करना भी ठीक नहीं। यहांसे चलकर वह राजमन्दिरमें गया और वहां एकाग्रता पूर्वक सेंध लगाने लगा। सेंध लगाकर जब वह महलमें पहुँचा, तो उसने देखा कि राजा रानीके साथ घोर निद्रामें पड़ा हुआ है। यह देखकर उसकी प्रसन्नताका पारावार न रहा। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! मेरा भाग्य कैसा अच्छा है कि मैं यहां आ पहुँचा और अबतक किसीको इस बातकी खबर भी नहीं हुई। समूचा महल रत्नदीपके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा था, इसलिये महाबलने उसके प्रकाशमें बहुतसा धन और रत्नादि एकत्र कर लिया; किन्तु ज्यों

ही उसने यहांसे चलनेका विचार किया, त्यों हो दरवाजेके छिद्रसे उसे एक सर्प वहां आता हुआ दिखायी दिया। सर्पकी गतिविधि देखनेके लिये महाबल वहीं छिप रहा। सर्प धीरे-धीरे अन्दर आया और रानीके नीचे लटकते हुए केशकलाप द्वारा ऊपर चढ़, सोती हुई रानीके कपाल और हाथमें डसकर वहांसे चलता बना। महाबलसे अब न रहा गया। उसने भी चुपचाप दरवाजा खोल कर उसका पीछा किया। सर्पने महलसे नीचे उतर कर एक बैलका रूप धारण कर लिया। द्वारपालने जब उसे देखा, तब वह एक दण्ड लेकर उसे खदेड़ने लगा। किन्तु बैल उसे देखतेही बिगड़ गया और अपने सींगों द्वारा उसे भी पटककर वहीं मार डाला। महाबल इस समय भी उसके पीछे ही था। उसने अब उस बैल-की पूंछ पकड़ ली और डपट कर पूछा—"अरे! तू कौन है और किस कारणसे तूने इन लोगोंको मार डाला? साथ ही यह भी बता कि अब तू क्या करना चाहता है?"

महाबलकी यह बात सुनकर उस बैलने मनुष्यकी वाणीमें उत्तर दिया—"हे भद्र! मेरी बात सुन। मैं नागकुमार देव हूँ। यह दोनों मेरे पूर्वजन्मके वैरी थे। मैं रानी और द्वारपाल—दोनोंको मारनेके लिये ही यहां आया था।" महाबलने कहा—"हे सुन्दर! तब कृपाकर मुझे भी बता कि मेरी मृत्यु किस प्रकार और किसके हाथसे होगी?" नागकुमारने कहा—"मैं तुझे यह बतला सकता हूं किन्तु यह जानकर तुझे पश्चाताप होगा, अतएव इसका न जाननाही अच्छा है।" नागकुमारकी यह बात सुनकर महाबलकी

उत्सुकता और भी बढ़ गयी और वह विशेष आग्रहसे वही प्रश्न पूछने लगा। नागकुमारने कहा—"यदि तू जाननाही चाहता है तो सुन। इस नगरके राजमार्गमें जो बड़ासा वट वृक्ष है, उसीकी शाखा पर लटकनेसे तेरी मृत्यु होगी। महाबलने कहा—"संभव है कि तेरी बात सच हो, किन्तु क्या तू मुझे कोई और बात ऐसी बतला सकता है, जिससे तेरी बातको सत्यता प्रमाणित हो और मुझे विश्वास हो जाय। नागकुमारने कहा—"हां, बतला सकता हूं। कल राजमहलके शिखर परसे एक बढ़ई नीचे गिर पड़ेगा और उसकी मृत्यु हो जायगी। यदि मेरी यह बात सच निकले तो समझना कि तेरी मृत्युकी बात भी सच होगी। नागकुमारकी यह बात सुनकर महाबलने उसे छोड़ दिया। और वह शीघ्र ही वहांसे अन्तर्धान हो गया।

दूसरे दिन नागकुमारके कथनानुसार ही दोपहरके वक्त महल परसे एक बढ़ई—सुथार गिर पड़ा। उसे गहरी चोट आयी और उसके कारण शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। बढ़ईकी यह गति देखकर महाबलको विश्वास हो गया कि नागकुमारने जो कहा है, वह सत्यही प्रमाणित होगा। अब वह मृत्युके भयसे यहां तक घबड़ा गया, कि उसे भोजनसे भी अरुचि हो गयी। वास्तवमें प्राणियोंके लिये मृत्यु भयसे बढ़कर दूसरा भय नहीं है। किसी कविने ठीक ही कहा है कि :—

"पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्दसमो परामवो नत्थि।
मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि।"

ही उसने यहांसे चलनेका विचार किया, त्यों ही दरवाजेके छिद्रसे उसे एक सर्प वहां आता हुआ दिखायी दिया। सर्पकी गतिविधि देखनेके लिये महाबल वहीं छिप रहा। सर्प धीरे-धीरे अन्दर आया और रानीके नीचे लटकते हुए केशकलाप द्वारा ऊपर चढ़, सोती हुई रानीके कपाल और हाथमें डसकर वहांसे चलता बना। महाबलसे अब न रहा गया। उसने भी चुपचाप दरवाजा खोल कर उसका पीछा किया। सर्पने महलसे नीचे उतर कर एक बैलका रूप धारण कर लिया। द्वारपालने जब उसे देखा, तब वह एक दण्ड लेकर उसे खदेड़ने लगा। किन्तु बैल उसे देखतेही बिगड गया और अपने सींगों द्वारा उसे भी पटककर वहीं मार डाला। महाबल इस समय भी उसके पीछे ही था। उसने अब उस बैल-की पूंछ पकड ली और डपट कर पूछा—"अरे! तू कौन है और किस कारणसे तूने इन लोगोंको मार डाला? साथ ही यह भी बता कि अब तू क्या करना चाहता है?"

महाबलकी यह बात सुनकर उस बैलने मनुष्यकी वाणीमें उत्तर दिया—"हे भद्र! मेरी बात सुन। मैं नागकुमार देव हूँ। यह दोनों मेरे पूर्वजन्मके वैरी थे। मैं रानी और द्वारपाल—दोनोंको मारनेके लिये ही यहा आया था।" महाबलने कहा—"हे सुन्दर! तब कृपाकर मुझे भी बता कि मेरी मृत्यु किस प्रकार और किसके हाथसे होगी?" नागकुमारने कहा—"मैं तुझे यह बतला सकता हूं किन्तु यह जानकर तुझे पश्चाताप होगा, अतएव इसका न जाननाही अच्छा है।" नागकुमारकी यह बात सुनकर महाबलकी

तब उसके आनन्दका पारावार न रहा। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! तपके प्रभावसे मनुष्य जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है। यदि ऐसा न होता तो मुझे बैठे बैठाये अनायास इन रत्नोंकी प्राप्ति कैसे होती?" किन्तु इन रत्नोंकी प्राप्तिका आनन्द महाबल अधिक समय तक उपभोग न कर सका। वह अभी अपने मनमें उपरोक्त प्रकारके विचार कर ही रहा था, कि राजाके सिपाहियोंने उसे आ घेरा। वे कहने लगे—"हे पापिष्ट! हे दुष्ट! तापसके वेशसे समूचे श्रीपुरको लूटकर अन्तमें तूने राजाके यहां भी चोरी की! देख, अब तुझे इस चोरीका क्या मज़ा मिलता है!" यह कहते हुए सिपाहियोंने महाबलकी खूब मरम्मत की। इसके बाद उसे गिरफ्तार कर राजाके पास ले चले। अब महाबलको अपनी मृत्यु समीप दिखायी देने लगी। वह मनमें कहने लगा, कि नागकुमारने जो बात कही थी, मालूम होता है कि अब वह सत्य प्रमाणित होगी। मृत्यु अब मूर्तिमान होकर उसकी आंखोंके सामने नाचने लगी। उसे देखकर वह वारम्वार यह श्लोक कहने लगा :—

"रक्ष्यते नैव भूपालै, र्न देवै र्न च दानवैः।
नीयते वट शाखायां, कर्मणाऽसौ महाबलः॥"

अर्थात्—"अपने कर्म महाबलको वटशाखाकी ओर लिये जा रहे हैं। अब राजा, देव या दानव कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते।"

महाबलको वारम्वार यह श्लोक बोलते सुन राजाके सिपाही

अर्थात्—"पंथके समान जरा नहीं है, दारिद्रके समान पराभव नहीं है, मरणके समान भय नहीं है और क्षुधाके समान वेदना नहीं है।" इसपर किसीने यह भी कहा है कि बाल-जीव जो सुकृतसे रहित होते हैं वही मृत्युसे डरते हैं, पुण्यशाली पुरुष तो मृत्युको अपना एक प्रियतम अतिथि मानते हैं।"

इस प्रकार मृत्युसे भयभीत होकर महाबल सोचने लगा कि व्यर्थ ही मुझे यहां क्यों रहना चाहिये? मैं यहांसे कहीं दूर ही क्यों न चला जाऊं, जिससे वटवृक्षकी छाया भी मुझपर न पड़ सके। यदि मैं संन्यास ग्रहण कर सब अनर्थोंको दूर करनेके लिये तप करूं तो और भी अच्छा है।" इस प्रकार विचारकर वह एक नदीके किनारे गया और वहां एक तापसके निकट तापसी दीक्षा लेकर तप करने लगा। कुछ दिनोंके बाद गुरुका शरीरान्त हो गया, अतएव वह उसीके मठमें रहकर तीव्र अज्ञान तप करने लगा। ऐसा करते करते अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।

कुछ दिनोंके बाद किसी चोरने एक दिन राजाके यहां चोरी की और वहांसे रत्नोंकी पेटी लेकर भगा। संयोगवश सिपाहियोंने उसे देख लिया अतएव उन्होंने उसका पीछा पकड़ा। चोर इधर उधर अनेक स्थानोंमें भागता फिरा, किन्तु जब किसी प्रकार उसकी जान न बची तब वह उस उपवनमें घुसा जिसमें महाबलका मठ था और वहां महाबलको ध्यानस्थ देख, उसीके निकट वह रत्न मञ्जूषा छोड़ वहांसे चलता बना। महाबलका ध्यान भंग होनेपर जब उसने अपने निकट रत्न मञ्जूषा पड़ी हुई देखी,

तब उसके आनन्दका पारावार न रहा। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! तपके प्रभावसे मनुष्य जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है। यदि ऐसा न होता तो मुझे बैठे बैठाये अनायास इन रत्नोंकी प्राप्ति कैसे होती?" किन्तु इन रत्नोंकी प्राप्तिका आनन्द महाबल अधिक समय तक उपभोग न कर सका। वह अभी अपने मनमें उपरोक्त प्रकारके विचार कर ही रहा था, कि राजाके सिपाहियोंने उसे आ घेरा। वे कहने लगे—"हे पापिष्ट! हे दुष्ट! तापसके वेशसे समूचे श्रीपुरको लूटकर अन्तमें तूने राजाके यहां भी चोरी की! देख, अब तुझे इस चोरीका क्या मज़ा मिलता है!" यह कहते हुए सिपाहियोंने महाबलको खूब मरम्मत की। इसके बाद उसे गिरफ्तार कर राजाके पास ले चले। अब महाबलको अपनी मृत्यु समीप दिखायी देने लगी। वह मनमें कहने लगा, कि नागकुमारने जो बात कही थी, मालूम होता है कि अब वह सत्य प्रमाणित होगी। मृत्यु अब मूर्तिमान होकर उसकी आंखोंके सामने नाचने लगी। उसे देखकर वह बारम्बार यह श्लोक कहने लगा :—

'रक्ष्यते नैव भूपालैं, नं देवै न च दानवैः।
नीयते वट शाखायां, कर्मणाऽसो महाबलः॥'

अर्थात्—"अपने कर्म महाबलको वटशाखाकी ओर लिये जा रहे हैं। अब राजा, देव या दानव कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते।"

महाबलको बारम्बार यह श्लोक बोलते सुन राजाके सिपाही

उसे दपटते थे और पूछते थे कि तू यह क्या बक रहा है, किन्तु महाबल उनके प्रश्नका उत्तर दिये बिना ही चुपचाप उनके साथ चला जा रहा था। नगरमें पहुंचनेपर सिपाहियोंने चोरीके माल सहित महाबलको राजाके सम्मुख उपस्थित किया। उसे देखकर राजाको सन्देह हुआ अतः उसने पूछा—"तेरा शरीर और चेरा सौम्य होनेपर भी तूने यह अनुचित कर्म क्यों किया? यह काम तेरे करने योग्य न था।" राजाकी यह बात सुनकर महाबलने कहा—"राजन्! उचित और अनुचितका विचार छोड़ दीजिये। कर्मकी गति बड़ी ही विचित्र है।

"रक्ष्यते तपसा नैव, न देवै र्न च दानवैः।
नीयते वट शाखायां, कर्मणाऽसौ महाबलः।'

यह श्लोक सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बारम्बार महाबलसे इसका तात्पर्य पूछने लगे, किन्तु महाबलने इस श्लोक की पुनरावृत्ति करनेके सिवा और कुछ भी उत्तर न दिया। अन्तमें राजाने उसके इस वचनको मर्मगर्भित समझकर उसे बन्धनमुक्त कराया और उसे अभयदान देकर सारा वृत्तान्त पूछा। महाबलने अब महलमें सेंध लगाने, रानीको सर्प काटने और नागकुमारसे भेंट होनेका सब हाल विस्तार पूर्वक राजाको कह सुनाया। महाबलके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर राजाको रानीका स्मरण हो आया और यह जानकर कि कुटिल दैवने ही उसका प्राण लिया था, उसे उसपर कुछ रोष भी आ गया। उसने कहा—"हे क्रूरदैव! हे बाल, स्त्री और वृद्धोंके घातक! हे छिद्रान्वेपक!

तूने मेरी आशानतामें मेरी प्रियतमाका हरण किया है, किन्तु इससे तू फूल मत जाना। महाबलकी रक्षाका भार अब मैं अपने सिरपर लेता हूं। अब यदि महाबलपर तेरा चक्र चल जाय, तो मैं तुझे सच्चा सुभट समझूंगा।" यह कहकर राजाने महाबलको बहुत सा धन दिया और अपने पुत्रकी तरह उसे खिलाने पिलाने लगा। उसने महाबलसे भी कह दिया कि अब तू मृत्युका भय छोड़ दे और निश्चिन्त होकर संसारमें विचरण कर।" राजाके इस वचनसे महाबलको बहुत कुछ शान्ति मिली और वह आनन्द पूर्वक अपने दिन निर्गमन करने लगा, फिर भी जब कभी उस वट वृक्षपर उसकी दृष्टि पड जाती, तब उसे नागकुमारकी बात याद आ जाती और मृत्यु भयसे उसका कलेजा कांप उठता।

इस भयको हृदयसे दूर करनेके लिये एक बार उसने राजासे भी प्रार्थना की कि—"हे राजन्! मुझे कहीं ऐसे स्थानमें भेज दीजिये, जो यहांसे बहुत दूर हो और जहांसे मैं इस वट वृक्षको न देख सकूं।" राजाने कहा—"हे वत्स! तू अब व्यर्थ ही डरता है। जबतक तू मेरी छत्रछायामें बैठा है, तबतक दैवको क्या मजाल, कि तेरा बाल भी बांका कर ले। तू चैनकी बंशी बजा और निश्चिन्त होकर मौज कर!" राजाकी यह बात सुनकर महाबल को कुछ सान्त्वना मिली। धीरे-धीरे वह पूर्ण रूपसे निश्चिन्त हो गया और दैवको तुच्छ समझने लगा।

परन्तु दैव इस प्रकार किसीको अछूता छोड़ दे तो उसकी सत्ता कोई स्वीकार ही क्यों करे? एक दिन महाबल गलेमें सोने

की जंजीर और रत्नहार प्रभृति पहनकर अश्वारूढ़ हो राजाके साथ उद्यान जानेके लिये बाहर निकला। इसी समय किसी आवश्यक कार्यवश उसकी पत्नीने उसे बुला भेजा अतएव महाबलको लौट कर घर आना पड़ा। राजाकी सवारी इस बीचमें कुछ आगे निकल गयी। घरमें कुछ देर रहनेके बाद महाबल जब पुनः बाहर निकला, तब राजाके पास पहुँचनेके लिये वह अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ उसी ओरको आगे बढ़ा। रास्तेमें उसे वही बट वृक्ष मिला। उसे देखते ही नागकुमारकी वह बात स्मरण आ गयी अतः वह झटपट उस बटसे आगे निकल जानेके लिये लालायित हो उठा। बटके नीचे पहुँचते ही उसने घोड़ेको कसकर एक चाबुक जमायी, ताकि घोड़ा जल्दीसे निकल जाय, किन्तु दैवकी गति कौन जान सकता है? चाबुक लगते ही घोड़ा बेतरह ऊपरको उछला। उसके उछलते ही महाबलके कंठमें सोने-की जो जंजीर पड़ी हुई थी, वह पीछेकी ओरसे उछलकर बटकी एक डालीमें फँस गयी। बस, फिर क्या, जो होनी थी, वही हुई। घोड़ा तो बिगड़ता हुआ आगेको भगा और महाबल उसी जंजीरके सहारे वृक्षमें लटक गया। जंजीर ऐसी बुरी तरह फँसी हुई थी, कि वह किसी तरह डालीसे निकल न सकी। इससे महाबलके गलेमें फाँसी लग गयी और वह वहीं छटपटाकर मर गया। मरते समय उसे फिर वही श्लोक याद आया, पर मुँहसे एक शब्द निकलनेके पहले ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये। लोगों ने उसका यह हाल देखतेही तुरत उसे नीचे उतारा और नाना

प्रकारके उपचारों द्वारा उसकी शुश्रूषा की, किन्तु कोई लाभ न हुआ। दैवने इस बार उसपर इतनी क्रूरता पूर्वक आक्रमण किया था, कि उसके प्रबल पंजेसे कोई भी छुड़ा न सका।

जब यह समाचार राजाने सुना, तो उसे बड़ा ही दुःख हुआ। वह अत्यन्त विलाप करके कहने लगा—"हे वत्स! तुझे यह क्या हो गया? मैंने भी कैसी भूल की, जो उस वटको पहलेसे ही निर्मूल न कर डाला! मैंने उसकी डालियां ही छँटा दी होतीं तो कैसा अच्छा होता। अरे! मैंने तुझे किसी दूसरे नगर क्यों न भेज दिया? मेरा इतना सैन्य और मैं—तेरा रक्षक होनेपर भी तू अनाथकी तरह बेमौत मारा गया? मेरा यह सब ऐश्वर्य, मेरा यह रुतबा और मेरे यह नौकर चाकर—कोई भी इस वक्त तेरे काम न आये।"

इस घटनासे राजाके मनमें एक बारकी विरक्तिसी आ गयी। वह अपने मनमें कहने लगा—"मैंने व्यर्थ ही अभिमानमें आकर महाबलकी रक्षाका भार अपने सिरपर लिया। जराको जर्जरीभूत करनेमें और मृत्युपर विजय प्राप्त करनेमें, जब किसीको सफलता नहीं मिलती, तो मुझे ही कैसे मिल सकती है? इसलिये हे जीव! मिथ्याभिमान मत कर! मैं कर्ता, मैं धर्ता, मैं धनी, मैं गुनी—यह सब अहंकार मिथ्या ही है। हे दैव! तुझे भी क्या कहूँ? तुझे केवल मेरी प्रियतमाका ही हरणकर सन्तोष न हुआ तूने मेरा मान भी हरण कर लिया। वास्तवमें कौन विधाता? कौन दैव और कौन यम? जो कुछ है सो कर्म ही है। जीव अपने

किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फलको ही भोग करता है इसलिये इस संसारमें शुभ कर्मही करना चाहिये।" इस प्रकार राजाके हृदयमें ज्ञान और वैराग्यका उदय हुआ देखकर मन्त्रियोंने महाबलका अग्निसंस्कार कराया। उस दिनसे राजा चिन्तित, लज्जित और क्रीड़ा रहित हो महलमें ही रहने लगा।

एक बार नन्दन वनमें दो चारण श्रमण मुनियोंका आगमन हुआ। उनका आगमन समाचार सुन, मन्त्री राजाको उनके पास ले गये। राजाको देखते ही मुनीन्द्र उसके मनोभाव ताड़ गये। उन्होंने उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा—"इस संसारमें जीव कर्मके ही कारण सुख दुःख भोग करता है। इसलिये सुखार्थी जीवोंको शुभ कर्मका संचय करना चाहिये। साथ ही चेतन स्वरूप आत्मको सुज्ञानके साथ जोड़कर अज्ञानसे उसकी रक्षा करनी चाहिये। मनुष्य बुद्धि, गुण, विद्या, लक्ष्मी, बल, पराक्रम, भक्ति किंवा किसी भी उपायसे अपनी आत्माको मृत्युसे नहीं बचा सकता। कहा भी है, कि जिस प्रकार अपने पतिको पुत्र-वत्सलता देखकर दुराचारिणी स्त्री हँसती है उसी तरह शरीरको रक्षा करते देख मृत्यु और धनकी रक्षा करते देख वसुन्धरा मनुष्यको हँसती है। दैव असंभवको संभव और संभवको असंभव बनाता है। कभी कभी वह ऐसी बातें कर दिखाता है, जिनकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। भवितव्यता प्राणियोंके साथ उसी तरह लगी रहती है, जिस तरह शरीरके साथ छाया। उसे पृथक करना, उसके प्रभावसे बचना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव है। यह

जीव अशरण है। प्राणियोंपर वारंवार जन्म मरणको जो विपत्ति पड़ती है, उसे दूर करना किसीके सामर्थ्यकी वात नहीं। यह प्राण पांच दिनका अतिथि है, यह समझ कर किसीपर रागद्वेष न करना चाहिये। स्व और पर—अपने और परायका तो प्रश्नही वेकार है। अरण्य रोदनकी भांति दैवको उपालम्भ देनेसे भी क्या लाभ? समुद्रके अवगाहनकी भांति विकल्पकी कल्पना भी वेकार है। मनुष्यको स्व और परका रूप जानना चाहिये।" इस प्रकार गुरुके मुखसे उपदेश सुनकर राजाको प्रतिबोध प्राप्त हुआ और उसने प्रव्रज्या रूपी व्रत ग्रहण कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया। लोगोंको इस कथासे सार ग्रहण कर, परद्रव्यका परिहार करना चाहिये।

अव हम लोग चौथे अणुव्रतके सम्बन्धमें विचार करेंगे। चौथा अणुव्रत है ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना। इसके भी पांच अतिचार त्यागने योग्य हैं। वे पांच अतिचार यह हैं—(१) अन्य परिगृहित अंगना (किसीने निश्चित समयके लिये रखी हुई पर स्त्री) से रमण करना। (२) अपरिगृहीता स्त्री (वेश्या) से रमण करना। (३) दूसरोंके विवाह करना। (४) कामभोगकी तीव्र अभिलाषा और (५) अनंग क्रीड़ा। इन पांचों अतिचारों का त्याग करना चाहिये। जो पुरुष शीलव्रतको पालन करते हैं उन्हें व्याघ्र, व्याल, जल, वायु प्रभृति किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते। उसका सर्वत्र कल्याण ही होता है। देवता उसे सहायता करते हैं। कीर्त्ति बढ़ती है। धर्मकी वृद्धि होती है।

पाप नष्ट होता है और स्वर्ग एवम् मोक्षके सुखोंकी प्राप्ति होती है। पवित्र शील कुलकलंकको दूर करता है। पाप पंकको क्षीण करता है, सुकृतको बढ़ाता है, प्रशंसाको फैलाता है, देवताओंको झुकाता है, विषम उपसर्गोंका नाश करता है और स्वर्ग तथा मोक्षको क्षण मात्रमें दिलाता है। किसीका यह भी कथन है कि जो ब्रह्मचर्य व्रतमें अनुरक्त होते हैं, वे महातेजस्वी और देवताओंको भी वन्दनीय होते हैं। पर स्त्रीका त्याग करनेवाले पुरुष और पर-पुरुषका त्याग करनेवाली स्त्रियोंको दैव भी अनुकूल हो जाता है। इस सम्बन्धमें सुन्दर राजाकी कथा बड़ी ही उपदेशप्रद है, वह इस प्रकार है।
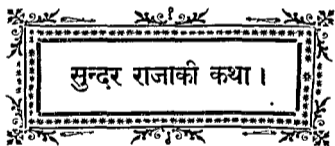
सुन्दर राजाकी कथा।

अंगदेशमें धारापुर नामक एक प्रसिद्ध नगर था। वहां सुन्दर नामक एक सद्गुणी राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मदनवल्लभा था। वह परम भाग्यवती और सती स्वरूपा थी। इस रानीके उदरसे कीर्तिपाल और महीपाल नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजा, परम न्यायी था और सदा एक पत्नीव्रत पालन करता था। पर स्त्री उसके लिये माता और बहिनके समान

थी। इस सदाचारके कारण राजाकी सुकीर्ति दिगदिगान्तरमें व्याप्त हो रही थी। राजा न्यायपूर्वक प्रजा-पालन करता हुआ सानन्द जीवन व्यतीत करता था।

एक दिन मध्यरात्रिके समय कुल देवीने उपस्थित होकर राजासे खिन्नता पूर्वक कहा—"हे राजन्! तेरे ऊपर एक घोर विपत्ति आनेवाली है। उसका आना अनिवार्य है। इस समय तेरी युवावस्था है। कुछ दिनके बाद वृद्धावस्था आ जायेगी। यदि तेरी इच्छा हो तो मैं इस विपत्तिको इस समय रोककर ऐसा कर सकती हूँ कि वह इसी समय न आकर कुछ दिनोंके बाद आये, किन्तु उसे पूर्ण रूपसे रोकना सम्भव नहीं है। तू उस विपत्तिका सामना यौवनमें करना चाहता है या बुढ़ापेमें!" राजाने हाथ जोड़कर कहा—"हे देवि! यदि उस विपत्तिका उच्छेद करना आपकी सामर्थ्यके बाहर है, तो उसे वृद्धावस्था तक रोक रखनेकी अपेक्षा इसी समय आ जाने दीजिये! जीव जो शुभाशुभ कर्म करता है, वे उसे भोग करने ही पड़ते हैं। कहा भी है कि जिस तरह हजार गायोंमेंसे बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है, उसी तरह पूर्वकृत कर्म कर्ताका अनुसरण करते हैं। लाखों वर्ष बीत जानेपर भी किये हुए कर्मोंका क्षय नहीं होता। जीवको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म भोगने ही पड़ते हैं। इसलिये जो होनी हो उसे होने दीजिये। वृद्धावस्थामें शारीरिक शक्ति क्षय हो जानेपर, कष्टोंका सामना करना बहुत ही कठिन हो पड़ेगा। इस समय यदि विपत्तिका पहाड़ भी सिरपर टूट पड़े, तो उसे सहन

करनेके लिये मैं सहर्ष तैयार हूँ।" यह सुनकर कुल देवी उदास हो वहांसे चली गयीं और राजाने धैर्यपूर्वक विपत्तिको स्वीकार कर लिया। कहा है कि :—

विपदि धैर्यमथाम्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात्—"विपत्तिमें धैर्य, अम्युदयमें क्षमा, सभामें वाक्-चातुर्य, युद्धमें पराक्रम, यशमें अभिरुचि और शास्त्रमें व्यसन—यह सभी महात्माओंको स्वभावसे ही सिद्ध होते हैं।"

देवीके चले जानेके बाद राजाने सोचा कि यहां बैठकर विपत्ति की प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा उसे कुछ आगे बढ़कर भेंटना अधिक अच्छा है। वीर पुरुष आपत्ति, मृत्यु और शत्रुके आगमनकी प्रतीक्षा न कर उसे सम्मुख ही जाकर मिलते हैं। इसलिये अच्छा हो, यदि मैं अपने दोनों पुत्र और रानीको लेकर कहीं अन्यत्र चला जाऊं।" यह सोचकर राजाने मन्त्रीको सारा हाल कह सुनाया और कहा—"राज-सञ्चालनका समस्त भार मैं आपके सिर छोड़ता हूँ। आप सब तरहसे योग्य हैं। प्रजाको सन्तानकी तरह पालना। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न होने देना। मेरी चिन्ता न करना। यदि जीवित रहा, तो फिर आ मिलूंगा। अन्यथा जो उचित समझना सो करना।" यह कह राज्यादिकको तृणकी भांति त्याग कर राजा अपने परिवारके साथ वहांसे चल पड़ा। राहखर्चके लिये उसने एक मुद्रिका अपने साथ ले ली थी, किन्तु दुर्भाग्यवश मार्गमें किसीने उसे भी चुरा लिया।

रानी और रोते-विलपते हुए बच्चोंको सान्त्वना देता और नाना प्रकारके कष्टोंका सामना करता हुआ राजा बहुत दिनोंके बाद पृथ्वीपुर नामक एक नगरमें पहुँचा। वहाँ श्रीसार नामक एक दयालु वनिया रहता था। उसने राजाको रहनेके लिये एक मकान दिया। वहीं वह अपनी रानी और पुत्रोंके साथ रहने लगा। पुत्र अभी छोटे थे और राजाको जरा भी परिश्रम करनेका अभ्यास न था; इसलिये रानी पड़ोसियोंके यहाँ दासी वृत्तिकर जो कुछ ले आती, उसीसे उन लोगोंका निर्वाह चलता। इस प्रकार यद्यपि उन्हें नीच काम करने पड़ते थे, तथापि सुशीलता, सुसाधुता और मधुर वचनोंके कारण लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे। कहा भी है कि :—

"स्थान भ्रंशान्नीच सगात्खण्डनाद् घर्षणादपि।
अपरित्यक्त सौरभ्य, वंद्यते चन्दन जनैः॥'

अर्थात्—"स्थान भ्रष्टता, नीच सगति, खण्डन और घर्षण प्रभृति होनेपर भी चन्दन सुगन्धको नहीं छोड़ता।" इसीलिये संसारमें वह वन्दनीय माना जाता है।"

लगोंसे फटेपुराने वस्त्र, बासी और ठंढा भोजन प्रभृति जो कुछ मिल जाता, उसीमें अब राजा और रानी सन्तोष मानते। इस प्रकार दुःख सहन करते हुए उन्होंने बहुत दिन व्यतीत किये।

एक बार एक बनजारा बहुत आदमियोंके साथ व्यापारके निमित्त पृथ्वीपुर आया और नगरके समीप ही एक उद्यानमें डेरा डाला। उसने भोजनके लिये अन्न और घृतादि सामग्री श्रीसारको

दूकानसे खरीद करते समय किसी दासीके लिये पूछताछ की। धीसाने रानीको बता कर उससे बनजारेका काम कर आनेकी सिफारिश की अतएव रानी बनजारेका भी काम करने लगी। किन्तु जिस प्रकार रत्न मलीन हो जानेपर भी अपनी चमक नहीं छोड़ता, उसी तरह दासीपना करनेपर भी रानीका रूप लावण्य अभी सर्वथा लोप न हुआ था। उसे देखते ही बनजारेके मनमें विकार उत्पन्न हुआ और उसने अपने आदमियों द्वारा उसे समझा बुझाकर हाथ करनेकी चेष्टा की, किन्तु उसे इसमें किञ्चित भी सफलता न मिल सकी। रानी उसकी यह मलीन भावना देख कर उससे रुष्ट हो गयी और उसका काम छोड देनेको उद्यत हुई। यह देख कर बनजारा उसका आन्तरिक भाव ताड़ गया। उसका अन्तर दूषित होनेपर भी उसने बाहरसे नाना प्रकारकी बातें बनाकर रानीको शान्त किया और उसे काम न छोड़नेके लिये राजी कर लिया। रानी फिर विश्वास पूर्वक उसका काम करने लगी। किन्तु बनजारेका हृदय अभी साफ न हुआ था। उसके मनमें अभी दुर्वासानाका ही प्राबल्य था। इसलिये जिस दिन वह वहांसे प्रस्थान करनेको था, उस दिन उसने रानीको कुछ विशेष कार्य बतला कर वहीं रोक रखा। अन्तमें जब चलनेका समय हुआ, तब उसने रानीको भी बलात् अपने साथ ले लिया और शीघ्रही अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें उसने रानीको अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये, किन्तु वह किसी तरह उसका प्रस्ताव माननेको राजी न हुई। वह पतिका ध्यान

करती और सदा मौन रहती थी। इससे बनजारेको उसका सतीत्व नष्ट करनेमें सफलता न मिल सकी। रानी दुःख पूर्वक किसी तरह दिन निर्गमन करने लगी।

इधर राजाको रानीके बिना असीम दुःख होने लगा। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! मेरा हृदय कितना कठोर है, कि मैं अपने ही दुःखका विचार करता हूँ और रानीके दुःखका विचार भी नहीं करता! वह बिचारी इस समय न जाने कहां होगी और क्या करती होगी! हे दैव! तेरी गति बडीही विचित्र है।" यह सोचकर राजा किंकर्तव्य विमूढ हो गया। इसी समय वहा श्रीसार आ पहुंचा। उसने राजाको उदास देखकर पूछा—"हे भद्र! तू आज चिन्तित क्यों दिखायी देता है? राजा लज्जा-वश उसके इस प्रश्नका कुछ भी उत्तर न दे सका। अन्तमें आस-पासके लोगों द्वारा श्रीसारको यह सब हाल मालूम हुआ। उसने राजाको सान्त्वना देते हुए कहा—"हे महाभाग! अब क्या हो सकता है! कर्मकी गति बडी ही विषम है। किसीने कहा भी है, कि वर्धमान—महावीर जिनका नीच गोत्रमें जन्म, मल्लिनाथ को स्त्रीत्वकी प्राप्ति, ब्रह्मदत्तको अन्धता, भरतराजाका पराजय, कृष्णाका सर्वनाश, नारदको निर्वाण और चिलाती पुत्रको प्रशमका परिणाम प्राप्त हुआ। कर्मकी ऐसी ही गति है। तुम धैर्य धारण करो और किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। अब तुम्हारे भोजन शयन आदिका प्रबन्ध मैं अपने सिर लेता हूँ। तुम आजसे मेरे बनवाये हुए चैत्यमें त्रिकाल पूजा किया करो

और अपने पुत्रोंसे कह दो, कि वे मेरे लिये मेरी पुष्प वाटिकासे पुष्प ले आया करें।" राजाने श्रीसारकी यह बात स्वीकार कर ली। दूसरे ही दिनसे वह चैत्यमें त्रिकाल पूजा करने लगा और राजकुमार पुष्प ला देने लगे। यही अब इन लोगोंकी दिनचर्या हो गयी। श्रीसार इनके कार्यसे बहुत ही प्रसन्न रहता था और यथा सम्भव इन्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने देता था। इस प्रकार दुःख होनेपर भी एक तरहसे शान्ति पूर्वक राजाके दिन व्यतीत हो रहे थे।

एक दिन श्रीसार अपनी पुष्प वाटिका देखने गया। वहां उसने देखा कि दोनों कुमार हाथमें धनुष-बाण ले, शिकारीकी तरह पक्षियोंको अपने बाणका निशाना बना रहे हैं। इस पाप-कर्मको देखकर श्रीसारको बड़ा क्रोध आया और उसके कारण उसकी आंखें लाल हो गयीं। उसने दोनों राजकुमारोंकी बड़ी ताड़ना तर्जना की और उनके धनुष-बाण तोड़कर उन्हें वाटिकासे बाहर निकाल दिया। किन्तु इतनेहीसे उसका क्रोध शान्त न हुआ। उसने राजाके पास जाकर कहा—"हे भद्र! तेरे पुत्र बड़ेही पापी हैं। अब तेरा एक क्षण भी यहाँ गुजारा नहीं हो सकता। तू इसी समय मेरा घर खाली कर दे और जहां इच्छा हो, चला जा।" श्रीसारके यह वचन सुनकर राजाके सिरपर मानो वज्र टूट पड़ा। वह अपने मनमें कहने लगा—"हे दुर्दैव! तुझसे मेरा यह यत्किञ्चित सुख भी देखा न गया! इसी समय दोनों राजकुमार रोते हुए वहां आ पहुँचे। राजाने उन्हें सान्त्वना

देते हुए कहा—"हे वत्स! रुदन न करो! यह सब हमारे पूर्व कर्मका ही दोष है। जो कुछ सिरपर आ पड़ा है उसे चुपचाप सहन करनेके सिवा हम लोग और कर ही क्या सकते हैं। यदि दैव प्रतिकूल न होता तो क्या इस जरासे अपराधके कारण श्रीसार इस तरह हम लोगोंको निकाल बाहर करता? कर्म प्रतिकूल होनेपर जो न हो वही थोड़ा है।

"प्रतिकूले विधौ किंवा, सुधापि हि विषायते।
रज्जुः सर्पो भवेदाशु, बिलं पातालतां भजेत्॥
तमायते प्रकाशोपि, गोष्पदं सागरायते।
सत्यं कूटायते मित्रं, शत्रुत्वेन प्रवर्त्तते॥

अर्थात्—"दैव प्रतिकूल होनेपर सुधा विषकी तरह, रस्सी सर्पके समान, बिल पातालके समान, प्रकाश अन्धकारके समान, गोष्पद सागरके समान, सत्य असत्यके समान और मित्र शत्रुके समान हो जाते हैं।"

इस प्रकार पुत्रोंको सान्त्वना दे, उन्हें अपने साथ ले, राजाने उदास चित्तसे उस नगरको अन्तिम नमस्कार कर दूसरे नगरकी राह ली। मार्गमें वे लोग कहीं कन्दमूल और फलाहार करते और कहीं भिक्षा-भोजन। कहीं कहीं भिक्षाके लिये निन्दा और भर्त्सना सुननी पड़ती और भूखे पेट ही रास्ता तय करना पड़ता था। बहुत दिनोंतक इस तरह चलते चलते यह लोग बहुत दूर निकल गये। अन्तमें एक दिन उन्हें एक दुस्तर नदी मिली। नदीको देखते ही राजा चिन्तामें पड़ गया कि अब क्या किया जाय और

किस प्रकार इन दोनों पुत्रोंके साथ यह नदी पार की जाय ! बहुत देरतक सोचनेके बाद उसे एक उपाय सुझाई पड़ा, तदनुसार वह एक पुत्रको वहीं छोड़, दूसरेको अपने कन्धेपर बैठाकर उसे नदीके उस पार पहुँचाया। एक पुत्रको इस तरह पार उतारनेके बाद वह दूसरे पुत्रको लानेके लिये पानीमें उतरा किन्तु दैव दुर्विपाकसे ज्योंही वह नदीकी मध्य धारामें पहुँचा, त्यों ही जलके प्रबल वेगके कारण उसके हाथ पैर बेकार हो गये और वह पानीमें बहने लगा। एक पुत्र नदीके इस पार था और दूसरा उस पार। पिताकी यह अवस्था देख, दोनों बेतरह बिलखने लगे, किन्तु निर्जन अरण्यमें वहां था ही कौन जो उनकी पुकार सुनता और उनके पिताको बचाता। वह दोनों जहांके तहां रह गये और राजा बहता हुआ आंखोंसे ओझल हो गया। सौभाग्यवश उसे पानीमें हाथ पैर मारते कुछ समयके बाद एक लकड़ी मिल गयी। लकड़ी क्या मिल गयी, मानो प्राण बचानेके लिये नौकाका एक सहारा मिल गया। वह उसीके सहारे पांच सात दिनके बाद एक किनारे लगा। उसे यह भी पता न था, इस समय मैं कहां और कितनी दूर निकल आया हूँ। नदीके किनारे बैठकर वह अपने भाग्यको कोसने लगा। रानीका वियोग अभी भूला ही न था, कि इस प्रकार उसके दोनों लाल उससे बिछुड़ गये। इनके स्मरणसे राजाका कलेजा फटा जाता था। वह कहने लगा—"हे दैव ! निष्ठुरताकी भी एक हद होती है। कहां वह मेरा राज्य और ऐश्वर्य, और कहां यह अनर्थपर अनर्थ ! जब तूने मेरे

उन दोनों बच्चोंको भी मुझसे छीन लिया, जिन्हें देखकर इस शोक सन्तप्त हृदयको कुछ शान्ति मिलती थी। अब मैं ही इस संसारमें जीकर क्या करूं ? मैं भी क्यों न अपना प्राण किसी तरह विसर्जन कर दूं कि एक बारही इन सब विपत्तियोंका अन्त आ जाय !" किन्तु दूसरे ही क्षण राजाका विवेक जागृत हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो, मैं यह क्या सोच रहा हूं ! आत्म हत्याका विचार भी मनमें लाना पाप है। इससे न केवल दुर्गति ही होती है, बल्कि जिन दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये आत्म हत्या की जाती है, वही दुःख फिर परलोकमें भोगने पड़ते हैं। जब ऐसी अवस्था है, तो वहांकी अपेक्षा यहीं उन दुःखोंको भोग लेना अच्छा है। कहा भी है कि :—

कस्य वक्तव्यता नास्ति, सापायं को न जीवति।
व्यसनं केन न प्राप्तं, कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥

अर्थात्—"किसमें कहने योग्य बात नहीं होती ? कष्ट सहित कौन नहीं जीता ? व्यसनको कौन नहीं प्राप्त होता ? और निरन्तर सुख किसे मिलता है ? किसीको नहीं।" जिस प्रकार मनुष्योंको अनायास दुःखोंकी प्राप्ति होती है, उसी तरह उन्हें अनायास सुख भी मिलते हैं, इसलिये कहीं भी दीनता न दिखानी चाहिये। दीनको सम्पत्ति मिलने पर भी जिस प्रकार उसकी हीनता नहीं छूटती, उसी तरह सिर कटने पर भी धीर पुरुष निर्बलित नहीं होते।"

इस तरह राजाने धैर्य धारण कर जैसे हो वैसे दिन काटना

स्थिर किया। वह शीघ्रही नदी तटसे उठकर समीपके गांवमें गया। वहां किसी सज्जनके यहां उसने पानी मांगकर पिया। सज्जनने उसे पानी पिलानेके बाद उसका परिचय पूछा। राजाने कहा—"मैं क्षत्रिय, हूँ। यदि आपके पास मेरे योग्य कोई काम हो, तो बतलाइये, मैं खुशीसे कर सकता हूँ।" सज्जनने कहा—"और तो कोई कार्य नहीं है किन्तु यदि तेरी इच्छा हो, तो मेरे यहां रह कर मेरा गृहकार्य कर सकता है।" राजाने तुरत ही इसे स्वीकार कर लिया। इसके बदलेमें उसे सुस्वादु भोजन और वस्त्र मिलने लगे। अच्छा भोजन मिलनेके कारण कुछ ही दिनोंमें राजाकी कान्ति बढ़ गयी और इससे उसका चेहरा चमक उठा। एक दिन उसपर उसकी स्वामिनीकी दृष्टि पड़ गयी। स्वामिनी उसे देखतेही उसपर अनुरक्त हो गयी। अब वह वसुधा राजासे प्रेम सूचक बातें कहकर उसे अपने मोह-पाशमें फँसानेकी चेष्टा करने लगी। उसकी यह कुचेष्टा देखकर राजाको बड़ी चिन्ता हुई। वह देवको सम्बोधित कर कहने लगा—"हे देव! तूने मेरा राज्य, मेरा ऐश्वर्य और मेरे स्वजनोंको भी मुझसे छुड़ाया। मैंने भी उनकी कोई परवाह न की और अपने हृदयको पत्थर बना कर तृणवत् उनका त्याग किया, किन्तु अब तू मुझे कुमार्गगामी बना कर मेरा शील भी लूटना चाहता है! मैं इसे प्राण रहते कभी न जाने दूँगा।" यह कहकर राजाने विचार किया, कि यहां रहकर अब शीलकी रक्षा करना कठिन है। स्वामिनीकी बात मानना और न मानना दोनों अवस्थामें मेरे लिये विपत्ति जनक है इस-

लिये मुझे अब इस देशका ह। त्याग करना चाहिये।" यह सोच कर दूसरे ही दिन राजा वहांसे चल दिया। चलते समय सब लोगोंने वहां रहनेके लिये बहुत अनुरोध किया और इस तरह अचानक प्रस्थान करनेका कारण भी पूछा, किन्तु राजाने सबको यथोचित उत्तर दे, उनसे विदा ग्रहण की। देशान्तरमें भ्रमण करते करते वह बहुत दूर निकल गया। अन्तमें एक स्थानपर उसे श्री आदिनाथका मन्दिर दिखायी दिया। वहां जा, श्रीऋषभ देवका स्तवन कर वह कुछ देरके लिये गवाक्षमें बैठ गया। इसी समय वहां एक यक्षिणी आ पहुंची। जिनेश्वरको वन्दना कर लौटते समय उसकी दृष्टि राजापर पड़ गयी। कामदेवके समान राजाका रूप देखकर वह उसपर मोहित हो गयी। उसने राजाको सम्बोधित कर कहा—"हे सुन्दर पुरुष। तुझे देखते ही मेरी शुद्धि बुद्धि लोप हो गयी है। तू मेरे विमानमें बैठ कर मेरे साथ चल। हम लोग स्वतन्त्र विहार कर अपना जीवन सार्थक करेंगे। यदि तू मेरी बात मान लेगा तो मैं तुझे इच्छा-वर देकर निहाल कर दूंगी। यदि तू मेरा प्रस्ताव अस्वीकार करेगा तो तुझे खूब सताऊंगी और तुझे मरणावधि कष्ट दूंगी।" यक्षिणीकी यह बात सुन कर राजा मनमें कहने लगा—"अहो! कर्मकी कैसी विचित्र गति है। मैं राजपाट छोड़कर इतनी दूर चला आया, तब भी यह मेरा पिंड नहीं छोड़ता। जिस विपत्तिसे बचनेके लिये मैं उस सज्जनके यहांके भोजन वस्त्रको ठुकरा कर यहां चला आया, उसी विपत्तिका जाल यहां भी बिछा हुआ

दिखायी देता है। घरकी दुःख धो वन गयी तो वनमें लागी आग! अब क्या करूं!" इस प्रकार विचार कर राजाने उस यक्षिणासे कहा—"हे देवि! मैंने पर नारासे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये, मुझे दुःख है कि मैं तेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता। अब्रह्मके सेवनका फल भी बहुत बुरा होता है। शास्त्रकारोंका कथन है कि :—

"षंढत्वमिन्द्रियच्छेदं, वीक्ष्याब्रह्मफलं सुधीः।
भवेत्स्वदार संतुष्टोऽन्यदारान् वा विवर्जयेत ॥

अर्थात्—"षंढत्व और इन्द्रियच्छेद—अब्रह्म सेवनके इन दोनों फलोंको देखकर सुज्ञ पुरुषको परदारासे विरक्त होकर स्वदारामें ही सन्तोष मानना चाहिये।" हे देवि! इसीलिये मैंने पर स्त्रीसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा की है। तुझे मेरी इस प्रतिज्ञाका विचार कर मुझसे अनुचित प्रस्ताव न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त तू देवता और मैं पामर मनुष्य—मेरा और तेरा सम्बन्ध भी कैसे हो सकता है!"

राजाने यद्यपि यह बातें बहुत ही नम्रता पूर्वक कहीं, किन्तु यक्षिणीपर इनका कोई प्रभाव न पड़ा। क्रोधके कारण उसकी आँखोंसे चिनगारियां निकलने लगी। उसने उसी समय नागिनका रूप धारण कर राजाको डस लिया और उसे अचेतनावस्थामें ही उठाकर किसी द्वीपके एक कुएं में डाल दिया। किन्तु राजाका आयुष्य अभी पूर्ण न हुआ था, अतएव उसके जीवनका अन्त न आ सका। कुएंमें थोड़ा सा जल था इसलिये उसमें पड़े रहनेके

कारण, और अपने शीलके प्रतापसे कुछ ही समयमें उसका विष दूर हो गया। शुद्धि आने पर राजाने देखा तो अपनेको कुंएमें पड़ा हुआ पाया। इधर उधर देखनेपर उसे उस कूपके अन्दर एक दरवाजा दिखायी दिया। शीघ्रही उसे खोलकर राजाने उसमें प्रवेश किया। दरवाजेसे एक सीधा रास्ता सामनेकी ओर चला गया था। उस रास्तेसे कुछ दूरतक जानेपर एक मैदान मिला। उस मैदानमें एक दिव्य भवन देखकर उसने उसमें प्रवेश किया। वहां उस समय नाटक हो रहा था और एक देव सिंहासनपर बैठा हुआ उसे देख रहा था। राजाने उसके पास जाकर बहुत ही नम्रता पूर्वक उसे प्रणाम किया। उसे देखकर देवने पूछा—"हे भद्र! तू यहां किस तरह आ पहुँचा?" राजाने तुरन्त उसे सारा हाल कह सुनाया। सुनकर देवको बड़ा सन्तोष हुआ! उसने कहा—"अहो! धन्य है तुझे ओर धन्य है तेरी प्रतिज्ञाको! संकटमें भी इस प्रकार प्रतिज्ञाको निभाना और विपत्तिपर विपत्ति को भुलाना बड़े कलेजेका ही काम है। तेरी सुशीलता देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ है। तुझे जो इच्छा हो, वह तू माँग सकता है।

राजाने कहा—"हे स्वामिन्! इस विपत्तिमें आपसे क्या वर मांगूं? यदि वास्तवमें आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो दयाकर यह बतलाइये कि मैं अपने स्त्री-पुत्रादि स्वजनोंको अब इस जन्ममें देख सकूंगा या नहीं?" देवने कुछ विचारकर कहा—"शीलवान मनुष्यके लिये संसारमें कुछ भी असंभव नहीं है। तुझे न केवल

तेरी स्त्री और तेरे पुत्र हो मिलेंगे, बल्कि शीघ्रही तुझे अपने राज्य की भी प्राप्ति होगी। मैं तुझे एक चिन्तामणि रत्न देता हूँ। इस रत्नको सदैव अपने पास रखना। इससे शीघ्रही तेरा अभीष्ट सिद्ध होगा।" यह कह उस देवने चिन्तामणि रत्न राजाके हाथमें रखा और उसे उसी क्षण आदिनाथके उस चैत्यमें पहुँचा दिया, जहांसे उसे यक्षिणी उठाकर कुएंमें डाल गयी थी। इस घटना और रत्न प्राप्तिसे सुन्दर राजको बड़ा ही आनन्द हुआ। वह आनन्द पूर्वक इधर उधर भ्रमण करता हुआ श्रीपुर नगरके समीप पहुंचा और वहांके उपवनमें एक आम्र वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। कुछ थकावट दूर होनेपर उसने उसी आम्र के फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त की। इसके बाद कुछ समयके लिये उसे निद्रा आ गयी और वह अपने समस्त दुःखोंको भूलकर वहीं सो रहा।

इसी समय उस नगरके राजाकी मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र नहीं था इसलिये मन्त्री प्रभृतिने प्रथानुसार उसके उत्तराधिकारीको खोज निकालनेका आयोजन किया। इसके लिये हाथी, घोड़ा, छत्र, चामर और कुंभ इन पांच दिव्योंकी पञ्च शब्दके निनाद सहित सवारी निकाली गयी। न तो इन्हें किसी ओर चलने की प्रेरणा की जाती थी, न कोई इनकी गतिमें बाधा देता था। जहां इनकी इच्छा होती थी, वहीं इन्हें जाने दिया जाता था। यत्रतत्र भ्रमण करते हुए यह सब उस स्थानमें आ पहुँचे, जहां आम्र वृक्षके नीचे सुन्दर राजा श्रमित होकर सो रहा था। यहां

पहुँचते ही घोड़ेने हिनहिनाहट और हाथीने गर्जना की। कुम्भका जल राजाके शिरपर पड़ा, छत्र मस्तकपर स्थिर हो गया और चामर अपने आप ढुलकर राजाको वायु करने लगे। इससे तुरत राजाकी नींद खुल गयी। उसने चारों ओरसे अपनेको राजपरिवार और राजसी ठाटबाटसे घिरा हुआ पाया। मन्त्री आदिने सारा हाल निवेदन कर, उससे राजोचित वस्त्राभूषण धारण करनेकी प्रार्थना की, जिसे राजने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वस्त्राभूषण धारण करते ही हाथीने उसे अपनी सूंढसे उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया। इसके बाद बड़े समारोहके साथ उसकी सवारी निकाली गयी और सुमुहूर्त देखकर उसे राजसिंहासनपर अधिष्ठित कराया गया। राजाको भी अब यह मालूम हो गया कि मेरे दुःखके दिन पूरे हो गये, इसलिये वह बड़े ही सुखसे वहां राज्य करने लगा। अपने शील स्वभावके कारण शीघ्रही उसने प्रजा और मन्त्री प्रभृति पदाधिकारियोंका प्रेम सम्पादन कर लिया और वहां इस तरह राज्य करने लगा, मानो वह वहां चिरकालसे राज्य कर रहा हो। उसे एकान्त जीवन व्यतीत करते देख मन्त्रियोंने कई बार उसे व्याह कर लेनेके लिये समझाया, किन्तु राजने हँसकर उनकी बात टाल दी। वे वेचारे यह न जानते थे कि राजाके हृदयमें उसकी रानीको छोड़ और किसीके लिये स्थान ही न था।

राजा तो इस प्रकार किन्तु दोनों कुमारोंकी क्या अवस्था हुई? जिस समय उनसे पिताका वियोग हुआ, उस समय एक

नदीके इस पार और दूसरा नदीके उस पार था। दोनों बहुत समय तक वहीं खड़े खड़े रोते रहे। अन्तमें किसी यात्रीकी सहायतासे दूसरा कुमार भी उस पार पहुँचा। अब नीचे जमीन और ऊपर आकाशके सिवा उन्हें और कोई सहारा न था। दोनों भाई इधर उधर भटकते और देश-देशकी ठोकरें खाते कुछ दिनोंके बाद इसी श्रीपुर नगरमें आ पहुँचे। यहां इन दोनोंने नगरके कोतवालके पास नौकरी कर ली।

कुछ दिनोंके बाद दैवयोगसे वह सोमदेव नामक बनजारा जिसने रानीका अपहरण किया था, वह भी इसी नगरमें आ पहुँचा। उसने नगरके बाहर डेरा डाला, राजाको कई बहुमूल्य चीजें नजर कीं और अपनी रक्षाके लिये कुछ सिपाही भेजनेकी प्रार्थना की। राजाने समुचित प्रबन्ध करनेके लिये कोतवालको आज्ञा दे दी। कोतवालने उन दोनों राजकुमारोंको उपयुक्त समझ उन्हींको बनजारेके साथ कर दिया। अतएव दोनों कुमार वहां पहरा देने लगे।

एक दिन रात्रिके समय दोनों भाई परस्पर बातें कर रहे थे। छोटे भाईने बड़े भाईसे माता-पिताका समाचार पूछते हुए और भी अनेक प्रश्न पूछे। इससे दोनोंकी पूर्वस्मृति जागृत हो उठी और वे दोनों अपने बचपनकी—उन सुखी दिनोंकी बातें करने लगे। जब राजकुमार होनेके कारण लोग उन्हें हाथोंपर रखते थे, तब उन्हें पानी मांगने पर दूध मिलता था और उनकी छोटीसे छोटी इच्छाको भी पूर्ण करनेके लिये दास दासियां हाथ

बांधे खड़ी रहती थी। रानी मदनवल्लभा इस समय भी उस वन-जारेके साथ थी और उसका काम काजकर दासीकी भांति काल विताया करती थी। जिस समय दोनों कुमार यह सब बातें कर रहे थे, उस समय वह भी चिन्ताके कारण जाग रही थी। कुमारोंकी बातें सुन, स्नेह और शोकसे विह्वल होकर वह बाहर निकल आयी और दोनों कुमारोंको गले लगा लगाकर खूब रोने लगी। बड़ा ही करुणा पूर्ण दृश्य था। ऐसा कि देखकर पत्थर भी पसीज उठे। किन्तु बनजारेको कुछ भी दया न आयी। उसने रानीको पकड़ कर जबर्दस्ती कुमारोंसे अलग कर दिया और सवेरा होते ही कुमारोंको भी राजाके सम्मुख उपस्थित कर शिकायत की, कि कोतवालने ऐसे सिपाही देनेकी कृपाकी है, जो पहरा देना तो दूर रहा, उलटे मेरी ही आदमियोंको फुसलाते हैं। राजाने उसी क्षण पूछा कि यह दोनों द्वारपाल कौन हैं?" कोतवालने हाथ जोड़कर कहा—"राजन्! मैं नहीं जानता कि यह कौन हैं किन्तु कुछ दिनसे यह दोनों मेरे यहां नौकरी करते थे और देखनेमें भले मालूम होते थे, इसलिये मैंने इन्हें सोमदेवके यहां भेज दिया था।

राजाने अब दोनों कुमारोंको ध्यानपूर्वक देखा। देखते ही वह अपने कलेजेके दोनों टुकड़ोंको पहचान गया। उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठा और नेत्रोंमें आंसू भर आये। किन्तु उसने गंभीरता पूर्वक अपनी इस भावभंगीको छिपा कर, कोतवाल और बनजारेको वहांसे विदा किया। इसके बाद उसने उन दोनों

कुमारोंको एकान्तमें बुलाकर हृदयसे लगा लिया। कुमार भी अपने पिताको पहचानकर उसके चरणोंमें गिर पड़े। इसके बाद बड़े कुमारने नम्रता-पूर्वक राजासे कहा—"पिताजी! रात्रिके समय इस बनजारेके यहां पहरा देते समय हम दोनों भाई अपने बचपनकी बातें कर रहे थे। उसी समय बनजारेके डेरेसे एक स्त्री निकलकर हम लोगोंके पास आयी और हमें गले लगा-लगाकर, हे पुत्र! हे पुत्र! कहकर रोने लगी। हम नहीं जानते कि वह स्त्री कौन थी। बनजारेने शीघ्र ही उसे हम लोगोंसे अलग कर दिया। यही तो हमारा अपराध है। और इसीके लिये बनजारेने आपसे हमलोगोंकी शिकायत की है।"

राजाने उसी समय बनजारेको बुलाकर कहा—"सच कहो, तुम्हारे डेरेमें वह स्त्री कौन है, जो इन दोनोंके निकट रात्रिके समय विलाप करती थी?" बनजारेने कहा—"राजन्! मैं आपसे सत्य ही कहूंगा। मैं पृथ्वीपुरसे जबर्दस्ती उसे अपने साथ ले आया था। वह यद्यपि दासीकी तरह मेरा गृहकार्य करती है किन्तु ऐसी सुशीला और सती है, कि मैं उसकी प्रशंसा नहीं कर सकता। पर पुरुषसे बोलना तो दूर रहा, वह उसकी ओर आंख उठाकर देखती भी नहीं है।"

बनजारेकी यह बात सुनकर राजाने मन्त्रीको बुलाकर कहा—"इस बनजारेके डेरेमें एक स्त्री है, उसे समझा बुझाकर किसी तरह मेरे पास ले आइये। ध्यान रहे कि इसके लिये उसपर किसी तरहका बलप्रयोग न किया जाय।" राजाकी आज्ञा मिलते ही

मन्त्री बनजारेके डेरेपर गया, किन्तु रानी मदनवल्लभाने उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखा। मन्त्री उसी क्षण लौट आया और राजासे कहा—"राजन! न तो वह आती है, न कुछ बोलती ही है।" मन्त्रीकी यह बात सुन राजा स्वयं उद्यान जानेके मिस बनजारेके डेरेपर गये। वहां एक कोनेमें मदनवल्लभा बैठी हुई दिखाई दी। वह बड़ी ही दीन मलीन और दुर्बल हो रही थी। सिरपर फटे पुराने कपड़े थे। आभूषण या सिंगार बढ़ानेवाली वस्तुओंका कहीं पता भी न था। उसे देखते ही राजाने पहचान लिया कि यही मेरी हृदयेश्वरी है। उसने रानीको सम्बोधित कर कहा—"हे मदने! हे देवि! क्या तू मुझे नहीं पहचानती?" राजाकी यह बात सुनते हो रानी खड़ी हो गयी और स्थिर दृष्टिसे राजाके चरणोंको देखने लगी। बनजारा तो यह मामला देखते ही थर थर कांपने लगा। वह तुरत ही विनय अनुनय करता हुआ रानीके पैरों पर गिर पड़ा और नाना प्रकारसे गिड़गिड़ाकर क्षमा प्रार्थना करने लगा। रानीने सारा दोष अपने कर्मका समझ कर तुरत उसे क्षमा कर दिया और राजासे भी उसपर रोष न करनेकी प्रार्थना की।

राजाके पुत्र और पत्नी प्राप्तिका यह समाचार देखते ही देखते समूचे नगरमें फैल गया। राजाने तुरत रानीको सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराये और बड़े समारोहके साथ राजसी ठाटबाटसे उसे नगर प्रवेश कराया। इस प्रकार कीर्तिपाल और महीपाल—दोनों पुत्र और राजा रानी, सब लोग फिर एक बार एकत्र हुए।

उन्हें इस समय एक दूसरेके मिलनेपर जो आनन्द हुआ, वह अवर्णनीय था। यह केवल शील और सत्यका प्रताप था। इसीके प्रतापसे इन्हें राज्यकी प्राप्ति हुई थी। कुछ ही दिनोंमें यह समाचार फैलता हुआ धारापुर जा पहुँचा। वहां राजाका स्वामिभक्त मन्त्री राजसिंहासनपर राजाकी पादुकाओंको स्थापित कर राज्य चला रहा था। राजपरिवारका पता मिलते ही उसने पत्र देकर एक दूतको राजाकी सेवामें भेजा। पत्रमें उसने नम्रता पूर्वक राजासे स्वदेश लौट आनेकी और अपना राज्य-भार सम्हाल लेनेकी प्रार्थना की थी।

मन्त्रीका यह पत्र पढ़कर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मन-ही-मन मन्त्रीकी ईमानदारी और स्वामि भक्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। वह कहने लगा—"वास्तवमें जो सज्जन होते हैं, वे कभी भी अपनी प्रकृतिमें परिवर्तन नहीं होने देते। किसीने कहा भी है कि :—

> तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः कांचनं कांतवर्णं।
> घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चंदनं चारुगन्धम्॥
> छिन्नश्छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादुवानिक्षुदण्डः।
> प्राणांतेऽपि प्रकृति विकृति जायते नोत्तमानाम्॥

अर्थात्—"जिस प्रकार सोनेको बारंबार तपानेसे उसका वर्ण अधिकाधिक सुन्दर होता जाता है, चन्दनको बारंबार घिसनेसे उसकी सुगन्ध बढ़ती जाती है, ईखको बारम्बार छेदनेसे उसकी मधुरता बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उत्तम जनोंका स्वभाव प्राणान्त होनेपर भी विकृत नहीं होता।"

यह सोचते हुए ज्येष्ठ पुत्रको श्रीपुरके सिंहासनपर बैठा, मन्त्रियोंको उसे सौंप, राजाने नगरजनोंसे विदा ग्रहण की और छोटे पुत्र एवम् रानीके साथ बड़ी सज धजके साथ धारापुरको ओर प्रस्थान किया। नगरके समीप पहुंचनेपर ज्यों ही मन्त्री और नगरजनोंको राजाके आगमनका समाचार मालूम हुआ, त्योंही वे सब सम्मुख गये और बड़ी धूम-धामसे राजाको नगरमें ले आये। इसके बाद राजाने शीघ्र ही मन्त्रीकी इच्छानुसार समस्त राजभार सम्हाल लिया और पूर्ववत् प्रेमपूर्वक प्रजापालन करने लगा।

कुछ दिनोंके बीतनेपर नगरके बाहर एक उद्यानमें ज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। उनका आगमन समाचार सुनते ही सुन्दर राजा उनके पास गया और उन्हें नमस्कार कर श्रद्धा व भक्ति पूर्वक उनका धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश सुननेके बाद राजाने मुनिसे अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त पूछा। मुनिने उसे वह बतलाते हुए कहा—"राजन्! पूर्व जन्ममें तू शंख नामक एक महाजन था और तेरी इस स्त्रीका नाम श्रीमती था। युवा अवस्थामें सद्गुरुके योगसे तू जिनार्चन और दानादिक कार्यों द्वारा अनन्त पुण्य उपार्जन करता था, किन्तु वृद्धावस्थामें कुमतिके कारण तूने वे सब काय छोड़ दिये। और मृत्यु होनेपर इस जन्ममें तुम दोनों राजा रानी हुए। पूर्वजन्मके पुण्य बलसे प्रथम तुम्हें राज्यादिक की प्राप्ति हुई किन्तु बादको तुमने पुण्य संचय करना छोड़ दिया था, इसलिये तुम लोगोंपर विपत्ति आ पड़ी, किन्तु

विपत्तिमें भी तुम लोगोंने अखंड शीलका पालन किया, इसलिये इसी जन्ममें तुम्हें पुनः राज्य सुखकी प्राप्ति हुई।"

मुनिका धर्मोपदेश और अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर राजा रानीको संवेगकी प्राप्ति हुई और उन दोनोंने अणुव्रत ग्रहण किये। मुनि भी विहार कर चले गये। इसके बाद राजाने अनेक जिन मन्दिर निर्माण कराये। उनमें जिन प्रतिमाओंकी स्थापना कर राजा विधि पूर्वक प्रतिमाओंकी पूजन करने लगा। दयालु, सत्यवादी, पर-द्रव्यसे विमुख, सुशील, सन्तोषी और परोपकार परायण वह राजा रानीके साथ अखंड गार्हस्थ्य धर्मका पालन कर अन्तमें मृत्यु होनेपर स्वर्ग गया। सुन्दर राजाका यह चरित्र सुनकर भव्य जीवोंको अखण्ड शीलव्रतका पालन करना चाहिये।

अब हम लोग पांचवें अणुव्रतके सम्बन्धमें विचार करेंगे। पांचवें अणुव्रतका नाम है—परिग्रह परिमाण। इसके भी यह पांच अतिचार वर्जनीय हैं। (१) धन धान्य (२) द्विपद और चतुष्पद (३) क्षेत्र और वस्तु (४) सामान्य धातु (५) सोना चांदी—इनके परिमाणका अतिक्रम करनेसे ये अतिचार लगते हैं। परिग्रह परिमाणके लिये गुरुके निकट प्रतिज्ञा करनी चाहिये और लोभका त्याग करना चाहिये। कहा भी है कि धन हीन मनुष्य सौ रुपये चाहता है, सौवाला हजार चाहता है, हजार वाला लाख चाहता है, लाखवाला करोडकी इच्छा करता है, करोडपती राज्य चाहता है, राजा चक्रवर्तीत्व चाहता है, चक्र-

वर्ती देवत्वकी इच्छा करता है और देव इन्द्रत्व चाहते हैं। इसलिये जैसे हो वैसे लोभको दूर करना चाहिये। लोभी मनुष्यको कभी भी सुख या सन्तोषकी प्राप्ति नहीं होती। किसीने सचही कहा है कि जिस प्रकार इन्धनसे अग्नि और जलसे समुद्र तृप्त नहीं होता, उसी तरह धनसे लोभीको तृप्ति नहीं होती। उसे यह भी विचार नहीं आता कि आत्मा जब समस्त ऐश्वर्यको त्याग कर परभवमें चला जाता है, तब व्यर्थ ही पापकी गठड़ी क्यों बांधी जाय? कलुषताको उत्पन्न करनेवाली, जड़ताको बढ़ानेवाली, धर्म वृक्षको निर्मूल करनेवाली, नीति दया और क्षमा रूपी कमलिनीको मलीन करनेवाली, लोभ समुद्रको बढ़ानेवाली, मर्यादाके तटको तोड गिरानेवाली और शुभ भावना रूपी हंसोंको खदेड़ देनेवाली परिग्रह नदीमें जब बाढ़ आती है, तब ऐसा कौन दुःख है जिसकी मनुष्यको प्राप्ति न होती हो! कहनेका तात्पर्य यह है कि परिग्रहका परिमाण बढनेपर लोभ दशा बढ जाती है और उससे मनुष्यपर नाना प्रकारके संकट आ पड़ते हैं, इसलिये सर्वथा इसका त्याग करना चाहिये। इस सम्बन्धमें धनसारकी कथा मनन करने योग्य है। वह कथा इस प्रकार है :—
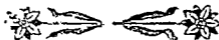
भारतवर्षमें महामनोहर मथुरा नामक एक नगरी है। उसमें धनसार नामक एक महाजन रहता था। उसके पास छाँसठ कोटि रुपये थे। इनमेंसे बाईस करोड़ उसने जमीनमें गाड़ रखे थे, बाईस करोड़ लेन-देनमें लगा रखे थे और बाईस करोड़से वह देश देशान्तरमें व्यापार करता था। इतना धन होनेपर भी संतोष न होनेके कारण उसे कभी शान्ति न मिलती थी। न तो वह किसी पर विश्वास करता था, न अपने आरामके लिये एक पैसा खर्च करता और न कभी किसीको कुछ दान ही देता था। समुद्रके क्षार जलकी भाँति उसका धन अभोग्य था। उसके यहां कभी कोई भिक्षुक भिक्षा मांगने आता तो उसका सिर दुखने लगता। उसकी याचना सुनता, तो उसका जी जलने लगता और उसे कोई कुछ दे देता, तो उसे मूर्च्छा आ जाती और वह तुरत उसे दान देनेसे रोकता। दानकी बात तो दूर रही, वह कभी अच्छा अन्न और घी प्रभृति उत्तम पदार्थ भी न खा सकता था। यदि कोई पड़ोसी कुछ दान करता, तो वह भी उसके लिये असह्य हो जाता था। यदि धर्म कार्यमें एक पैसा भी खर्च करनेको कोई उसे सलाह देता, तो उसकी बोली ही बन्द हो जाती। न

वह स्वयं खाता-खर्चता था, न घरवालोंको ही खाने-खर्चने देता था। इसी कारणसे जब कभी वह बाहर जाता, तो घरके आदमी खुशी मनाते और पेट भर खाते। किसीने सच ही कहा है कि "दान" शब्दके "दा" और "न" इन दो अक्षरोंमेंसे पहला अक्षर "दा" उदार पुरुषोंने ले लिया। कृपण पुरुषोंको मानो इससे बड़ी ईर्ष्या हुई, इसीलिये उन्होंने दृढ़ता पूर्वक "न" अक्षरको पकड़ रखा। धनसारको ठीक यही बात लागू होती थी। वह "न" छोड़कर खर्च करनेके सम्बन्धमें "हां" कभी कहता ही न था। उसकी इस कृपणताके कारण लोगोंने उसका नाम महाकृपण रखा था। वह सदा सड़ा गला और मद्देसे मद्दा अन्न अपने खानेके काममें लाता था। इस प्रकार कृपणताकी बदौलत वह अपना धन दिन प्रति दिन बढ़ाता जाता था और उसीको देख देखकर प्रसन्न होता था।

एक दिन धनसार अपना खजाना देखनेके लिये जमीन खोदने लगा, किन्तु खजानेके स्थानमें कोयला निकलते देख उसे बहुत ही चिन्ता और सन्देह हुआ। शीघ्रही उसने और भी स्थान खोदा तो उसे कहीं कीड़े मकोड़े, कहीं सांप और कहीं बिच्छू प्रभृति जीवजन्तु दिखायी दिये; किन्तु खजानेका वहां कहीं पता भी न था। यह देखकर धनसार छाती पीटता हुआ जमीनपर गिर पड़ा और दुखित हो विलाप करने लगा। इसी समय किसीने आकर यह खबर सुनायी, कि उसकी जो नौकायें अनेक प्रकारका माल लेकर विदेश जा रही थीं वे अकस्मात् तूफान आनेसे समुद्रमें

डुब गयीं। दूसरी ओरसे उसे यह भी समाचार मिला, कि स्थल मार्गसे जो गाड़ियां माल लेकर जा रही थीं, उन्हें डाकुओंने लूट लिया। इस प्रकार जल और स्थल दोनों स्थानका धन नष्ट हो गया। जो धन लेन-देनमें लगाया था, वह भी लोगोंके दीवाले या बेईमानीके कारण अधिकांशमें नष्ट हो गया। चारों ओरसे इस प्रकार वज्रपात होनेके कारण धनसार पागल हो गया और धन-का स्मरण करता हुआ शून्य चित्तसे सर्वत्र विचरण करने लगा। किसीने सच ही कहा है कि :—

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो, गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"

अर्थात्—"दान भोग और नाश-यही तीन धनकी गति है। जो धन दान नहीं दिया जाता है, न भोग किया जाता है, उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।" किसीने यह भी बहुत ठीक कहा है कि :—

"कीटिका संचितं धान्यं, मक्षिका संचितं मधु।
कृपणैः संचिता लक्ष्मी, रन्यै रेवोपभुज्यते॥"

अर्थात्—"चिउंटियोंने संचित किया हुआ धान्य, मक्षिका-ओंने संचित किया हुआ मधु और कृपणोंने संचित किया हुआ धन दूसरों हीके काम आता है—स्वयं कभी भी उसे उपभोग नहीं कर सकते।"

बहुत दिनोंतक इधर-उधर भ्रमण करनेके बाद जब धनसार का चित्त कुछ शान्त हुआ; तब वह विचार करने लगा कि "अब

मुझे क्या करना चाहिये ? नगरके लोगोंने मेरा नाम महाकृपण रखा है और सभी यह बात जानते हैं कि मेरे पास करोड़ों रुपये की सम्पदा थी। अब निर्धन होकर इन लोगोंके बीचमें रहना और हँसी कराना ठीक नहीं। इसलियेअच्छा हो, यदि मैं बचे हुए धनसे कुछ माल लेकर समुद्रमार्गसे व्यापार करने चला जाऊं। इसमें यथेष्ट लाभ होनेकी संभावना है।" यह सोच कर उसने दस लाखका मेय (नापकर बेचने योग्य) परिच्छेद (फाड़कर बेचने योग्य) गण्य (गिनकर बेचने योग्य) और तोलनीय (तौल कर बेचने योग्य) चार तरहका किराना खरीद किया और उसे नौकामें भरकर अनेक नाविकोंके साथ विदेशके लिये प्रस्थान किया। किन्तु दुर्भाग्यवश कुछ दूर जाते ही आकाशमें बादल घिर आये, बिजली चमकने लगी और इतने जोरका तूफान आया कि नौका समुद्रमें पत्तेकी तरह हिलने डोलने लगी। नाविकोंने यथा शक्ति उसे सम्हालनेकी चेष्टा की, पर अन्तमें उनके धैर्यका भी बांध टूट गया और सब लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। कुछ लोग प्राण बचानेके लिये समुद्रमें कूद पड़े, और कुछ लोग नौका-मेंही बैठकर अपने जीवनकी अंतिम घड़ियां गिनने लगे। कोई अपने घरके मनुष्योंको स्मरण करता था, कोई देवताओंका स्मरण कर रहा था तो कोई मृत्यु भयसे बेतरह रो रहा था। इसी समय नौका एक चट्टानसे जा टकराई और देखते-ही-देखते उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। नौका टूटते ही अन्य लोगोंके साथ धनसार भी समुद्रमें जा पड़ा, किन्तु सौभाग्यवश उसके हाथमें

एक काठ पाट पड़ गया और उसीके सहारे वह समुद्रकी लहरोंमें बहता हुआ किनारे लगा। अब वह दीनता पूर्वक इधर उधर भटकने लगा। रात दिन अपने मनमें वह यही सोचता— "अहो! मेरा धन कहां गया? परिवार कहां गया? जिस तरह मदारकी रुईको हवा उड़ा ले जाती है, उसी तरह दैव मुझे कहां ले आया? अहो! मुझे धिक्कार है कि मैंने इतना धन होते हुए भी न तो उसे उपभोग ही किया, न उसे धर्म कार्यमें ही लगाया न कोई परोपकार ही किया।"

इस तरह सोचता हुआ वह इधर उधर भटक रहा था। इतनेमें एक दिन उसने एक देदीप्यमान मुनीश्वरको देखा। उनकी महिमासे देवताओंने आकर वहां स्वर्ण कमलकी रचना की थी और उसीपर मुनीश्वर विराज रहे थे। धनसार भी वहां जाकर, उन्हें वन्दना कर उनके पास बैठ गया। मुनीश्वरका धर्मोपदेश सुननेके बाद अन्तमें अवसर मिलनेपर उसने केवली भगवन्तसे पूछा—"हे भगवन्! मैं कृपण और निर्धन क्यों हुआ?" केवलीने कहा—"हे भद्र! सुन, धातकी खंडके भरतक्षेत्रमें एक धनी रहता था। उसके दो पुत्र थे। धनीकी मृत्यु होनेपर उसका ज्येष्ट पुत्र घरका नेता हुआ। वह गंभीर, सरल, सदाचारी, दानी और श्रद्धावान पुरुष था। उसका छोटा भाई कृपण और लोभी था। बड़ा भाई जब गरीबोंको दान देता, तो छोटे भाईको ईर्ष्या उत्पन्न होती। वह बड़े भाईको बलपूर्वक इससे विरक्त करनेकी चेष्टा करता, किन्तु बड़ा भाई किसी तरह भी उसकी बात न मानता

था। अन्तमें छोटा भाई अपना भाग लेकर बड़े भाईसे अलग हो गया। परन्तु दान और पुण्यके प्रभावसे बड़े भाईकी सम्पति दिन-पर-दिन बढ़ती ही गयी और छोटा भाई दान न करनेके कारण दरिद्री हो गया। कहा भी है कि कूप, आराम और गवादि की सम्पत्ति जिस प्रकार देनेसे बढ़ती है, उसी तरह दान देनेसे धन भी बढ़ता है। जिस तरह अच्छे महाजनके यहां लोग बारम्बार रुपया जमा करते हैं। उसी तरह लक्ष्मी भी दानी पुरुषके यहां बारम्बार आकर आश्रय ग्रहण करती है, किन्तु कृपण मनुष्य उसे बन्धनमें रखना चाहते हैं, इसीलिये वह उनके यहां दुबारा आनेका नाम भी नहीं लेती।

बड़े भाइकी उन्नति देख छोटे भाईको ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने राजासे सच-झूठ लगाकर बड़े भाईकी सब सम्पत्ति लुटवा ली। इससे बड़े भाईको वैराग्य आ गया। उसने किसी सुसाधुके निकट प्रव्रज्या ले ली और निरतिचार चारित्र पालन करते हुए अन्तमें जब उसकी मृत्यु हुई, तो वह सौधर्म देवलोकमें प्रवर देवता हुआ। छोटे भाईकी लोकनिन्दा होने एवं अज्ञान तप करनेके कारण मृत्यु होनेपर वह असुर हुआ। वह छोटा भाई तू और बड़ा भाई मैं ही हूँ। तू असुर योनिसे निकलकर यहां उत्पन्न हुआ और मैं सौधर्म देवलोकसे च्यवन होकर ताम्रलिप्ती नगरमें महाश्रेष्ठीका पुत्र हुआ। यथा समय यति हो केवल ज्ञान प्राप्त कर मैं इस प्रकार विचरण कर रहा हूं। तूने द्वेषके कारण दानका अंतराय किया था, इसलिये कर्म विपाकसे तुझे कृपणता प्राप्त

हुई। अब तू उस दुष्कृत्यकी गर्हणा कर और जो धन प्राप्त हो उसे सुपात्रको देना आरम्भ कर। इससे तेरा कल्याण होगा। कहा भी है, कि "जो दिया जाय या भोग किया जाय वही धन है। शेषको कौन जानता है कि वह कब और किसके काम आयेगा? जिस प्रकार जारसे उत्पन्न पुत्रको प्यार करते देख दुश्चारिणी स्त्री हँसती है, उसी तरह शरीरकी रक्षा करते देख मृत्यु और धनकी रक्षा करते देख वसुन्धरा हंसती है। धनका उपभोग करनेसे इस जन्ममें सुख मिलता है और दान करनेसे दूसरा जन्म सुधरता है, किन्तु हे बन्धु! यदि धन न तो उपभोग किया जाय, न दान ही दिया जाय, तो धन प्राप्त होनेसे क्या लाभ? अनित्य, अस्थिर और असार लक्ष्मी तभी सफल हो सकती है, जब दान दी जाय या भोग की जाय, क्योंकि चपलाकी भांति लक्ष्मी भी किसीके यहां ठहर नहीं सकती। दानके पांच प्रकार हैं। यथा:—

"अभय सुपत्तदाणं, अणुकम्पा उचिय कित्तिदाणं च।
दोहयवि मुक्खो भणिओ, तिन्निवि भोगाइया विन्ति॥"

अर्थात्—"अभय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्त्ति—यह पांच प्रकारके दान हैं। इनमेंसे प्रथम दो दान मोक्षके निमित्त और अन्तिम तीन दान इस लोकमें भोगादिकके निमित्त हैं। जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको पुण्यकार्यमें व्यय करता है, उसे वह बहुत चाहती है। बुद्धि उस पुरुषको खोजती है, कीर्त्ति देखती है, प्रीति चुम्बन करती है, सौभाग्य सेवा करता है, आरोग्य आलिङ्गन करता है,

कल्याण उसके सम्मुख आता है, स्वर्ग सुख उसे वरण करता है और मुक्ति उसकी वाञ्छना करती है। दान चाहे जिसको दिया जा सकता है किन्तु सुपात्र दान देनेसे दाताको शालिभद्रकी तरह सदा अभिष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। पात्राभाव होनेपर स्वच्छन्दता पूर्वक जिसे इच्छा हो उसे देनेसे भी कुवेरकी तरह खोई हुई लक्ष्मी वापस मिलती है।" यह सुनकर धनसारने पूछा—"हे भगवन्! कुवेर कौन था और उसे लक्ष्मी किस तरह प्राप्त हुई थी?" मुनीश्वरने कहा—"हे भद्र! सुन, विशालपुर नामक एक विशाल नगरमें गुणाढ्य नामक एक राजा राज करता था। उस नगरमें कुबेर नामक एक धनी महाजन रहता था। उसके पास विपुल धन सम्पत्ति होनेके कारण वह सभी तरहके सुख उपभोग करता था। एक दिन रात्रिके समय जब वह अपने शयनागारमें सो रहा था, तब दिव्यरूपा लक्ष्मी देवीने वहां आकर उसे जागाया।

लक्ष्मी देवीको सम्मुख उपस्थित देख कुबेर तुरत ही उठ बैठा और हाथ जोड़कर पूछने लगा—"माता! आप कौन हैं और इस समय यहां आनेका कष्ट क्यों उठाया है?" लक्ष्मीने कहा—"हे वत्स! मैं लक्ष्मी हूं। भाग्यसे ही मेरा आना और ठहरना होता है। अब तेरा भाग्य क्षीण हो गया है, इसलिये मैं जा रही हूं।" कुबेर बड़ा ही चतुर और कार्यकुशल पुरुष था। लक्ष्मीके यह वचन सुनते ही उसने कहा—"माता! यदि आप जाना ही चाहती हैं, तो मेरा वस ही क्या है, किन्तु मैं केवल सात दिन और रहनेकी

प्रार्थना करता हूँ। आठवें दिन आपको जहाँ इच्छा हो, वहाँ आप जा सकती हैं।" कुबेरकी यह प्रार्थना स्वीकार कर लक्ष्मी उसी समय अन्तर्धान हो गयीं। इधर सवेरा होते ही कुबेरने जितना धन खानोंमें गड़ा था वह सब बाहर निकलवाया। साथ ही घरमें जितने वस्त्राभूषण और बर्तन आदि थे, वे भी सब एकत्र कर आंगनमें एक खासा सा ढेर लगवाया। इसके बाद उसने नगरमें घोषणा करायी, कि मैं अनाथ, दुःखित और दुःखित मनुष्योंको इच्छित दान देना चाहता हूँ। जिसे जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, खुशीसे आकर ले जाय!" कुबेरकी यह घोषणा सुनते ही अनेक दीन दुःखित उसके पास आये और कुबेरने उन सबोंको इच्छित दान दे सन्तुष्ट किया। इसके बाद उसने सर्वज्ञके मन्दिरमें पूजा स्नान-महोत्सवादि कराये। सुसाधुओंको अन्न-वस्त्र दिये। अनेक ज्ञानोपकरणादि कराये और साधर्मि वात्सल्यादिक अनेक धर्मकृत्य किये। इस प्रकार सात दिनमें उसने अपना समस्त धन खर्च कर डाला और अपने पास केवल उतना ही धन रखा, जिससे कठिनाईके साथ उस दिन जीवन निर्वाह हो सके। सातवें दिन रात्रिको उसने एक पुराने तख्तपर शयन किया और शयन करते ही ऐसे खुर्राटे भरने लगा, मानो उसे घोर निद्रा आ गयी हो। कुछ ही देरमें वहाँ लक्ष्मीदेवी आ पहुँची और कुबेरको पुकार-पुकार कर जगाने लगीं, किन्तु इससे कुबेरकी निद्रा भंग न हुई। देवीने यह देखकर उसे हाथसे हिलाया और कहा— "कुबेर! तू बोलता क्यों नहीं?" कुबेर अब पागलकी तरह उठ

बैठा और आंख मलते हुए कहने लगा—"माता! क्षमा कीजिये, आप कब आयीं सो मैं जान न सका। आज धन न रहनेके कारण मैं निश्चिन्त हो गया था और, इसीसे मुझे ऐसी सुखकी नींद आयी, कि जैसी शायद इस जन्ममें भी न आयी होगी!" यह कह कर कुबेर फिर सोने लगा। देवीने कहा—"पहले जरा मेरी बात तो सुन ले! मैं यह कहने आयी हूं, कि अब मैं यहांसे जाही नहीं सकती। अब मैं यहीं रहूंगी।" कुबेरने कहा—"कोई किसीको बांधकर नहीं रख सकता। माता! तुम्हें जहां जाना हो, खुशीसे जा सकती हो।" देवीने कहा—"हे भद्र! मैं स्वेच्छापूर्वक कहीं भी नहीं जा सकती। सुन :—

> "भो लोका मम दूषणं कथमिदं सचारितं भूतले,
> सोत्सेका क्षणिका च निर्घृणतरा लक्ष्मीरिति स्वैरिणी।
> नैवाहं चपला न चापि कुलटा नो वा गुणद्वेषिणी,
> पुण्येनैव भवाम्यहं स्थिरतरा युक्तं च तत्स्यार्जनम्॥"

अर्थात्—"हे लोगो! लक्ष्मी अभिमानिनी, क्षणिक, अत्यन्त निर्दय और कुलटा है—इस प्रकार संसारमें तुमने मुझे क्यों बदनाम कर रखा है? मैं चपला कुलटा या गुणद्वेषिणी नहीं। पुण्यसे ही मैं स्थिर रहती हूं इसलिये यदि तुम मुझे रोकना चाहते हो, तो तुम्हें पुण्य उपार्जन करना चाहिये।"

हे कुबेर! मैं तो पुण्यके ही वश हूं। तूने पुण्य किया है, इसलिये अब मैं तुझे छोड़ कर और कहीं नहीं जा सकती।" कुबेरने कहा—"देवी! मैंने तो अपने पास कुछ भी नहीं रखा है। अब आप मेरे यहां किस तरह आयेंगी?" लक्ष्मीने कहा—"हे

भद्र ! मैं इसका उपाय बतलाती हूं। इस नगरके बाहर पूर्व दिशामें नगोचरके तटपर धीदेवीका एक मन्दिर है। उस मन्दिरमें अवधूत वेशमें एक मनुष्य रहता है। तू वहां जाकर उसे भोजनके लिये निमंत्रण दे आ। जब वह भोजन करने आये, तब उसे भोजन कराकर कमरेके मध्य भागमें ले जाना और उसे पीटना। इससे वह मनुष्य सोनेका हो जायगा। फिर उसे खण्डित कर तू चाहे जितना सुवर्ण खर्च करेगा, किन्तु वह ज्योंका त्यों हो जाया करेगा।" यह कह देवी अन्तर्धान हो गयीं। कुबेर सवेरा होते ही देवीके मन्दिरमें पहुंचा और उस अवधूतको निमन्त्रण दे आया। भोजन करानेके बाद उसे मारनेपर वह वास्तवमें सोनेका हो गया। इस अक्षय स्वर्ण प्रतिमाको प्राप्तकर कुबेर फिर पूर्ववत् ऐश्वर्य भोग करने लगा।

कुबेरके पड़ोसमें एक नापित रहा था। किसी प्रकार इस सुवर्ण प्रतिमाकी बात उसने सुन ली। उसने सोचा कि शायद सभी महाजन इसी तरह धनी होते हैं। मैं भी क्यों न इस उपाय को काममें ला सदाके लिये दुःख दारिद्रसे मुक्त हो जाऊं! यह सोचकर वह भी उस मन्दिरमें गया और वहां किसी साधुको देख उसे निमन्त्रण दे आया। साधु जब भोजन करने आया, तब उसने भी खिला पिलाकर उसके मस्तकपर प्रहार किया। किन्तु वह साधु ऐसा न था, जो मार पड़ते ही स्वर्णप्रतिमा बन जाय। वह तो मार पड़ते ही चिल्लाने लगा। उसकी पुकार सुन शीघ्रही वहां कोतवाल आया और नापितको गिरफ्तार कर, उसे दण्ड

दिलानेके लिये राजाके सम्मुख उपस्थित किया। राजाने नापित को सच्चा-सच्चा हाल बतलानेका आदेश दिया। नापितने सारा हाल बतलाते हुए राजासे कहा—"हे स्वामिन्! कुबेरको इसी प्रकार स्वर्ण प्रतिमाकी प्राप्ति हुई थी, किन्तु मुझे तो लेनेके देने पड़ गये। नापितकी यह बात सुन राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय कुबेरको बुलाकर प्रतिमा प्राप्तिका हाल पूछा। कुबेरने राजाको सारा हाल आद्योपान्त कह सुनाया। कुबेरके मुँहसे यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर राजाको बड़ाही आनन्द हुआ। उसने कहा—"अहो! धन्य है मुझे, कि मेरे नगरमें ऐसे दानी, पुण्यात्मा और सत्यवादी पुरुष रहते हैं।" यह कह राजाने कुबेर का बड़ा आदर किया और नापितको मुक्त कर दिया। दोनों जन अपने अपने घर लौट आये। कुबेर इस समयसे और भी दान-धर्म करने लगा और इसी दान धर्मके प्रतापसे मृत्यु होनेपर उसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई।"

केवली भगवानके मुंहसे कुबेरका यह दृष्टान्त सुनकर धनसारको संवेग प्राप्त हुआ। उसने कहा—"हे प्रभो! यदि ऐसा ही है, तो मैं आजसे परिग्रहका परिमाण करता हूं। अब मैं जो कुछ उपार्जन करूंगा, उसका आधा भाग धर्म कार्यमें खर्च करूंगा और किसीका भी दोष ग्रहण न करूंगा।" इस प्रकार धनसारने जिन प्रणीत गृहस्थ धर्मके और भी कई व्रत धारण किये और पूर्व जन्मके अपराधके लिये केवलीसे बारम्बार क्षमा प्रार्थना कर अपना अपराध क्षमा कराया। इसके बाद भव्य जीवोंको प्रतिबोध

देते हुए केवली भगवान अन्यत्र विहार कर गये और धनसार भी परिभ्रमण करता हुआ ताम्रलिप्ति नगर पहुँचा। वहां जा व्यंतरके मन्दिरमें कायोत्सर्ग करने लगा। यह देख, व्यन्तरने कुपित होकर उसे बहुत ही भीषण उपसर्ग किये। किन्तु मेरुके समान धीर और वीर धनसार लेश भी विचलित न हुआ, उसकी यह दृढ़ता देख, देवने सन्तुष्ट हो कहा —"हे महाभाग! धन्य है तुझे और धन्य है तेरे माता-पिताको, कि गृहस्थ होनेपर भी तेरी ऐसी दृढ़ मति है। मैं तेरे साहससे प्रसन्न हुआ हूं, अतएव तू वर मांग!" धनसार तो ध्यानमग्न था, इसलिये उसने कोई उत्तर न दिया। यह देखकर देवने पुनः कहा —"हे भद्र! यद्यपि तू इच्छा रहित है, तथापि तू मेरी बात मानकर अपने घर जा। वहां तुझे पूर्ववत् धन और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी।" इतना कह देव अन्तर्धान हो गया। कुछ देरके बाद कायोत्सर्ग पूर्ण होनेपर धनसार मनमें कहने लगा-"यद्यपि अब मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है तथापि पूर्वके कार्पण्य मलको दूर करना चाहिये।" यह सोचकर धनसार अपने घर लौट आया। और जब कुछ दिनोंके बाद एक दिन उसने देखा, तो जमीनमें समस्त धन ज्योंका त्यों गड़ा हुआ दिखायी दिया। उधर देशान्तरमें उसने जो माल भेजा था, उसके रुपये भी धीरे-धीरे आने लगे और जो लोग उसका रुपया दबा बैठे थे, उन्होंने भी उसकी पाई पाई चुका दी। इस प्रकार धनसारके पास फिर ६६ करोड़ रुपये इकट्ठे हो गये। किसीने सच ही कहा है कि शुभ भावसे किये हुए पुण्यके फल तुरत मिलते हैं।" इसके बाद

धनसारने वहां एक बड़ा जिनप्रासाद बनवाया। उसपर स्वर्ण कलश और ध्वजायें स्थापित करायीं। अनेक जीर्णोद्धार कराये, साधर्मिक और स्वजनोंका सत्कार किया। साधुओंको वस्त्र और अन्नदान दिया और सातों क्षेत्रमें अपरिमित धन व्यय किया। इस प्रकार धन द्वारा धर्म और कीर्ति उपार्जन कर, अन्तमें अनशन किया और मृत्यु होनेपर सौधर्म देवलोकमें अरुणप्रभ नामक विमानमें चार पल्योपमकी आयुवाला देव हुआ।

इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा ग्रहण करना चाहिये, कि अत्यन्त लालच करनेसे प्राणीको दुःख और अनर्थकी प्राप्ति होती है, इसलिये मनमें अति लोलुपताका विचार भी न करना चाहिये। इस सम्बन्धमें भी एक दृष्टान्त मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है :—

एक कार्पटिकको भिक्षामें थोड़ासा सत्तू मिला। उस सत्तूको एक घड़ेमें रख, वह शून्य देवकुलमें गया और वहां पैताने वह घड़ा रखकर सो रहा। रात्रिके समय नींद खुलनेपर वह अपने मनमें विचार करने लगा कि—"यह सत्तू बेंचकर इसके मूल्यसे एक बकरी लूंगा। बकरीके जब कई बच्चे होंगे, तब उन्हें बेंकर एक गाय लूँगा। गायके जब बछिया बछड़े होंगे, तब उन्हें बेंचकर एक भैंसको लूंगा। उस भैंसके बियानेपर उसे बेंचकर एक अच्छी सी घोड़ी लूंगा। उस घोड़ीके बढ़िया बछेड़ोंको बहुत अच्छे दाममें बेंचूंगा। इससे जो धन इकठ्ठा होगा, उससे एक बहुत बढ़िया मकान बनवाऊंगा और कोई अच्छा सा व्यापार करूंगा। इसके

बाद स्वजन स्नेहियोंको निमन्त्रित कर मैं किसी अच्छे ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करूंगा। उसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा तब मैं बड़े प्रेमसे उसका लालन-पालन करूंगा। किसी दिन जब मैं बाहरसे आऊंगा और लड़का आँगनमें रोता हुआ दिखायी देगा, तो मैं अपनी स्त्रीपर सख्त नाराज होऊँगा और उसे लातसे ठुकरा दूँगा।" इस तरह तरंगोंके प्रवाहमें बहते-बहते भिक्षुकको आस पासका कुछ भी ख़याल न रहा और उसने सचमुच अपना पैर पटक दिया। पैरोंके पासही सत्तूका घड़ा रखा हुआ था। वह पाद प्रहारके कारण चूर-चूर हो गया और सारा सत्तू मिट्टीमें मिल गया। यह देखकर कार्पटिकको बहुत दुःख हुआ और उसके सारे मनोरथोंपर पानी फिर गया। इस दृष्टान्तसे शिक्षा ग्रहणकर विवेकी मनुष्योंको मिथ्या संकल्प विकल्प कभी न करना चाहिये।

ऊपर जिन पांच अणुव्रतोंका, वर्णन किया गया है, इनका पालन करनेसे गृहस्थ शनैः शनैः मुक्ति मार्गकी ओर अग्रसर होता है। इन्हीं व्रतोंको सूक्ष्म विभेदसे पालन करनेपर पाँच महाव्रत हो जाते हैं। इन पांच महाव्रतोंका पालन करनेसे साधु पुरुषोंको शीघ्रही स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिये ज्ञानी मनुष्योंको यथा शक्ति इनकी आराधनामें लगे रहना चाहिये।"

मुनिराजका यह धर्मोपदेश सुन लोगोंने अनेक प्रकारके नियम, अभिग्रह और देशविरतिका स्वीकार किया। किरणवेग राजा क्रोध, लोभ, मोह और मदसे रहित हो गया और उसे संवेगकी प्राप्ति हुई। उसने गुरुको प्रणाम कर कहा—"हे भग-

उसी समय मुनिराजके शरीरमें लिपट गया और उन्हें जहरिले दाँतोंसे अनेक स्थानोंमें डस कर वह वहाँसे चलता बना। [पृष्ठ १६५]

वन्! संसारसे मुझे उद्वेग हुआ है और मैं प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। इसलिये आप यहीं मासकल्प करनेकी कृपा करें। गुरुने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। इससे किरणवेगको बड़ा ही आन्द हुआ। उसने घर जाकर मन्त्रीको बुलाया और उसके सम्मुख अपने पुत्रको राज्य भार सौंप दिया। इसके बाद एक दिव्य शिविका पर आरूढ हो वह गुरुके पास आया और उनके निकट दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करनेके बाद कर्म शल्यको दूर करनेके लिये उसने चिरकाल तक चारित्रका पालन किया। ज्ञानसे उत्सर्ग और अपवाद मार्गको जान कर साथही अपूर्व ज्ञानका अभ्यास कर वे गीतार्थ हुए। इसके बाद गुरुकी आज्ञासे वे अकेले ही विहार करने लगे। कुछ दिनोंके बाद आकाश गमन करते हुए वे पुष्करवरद्वीप पहुँचे और वहां शाश्वत जिनको नमस्कार कर वे हेमाद्रि पर पहुँचे। वहां दिव्य तप करते हुए अनेक परिषहोंके सहन करनेमें वे अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगे।

इधर वह कुर्कुट सर्पका जीव नरकसे निकल कर हेमद्रिकी गुफामें एक महा भयङ्कर सर्प हुआ। वह सदा आहारकी खोजमें भटका करता और जो जीव सामने पड़ जाता, उसीको खा जाता। एक दिन भटकते हुए उस नागने ध्यानस्थ किरणवेग मुनिको देखा। उन्हें देखते ही पूर्वजन्मके वैरके कारण वह क्रुद्ध हो उठा। उसी समय मुनिराजके शरीरमें लिपट गया और उन्हें जहरिले दाँतोसे अनेक स्थानोंमें डस कर वह वहांसे चलता

बना। यह देखकर मुनिने कहा—"अहो! इसने कर्मक्षय करनेमें मुझे सहायता पहुँचा कर मुझपर बड़ाही उपकार किया है। इसके बाद शीघ्रही उन्हें विष चढ़ आया अतएव उन्होंने समस्त पापोंकी आलोचना कर, समस्त प्राणियोंसे क्षमा प्रार्थना की और अनशन एवम् नमस्कार मन्त्रका ध्यान करते हुए उस नश्वर शरीरको त्याग दिया।

पाँचवाँ भव।

इस प्रकार शरीर त्याग कर ये बारहवें देवलोकमें जम्बूद्रुमावर्त नामक विमानमें बाईस सागरोपमके आयुश्यवाले प्रवर देव हुए और वहां वह दिव्य सुख उपभोग करने लगे। जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। किसीने सच ही कहा है, कि देवलोकमें देवताओंको जिस सुखकी प्राप्ति होती है, उसे शत जिह्वावाला पुरुष सौ वर्षतक वर्णन करता रहे, तब भी उसका अन्त नहीं आ सकता।

उधर हेमाद्रि पर्वतपर उस सर्पकी बड़ी ही दुर्गति हो रही थी। रौद्रध्यानसे अनेक जीवोंका भक्षण करते करते अन्तमें एक दिन वह दावानलमें जल मरा। इस प्रकार मृत्यु होनेपर वह तमःप्रभा नामक नरकमें बाईस सागरोपमके आयुष्यवाला नारकी हुआ। वहां उसे भांति भांतिकी यन्त्रणायें होने लगी। कभी वह मूशलोंसे कूटा जाता, कभी उसपर वज्र मुद्गरोंकी मार पड़ती, कभी कुंभीमें सड़ाया जाता, कभी तलवारोंसे काटा जाता, कभी आरेसे उसके टुकड़े किये जाते; कभी श्वान और

शूकर उसे भक्षण करते, कभी वह महायंत्रोंमें पेरा जाता, कभी उसे तप्त सीसा पिलाया जाता, कभी लोहेके रथमें जोड़ा जाता, कभी शिला पर पटका जाता, कभी अग्निकुण्डमें डाला जाता और कभी तप्त धूलिमें सुलाया जाता। इस प्रकार क्षेत्र स्वभावजन्य दुःख और अन्योन्य जन्य महादुःखको भोग करता हुआ वह अपने दिन काटता था। उसे एक क्षणके लिये भी सुःख किंवा शान्ति प्राप्त न होती थी।
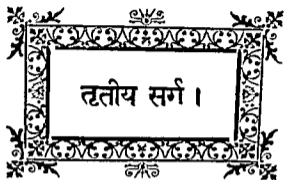
इस जंबूद्वीपके पश्चिम महाविदेहके भूषण रूप सुगन्धी नामक विजयमें कल्पवृक्षके समान दानियोंसे युक्त, अप्सराके समान मनोहर स्त्रियोंसे और देवमन्दिरोंसे सुशोभित शुभंकरा नामक एक परम रमणीय नगरी है। वहां सकल गुण-निधान वज्र वीर्य नामक राजा राज करता था। उस राजाकी कीर्ति दिग दिगन्तमें व्याप्त हो रही थी। उसने अपने समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर उन्हें वश किया था। उसकी प्रजा उससे बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती थी। देशदेशान्तरमें उसके यशोगान गाये जाते थे। उसके राज्यमें इतियां (उपद्रव) तो कभी होती ही न थी। उसका राज्य बहुत विस्तृत होने पर भी अपने इन गुणोंके कारण उसे उसका प्रबन्ध करनेमें कोई कष्ट न होता था। उसके लक्ष्मीवती नामक एक पटरानी थी। राजाकी भांति वह भी लज्जा, विनय, साधुत्व और शील प्रभृति अनेक सद्गुणोंकी खानि थी।

छठा भव।

किरणवेगका जीव देव भवसे च्यवन होकर लक्ष्मीवती रानीके कुक्षि रूपी सरोवरमें हंसकी भांति उत्पन्न हुआ। गर्भ-स्थिति पूर्ण होनेपर उसने सुमुहूर्तमें वसुधाके भूषण रूप एक पुत्रको जन्म दिया। राजाने बड़े समारोहके साथ उसका जन्मोत्सव मनाया और बारहवें दिन स्वजनोंको निमन्त्रित कर सबके सम्मुख उसका नाम वज्रनाभ रखा। इसके बाद बड़े लाड़-प्यारसे उसका लालन पालन होने लगा। वज्रनाभ बड़ा ही चतुर बालक था। उसने बाल्यावस्थामेंही अनेक विद्या और कलाओंका ज्ञान सम्पादन कर लिया। वह जैसा गुणी था वैसा ही रूपवान भी था। उसे देखते ही लोग प्रसन्न हो उठते थे। क्रमशः किशोरावस्था अतिक्रमण कर उसने यौवनको सीमामें पदार्पण किया। अब वह संगीत, शास्त्र और काव्य, कथा एवं स्वजन गोष्टीमें अपना समय व्यतीत करने लगा। शीघ्र ही बंगदेशके चन्द्रकान्त नामक राजाकी विजया नामक पुत्रीसे उसका व्याह भी हो गया और वह उसके साथ अपनी जीवन-यात्रा सुख-पूर्वक व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद कुमारके मामाका कुवेर नामक पुत्र अपने माता पितासे रुष्ट होकर वज्रनाभके पास चला आया और वहीं उसके पास रहने लगा। कुवेर नास्तिक वादी था, इसलिये एक दिन कुमारसे कहने लगा—"अरे! मुग्ध! यह कष्ट कल्पना कैसी!

तुझे यह किसने बतलाया, है कि सद्धर्मसे सद्गति प्राप्त होत है! यह सब झूठ है। हमें तन मन और वचनको इच्छित वस्तु देकर सदैव परितुष्ट रखना चाहिये। कुवेरकी यह बात सुन राज कुमार मौन हो रहा। उसने अपने मनमें स्थिर किया कि दुराग्रही मनुष्योंसे विवाद करने पर मतिभ्रंश होता है, इसलिये इस समय कुछ बोलना ठीक नहीं। कभी मौका मिलनेपर किसी ज्ञानी मुनिराज द्वारा इसे शिक्षा दिलाऊंगा।"

एक बार अनेक मुनियोंके साथ लोकचन्द्रसूरि नामक एक मुनीश्वरका वहांके अशोकवनमें आगमन हुआ। अनेक नगरजन उन्हें वहां वन्दन करने गये। कुबेरको शिक्षा दिलानेका यह उपयुक्त अवसर समझ कुमार भी कुबेरको साथ ले वहां गये। कुमारने विधिपूर्वक शुद्ध भावसे मुनीश्वरको वन्दन किया। कुमारके अनुरोधसे कुबेरने भी उन्हें प्रणाम किया। सब लोगोंके समुचित आसन ग्रहण करनेपर मुनीश्वरने इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया:—

हे भव्य जीवो! यह जीव स्वभावसे स्वच्छ होनेपर भी कर्म मलसे मलीन होकर चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण कर नाना प्रकारके दुःख भोग करता है। कर्म आठ प्रकारके हैं, यथा—(१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) नाम (६) गोत्र (७) आयु और (८) अन्तराय। इनमें ज्ञानके पांच भेद हैं, यथा—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इन ज्ञानोंको अच्छादित करने (ढक

देने) वाला कर्म ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है। दर्शनावरणीय कर्मके नव भेद हैं, यथा—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, और थीणर्द्धि। वेदनीय कर्म दो प्रकारके हैं— शातावेदनीय और अशातावेदनीय। मोहनीय कर्मके अट्ठाईस भेद हैं, *यथा—सोलह कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ*— इन सबोंके चार चार भेद हैं यथा संज्वलन क्रोध, प्रत्याख्यानी क्रोध, अप्रत्याख्यानी क्रोध और अनंतानुबन्धी क्रोध, इसी तरह मान, माया और लोभके भी चार चार भेद होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर १६ कषाय होते हैं। संज्वलनकी स्थिति एक पक्षकी प्रत्याखानीकी एक मासकी, अप्रत्याख्यानीकी एक वर्षकी और अनंतानुबंधीको जन्मपर्यन्त होती है। इनके अतिरिक्त नव नोकषाय होते हैं, यथा—हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद। इनके साथ सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय यह तीन मोहनीय मिलाकर मोहनीय कर्मके कुल अट्ठाईस भेद माने जाते हैं। नाम कर्मके दो भेद हैं—शुभ और अशुभ (इसके उत्तर भेद भी अनेक होते हैं) गोत्र कर्म भी दो प्रकारके होते हैं—उच्च गोत्र और नीच गोत्र। आयु-कर्मके चार भेद हैं, यथा—देव आयु, मनुष्य आयु, तिर्यंच आयु और नरक आयु। अन्तराय कर्म पांच प्रकारका होता है, यथा—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

ज्ञान पढ़नेवाले या ज्ञानके कार्य करनेवालोंको उनके कार्यमें बाधा देनेसे ज्ञानावरणीय कर्मका बन्ध होता है।

धर्म कार्यमें अन्तराय करनेसे दर्शनावरणीय कर्म लगते हैं। कहा भी है कि सर्वज्ञ, गुरु और संघके प्रतिकूल होनेसे तीव्र और अनन्त संसार बढ़ानेवाला दर्शनावरणीय कर्मोंका बन्ध होता है।

अनुकम्पा, गुरुभक्ति और क्षमादिकसे सुख (शाता) वेदनीय कर्म बन्धते हैं और इससे उलटा करनेपर (अशाता) वेदनीय कर्म बन्धते हैं। कहा भी है कि "जब मोहके उदयसे तीव्र अज्ञान उत्पन्न होता है, तब उसके प्रभावसे केवल (दुःख) वेदनीय कर्म बन्धता है और एकेन्द्रियत्व प्राप्त होता है।

रागद्वेष, महामोह और तीव्र कषायसे तथा देश विरति और सर्वविरतिका प्रतिबन्ध करनेसे मोहनीय कर्म बंधता है।

मन, वचन और कायाके बर्तावमें वक्र गति धारण करनेसे तथा अभिमान करनेसे अशुभ नाम कर्म बन्धता है और सरलता आदिसे शुभ नाम कर्मका बन्ध होता है।

गुणको धारण करनेसे, पर गुणको ग्रहण करनेसे, आठ मदोंका त्याग करनेसे, आगम श्रवणमें प्रेम रखनेसे और निरन्तर जिन भक्तिमें तत्पर रहनेसे उच्च गोत्रका बन्ध होता है। और इससे विपरीत आचरण करनेपर नीच गोत्रका बन्ध होता है।

अज्ञान तप, अज्ञान कष्ट, अणुव्रत और महाव्रतसे देव आयु बंधती है। कहा भी है कि अकाम निर्जरासे, बाल तपस्यासे, अणुव्रतसे, महाव्रतसे और सम्यग् दृष्टित्वसे देव आयु बँधती

है। जो दानशील, अल्प कषायी और सरल प्रकृतिके होते हैं, उन्हें मनुष्य आयु बँधती है। यह भी कहा है कि—शील और संयम रहित होनेपर भी स्वभावसे जो अल्पकषायी और दानशील होते हैं, वह मध्यम गुणोंके कारण मनुष्य आयु बँधते हैं। बहुत कपटी, शठ, कुमार्गगामी, हृदयमें पाप रखकर बाहरसे क्षमा प्रार्थना करनेवालोंको तिर्यंच आयु बँधती है। इसके अतिरिक्त उन्मार्गमें चलनेवाला, मार्गका नाश करनेवाला, मायावी, शठ, और सशल्य तिर्यंच आयु बाँधता है।" महा आरम्भी, बहु परिग्रही, मांसाहारी, पंचेन्द्रियका वध करनेवाला, और आर्त्त एवम् रौद्र ध्यान करनेवाला जीव नरक-आयु बाँधता है। इसी तरह मिथ्या दृष्टि, कुशील, महा आरम्भ करनेवाला, जियादा परिग्रह रखनेवाला, पापी और क्रूर परिणामी जीव नरकायु बाँधता है।

सामयिक, पौषध, प्रतिक्रमण, व्याख्यान और जिन-पूजामें जो विघ्न करता है उसे अन्तराय कर्मोंका बन्ध होता है। कहा है कि हिंसादिकमें आसक्त, दान और जिन पूजामें विघ्न करनेवाला जीव अभिष्टार्थको रोकनेवाला अन्तराय कर्म बाँधता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय—इन चार कर्मोंकी तीस तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिकाल सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमका है। नाम कर्म और गोत्र कर्म इन दोनोंका उत्कृष्ट स्थितिकाल बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमका है। आयु कर्मकी स्थिति तैंतीस सागरोपमकी है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति

बारह मुहूर्तकी है। नाम और गोत्र कर्मकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है और शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। जब जीव इन कर्मों की ग्रन्थिको भेद करता है, तब उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेपर वह धर्म प्रेमी होकर शनैः शनैः अपने मनको जिन धर्ममें दृढ़ करता है। इसके बाद वह गृहस्थ किंवा यति धर्मका पालन कर कर्ममल रहित हो, अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। इसलिये भव्य जीवोंको निरन्तर धर्मकी ओर अपनी प्रवृत्ति रखनी चाहिये।"

गुरु महाराजका यह धर्मोपदेश सुन गर्वसे होंठ फड़ फड़ाते हुए कुबेरने कहा—"हे आचार्य! आपने इतने समय तक व्यर्थ ही कंठशोष किया। आपकी यह सब बातें निःसार हैं। आपने जिन धर्म-कर्मादिका मण्डन किया, वे सब आकाश पुष्पके समान मिथ्या हैं। पहली बात तो यह है कि आत्मा कोई चीज ही नहीं है। इसलिये गुण निराधार होनेसे रहते ही नहीं—नष्ट हो जाते हैं। घट पट प्रभृति पदार्थोंकी तरह जो प्रत्यक्ष दिखायी देता है, वही सत्य है। जीव इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है, इसलिये उसका अस्तित्व नहीं माना जा सकता। जीवका अस्तित्व न होनेसे धर्मका अस्तित्व भी लोप हो जाता है। जिस प्रकार मिट्टीके पिंडसे घट तैयार होता है, उसी तरह पृथ्वी, पानी, तेज, वायु और आकाश-- इन पंचभूतोंसे यह देहपिंड तैयार होता है। कुछ दिनोंके बाद यह पंचभूत अपने अपने पदार्थमें अन्तर्हित हो जाते हैं। जब जीव ही नहीं है, तो कष्टरूप तपसे सुख किसे और किस प्रकार हो

सकता है। कष्टसे तो कष्टकारी ही फल मिल सकता है। जीवका अभाव होनेसे धर्मका अभाव भी सिद्ध हो जाता है। निमित्तके अभावमें नैमित्तिकका भी अभाव ही मानना चाहिये।"

कुबेरकी यह बातें सुन शान्तात्मा मुनिने कहा—"हे देवानां-प्रिय! युक्ति वचनसे विपरीत मत बोल। जिस तरह कोई "मेरी माता वन्ध्या" यह कहे, उसी तरह तू जीवका अभाव सिद्ध करता है, यह ठीक नहीं। जीव ज्ञानसे प्रमाणित होता है। वह इन्द्रिय गोचर नहीं है। आत्मा चर्म चक्षुवाले जीवोंको नहीं दिखायी देता, किन्तु परम ज्ञानियोंको ज्ञानसे दिखायी देता है। पृथ्वी प्रभृति पाँचों पदार्थ अचेतन हैं किन्तु जीव चेतना लक्षण है। कहा भी है कि "चेतना, त्रस, स्थावर, तीनवेद, चारगति, पंच इन्द्रिय और छः काय—इन भेदोंसे जीव एकविध, द्विविध, त्रिविध, चतुर्विध, पंचविध और षड्विध कहलाता है। यदि जीव न हो, तो बाल्या-वस्थामें जो किया या भोगा जाता है उसका स्मरण वृद्धावस्थामें कहाँसे आये? और किसे आये? इस प्रकारकी स्मरणशक्ति जीव हीमें है, पृथ्वी आदि अचेतन पदार्थोंमें नहीं। इससे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। धर्माधर्म भी है और यथोक्त धर्माधर्मका भोक्ता जीव चैतन्य लक्षण युक्त है। जिस प्रकार निवोदित अंकुरसे भूमिमें छिपे हुए बीजका अनुमान किया जाता है, उसी तरह सुख दुःखसे पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंका अनुमान होता है। देखो, अनेक मनुष्य नाना प्रकारके उपकरणोंसे परिपूर्ण महल जैसे निवास स्थानमें आरामसे रहते हैं और अनेक मनुष्य मूषक, सर्प, नकुल

और धूलिके समूहसे व्याप्त जीर्ण मकानोंमें कष्टपूर्वक रहते हैं। अनेक मनुष्य मिष्टान्न, पकान्न, खाते हैं, द्राक्षारसका पान करते हैं और कर्पूर मिश्रित ताम्बूल उपभोग करते हैं किन्तु अनेक मनुष्योंको एक शाम भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। अनेक मनुष्य सुगन्धित पदार्थोंके विलेपनसे विभूषित हो, दिव्य वाहनोंमें बैठ स्वजन स्नेहियोंके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं और अनेक मनुष्य दीन-मलीन, धन-धान्य और स्वजनोंसे रहित नारकी जीवोंकी तरह दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं। अनेक मनुष्य मुलायम गद्दोंपर निद्राका आस्वादन करते हैं और सवेरे याचकोंकी जयध्वनिके-साथ शैया त्याग करते हैं, किन्तु अनेक मनुष्य ऐसे भी हैं जो वन्य पशुओंके बीचमें किसी ऐसे स्थानमें सोते हैं, जहां उन्हें निद्रा भी उपलब्ध नहीं होती। यह सब शुभाशुभ कर्मोंका फल नहीं तो और क्या है? धर्माधर्मका यह प्रत्यक्ष फल देखकर अनन्त सुखके लिये कष्ट साध्य धर्मको ही आराधना करनी चाहिये। तेरा यह कथन है कि कष्ट करनेसे सुख नहीं प्राप्त हो सकता—मिथ्या है। कडवी औषधिके सेवन क्या आरोग्यकी प्राप्ति नहीं होती? धर्ममें तत्पर रहनेवाले जीवोंको स्वर्गसे भी बढ़कर सुख प्राप्त होते हैं। धर्मके शासनसे ही संसारमें सब लोगों के हितार्थ सूर्य और चन्द्र उदय होते हैं। धर्म बन्धु रहितका बन्धु और मित्र रहितका मित्र है। धर्म अनाथका नाथ और संसारके लिये एक वत्सल रूप है। इसलिये निरन्तर धर्मकी ही उपासना करनी चाहिये। कहा भी है कि :—

"धर्मस्य दया जननी, जनकः किल कुशल कर्म विनियोगः।
श्रद्धा च वल्लभेयं, सुखानि निखिलान्य पत्यानि॥"

अर्थात्—"दया धर्मकी माता है, कुशल कर्मोंका विनियोग धर्मका पिता है, श्रद्धा धर्मकी वल्लभा—स्त्री है और समस्त सुख उसके सन्तान हैं।" चतुर्विध संघ, जिनबिम्ब, जिनचैत्य और आर्हत-आगम—इन सातोंको ज्ञानियोंने धर्मक्षेत्र बतलाया है। गुरुके प्रति विनम्रता, साधुकी संगति, और उत्तम सत्वका धारण अर्थात् विनय, विवेक, सुसंग और सुसाधुत्व—यह चार गुण लौकिक व्यवहारमें भी प्रशंसनीय माने जाते हैं। लोकोत्तरके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है?

हे कुबेर! तू राजपुत्र होकर अश्वपर आरोहण करता है और यह सेवक तेरी सेवा करते हैं, इसका क्या कारण है? विचार करनेपर मालूम होता है कि इसमें भी धर्म ही हेतु है, इसलिये जीवादि पदार्थ विद्यमान हैं।

मुनीश्वरके यह वचन सुनकर कुबेरको ज्ञान हुआ। उसने खड़े हो, उत्तरासंग और तीन प्रदक्षिणा देकर गुरुके चरण कमल को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे भगवन्! आपने जो कुछ कहा, वह यथार्थ है। अब मुझे धर्मतत्त्व विस्तार पूर्वक बतलानेकी कृपा करें।" गुरुदेवने प्रसन्न होकर कहा—"हे कुबेर! तुझे धन्य है। तूने बड़ा ही अच्छा प्रश्न पूछा है। मैं तुझे धर्मतत्त्व बतलाता हूं। ध्यानपूर्वक श्रवण कर।

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षण च्छेदन ताप ताड़नैः।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन तपोदया गुणैः॥"

अर्थात्—"जिस प्रकार निवर्षण, छेदन, ताप और ताड़नसे सोनेकी परीक्षा की जाती है, उसी तरह श्रुत, शील, तप और दया इन चारोंसे धर्मकी परीक्षा होती है।" इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—यह चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे प्रधान पुरुषार्थ धर्म ही है। धर्म स्वाधीन होनेपर शेष तीनों पुरुषार्थ भी शीघ्र ही स्वाधीन हो जाते हैं। किसीने कहा भी है कि—
इस संसारमें मनुष्य जन्म सारभूत है, उसमें भी तीन वर्ग सारभूत हैं, तीन वर्गमें भी धर्म सारभूत है, धर्ममें भी दान धर्म और दानमें भी दिया दान श्रेष्ट है क्योंकि वही परमार्थ सिद्धिका मूल कारण है।" इसलिये दुर्लभ मनुष्य जन्म मिलनेपर धर्ममें प्रवृति करनी चाहिये और मनुष्य जन्मको वृथा न गँवाना चाहिये। इस सम्बन्ध में तीन वणिक पुत्रोंका उदाहरण प्रसिद्ध है। वह तीनों वणिक पुत्र घरसे समान धन लेकर व्यापार करने निकले थे। इनमेंसे एकको लाभ हुआ, दूसरेने अपने मूल धनको ज्योंका त्यों सुरक्षित रखा और तीसरेने मूल धन भी खो दिया। धर्मकी भी ऐसी ही अवस्था है। कोई मनुष्य जन्म मिलनेपर उसे बढ़ा लेता है,कोई ज्योंका त्यों रखता है और कोई जो होता है उसे भी खो बैठता है। वह तीन वणिक पुत्र किंवा व्यापारियोंकी कथा इस प्रकार है।
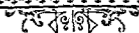
इसी जम्बूद्वीपके ऐरवत क्षेत्रमें अयोध्या नामक एक नगरी है। उसमें धन्य नामक एक व्यापारी रहता था। उसे धनवती नामक एक सुन्दरी स्त्री थी, उसके उदरसे धनदेव धनमित्र और धनपाल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। तीनों बड़े कार्यकुशल और अत्यन्त बुद्धिमान थे। जब यह तीनो लड़के जवान हुए, तब एक दिन धन्यने अपने मनमें विचार किया, कि इन तीन लड़कोंमें किसको गृहभार सौंपना ठीक होगा। इसकी परीक्षा करनी चाहिये। यह सोचकर उसने तीनों पुत्रोंको अपने पास बुलाकर कहा—"हे वत्सो! मैं तुम सबोंको तीन-तीन रत्न देता हूँ। प्रत्येक रत्नका मूल्य सवा करोड़ रुपया है। तुम इन्हें लेकर विदेश जाओ और अपनी अपनी बुद्धिसे व्यापार करो। जब तुम्हें पत्र लिखकर वापस बुलाऊँ, तब तुरत यहां लौट आना।" यह कह धन्यने तीनों पुत्रोंको पौने चार चार करोड़ मूल्यके तीन-तीन रत्न देकर शीघ्र प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी। तीनोंने बिना उज्रके पिताकी बात मान ली। बड़ा पुत्र धनदेव जो बिलकुल आलस्य रहित था, वह विजय मुहूर्तमें उसी दिन घरसे निकल पड़ा। चलते समय उसने

अपने छोटे भाइयोंसे कहा—"मैं नगरके बाहर तुम लोगोंकी राह देखूंगा। तुमलोग शीघ्र ही मुझे वहां आ मिलना।" दोनों भाइयों से यह कह, पिताको प्रणाम कर धनदेवने विदेशके लिये प्रस्थान किया। दूसरा भाई धनमित्र भी शीघ्र ही उसके पीछे घरसे निकल पड़ा और धनदेवको जा मिला; किन्तु तीसरे भाई धनपालके कानमें अभी जूंतक न रेंगी थी। उसने धीरे धीरे भोजन किया। भोजनके बाद कुछ समय तक विश्राम किया और फिर घरसे बाहर निकला। खैर, नगरके बाहर तीनों भाई इकट्ठे हुए और वहांसे एक ओरकी राह ली। चलते चलते बहुत दिनोंके बाद वे सिंहलद्वीपके कुसुमपुर नामक नगरके समीप जा पहुंचे। वहा नगरके बाहर एक उद्यानमें डेरा डालकर वे विचार करने लगे, कि हमलोगोंको अब यहीं व्यापार करना चाहिये और दूर जानेसे लाभ ही क्या हो सकता है, क्योंकि :—

"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो, देवोपि तं लघयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोको न च विस्मयो मे, यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम्॥"

अर्थात्—"मनुष्यको जो धन मिलनेका है, वह उसे अवश्य ही मिलेगा। इसमें देव भी बाधा नहीं दे सकते। इसीलिये मुझे शोक या विस्मय नहीं होता, क्योंकि जो मेरा है, उसपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं हो सकता।"

स्नानादिसे निवृत्त होनेके बाद धनदेव शीघ्र ही नगरमें गया। वहाँ उसने देखा कि चौराहेपर बहुतसे व्यापारी नौकामें आयी हुई कोई वस्तु खरीद कर रहे हैं। यह देख, धनदेव वहां खड़ा हो

गया। उसे वहां जो प्रतिष्ठित व्यापारी दिखायी दिये, उन्हें उसने प्रणाम किया। उसका सद्व्यवहार और उत्तम वस्त्र, देखकर व्यापारी अपने मनमें सोचने लगे कि यह भी कोई बड़ा व्यापारी मालूम होता है। यह सोचकर उन्होंने कहा—"हे भद्र! हमलोग साझेमें जो माल ले रहे हैं, उसमें यदि आप चाहें तो आपका भी साझा रह सकता है।" यह सुन धनदेवने कहा—"मुझे स्वीकार है। आप लोगोंने जिस प्रकार जितना-जितना अपना साझा रखा हो, उतना मेरा भी रख लीजिये।" सबने यह बात स्वीकार कर ली। वह किरानेका सौदा था। धनदेवके भागमें भी बहुतसा किराना पड़ा। धनदेवने उसे बेचनेके लिये बाजारमें एक दूकान किरायेपर ली। कुछ ही दिनोंमें उस मालका भाव बहुत बढ़ गया। इसलिये धनदेवने मौका देख, अच्छा भाव मिलनेपर वह सब माल उसने बेच दिया। इसमें उसे यथेष्ट लाभ हुआ। इस मुनाफेसे वह अन्यान्य चीजोंका भी व्यापार करने लगा। सारा व्यापार मुनाफेकी रकमसे ही चलता था। तीनों रत्न तो अभी उसके पास ज्योंके त्यों रखे हुए थे। वह उनकी त्रिकाल पूजा करता था। कुछही दिनोंमें इस खरीद बेंचके कारण वह एक बड़ा व्यापारी गिना जाने लगा। चारों ओर उसकी कीर्ति फैल गयी और राजा एवम् प्रजा सबोंमें उसका नाम विख्यात हो गया।

धनदेवके दूसरे भाई धन मित्रने भोजन करनेके बाद दो घण्टे विश्राम किया और तब उसने नगरमें प्रवेश किया। वह घूमता घामता जौहरी बाजारमें पहुँचा। उसे देखते ही लोग

समझ गये कि यह कोई बड़ा व्यापारी है और कहीं बाहरसे यहां आया है। शीघ्रही एक बड़े जौहरीने उसे अपने पास बुलाया और उसे आदर पूर्वक उच्च आसनपर बैठाकर कहा—"हे भद्र! आप कहांसे आये और यहां किस जगह ठहरे हैं? आपका आगमन इस नगरमें किस उद्देशसे हुआ है?" धनमित्रने कहा—"मैं व्यापारी हूं और व्यापारके निमित्त यहां आया हूँ।" जौहरीने कहा—"तब आप मेरे घर चलिये और कमसे कम आज मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।" यह कह वह जौहरी बड़े आदरके साथ धनमित्रको अपने घर ले गया और वहां स्नान भोजनादि कराया। भोजनादिसे निवृत्त हो दोनों जन फिर बातचीत करने लगे। जौहरीने पूछा—"सेठजी! आप किस वस्तुका व्यापार करना चाहते हैं?" धनमित्रने कहा—"जिसमें लाभ दिखायी देगा, उसी वस्तुका व्यापार करूंगा।" जौहरीने पुनः पूछा—"व्यापारमें आप कितना धन लगाना चाहते हैं?" धनमित्रने कहा—"मेरे पास पौने चार करोड़ मूल्यके तीन रत्न हैं। इन सबको व्यापारमें लगा देना चाहता हूँ।" जौहरीने कहा—"व्यापारमें आजकल कोई लाभ नहीं है। यदि आप माने तो मैं आपको एक सलाह दूं।" धनमित्रने कहा—"हां, खुशीसे कहिये।" जौहरीने कहा—"आप व्यापार करनेका कष्ट न उठाकर अपने तीनों रत्न मुझे व्याज पर दे दीजिये। मैं उन्हें अपने पास रखूंगा और आपको उसका व्याज दूंगा। इससे आपको अनायास बहुतसा धन मिलता रहेगा। इसमें सिवा लाभके हानिकी कोई संभावना भी नहीं

रहेगी। व्यापारमें तो हानि भी हो सकती है। आपके रत्न मेरे पास प्राणसे भी अधिक सुरक्षित रहेंगे। और आप जिस समय मांगेंगे, उस समय मैं उन्हें वापस कर दूंगा।" धनमित्रको जौहरीकी यह सलाह बहुत अच्छी लगी। उसने सोचा कि व्यापारमें परिश्रम करनेपर भी हानि होनेकी संभावना रहती है; किन्तु इसमें हानिकी कोई बात नहीं। तीनों रत्न भी इस प्रकार सुरक्षित रहेंगे और व्याजसे मेरा खर्च भी चलेगा।" यह सोचकर उसने उसी समय अपने तीनों रत्न जौहरीको सौंप दिये। इसके बाद जौहरी प्रतिमास व्याजके रूपमें उसे एक बड़ी रकम देने लगा और धनमित्र उससे चैनकी वंशी बजाने लगा। अब वह नगरमें स्वतन्त्र विचरण करता हुआ आनन्द पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

ऐसे निरुद्यमी और भाग्यके आधारपर बैठ रहनेवाले लोगोंके सम्बन्धमें एक बहुत ही अच्छा दृष्टान्त प्रचलित है। वह दृष्टान्त इस प्रकार है:—

किसी जगह टोकरीमें एक सांप बन्द पड़ा हुआ उसमें रहते रहते ऊब उठा था और क्षुधाके कारण अपने जीवनसे भी हताश हो रहा था। उसे अपने छुटकारेको कोई आशा न थी। इसी समय एक चूहेने समझा कि इस टोकरीमें कोई खाने योग्य पदार्थ है, अतएव उसने उसमें छेद कर अन्दर प्रवेश किया। अन्दर प्रवेश करते ही उसे सांप पकड़कर खा गया। इस प्रकार अनायास ही सांपकी क्षुधा शान्त हो गयी। इसके बाद चूहेके बनाये हुए

छेदसे यह सांप भी बाहर निकल गया। इसलिये हे मित्रो! धनके लिये व्यर्थ हाय हाय न कर निश्चिन्त होकर बैठे रहो। हानि और लाभका एक मात्र कारण भाग्य ही है। विधाताने जितने धनका प्राप्त होना भाग्यमें लिखा होगा, उतना मरु भूमिमें भी जाने पर मिलेगा, किन्तु उससे अधिक मेरु पर्वतपर भी जानेसे न मिलेगा। इसलिये हे बन्धु! धैर्य धारण करो और वृथा कृपण स्वभाव न रखो क्योंकि घड़ा चाहे समुद्रमें डुबोया जाये, चाहे कूपमें, उसमें समान ही जल आता है। निरुद्यमी लोग यही बात सोच कर उद्योगसे विमुख हो भाग्य भरोसे बैठ रहते हैं।

इस प्रकार दो भाई तो ठिकाने लग गये। तीसरा भाई धन-पाल भोजन कर आलस्यके कारण वहीं उद्यानमें सो रहा। सोनेके बाद शामके वक्त उसने नगरमें प्रवेश किया। नगरमें प्रवेश करते ही मुख्यद्वारके पास उसे एक रूपवती वेश्या दिखायी दी। उस वेश्याके साथ अनेक नट-विट थे। किसीने उसका हाथ पकड़ रखा था, कोई उसे ताम्बूल देता था और कोई उसका मनोरञ्जन कर रहा था। यह देख, धनपाल वेश्यापर आशिक हो गया। वेश्याके मनुष्य उसे देखते ही ताड़ गये कि इसपर बड़ी आसानीसे हमारा रंग चढ़ सकेगा। अतः एक लम्पट पुरुषने उसे लक्ष्य कर कहा—"हे परदेशी पुरुष! तू कहां जा रहा है। जीवन का वास्तविक आनन्द उपभोग करना हो तो हमारे साथ चल!" उसकी यह बात सुनते ही धनपाल उसके साथ हो लिया और उसी समय वेश्याके घरमें जा पहुँचा। वहां नाच मुजरा देखनेमें

उसने सारी रात बिता दी। वेश्याने भी उसे सोनेकी चिड़िया समझ इस तरह अपने जालमें फँसाया, कि वह किसी तरह बाहर न निकल सका और वहीं रहकर उसके साथ आनन्द करने लगा। वेश्याने जब देखा कि अब यह अच्छी तरह फँस गया है और अब मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता, तब एक दिन उसने धनपालसे पूछा—"हे स्वामिन्! आपका किस निमित्त इस नगरमें आगमन हुआ है?" धनपालने उत्तर दिया व्यापार करनेके लिये। वेश्याने पुनः युक्ति पूर्वक पूछा—आपके पास कुछ धन तो दिखायी नहीं देता, आप व्यापार कैसे करेंगे?" धनपालने गर्वपूर्वक कहा—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। मेरे पास पौने चार कोटि मूल्यके तीन रत्न हैं।" वेश्याने कहा—"मुझे तो विश्वास नहीं होता, हों तो दिखाओ। धनपालने तुरत ही तीनों रत्न निकाल कर उसके हाथमें रख दिये। रत्नोंको देखकर वेश्या स्तम्भित हो गयी। उसे वास्तवमें धनपालके पास इतना धन होनेका विश्वास न था। वह रत्नोंको हाथमें लेकर बारम्बार धनपालको चुम्बन और आलिंगन करने लगी। इस प्रकार धनपालको खूब रिझानेके बाद उसने कहा-"स्वामिन्! इन्हें आप अपने साथ लिये कहांतक घूमेंगे। मैं इन्हें अपने पास रख छोड़ती हूं। आपको जब आवश्यकता हो, तब माँग लीजियेगा। यह आपहीका घर है और मैं आपहीके चरणोंकी दासी हूं। अब आप यहीं रहिये और अपना जीवन सार्थक कीजिये। मनुष्य जन्म बार-बार थोड़े ही मिलता है?

वेश्याकी यह चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर धनपाल वहीं रह गया और नाच मुजरा देखने एवम् विषय सेवन करनेमें दिन बिताने लगा। धीरे धीरे वेश्याने और भी जाल फैलाया। अब उसका समूचा खर्च धनपालके ही सिर आ पड़ा। वेश्या कभी वस्त्रोंकी मांग पेश करती और कभी आभूषणोंकी। धनपाल भी बिना उज़्र उसे वे सब चीजें दिलवाता था। रात-दिन धनपालकी बदौलत वेश्याके यहां गुलछर्रे उड़ते। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें धनपालके तीनों रत्न साफ हो गये। जब उसके पास शरीरके कपड़ोंको छोड़ और कुछ भी बाकी न रहा और वेश्याको मालूम हो गया, कि अब इसके पाससे एक पाई भी नहीं मिल सकती, तब उसने एक दिन धनपालको अपने घरसे निकाल बाहर किया। धनपाल रोता कलपता नगरमें गया। वहां एक परिचित विटसे उसकी भेट हो गयी। धनपालने उससे सारा हाल कह कर शिकायत की, कि वेश्याने मुझे ठग लिया। विटने कहा—"मैं इसी वक्त चलकर तेरी तरफसे वेश्यासे लड़ाई करूंगा और तेरा धन तुझे वापस दिला दूंगा। लेकिन इस परिश्रमके बदले कमसे कम तू अपने कपड़े पहले मुझे दे दे। धनपालने उसे बहुतेरा समझाया कि काम हो जानेपर मैं तुझे मुंह मांगी चीज़ देकर खुश करूंगा, किन्तु विट किसी तरह राजो न हुआ। अन्तमें धनपालको अपने कपड़े उतार ही देने पड़े। इसके बाद विट उन कपड़ोंको हाथ कर धनपालके साथ वेश्याके यहां गया और उससे धनपालके रत्न लौटा देनेको कहा। वेश्याने उसी समय

सारा हिसाब दिखाकर सिद्ध कर दिया कि रत्नोंके मूल्यसे कहीं अधिक रुपया धनपाल लेकर खर्च कर चुका है। अब उसकी एक पाई भी मेरे पास नहीं निकलती।" यह कहकर उसने धनपालको फिर घरसे निकलवा दिया। अब तो धनपालके पास कपड़े भी न रहे। वह बेचारा दरिद्रीकी भांति नगरमें भटकने लगा। भोजनका समय हुआ, तब उसे भूख लगी, किन्तु उसके पास तो फूटी कौड़ी भी न थी, कि कुछ लेकर खाता। इतनेमें एक जगह कई मजूरों को खाते पीते देख वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया। उसे इस तरह सतृष्ण दृष्टिसे अपनी और देखते देखकर मजूरोंने पूछा —"भाई तू कौन है और कहांसे आ रहा है?" धनपालने लज्जित हो कहा—"मैं यहां व्यापार करने आया था, किन्तु प्रमादके कारण मेरा सारा धन मेरे हाथसे निकल गया।" यह सुन मजूरोंने पूछा—"आज कुछ खाया पिया है या नहीं?" धनपालने कहा— "क्या खाऊं और कहांसे खाऊं? मेरे पास तो अब एक कानी कौड़ी भी नहीं है।" यह सुनकर मजूरोंको दया आयी और उन्होंने उसे खिलाया पिलाया। अब धनपाल इन्हीं मजूरोंके साथ घूमने लगा और मजूरी कर किसी तरह पेट भरने लगा। किसीने सच ही कहा है कि पेटके पीछे मनुष्य मानको छोड़ देता है, नीच मनुष्योंकी सेवा करता है, दीन वचन बोलता है, कृत्याकृत्य के विवेकको जलाञ्जलि दे देता है, सत्कारकी अपेक्षा नहीं करता और भांडपना एवम् नाचने तकका काम करता है। पेट वास्तवमें ऐसा ही है। इसके पीछे मनुष्य जो न करे वही थोड़ा है।

वेश्याकी यह चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर धनपाल वहीं रह गया और नाच मुजरा देखने एवम् विषय सेवन करनेमें दिन बिताने लगा। धीरे धीरे वेश्याने और भी जाल फैलाया। अब उसका समूचा खर्च धनपालके ही सिर आ पड़ा। वेश्या कभी वस्त्रोंकी मांग पेश करती और कभी आभूषणोंकी। धनपाल भी बिना उज्र उसे वे सब चीजें दिलवाता था। रात-दिन धनपालकी बदौलत वेश्याके यहां गुलछर्रे उड़ते। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें धनपालके तीनों रत्न साफ हो गये। जब उसके पास शरीरके कपड़ोंको छोड़ और कुछ भी बाकी न रहा और वेश्याको मालूम हो गया, कि अब इसके पाससे एक पाई भी नहीं मिल सकती, तब उसने एक दिन धनपालको अपने घरसे निकाल बाहर किया। धनपाल रोता कलपता नगरमें गया। वहां एक परिचित विटसे उसकी भेट हो गयी। धनपालने उससे सारा हाल कह कर शिकायत की, कि वेश्याने मुझे ठग लिया। विटने कहा—"मैं इसी वक्त चलकर तेरी तरफसे वेश्यासे लड़ाई करूंगा और तेरा धन तुझे वापस दिला दूंगा। लेकिन इस परिश्रमके बदले कमसे कम तू अपने कपड़े पहले मुझे दे दे। धनपालने उसे बहुतेरा समझाया कि काम हो जानेपर मैं तुझे मुंह मांगी चीज देकर खुश करूंगा, किन्तु विट किसी तरह राजी न हुआ। अन्तमें धनपालको अपने कपड़े उतार ही देने पड़े। इसके बाद विट उन कपड़ोंको हाथ कर धनपालके साथ वेश्याके यहां गया और उससे धनपालके रत्न लौटा देनेको कहा। वेश्याने उसी समय

सारा हिसाब दिखाकर सिद्ध कर दिया कि रत्नोंके मूल्यसे कहीं अधिक रुपया धनपाल लेकर खर्च कर चुका है। अब उसकी एक पाई भी मेरे पास नहीं निकलती।" यह कहकर उसने धनपालको फिर घरसे निकलवा दिया। अब तो धनपालके पास कपड़े भी न रहे। वह बेचारा दरिद्रीकी भांति नगरमें भटकने लगा। भोजनका समय हुआ, तब उसे भूख लगी, किन्तु उसके पास तो फूटी कौड़ी भी न थी, कि कुछ लेकर खाता। इतनेमें एक जगह कई मजूरों को खाते पीते देख वह उनके पास आकर खड़ा हो गया। उसे इस तरह सतृष्ण दृष्टिसे अपनी ओर देखते देखकर मजूरोंने पूछा —"भाई तू कौन है और कहांसे आ रहा है?" धनपालने लज्जित हो कहा—"मैं यहां व्यापार करने आया था, किन्तु प्रमादके कारण मेरा सारा धन मेरे हाथसे निकल गया।" यह सुन मजूरोंने पूछा—"आज कुछ खाया पिया है या नहीं?" धनपालने कहा— "क्या खाऊं और कहांसे खाऊं? मेरे पास तो अब एक कानी कौड़ी भी नहीं है।" यह सुनकर मजूरोंको दया आयी और उन्होंने उसे खिलाया पिलाया। अब धनपाल इन्हीं मजूरोंके साथ घूमने लगा और मजूरी कर किसी तरह पेट भरने लगा। किसीने सच ही कहा है कि पेटके पीछे मनुष्य मानको छोड़ देता है, नीच मनुष्योंकी सेवा करता है, दीन वचन बोलता है, कृत्याकृत्य के विवेकको जलाञ्जलि दे देता है, सत्कारकी अपेक्षा नहीं करता और भांडपना एवम् नाचने तकका काम करता है। पेट वास्तवमें ऐसा ही है। इसके पीछे मनुष्य जो न करे वही थोड़ा है।

अब धनपाल दिनभर मजूरी करता और उससे जो कुछ मिलता, उसीमें निर्वाह करता था। वह दिनमें किसी तालाब या कुएं पर जाकर भोजन कर आता और बाजारमें सो रहता। इस प्रकार वह बहुत दुःखी हुआ और मनमें पश्चाताप करता हुआ कहनेलगा—"मुझे यह मेरे प्रमादहीका फल मिला है। एक मेरे बड़े भाई धनदेव हैं जो अपने व्यापार और अपनी सज्जनताके कारण सर्वत्र विख्यात हो रहे हैं और एक मैं हूं, जो कि पैसे पैसेके लिये दरदर मारा फिरता हूँ।"

इस तरह तीनों बन्धुओंको उस नगरमें रहते हुए बारह वर्ष बीत गये। इस बीचमें किसी भाईकी किसी भाईसे भेंटतक न हुई। इसी समय इनके पिताने धनदेवके नामसे एक पत्र भेजकर तीनों भाइयोंको घर लौट आनेकी आज्ञा दी। पिताका यह समाचार पाकर धनदेवको बड़ा ही आनन्द हुआ। किन्तु साथ ही उसे यह चिन्ता हो पड़ी कि अब दोनों भाइयोंका पता किस प्रकार लगाया जाय और उन्हें यह सन्देश किस प्रकार पहुँचाया जाय। उसने नगरमें चारों ओर अपने सेवकों द्वारा खोज करायी, किन्तु कहीं भी उनका पता न मिला। अन्तमें उसने स्थिर किया, कि इस नगरके समस्त लोगोंको भोजन करानेका आयोजन किया जाय। ऐसा करनेसे किसी न किसी दिन भाइयोंसे भेंट हो ही जायगी। यह सोचकर उसने नाना प्रकारके पक्वान्न तैयार कराये और एक विशाल भोजकी आयोजना करायी। पहले दिन राजपरिवार और राज-कर्मचारियोंको निमन्त्रित किया और उन्हें भक्ति पूर्वक

भोजन करानेके बाद वस्त्राभूषण दे विदा किया। इन लोगोंमें उसे अपने भाई न दिखाई दिये। दूसरे दिन उसने सब महाजनोंको भोजन कराया, किन्तु उनमें भी भाइयोंका कोई पता न चला। तीसरे दिन उसने नगरके समस्त वस्त्र-व्यवसाइयोंको निमन्त्रित किया, किन्तु उनमें भी कोई भाई न मिला। चौथे दिन उसने जौहरियोंको निमन्त्रित किया। जौहरियोंमें वस्त्राभूषणसे सज्जित हो सर्व प्रथम उसका भाई धनमित्र ही आता हुआ दिखायी दिया। धनदेवने प्रेम और उत्कंठा पूर्वक उससे भेट की और उसे एकान्तमें बुलाकर पिताका वह पत्र दिखाया। पत्र पढ़कर धन-मित्रको बड़ा आनन्द हुआ। उसने कहा—"मुझे पिताजीकी आज्ञा अङ्गीकार है। चलो, हमलोग शीघ्रही वहां चलकर उन्हें प्रणाम करें। इसके बाद सब जौहरियोंको भक्ति पूर्वक भोजन करा उनको विदा किया। धनदेवने धनमित्रसे धनपालका भी पता पूछा किन्तु उसके सम्बन्धमें वह कुछ न बता सका अतएव पाचवें दिन धन-देवने नगरके समस्त मजूरोंको बुलाकर भोजन कराया। मजूरोंके समुदायमें दुःखी दरिद्र और दुर्बल धनपाल भी दिखायी दिया। धनदेवने उसे गले लगाकर पूछा—"भाई! तू ऐसा क्यों दिखायी देता है? तेरी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है? तेरा सारा धन कहां गया?" धनपालने कहा—"मैं एक वेश्याके फेरमें पड़ गया, इसलिये उसीमें मेरा सारा धन स्वाहा हो गया और मैं दरिद्री बन गया। यह सब कुछ मेरे प्रमादका ही परिणाम है।" यह सुनकर धनदेवने कहा—"हे बन्धु! तूने प्रमादमें पड़कर यह बहुत ही

अनुचित कर डाला। देख, शास्त्रमें भी प्रमादकी निन्दा करते हुए कहा गया है कि :—

"प्रमादः परमद्वेषी, प्रमादः परमो रिपुः।
प्रमादः मुक्ति-दस्युः, प्रमादो नरकायनम्॥"

अर्थात्—"प्रमाद परम द्वेषी है, प्रमाद परम शत्रु है, प्रमाद मोक्ष नगरका चोर है और प्रमाद ही नरकका स्थान है।"

यह कहते हुए धनदेवने धनपालको पिताका पत्र दिखाया। पत्र पढ़कर उसने ठंढी सांस लेकर कहा—"बन्धु! मेरे पास तो मार्गव्ययके लिये एक कौड़ी भी नहीं है। मैं पिताजीके पास पहुँच ही कैसे सकता हूँ?" धनदेवने कहा—"तू इसकी चिन्ता न कर। हमलोग तुझे अपने साथ ले चलेंगे और तेरा सारा राहखर्च हम देंगे। इस प्रकार तीनों भाइयोंकी सलाह हो जानेपर धनमित्र अपने घर गया और उस जौहरीसे रत्नोंका हिसाब मांगा। जौहरीने उसी समय उसे हिसाब दिखाते हुए कहा कि आपके रत्नोंका इतना व्याज हुआ, इसमेंसे इतना आपको दिया जा चुका है और इतना बाकी रहा। यह कहकर उसने तीनों रत्न और जो सूदकी रकम बाकी जमा थी वह सब उसी समय धनमित्रको दे दिया। इसके बाद धनमित्र यह सम्पत्ति ले बड़े भाईके पास आया। धनपाल तो पहलेसे ही वहां उपस्थित था। अब धनदेवने शीघ्रही यात्राकी तैयारी करायी और सबसे विनय पूर्वक विदा ग्रहण सेवक और परिजनोंके साथ अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया।

क्रमशः कुछ ही दिनोंमें ये सब लोग कुशलपूर्वक अपने घर आ पहुँचे और पिताको प्रणाम कर अपना कुशल समाचार सुनाया।

भोजनादिसे निवृत्त होनेके बाद पिताने तीनों पुत्रोंको एकान्त में बुलाकर उनसे अपना अपना हाल कहनेको कहा। सर्व प्रथम धनदेवने अपनी यात्राका आद्योपान्त हाल कह सुनाया और अन्तमें तीनों रत्न और विपुल सम्पत्ति पिताको देते हुए कहा—"यह तीनों रत्न हैं और यह व्यापारमें लाभ हुआ है। इसके बाद धन-मित्रने तीनों रत्न देते हुए कहा—"मैंने इन रत्नोंको व्याजपर दे दिया था। मुझे इनका जो कुछ व्याज मिला, उससे मैंने अपना खर्च चलाया है। अब मेरे पास कुछ रुपये बचे हुए हैं वह मैं आपको देता हूं।" यह कह धन मित्रने बचे हुए रुपये भी पिता-को दे दिये। इसके बाद धनपालकी बारी आयी। उसने लज्जित हो कहा—"पिताजी! मैंने तो प्रमादमें पड़कर तीनों रत्न खो दिये। और मैं इस प्रकार कंगाल हो गया, कि कहीं भोजन और वस्त्रका भी ठिकाना न रहा। अन्तमें मुझे उदरनिर्वाहके लिये मजूरी करनी पड़ी और किसी तरह दुःख पूर्वक मैंने इतने दिन पूरे किये। यद्यपि मेरा यह अपराध अक्षम्य है, तथापि मुझे आशा है कि आप मेरी इस नादानीके लिये अवश्य ही क्षमा करेंगे।"

इस प्रकार तीनों पुत्रकी बात सुन, धन्य सेठने उसी दिन ज्येष्ठ पुत्रको सबके सामने सारी सम्पत्ति सौंप दी और उसे घरका मालिक बनाते हुए सबको उसकी आज्ञानुसार चलनेका आदेश दिया। इसके बाद दूसरे पुत्र धनमित्रको किराना प्रभृति व्यापारकी

चीजें सौंपकर उसे व्यापार करने और बड़े भाईके आदेशानुसार चलनेकी आज्ञा दी। इसके बाद तीसरे पुत्र धनपालसे उसने कहा-"तुमने अपने कामसे यह सिद्ध कर दिया है कि तुम व्यापार या धनसे सम्बन्ध रखने वाला कोई दूसरा काम करनेके लिये अयोग्य हो। इसलिये मैं तुम्हें घरके नौकर चाकरोंपर निगाह रखनेका और कुटाई-पिसाई तथा रसोई प्रभृति घर गृहस्थीसे सम्बन्ध रखनेवालों कामोंपर दृष्टि रखनेका काम सौंपता हूँ।" इस प्रकार दो भाई अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार धन सम्पत्तिके अधिकारी हुए और तीसरे भाईको प्रमादके कारण घरमें भी हीन काम कर सेवकाई करना पड़ा।

हे भव्यजीवो! इस दृष्टान्तमें बहुत ही गूढ सिद्धान्त छिपे हुए हैं। वह मैं तुम्हें बतलाता हूं। ध्यानसे सुनो:—धन्यसेठ अर्थात् गुरु। उसके धनदेव प्रभृति तीन पुत्रोंका तात्पर्य सर्वविरति देश-विरति और अविरतिसे है। मूलधन रूपी तीन रत्नोंकी जगह ज्ञान, दर्शन और चारित्रको समझना चाहिये। तीनों प्रकारके जीव इन रत्नोंसे व्यापार करनेके लिये मनुष्यजन्म रूपी नगरमें आते हैं। इनमेंसे प्रमाद न कर ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी वृद्धि करनेवाले सर्वविरति जीव देवगतिको प्राप्त करते हैं। दूसरे प्रकारके जीव जो अप्रमादसे व्यापार कर मूलधनको सुरक्षित रखते हैं, उन्हें पुनः मनुष्य जन्म मिलता है और वे सुख भोग करते हैं। तीसरे प्रकारके जीव प्रमादके कारण—निद्रा और विकथाके फेरमें पड़कर अपना मूलधन भी खो बैठते हैं अतएव उन्हें रौरव नरककी प्राप्ति

होती है।" मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा—इन पाँच प्रमादोंके कारण मनुष्यको संसारमें वार वार भटकना पड़ता है।" इसलिये मनुष्य जन्म मिलनेपर धर्म-कार्यमें प्रमाद न करना चाहिये। अधिक आरम्भ और अधिक परिग्रहसे तथा मांसाहार और पञ्चेन्द्रिय जीवके वधसे प्राणी नरकमें जाते हैं। जो लोग निःशील, निर्व्रत, निर्गुण, दयारहित और पच्चक्खाण रहित होते हैं, वह मृत्यु होनेपर सातवीं पृथ्वीके अप्रतिष्ठान नरकावासमें नारकोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं।

महाआरम्भ पन्द्रह कर्मादान रूप हैं। वह कर्मादान इस प्रकार हैं—अंगार कर्म, वन कर्म, शकट कर्म, भाटक कर्म, स्फोटक कर्म, दंतवाणिज्य, लाक्षावाणिज्य, रसवाणिज्य, केशवाणिज्य, विषवाणिज्य, यन्त्रपीलन, निर्लाञ्छन, असतीपोषण, दवदान और सरशोषण। यह सब कर्मादान त्याज्य माने गये हैं। इनकी व्याख्या इस प्रकार है :—

अंगार कर्म—भट्ठा लगाकर कोयले बनाना, कुम्हार, लुहार और सुनारका काम, धातुके वर्तन बनाना, ईंट और चूना पकाना, प्रभृति कामोंसे जीविका उपार्जन करनेको अंगार कर्म कहते हैं।

वन कर्म—जंगलके सूखे, किंवा गीले, पत्र, पुष्प, कन्द, मूल, फल, तृण, काष्ट, बांस प्रभृतिका खरीद बेंच और वन कटाना, प्रभृति कार्योंसे आजीविका करनेको वनकर्म कहते हैं।

शकट कर्म—गाड़ीके साधन बनाना, बेचना और उनसे जीविका उपार्जन करनेको शकट कर्म कहते हैं।

भाटक कर्म—गाड़ी, बैल, हाथी, ऊंट, भैंसा, घोड़ा, गधा प्रभृतिपर माल लादकर या इन्हें भाड़ेपर चलाकर जीविका उपार्जन करनेको भाटक कर्म कहते हैं।

स्फोटक कर्म—आटा, दाल, चावल आदि तैयार करना, खानि, कूप या सरोवर खोदना, हल चलाना और पत्थर गढना स्फोटक कर्म कहलाता है।

दन्तवाणिज्य—हाथीके दांत, बाघ आदिके नख, हंस आदिके रोम, मृगादिकका चर्म, चमरी गायकी पूंछ, शंख, शृंग, सीप कौड़ी, कस्तूरी प्रभृति ऐसे पदार्थोंका जो हिंसा द्वारा प्राप्त होते हैं, उनका व्यापार करना दंतवाणिज्य कहलाता है।

लाक्षावाणिज्य—लाख, नील, मैनशिल, हरनाल, वज्रलेप, सुहागा, साबुन और क्षार प्रभृतिके व्यवसायको लाक्षावाणिज्य कहते हैं।

रसवाणिज्य—मक्खन, चरवी, माँस, मधु, मदिरा, घी, तेल, दूध प्रभृति पदार्थोंके व्यवसायको रसवाणिज्य कहते हैं।

केशवाणिज्य—दास दासी प्रभृति मनुष्य किंवा गाय बैल और घोड़ा प्रभृति प्राणियोंका क्रयविक्रय केशवाणिज्य कहलाता है।

विषवाणिज्य—विष, शस्त्रास्त्र, हल, यन्त्र, लोहा हरताल प्रभृति प्राणघातक पदार्थोंके क्रयविक्रयको विषवाणिज्य कहते हैं।

यंत्रपीड़न कर्म—तिल, ईख, सरसव, अंडी प्रभृति पदार्थोंको घानीमें पेरना या जलयंत्र चलाना, यंत्रपीड़न कर्म कहलाता है।

निर्लाञ्छन कर्म—गाय, बैल, प्रभृति पशुओंके कान, सींग, पूंछ

प्रभृति कटवाना, नाक या कान छेदना, अकता करना, दागना प्रभृति निर्लाञ्छन कर्म कहलाता है। यह व्यवसाय अत्यन्त वर्जनीय कहा गया है।

असती-पोषण—शुगा, मैना, बिल्ली, श्वान, मुर्गा, मयूर, हरिण, शूकर किंवा दासियोंका पोषण करना असती-पोषण कहलाता है।

दवदान—जंगलमें आग लगानेको दवदान कहते हैं। इसके दो भेद हैं—व्यसन पूर्वक दवदान और पुण्य बुद्धि पूर्वक दवदान। नया तृण उत्पन्न करनेके लिये पुराने तृणको जलाना, पैदावारी बढ़ानेके लिये खेतमें अग्नि लगाना प्रभृति पुण्यबुद्धि पूर्वक किया हुआ दवदान माना जाता है। अकारण किंवा कौतुक वश जंगलमें आग लगानेको व्यसन पूर्वक किया हुआ दवदान कहते हैं।

सरःशोषण—सिंचाईके लिये नदी, तालाब या सरोवर आदि का जल शोषण करानेको सरःशोषण कहते हैं।

इन पन्द्रह कर्मादानोंके आचरण करनेसे बड़ा ही पाप लगता है। इनमेंसे अंगार कर्ममें अग्नि सर्वतोमुख शस्त्र होनेके कारण उससे छः काय जीवोंकी हिंसा होती है। वनकर्ममें वनस्पति और उसके आश्रित जीवोंकी हिंसा होती है। शकट और भाटक कर्ममें भार वहन करनेवाले वृषभादिक और मार्गस्थित छः काय जीवोंकी विराधना होती है। स्फोटक कर्ममें अन्न पीसनेसे वनस्पतिकी और भूमि खोदनेसे पृथ्वीकाय तथा उसमें रहनेवाले प्राणियोंकी विराधना होती है। दन्त, केश, नख, प्रभृति पदार्थोंको

खरीदनेसे उनके संग्रह करनेवालोंको प्रोत्साहन मिलता है और वे हिंसा करनेको तैयार होते हैं। लाक्षावाणिज्यके अन्तर्गत लाख, नील, मैनशिल, हरताल, सुहागा, साबुन प्रभृति पदार्थ ऐसे हैं, जिन्हें तैयार करनेमें भीषण हिंसा होती है और तैयार होनेके बाद भी इनसे जीव हिंसा होती है। इसलिये इनका व्यापार करना मना है। लाक्षादिसे होनेवाले पापके सम्बन्धमें मनुस्मृतिमें भी कहा है कि :—

"सद्यः पतति मांसेन, लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्री भवति, ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात्।।"

अर्थात्—"मांस, लाख और लवणके व्यापारसे ब्राह्मण तुरत पतित होता है और दूध-खोर बेचनेसे वह तीन ही दिनोंमें शूद्र हो जाता है।"

रसवाणिज्यके अन्तर्गत मधुमें जन्तुओंका घात होता है, दूध आदिमें संपातिक यानी अचानक ऊपरसे गिरनेवाले जीवोंकी हिंसा होती है। दहीमें दो दिनके बाद संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह त्याज्य है। केशवाणिज्य में द्विपद और चतुष्पद प्राणियोंकी परवशता एवम् उनपर वध, बन्धन, क्षुधा, पिपासा आदिका जो दुःख पड़ता है, इसलिये उससे दोष लगता है। विष तो प्रत्यक्ष ही प्राणघातक है। इससे न केवल जीवजन्तुओंका ही विनाश होता है, बल्कि मनुष्य तक मर जाते हैं, इसलिये इसका व्यवसाय त्याज्य माना गया है। विषवाणिज्यका अन्य शास्त्रोंमें भी निषेध किया गया है, यथा :—

"कन्या विक्रयिणा श्चैव, रस विक्रयिणस्तथा।
विष विक्रयिण श्चैव, नरा नरक गामिनः ॥"

अर्थात्—"कन्या-विक्रय करनेवाले, रस-विक्रय करनेवाले और विष-विक्रय करनेवाले मनुष्य नरकगामी होते हैं।"

यंत्रपीड़नादिकका भी कर्मके साथ सम्बन्ध है। यथा—ऊखल, चक्की, चूल्हा, जलकुम्भ और भाड़ू—इन पांच वस्तुओंसे गृहस्थके घरमें जीवहिंसा होती है। घानीमें तो और अधिक पातक माना गया है। लौकिक शास्त्रोंमें भी इसके सम्बन्धमें कहा गया है कि दस कसाइयोंके समान एक तेली, दस तेलियोंके समान एक वेश्या और दस वेश्याओंके समान एक राजा होता है। निर्लाञ्छन कर्ममें बैल, घोड़ा, ऊंट प्रभृति पंचेन्द्रिय जीवोंकी कदर्थनाका दोष लगता है। सरःशोषणमें जलचर जीवोंका विनाश होता है। असती पोषण में दास-दासियोंको विक्रय करनेसे दुष्कृत्य एवम् पापकी वृद्धि होती है। (दास-दासियोंको लेने-बेचनेकी प्रथा इस समय मेवाड़ देशमें भी है) इसीलिये यह सब कर्म त्याज्य माने गये हैं।

इनके अतिरिक्त कोतवाल, गुप्तचर और सिपाहीके कर्म भी क्रूर होनेके कारण श्रावकके लिये वर्जनीय माने गये हैं। बैलोंको मारने जोतने या उन्हें षंढ बनानेके लिये उपदेश नहीं देना चाहिये। यंत्र, हल, शस्त्र, अग्नि, मूशल और ऊखल प्रभृति हिंसक अधिकरण भूल कर भी किसीको न देने चाहियें। कौतूहलवश गीत, नृत्य और नाटकादि देखना, कामशास्त्रमें आसक्त होना, द्यूत मद्यादि व्यसनों का सेवन करना, जलक्रीड़ा करना, झूला झूलना, भैंसे या मेंढे

लड़ाना, शत्रुके पुत्र आदिमें वैर बांधना, भोजन कथा, स्त्री कथा, देश कथा, और राज कथा करना, बीमारी और मार्गपरिश्रमके अतिरिक्त अन्य समय सारी रात सोते रहना, प्रभृति प्रमादाचरणका भी त्याग करना चाहिये। विवेकी श्रावकको इन समस्त जिन वचनोंका एकाग्र मनसे पालन करना चाहिये।

अधिक परिग्रह भी लोभका मूल है और लोभ प्राणीको महानरकमें ले जाता है। लोभी मनुष्यको किसी तरह भी सन्तोष नहीं होता। कहा भी है कि "सगर राजाको पुत्रोंसे तृप्ति न हुई, कुचिकर्णको गोधनसे तृप्ति न हुई, तिलक श्रेष्ठिको धान्यसे तृप्ति न हुई और नन्दराजाको सोनेके ढेरसे भी तृप्ति न हुई। लोभी मनुष्य नित्य अधिकाधिक धनकी इच्छा किया करता है। वास्तवमें लोभ ऐसा ही प्रबल होता है। लोभहीके कारण तो भरतराजाने छोटे भाइयोंका राज्य छीन लिया और लोभहीके कारण नित्य अपार जलराशि नदियों द्वारा मिलनेपर भी समुद्रका कभी पेट नहीं भरता। इस महापरिग्रहके सम्बन्धमें यह उदाहरण भी ध्यान देने योग्य है:—

महापरिग्रहमें आसक्त और छः खण्डका स्वामी सुभूम चक्रवर्त्ती भरतक्षेत्रके छः खण्डोंमें राज्य करता था। उसने एक बार सोचा कि छः खण्डके स्वामी तो और भी कई राजा हो चुके हैं। यदि मैं बारह खण्डोंका स्वामी बनूं, तो सबसे बड़ा समझा जाऊं। यह सोचकर सैन्य और वाहनोंके साथ चमरत्नपर आरूढ़ हो, लवण समुद्रके मार्गसे धातकी खण्डकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें चर्मरत्नके अधिष्ठायक सहस्र देवताओंने विचार किया कि

यह चर्मरत्न हमारे प्रभावसे जलमें तैरता है या इस राजाके प्रभावसे, इसकी परीक्षा करनी चाहिये। यह सोचकर सब देवता चर्मरत्नको छोडकर अलग हो गये। उनके अलग होते ही चर्म-रत्न, जो अब तक लवण समुद्रमें तैर रहा था, डूब गया। उसके साथ ही उसपर जितने हाथी घोडे और सैनिक आदि थे वे सब समुद्र-गर्भमें चले गये। लोभके फेरमें पडा हुआ सुभूम भी उन्हींके साथ डूब गया और मृत्यु होनेपर सातवें नरकमें उसे स्थान मिला। अत महा आरम्भ और महापरिग्रहके इन सब फलोंको जानकर विवेकी मनुष्योंको इनका त्याग करना चाहिये।

मास, अभक्ष्य और अनन्तकायके भक्षणसे भी नरककी प्राप्ति होती है। इसलिये इनका भी त्याग करना चाहिये। अभक्ष्य बाईस प्रकारके माने गये हैं, यथा --पाच उदुंबर, चार विगई, हिम, विष, ओले, सब तरहकी मिट्टी, रात्रि भोजन, बहुबीज, अनन्तकाय, आचार, घडे, बैंगन, कोमल फलफूल, तुच्छफल और चलित रस, यह बाइसों अभक्ष्य त्याज्य हैं। इनकी व्याख्या इस प्रकार है '—

वट, पीपल, गूलर, प्लक्ष और काकोदुंबर इन पाच वृक्षोंके फलमें भुनगे नामक छोटे छोटे जीव होते हैं, इसलिये इनको भक्षण करना मना है। साधारणत लोग भी इन्हें अभक्ष्य ही मानते हैं।

मद्य, मास, मधु और मक्खन यह चार महाविगई कहलाते हैं। इनमें अनेक संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं। कहा भी है कि "मद्य, मधु, मास और मक्खन, इनमें इन्हीं वर्णके जन्तु उत्पन्न होते और मरते हैं। जैनेतर शास्त्रमें भी कहा है कि मद्य,

मांस, मधु और मक्खनमें सूक्ष्म जन्तु उत्पन्न होते और लोन होते हैं। सात ग्रामोंको अग्निसे जलादेनेपर जितना पाप लगता है, उतना ही पाप मधुका एक बिन्दु भक्षण करनेसे लगता है। मद्यकी दो जातियां हैं--काष्टमद्य, और पिष्टमद्य। मांस तीन प्रकार का है---जल चर, स्थलचर और खेचर। मधु भी तीन प्रकार होता है---माक्षिक, कौत्रिक (?) और भ्रामर। मक्खन भी गाय, भैंस, बकरी और भेंड़---चार प्रकारका होता है। यह सभी अभक्ष्य माने गये हैं।

हिम किंवा बरफ भी अगणित अपकायका पिण्डरूप होता है। यहां कोई यह शंका कर सकता है कि जलमें भी तो असंख्य जीव होते हैं, इसलिये वह भी अभक्ष्य है। यह कथन सत्य होने पर भी जल अभक्ष्य इसलिये नहीं माना गया, कि उसके बिना निर्वाह नहीं हो सकता, किन्तु बरफके बिना निर्वाह हो सकता है, इसलिये उसे अभक्ष्य माना है। जलका निषेध न होनेपर भी श्रावकको जहांतक हो सके प्रासुक जल ही पीना चाहिये।

खड़िया प्रभृति अनेक प्रकारकी मिट्टी भी त्याज्य है। इसका भक्षण न करना चाहिये। जिन स्त्रियोंको मिट्टी खानेका व्यसन लग जाता है, उन्हें पाण्डुरोग, देह दौर्बल्य, अजीर्ण, श्वास और क्षय प्रभृति रोग हो जाते हैं। इन रोगोंसे न केवल कष्टही होता है बल्कि प्राणान्त तक हो जाता है। मिट्टीमें अनेक जीवजन्तु होते हैं, इसलिये सचित्त मिट्टीका भक्षण करनेसे उनकी विराधना लगती है। लोग कह सकते हैं, कि ऐसी अवस्थामें

नमकको भी त्याज्य मानना होगा। यह कथन भी ठीक है, किन्तु इसका सर्वथा त्याग करनेसे गृहस्थका काम नहीं चल सकता, इसलिये भोजनमें श्रावकको सचित्त लवणका त्याग करना चाहिये। भोजन करते समय नमक लेना हो, तो वह अचित्त लेना चाहिये—सचित्त नहीं। यह अचित भी अग्न्यादि प्रबल शस्त्रोंसे ही हो सकता है, किसी दूसरी तरह नहीं, क्योंकि उसमें अत्यन्त सूक्ष्म अगणित पृथ्वीकाय जीव रहते हैं। भगवति सूत्रके उन्नीसवें शतकके तीसरे उद्देशेमें कहा गया है कि वज्रमय शिला-पर स्वल्प पृथ्वीकायको रखकर इक्कीसवार वज्रसे पीसनेपर अनेक जीव पिस जाते हैं और अनेक जीवोंको तो कुछ मालूम भी नहीं होता।

रात्रि भोजनमें ऊपरसे गिरनेवाले अनेक जीवोंके विनाश होनेकी संभावना रहती है और उसके कारण ऐहिक तथा पार-लौकिक दोष लगता है, इसलिये वह त्याज्य माना गया है। कहा गया है कि भोजनमें चिउंटी रह जानेसे वह बुद्धिका नाश करती है, मक्षिका वमन कराती है, जूंसे जलोदर होता है, मकड़ीसे कुष्ट होता है, बालसे स्वरभंग होता है, कांटा या लकड़ी गलेमें चुभ जाती है और भ्रमर तालुको फोड़ देता है। निशीथ चूर्णिमें भी कहा गया है कि छिपकली पड़ा हुआ भोजन करनेसे पीठमें एक प्रकारका भयंकर रोग हो जाता है। इसी तरह अन्नमें विषाक्त सर्पकी लार, मल, मूत्र और वीर्य प्रभृति पदार्थ पड़नेसे कभी कभी मृत्यु तक हो जाती है। यह भी कहा गया है, कि जिस प्रकार

वृक्षसे नीचे गिरा हुआ फूल मारा मारा फिरता है, उसी तरह रात्रि भोजनके दोषसे संसारमें प्राणी मारे मारे फिरते हैं और दुःखित होते हैं। इसके अतिरिक्त रात्रि भोजनके वर्तन आदि धोनेमें भी अनेक जीवोंका घात होता है। रात्रि भोजनके इन अपार दोषोंके कारण न केवल मनुष्यको संसार सागर ही तैरना कठिन हो जाता है, बल्कि इसके कारण उलूक, काक, मार्जार, गिद्ध, शूकर, सर्प, विच्छू और छिपकली प्रभृति योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है।

दूसरे दर्शनोंमें भी कहा है कि जब साधारण स्वजनकी मृत्यु होनेपर भी सूतक लगता है, तब दिवानाथ (सूर्य) का अस्त होने पर भोजन किस प्रकार किया जा सकता है? रात्रिमें जल रक्तके समान और अन्न मांसके समान हो जाता है इसलिये रात्रि भोजन करनेवालेको मांसाहार करनेका दोष लगता है। यह मार्कण्डेय ऋषिका कथन है। इसलिये विशेष कर तपस्वी और विवेकी गृहस्थ को रात्रिके समय जल और भोजन न लेना चाहिये। वेदान्तियोंके कथनानुसार सूर्य त्रयीतेजमय है, इसलिये शुभ कर्म उसी समय करना चाहिये, जिस समय उसका प्रकाश हो। रात्रिके समय आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवार्चन, दान और खासकर भोजन कदापि न करना चाहिये। विवेकी मनुष्यको रात्रिके समय चारों आहार का त्याग करना चाहिये। जो वैसा न कर सकें, उन्हें अशन और खादिमका तो सर्वथा त्याग ही करना चाहिये। खादिम—सुपारी प्रभृति भी दिनके समय अच्छी तरह देख कर यत्न पूर्वक खाना

चाहिये, नहीं तो इसमें भी त्रस जीवोंकी हिंसाका दोष लगता है। खासकर सुबह और शामको रात्रि प्रत्यासन्न होनेपर—सूर्योदय होनेके दो घड़ी बाद और सूर्यास्त होनेके दो घड़ी पूर्व भोजन करना चाहिये। कहा भी है कि दिवसके आरम्भ और अन्तकी दो दो घड़ियां त्याग कर जो भोजन करता है,वह पुण्यका भागी होता है। आगममें भी सर्व जघन्य पच्चखाण मुहूर्त प्रमाण नमस्कार सहित बतलाया है। यदि कार्यकी व्यग्रता आदिके कारण वैसा न हो सके, तब भी धूप आदि देखकर सूर्यके उदय और अस्तका निर्णय अवश्य कर लेना चाहिये। ऐसा न करनेसे रात्रि भोजनका दोष लगता है। लज्जाके कारण अन्धकारयुक्त स्थानमें दीपक लगाकर भोजन करनेसे त्रस जीवोंकी हिंसाके साथ नियम का भंग और माया मृषवाद प्रभृति अनेक दोष लगते हैं क्योंकि 'मैं यह पाप न करूंगा' यह कह कर फिर वही पाप करना, मृषावाद और माया नहीं तो और क्या है? जो प्राणि पाप कर अपनी आत्माको पवित्र मानते हैं, उन्हें दूना पाप लगता है। यह बालजीवोंकी अज्ञानताका लक्षण है।

रात्रि भोजनके नियमकी आराधना और विराधनाके सम्बन्धमें तीन मित्रोंका दृष्टान्त मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है:—

देवपल्ली नामक ग्राममें श्रावक, भद्रक और मिथ्यादृष्टि नामक तीन वणिक मित्र रहते थे। एक बार वे किसी जैनाचार्यके पास गये। आचार्य महाराजने उन्हें रात्रि भोजनके नियमका उपदेश

दिया। यह सुनकर इन्होंने रात्रि भोजन त्याग देनेको प्रतिज्ञा की। इनमेंसे श्रावकने रात्रि भोजन और कन्दमूलादि अभक्ष्य पदार्थोंको त्यागनेकी उत्साह पूर्वक प्रतिज्ञा की, क्योंकि वह श्रावक कुलमें उत्पन्न हुआ था। भद्रकने बहुत कुछ सोच विचार करनेके बाद केवल रात्रि भोजन ही त्यागनेकी प्रतिज्ञा की, किन्तु दुराग्रहमें ग्रसित होनेके कारण मिथ्या दृष्टिको तो कुछ प्रतिबोध ही न हुआ। कहा भी है कि :—

"आग्रही बत निनीषति युक्तिं तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपात रहितस्य तु युक्ति-र्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्॥"

अर्थात्—"कदाग्रही पुरुष जहां उसको बुद्धि स्थित होती है, वहीं युक्तिको ले जाना चाहता है, किन्तु पक्षपात रहित मनुष्यको जहां युक्ति दिखायी देती है, वहीं उसकी बुद्धि स्थिर होती है।" श्रावक और भद्रकके परिवार वालोंने भी रात्रि भोजन त्यागनेकी प्रतिज्ञा की, क्योंकि यह एक साधारण बात है कि घरका मालिक जैसा आचरण करता है, वैसाही गृहके अन्यान्य मनुष्य भी करने लगते हैं।

किन्तु श्रावक इस नियमको अधिक समय तक न निभा सका। प्रमादको बहुलताके कारण उसके नियममें दिन प्रतिदिन शिथिलता आती गयी। कार्यकी अधिकताके कारण वह सुबह और शामको त्याज्य मानी हुई दो घड़ियोंमें भी भजन करने लगा। कुछ दिनोंके बाद उसकी यह अवस्था हो गयी, कि वह सूर्यास्तके बाद भी भोजन करने लगा। भद्रक प्रभृति जब इसके लिये उससे

कुछ कहते, तब वह कहता है, कि अभी तो दिन है, रात्रि कहां हुई है?" श्रावकको इस शिथिलताके कारण उसके परिवारमें भी शिथिलता आ गयी और सभी लोग समय कुसमयका विचार छोड़ इच्छानुसार भोजन करने लगे।

एक बार भद्रक राजाके किसी काममें ऐसा उलझ गया कि वह न तो शामहीको भोजन कर सका न दूसरे दिन दोपहरको ही। धीरे धीरे सूर्यास्तका समय हुआ किन्तु फिर भी वह भोजन करने घर न आया। शामको जिस समय उसे फुरसद मिली, उस समय सूर्यास्त हो चुका था। उस समय उसके मित्रोंने उसे भोजन कर लेनेके लिये बहुतेरा समझाया, किन्तु फिर भी उसने भोजन न किया। कहा है कि—

> "अप्पहियं कायव्वं, जइ सक्का परहियंपि कायव्वं।
> अप्पहिय परहियाणं, अप्पहिअं चेव कायव्वं॥"

अर्थात्—"उत्तम जीवोंको आत्महित करना चाहिये और शक्ति हो, तो परहित भी करना चाहिये। किन्तु जहां आत्महित और परहित दोनोंका प्रश्न उपस्थित हो, वहां, आत्महित पहले करना चाहिये।"

इस प्रकार भद्रकने रात्रि हो जानेके कारण किसी प्रकार भी भोजन न किया, किन्तु श्रावकको तो अब इसका कोई विचार ही न था, इसलिये उसने रात्रि पड़ जाने पर भी भोजन करलिया। एक समय दैवयोगसे भोजन करते समय उसके माथेसे एक जूं

भोजनमें गिर पड़ी और उसे खा जानेके कारण श्रावकको जलोदरका भयंकर रोग हो गया। और कुछ दिनोंके बाद इसी रोगके कारण उसकी मृत्यु भी हो गयी। इस तरह रात्रि भोजनकी प्रतिज्ञा भग करनेके कारण मृत्युके बाद मार्जार योनिमें उसका जन्म हुआ और उस जन्ममें श्वान द्वारा कदर्थना पूर्वक मृत्यु प्राप्त होनेपर वह नारकी होकर नरकमें गया।

मिथ्यादृष्टि तो आरम्भसे ही रात्रि भोजनमें आसक्त था। एक बार कहीं रात्रिको भोजन करते समय वह विषमिश्रित आहार खा गया। इसके कारण उसे असह्य यन्त्रणा हुई और दूसरे ही दिन उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर श्रावककी भाँति मार्जार योनिमें जन्म होनेके बाद वह भी नरक गया।

भद्रकने अपनी प्रतिज्ञाका दृढ़ता पूर्वक पालन किया इसलिये मृत्यु होनेपर वह सौधर्म देवलोकमें महर्द्धिक देव हुआ। कुछ दिनोंके बाद श्रावकका जीव नरकसे निकलकर एक निर्धन ब्राह्मण के यहा उत्पन्न हुआ और उसका नाम श्रीपुंज पडा। मिथ्यादृष्टि भी इसी तरह उसी ब्राह्मणके यहा छोटे पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम श्रीधर पडा।

भद्रकदेवने जब देखा कि यह दोनों फिर मनुष्य रूपमें उत्पन्न हुए हैं तब वह उनके पास गया और उन्हें पूर्वजन्मका हाल बतला कर उपदेश दिया। भद्रकके उपदेशसे दोनोंने फिर रात्रिभोजन और अभक्ष्यादिक त्यागनेकी प्रतिज्ञा की और दृढ़ता पूर्वक इस प्रतिज्ञाका पालन करने लगे। यह सब भद्रकका प्रताप था। यदि

एक सद्‌मित्रके नाते यह चेष्टा न करता तो शायद ही यह लोग इस तरह सन्मार्गपर आते। शास्त्रमें कहा है कि :—

"पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटी करोति॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदंति संतः॥"

अर्थात्—"पापसे रोकना, हितमें लगाना, गुह्यको गुप्त रखना, गुणोंको प्रकट करना, विपत्तिमें दूर न भागना और आवश्यकता पडनेपर सहायता करना यह सन्मित्रका लक्षण है।" भद्रकने भी इस समय पूर्णरूपसे इस मित्र धर्मका पालन किया था।

किन्तु श्रीपुंज और श्रीधरके माता पिता बडे ही दुराग्रही थे। दोनों भाइयोंको यह प्रतिज्ञा उन्हें अच्छी न लगी, इसलिये उन्होंने दोनों भाइयोंको भोजन देना ही बन्द कर दिया। तीन दिन बीत गये किन्तु अपने पुत्रोंको निराहार देखकर भी उन्हें दया न आयी। इधर श्रीपुंज और श्रीधर इस बातपर डटे हुए थे, कि प्राण भले ही चला जाय, किन्तु इस प्रकार यह प्रतिज्ञा भंग न करेंगे। तीसरे दिन रात्रिको जब यह बात भद्रकको मालूम हुई, तब उसने इस प्रतिज्ञाकी महिमा बढानेके लिये राजाके पेटमें भयंकर पीड़ा उत्पन्न कर दी। ज्यों ज्यों वैद्य उसका उपचार करते थे, त्यों त्यों पीडा बढती जाती थी। अन्तमें मन्त्री किंकर्तव्य विमूढ हो गये और नगरमें हाहाकार मच गया। इसी समय आकाशवाणी हुई कि "राजाके पेटकी यह वेदना किसी तरह आराम नहीं हो सकती।

इसे केवल श्रीपुंज और श्रीधर, जिन्होंने रात्रि भोजन त्याग देनेकी प्रतिज्ञा की है, यहो आराम कर सकते हैं।" यह आकाशवाणी सुनते ही सारे नगरमें श्रीपुंज और श्रीधरकी खोज होने लगी, किन्तु बहुत खोज करनेपर भी कहीं उनका पता न चला। अन्तमें किसीने बतलाया कि एक गरीब ब्राह्मणके दो छोटे बच्चोंने इसी तरहकी प्रतिज्ञा ले रखी है। संभवतः उनका नाम भी यही है।" यह सुनतेही राजाके मन्त्रियोंने बड़े आदरसे श्रीपुंजको बुला भेजा। श्रीपुंजने तीन दिनसे आहार न किया था, किन्तु अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेके कारण उसे असीम आनन्द हो रहा था। उसने मन्त्री द्वारा सब हाल सुनकर उत्साह पूर्वक उच्चस्वरसे कहा—"यदि मेरे रात्रि भोजन त्यागका महात्म्य हो तो, इसी समय राजाकी वेदना दूर हो जाय!" यह कह उसने राजाके पेटपर हाथ फेर दिया। उसके हाथ फेरनेके साथही सारी वेदना न जाने कहाँ चली गयी। श्रीपुंजके इस उपकारसे राजाने सन्तुष्ट हो उसी समय उसे पाँच गाम उपहार दे दिये, साथही राजाने भी रात्रि भोजन त्याग देनेकी प्रतिज्ञा की। इस घटनासे श्रीपुंजके माता-पितापर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा और उन्होंने न केवल अपने पुत्रोंका ही आदर किया, बल्कि उनका अनुकरण कर उन्होंने भी रात्रि भोजन त्याग दिया। इस प्रकार जिन धर्मका प्रभाव बढ़ाकर श्रीपुंजने बहुत दिनोंतक सुख उपभोग किया और अन्तमें मृत्यु होनेपर वह श्रीधरके साथ सौधर्म देवलोकमें गया। वहां क्रमशः तीनों मित्र सिद्ध हुए।

तीन मित्रोंके इस उदाहरणसे विवेकी पुरुषोंको शिक्षा ग्रहण

करनी चाहिये और रात्रि भोजनका सर्वथा त्याग करना चाहिये। अस्तु, अब हम लोग अपने मूल विषयपर लौट कर शेष अभक्ष्य पदार्थोंपर विचार करेंगे :—

बहुबीज—बहुतसे फल फूल अभ्यन्तर पट रहित केवल बीजमय होते हैं। इन्हें भक्षण करनेसे बीजके जीवोंकी हिंसा होती है, इसलिये यह अभक्ष्य माने गये हैं। जो फल अभ्यन्तर पट सहित बीजमय होते हैं, (यथा अनार, बिम्बाफल इत्यादि) वे इस कोटि में नहीं आते अतएव अभक्ष्य नहीं माने जाते।

अनन्तकाय—यह अनन्तजीवोंके घातसे होनेवाले पातकका हेतुभूत होनेके कारण त्याज्य माना गया है। क्योंकि मनुष्यसे नारकी जीव, नारकी जीवसे देवता, देवताओंसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंसे द्विइन्द्रियादिक और द्विइन्द्रियादिकोंसे भी अग्निकाय जीव यथोत्तर असंख्यात गुने कहे गये हैं। इनसे भी पृथ्वीकाय, अपकाय और वायुकाय क्रमशः अधिक माने गये हैं। इन सबोंकी अपेक्षा मोक्षजीवोंकी संख्या अनन्त गुनी है और अनन्तकाय जीव उनसे भी अधिक अनन्त गुने हैं। इस विषयपर आगे चलकर विशेष स्पष्टता पूर्वक विचार किया जायगा।

अचार—नींबू और बेल आदिके बोल आचारमें अनेक जन्तु उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है, इसलिये तीन दिनके बाद यह अभक्ष्य माने जाते हैं।

बड़े—कच्चे, पक्के, या द्विदल अन्नके बनाये हुए, दूध, दही या मट्ठे आदिमें भिगोये हुए बड़ोंमें भी अनेक प्रकारके सूक्ष्म जन्तु

पड़नेकी संभावना रहती है, इसलिये यह भी अभक्ष्य माने जाते हैं।

बैंगन—निद्रा वर्धक और कामोद्दीपक होनेके कारण यह भी अनेक दोषोंको पोषण करता है। अन्य शास्त्रमें भी कहा है कि—"हे प्रिये! जो बैंगन, कलींदा और मूली आदिका भक्षण करता है वह मूढात्मा अन्तकालमें भी मुझे स्मरण नहीं कर सकता।"

अज्ञात पुष्प और फल—अज्ञात पुष्प और फल भी इसलिये खाना मना है कि यदि अज्ञानताके कारण कोई निषिद्ध फल खानेमें आय, तो उससे व्रतभंग होनेकी सम्भावना रहती है। इसी तरह कोई विषाक्त फल खानेसे मृत्यु तक होनेकी संभावना रहती है।

तुच्छफल—जामुन, बेर आदि छोटे फल, काममें न लाना चाहिये क्योंकि इनका आकार छोटा होनेके कारण एक ओर जैसी चाहिये वैसी तृप्ति नहीं होती और दूसरी ओर विराधना बहुत अधिक होती है।

चलित रस—सड़ा और बासी अन्न, बासी दूध दही इत्यादि पदार्थोंमें अनेक जंतु पड़ जाते हैं, इसलिये यह सब त्याज्य माने गये हैं। अनेक पदार्थोंमें जन्तु स्पष्ट दिखायी देते हैं किन्तु अनेक पदार्थोंके जन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण साधारण दृष्टिसे नहीं दिखायी देते। ऐसे स्थानोंमें शास्त्रको प्रमाण मानना चाहिये। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि मूंग, उड़द प्रभृति द्विदल अन्नमें कच्चा गोरस पड़नेसे उसमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है। दो दिनके बाद दहीमें भी इसी तरहके जन्तु पड़ जाते हैं।

इस प्रकार यह बाईस अभक्ष्य वर्जनीय बतलाये गये हैं। अब हमलोग बत्तीस अनन्तकायके सम्बन्धमें विचार करेंगे।

(१) सूरन (२) वज्रकन्द (३) आर्द्रहरिद्रा (४) अदरख (५) हरा कचूर (६) शतावरि (७) विरालिका (८) घृतकुमारी (९) थूहड़ (१०) गुडूची (११) लहसुन (१२) वंशकरेला (१३) गाजर (१४) लवणिक (१५) पद्मिनी कन्द (१६) गिरिकर्णिका (१७) किसलय पत्र (१८) खरिंशुका (१९) थेग (२०) आर्द्रमुस्ता (२१) भ्रामर वृक्षकी छाल (२२) खिल्लोहड़ा (२३) अमृतवल्ली (२४) मूली (२५) भूमिस्फोटक (२६) द्विदल अन्नके अंकुर (२७) ढंकवत्थुल (२८) सूकरवल्ल (२९) पलांकी (३०) कोमल इमली (३१) आलू और (३२) पिण्डालू। अनन्त कायके यह प्रधान भेद हैं। लक्षणानुसार और भी अनेक पदार्थ अनन्तकायमें परिगणित किये जा सकते हैं।

इनमेंसे सूरन जिमीकन्दका एक प्रसिद्ध कन्द है। वज्रकन्द भी एक प्रकारका कन्द है। आर्द्रहरिद्रा हरी हल्दीको कहते हैं। अदरख अपने नामसे ही प्रसिद्ध है। कचूर, शतावरि और विरालिकाकी बेलें या वल्लरियाँ होती हैं। घृतकुमारी घिकवारको कहते हैं। थूहर एक कँटीला वृक्ष होता है। गुडूची गुर्चके नामसे प्रसिद्ध है, यह भी एक तरहकी बेल है और दवाके काममें आती है। लहसुनका परिचय देना व्यर्थ है। वंशकरेला एक फल है। गाजर एक कन्द है। लवणिक एक प्रकारकी वनस्पती है। इसे जलानेसे एक तरहका क्षार तैयार होता है। पद्मिनीकन्द एक प्रकारका कन्द है। गिरिकर्णिका एक प्रकारकी बेल होती है। आर्द्रमुस्ता

हरे मोथको कहते हैं। भ्रामर वृक्षकी केवल छाल ही वर्जित है, अन्य अंग नहीं। खिल्लोहड़ा एक प्रकारका कन्द होता है। अमृत-वल्ली लता विशेष है। मूली प्रसिद्ध कन्द है। इसकी शास्त्रोंमें बड़ी ही निन्दा की गयी है। कहा गया है कि लहसुन, गाजर, पलांडु, पिण्डालु, मत्स्य, मांस और मदिरा, इनसे भी मूलक अधिक पापकारी है। इसे भक्षण करनेसे नरक और त्यागनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो नराधम भोजनके साथ मूली खाते हैं वे सौ चान्द्रायणव्रत करनेपर भी शुद्ध नहीं होते।" भूमिस्फोटकको कुकुरमुत्ता भी कहते हैं। यह वर्षामें अपने आप छत्राकार उत्पन्न होता है। द्विदल अन्नके अंकुर अर्थात् मूंग, उड़द, चना आदिके वृक्ष। ढंकवास्तुल एक शाक विशेष है। यह पहले पहल जब उत्पन्न होता है, तब अनन्तकाय माना जाता है। सूकरवल्ल एक तरहके दाने होते हैं। पलंकी एक शाक विशेष होता है। कोमल किंवा कच्ची इमली भी अनन्तकायमें परिगणित की जाती है। आलू और पिण्डालु कन्दविशेष हैं। यह सभी अनन्तकाय गिने जाते हैं और इनका खाना वर्जनीय माना गया है।

किन्तु यह केवल बत्तीस ही अनन्तकाय नहीं हैं। इनकी संख्या अगणित है। इनकी जीवायोनि चौदह लाख बतलायी गयी है। अनन्तकायका लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि जिसकी गाठ, जोड़ या सन्धि गुप्त होती हैं, जिसे तोड़नेसे समान टुकड़े होते हैं, जिसमें नसे नहीं होतीं और जो काटकर रोपे जाते हैं वे सभी अनन्तकाय हैं। इससे विपरित लक्षणवाले प्रत्येक वनस्पति

में परिगणित किये गये हैं। इन लक्षणोंसे युक्त जितने भी अनन्त-काय दिखायी दें, उन सबोंका त्याग करना चाहिये। आगममें कहे गये लक्षणोंसे और भी कई अनन्तकाय होते हैं। यथा :—

"चतस्रोनरक द्वाराः, प्रथमं रात्रि भोजनम्।
परस्त्री गमनं चैव, सधानानन्तकायिकाः॥"

अर्थात्—"रात्रि भोजन, परस्त्री गमन, आचार और अनन्तकाय यह चारों ही नरकके द्वार हैं।" अनन्तकायादि अभक्ष्योंका अचित्त अवस्थामें भी त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेका कारण यह है, कि अचित्तमें इनका रसास्वादन करनेपर लोलुपता बढ़ सकती है और उसके कारण सचित्त अवस्थामें भी इनके व्यवहारकी ओर प्रवृत्ति हो सकती है। इसी लिये अचित्त अवस्थामें भी इनका व्यवहार करना वर्जनीय माना गया है। कहा भी है कि एक जन अकार्य करता है, उसे देखकर दूसरा करता है और इसी तरह होते-होते संयम और तपका विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार ३२ अनन्त कायोंका रूप समझकर इनका त्याग करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त आलस्यादिके कारण घी तेल आदिके बर्तन खुले रखना, दूसरा मार्ग होनेपर भी घासवाली जमीनपर चलना, बिना मार्गकी जमीनपर चलना, स्थानको देखे बिना हाथ डालना, अन्य स्थान होनेपर भी सचित्त जगहपर बैठना या वस्त्र रखना, कीड़े मकोड़ोंसे युक्त जमीनपर मूत्र त्याग करना, अच्छी तरह देखे बिना दरवाजेमें पटेला आदि लगाना, पत्र पुष्पादिको वृथा तोड़ना, मिट्टी और खड़िया आदिको मर्दन करना, आग सुलगाना, गाय

आदिका घात हो ऐसे शस्त्रोंका व्यापार करना, हास्य किंवा निन्दा करना, प्रमाद पूर्वक बिना उपयोगके स्नान करना, केश गूँथना, कूटना, भोजन बनाना, जमीन खोदना, मिट्टीका मर्दन करना लीपना, वस्त्र धोना और लापरवाहीसे पानी छानना—प्रभृति कार्य करनेसे भी प्रमादाचरणका दोष लगता है। श्लेष्मादिकमें मुहूर्तके बाद संमूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं और इनकी विराधनाका दोष लगता है, इसलिये उसके सम्बन्धमें भी सावधानी रखनी चाहिये।

श्रीपन्नवणा उपाङ्गमें, संमूर्छिम मनुष्य कहां उत्पन्न होते हैं, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवानने बतलाया है कि पैंतालिस लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्रमें अर्थात् ढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं। ढाई द्वीपमें भी पन्द्रह कर्मभूमिमें, तीस अकर्म भूमिमें, छप्पन अन्तद्वीपमें, गर्भज, मनुष्योंकी विष्ठामें, मूत्रमें, नाकके मैलमें, पित्तमें, वीर्यमें, शोणितमें, वीर्यके पुद्गलोंमें, शवमें, स्त्री पुरुषके संयोगमें, नगरके पनालोंमें और सभी गन्दे स्थानोंमें संमूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। उनकी अवगाहना—ऊंचाई अंगुलके असंख्यातवे हिस्सेके बराबर होती है। वे असंज्ञी, मिथ्या दृष्टि, एवम् अज्ञानी होते हैं और अपर्याप्त अवस्थामें ही अन्तर्मुहूर्त्तमें मर जाते हैं।

इस संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंको ऐसे अधिकरणोंका भी त्याग करना चाहिये, जिनसे जीव वधादि अनर्थ होनेकी सम्भावना हो। कहा भी है कि :—

"न ग्राह्याणि न देयानि, पंचद्रव्याणि पंडितैः।
अग्निर्विषं च शस्त्रं च, मद्यं मांसं च पंचमम् ॥"

अर्थात्—"अग्नि, विष, शस्त्र, मद्य और मांस—इन पांच वस्तुओंको न तो लेना ही चाहिये, न इन्हें किसीको देना ही चाहिये।" अन्य शास्त्रोंमें भी कहा गया है कि "क्षेत्र, यंत्र, नौका, वधू, हल, बैल, अश्व, गाय, गाड़ा, द्रव्य, हाथी, मकान और ऐसेही अन्य पदार्थ जिनसे मन आरम्भ युक्त होता है और जिनसे कर्म बंधता हो, उनका दान कभी लेना या देना न चाहिये।

जिससे अनर्थदण्ड हो उसका भी त्याग करना चाहिये। कई जीव जागृत होते ही आरम्भ करने लगते हैं। वह इस तरह पानी भरनेवाले, पीसनेवाले, कुम्हार, धोबी, लुहार, माझी, शिकारी, जाल डालनेवाला, घातक, चोर, परदार लम्पट आदिको इनकी परम्परासे कुव्यपारमें प्रवृत्ति होनेपर महान अनर्थ दण्ड होता है। श्रीभगवती सूत्रमें वर्णन है कि एक बार कौशाम्बी नगरीमें रहनेवाले शतानिक राजाको बहिन और मृगावतीकी ननंद जयन्तीने श्रीवीर परमात्मासे पूछा कि—"हे भगवन्! प्राणीको सोते रहना अच्छा या जागते रहना?" श्रीवीर परमात्माने कहा—"हे जयन्ती! अनेक प्राणियोंका सोते रहना अच्छा और अनेक प्राणियोंका जागते रहना ठीक है। जयन्तीने पुनः पूछा—"भगवन्! किन प्राणियोंका सोते रहना अच्छा है और किन प्राणियोंका जागते रहना?" श्रीवीर परमात्माने उत्तर दिया—"हे जयन्ती! जो जीव अधर्मी हों, अधर्म प्रिय हों, अधर्म बोलते हों, अधर्महीको देखते

हों, अधर्महीकी प्रशंसा करते हों, अधर्मशील हों, अधर्माचरण करते हों और अधर्मसे ही अपनी जीविका उपार्जन करते हों, ऐसे जीवोंका सोते रहना अच्छा होता है। किन्तु जो जीव धर्मी हों, धर्मप्रिय हों, सदा धर्महीसे अपनी जीविका उपार्जन करते हों, ऐसे जीवोंका जागते रहना अच्छा है। क्योंकि ऐसे जीव अपने और पराये सभी प्राणियोंको धर्ममें लगाते हैं और स्वयं भी सदा धर्माचरण ही करते हैं। विवेकी प्राणियोंको इस प्रकार समझकर प्रमादाचरणका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जो काम करनेसे आरम्भ बढ़े उसका भी त्याग करना चाहिये। ऊखलके साथ मूशल, हलके साथ फाल, धनुषके साथ बाण, सिलके साथ बट्टा, कुल्हाडीके साथ डंड, चक्कीके साथ उसका ऊपरी पत्थर प्रभृति पापोपकरण त्याज्य और दुर्गतिदायक हैं, इसलिये इन्हें मिलाकर न रखना चाहिये—ज्योंही काम हो जाय, त्योंही इन्हें अलग करके रख देना चाहिये।

विवेकी पुरुषको एकेन्द्रिय, द्वि इन्द्रिय, त्रि इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका वध भी न करना चाहिये। इनका वध करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। काल नामक एक कसाई रोज पांच सौ भैंसोंका वध करता था, इसी लिये वह नरकगामी हुआ था। कहा भी है कि :—

"नास्त्यहिंसासमो धर्मो, न संतोषसमं व्रतम्।
न सत्यसदृशं शौचं, शीलतुल्यं न मंडनम्॥"
सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिंद्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया शौच, जल शौचं तु पंचमम्।

स्नानं मनोमलत्यागो, दानं चाभयदक्षिणा।
ज्ञानं तत्त्वार्थ संबोधो, ध्यानं निर्विषयं मनः।"

अर्थात्—"अहिंसाके समान कोई धर्म नहीं है, सन्तोषके समान व्रत नहीं है, सत्यके समान शौच (पवित्रता) नहीं है और शीलके समान भूषण नहीं है। सत्य प्रथम शौच है, तप दूसरा शौच है, इन्द्रिय निग्रह तीसरा शौच है, प्राणीमात्रपर दया करना चौथा शौच है, और जल शौच पाँचवां शौच है। अर्थात् जल शौचको उपेक्षा पूर्वोक्त चार शौच अधिक अच्छे, अधिक आवश्यक और अधिक महत्वपूर्ण हैं। मनके मलका त्याग ही स्नान है, अभय दान ही सच्चा दान है, तत्वार्थ बोध ही ज्ञान है और विकार रहित मन ही ध्यान है।

घरमें रहनेवाले और नित्य स्नान न करनेवाले मनुष्य विना तपके केवल मनः शुद्धिसे भी शुद्ध होते हैं। कहा है कि "मनएव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः" अर्थात् मनही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है।" पुरुष जिस तरह स्त्रीको आलिङ्गन करता है, उसी तरह पुत्रीको भी आलिङ्गन करता है, किन्तु दोनों अवस्थाओंमें उसकी मनःस्थितिमें जमीन आसमान जितना अन्तर होता है। समताका अवलम्बन कर पुरुष क्षणमात्रमें जितने कर्मोंका क्षय कर सकता है, उतने कर्मोंका क्षय कोटि जन्म पर्यन्त तप करनेपर भी नहीं कर सकता। धर्मका मूल विनय और विवेक है। कहा भी है कि विनय ही धर्मका मूल है। तप और संयम विनयपर ही निर्भर करते हैं। जिसमें विनय नहीं उसके

लिये तप कैसा और धर्म कैसा ? विनयी पुरुष लक्ष्मी, यश और कीर्तिको भी प्राप्त करता है किन्तु दुर्विनयीको किसी कार्यमें भी सफलता नहीं मिलती। पर्वतोंमें जिस तरह मेरु, ग्रहोंमें जिस प्रकार सूर्य और रत्नोंमें जिस प्रकार चिन्तामणि श्रेष्ट है, उसी प्रकार गुणोंमें विवेक श्रेष्ट है। विवेकके बिना अन्य सभी गुण निर्गुणसे हो पड़ते हैं। किसीका कथन है कि जिस तरह नेत्रोंके विना रूप शोभा नहीं देता, उसी प्रकार विवेकके विना लक्ष्मी शोभा नहीं देती। विवेक रूपी दीपकके प्रकाशसे प्रकाशित किये हुए मार्गमें गमन करनेपर कलिकालके अन्धकारमें भी कुशल पुरुषोंको कोई कष्ट नहीं होता, क्योंकि गुरुकी भांति विवेक कृत्यको दिखता है और सन्मित्रको भांति अकृत्य करनेसे रोकता है। इस सम्बन्धमें सुमतिका दृष्टान्त शिक्षा प्रद है। वह इस प्रकार है :—

श्रीपुर नगरमें श्रीसेन नामक एक राजा राज करता था। उसके श्रीसखी नामक एक स्त्री थी और सोमनामक एक मन्त्री था। मन्त्री निःसन्तान होनेके कारण सदैव दुःखी रहता था और उसे कहीं भी शान्ति न मिलती थी। एक बार राजाने मन्त्रीसे कहा—"हे मन्त्री ! तुम्हें निःसन्तान देखकर मुझे बड़ा दुःख होता

है। क्योंकि हम लोगोंका यह सम्बन्ध वंश परंपरासे चला आ रहा है। अब तुम्हारे पुत्र न होनेपर मेरे पुत्रका मन्त्री कौन होगा! किसी बाहरी मनुष्यको इस पदपर स्थापित भी किया जाय, तो उसका कौन विश्वास? तुम तो इस सम्बन्धमें एकदम निश्चिन्तसे दिखायी देते हो?" यह सुन मन्त्रीने कहा—स्वामिन्! मैं निश्चिन्त तो नहीं हूं, किन्तु क्या किया जाय? जीवन, सन्तान और द्रव्य-यह तीनोंही देवाधीन हैं। जो बात अपने अधिकारके बाहर है उसके लिये चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा?" राजाने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है; किन्तु फिर भी प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य है। अतः मेरी समझमें तुम्हें कुल देवीकी आराधना करनी चाहिये। यदि उनकी कृपा हो जायगी, तो तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होनेमें ज़रा भी देर न लगेगा।

राजाकी यह बात सुन मन्त्री कुल देवीके मन्दिरमे गया और स्नानादिक कर, कुशासनपर बैठ, देवीसे निवेदन किया कि—"हे माता! जबतक आप मुझे पुत्र देनेकी कृपा न करेंगी, तबतक मैं अन्न न ग्रहण करूंगा।" इस प्रकार अभिग्रह लेकर वह तीन दिन-तक निराहार बैठा रहा। तीसरे दिन देवीने प्रकट होकर कहा—"हे भद्र! तू इस तरह कष्ट क्यों उठा रहा है? इस समय ऐसा योग है कि तुझे जो पुत्र होगा, वह व्यभिचारी, चोर और जुआरी होगा। इसलिये तू यदि सद्गुणी पुत्र चाहता हो तो कुछ समयके लिये ठहर जा।" यह सुन मन्त्रीने कहा—"अच्छा, मैं राजासे पूछ लूं।" यह कह वह राजाके पास गया और उसे सारा हाल

कह सुनाया। राजाने सोच विचार कर कहा—"देवीसे जाकर कहो, कि पुत्र चाहे जैसा हो, किन्तु वह विनयी और विवेकी होना चाहिये।" तदनुसार मन्त्री पुनः देवीके पास आया और उनसे हाथ जोड़ कर कहने लगा—"हे भगवती! पुत्र चाहे जैसा दुर्गुणी हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु वह विनयी और विवेकी अवश्य होना चाहिये।" मन्त्रीकी यह बात सुन देवी "तथास्तु" कह, अन्तर्धान हो गयी। और मन्त्री भी उन्हें प्रणाम कर मन-ही-मन हर्ष मनाता घरकी ओर चला।

इस मन्त्रीको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त एक वेश्या भी थी, जिस पर वह बड़ा प्रेम रखता था। जिस समय वेश्याको मालूम हुआ कि मन्त्री देवीके मन्दिरमें गया है, उस समयसे वह भी अन्न त्याग कर पृथ्वीपर सोने लगी। अंतमें उसने जब देवीकी प्रसन्नताका हाल सुना, तब उसने दासीको भेजकर मन्त्रीको अपने घर बुलाया। दासीने वेश्याकी ओरसे इस प्रकार अनुरोध किया, कि मन्त्री किसी तरह भी इन्कार न कर सका और उसे वेश्याके यहां जाना ही पड़ा। वहीं उसने स्नान भोजन किया और उस दिन वहीं रात्रि बितायी। देवीके आशीर्वादसे संयोगवश उसी दिन वेश्याको गर्भ रह गया। मन्त्रीको यह जानकर बड़ा दुःख हुआ। वह अपने मनमें पश्चाताप करता हुआ कहने लगा—"अहो! मुझे धिक्कार है कि मैं अपनी कुलजाती स्त्रीके पास न जाकर यहीं रह गया और देवीका प्रसाद इस प्रकार कुपात्रके हाथमें चला गया। अब मेरा पुत्र भी दासी-पुत्र कहलायेगा, किन्तु क्या किया जाय। भावीको

कौन मेट सकता है ? सबसे अधिक दुःखका विषय तो यह है कि मेरे पुत्र होनेपर भी मैं उसका जन्मोत्सव न कर सकूंगा। खैर, जो होनी थी सो हो गयी, अब पश्चाताप करनेसे क्या लाभ !"

यह सोचता हुआ मन्त्री राजाके पास आया। उसे इस तरह राजाने उदास देखकर पूछा—"मन्त्री ! तुम उदास क्यों हो ? हर्षके स्थानपर यह विषाद क्यों ? क्या कोई विपरीत घटना घटित हुई है ?" राजाकी यह बात सुन मन्त्रीने उसे सारा हाल कह सुनाया। राजाने कहा—"मन्त्री ! उदास मत बनो। जो होनी होती है, वही होता है। इसमें तुम्हारा क्या दोष ? किन्तु उस वेश्याको अब तुम अपने महलमें ले आओ और उसे इस तरह छिपा कर रखो कि किसीको कानोकान इस बातकी खबर न पड़े। जब पुत्रका जन्म हो, तब उसे अपने पास रख कर वेश्याको किसी और जगह भेज देना। संभव है कि इससे तुम्हारी अधिक बद-नामी न होगी।

मन्त्रीने राजाकी यह बात मान ली और उस वेश्याको अपने घरमें ला रखा। यथा समय उसने एक पुत्रको जन्म दिया। मन्त्रीने राजाको इसकी सूचना दे गुप्त रीतिसे उसका संस्कार कराया। जब यह बड़ा हुआ और इसकी अवस्था विद्याध्ययन करने योग्य हुई, तब मन्त्रीने अन्यान्य कई विद्यार्थियोंके साथ उसे भी पढ़ानेका भार अपने सिर लिया। उसने अन्यान्य विद्यार्थियोंको इसलिये साथ रखा, जिससे किसीको कोई सन्देह न हो। मन्त्रीने सर्वप्रथम अपने पुत्रको नीतिशास्त्रकी शिक्षा देनी आरम्भ की।

राजाकी आज्ञासे मन्त्रीने अपने पैरके अंगूठेमें एक डोरी बांधी और उसे पुत्रके हाथमें देकर कहा कि जब तुझे कोई सन्देह पड़े या कोई बात समझ न पड़े, तब इस डोरीको हिलाना। इस तरह संकेत पूर्वक उसने अपने पुत्रको यथेष्ट शिक्षा दी और उसे नीति शास्त्रमें पारंगत बना दिया। एक दिन पढ़ाते समय नीतिशास्त्रमें यह श्लोक आया :

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवंति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"

अर्थात्—"दान, भोग और नाश, यही तीन धनकी गति हैं। जो धन दान किंवा भोगके काममें नहीं लाया जाता उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।" यह श्लोक सुनकर मन्त्रीपुत्र डोरी हिलाने लगा। इससे उसके पिताने पुनः उसे यह श्लोक समझाया, किन्तु मन्त्री पुत्रको इससे सन्तोष न हुआ, अतएव उसने पुनः डोरी हिलायी। यह देखकर मन्त्री कुछ रुष्ट हुआ। उसने अन्यान्य विद्यार्थियोंको उसी समय छुट्टी दे दी और अपने पुत्रको एकान्तमें बुलाकर कहा—"हे वत्स! समुद्र जैसे शास्त्रको पार करनेके बाद गोष्पद समान इस सुगम श्लोकमें तू मूढ़ क्यों बन गया? इसमें ऐसी कौनसी बात है, जिसके कारण तू इस प्रकार चकरा रहा है और बारम्बार समझानेपर भी तुझे ज्ञान नहीं होता?" पिताकी यह बात सुन पुत्रने कहा—"पिताजी! आपने धनकी जो तीन गति बतलायी, वे मेरी समझमें नहीं आतीं। मुझे तो केवल दान और नाश यही दो गतियां दिखायी

देती है। जो धन भोगमें व्यय किया जाता है, वह भी नाश ही होता है। कहा भी है कि धनकी एक मात्र गति दान ही है। धनको धर्मार्थ सत्पात्रको देना सर्वोत्तम है। दुःखित याचकको देनेसे कीर्ति बढ़ती है, बन्धुओंमें उपयोग करनेसे प्रेम बढ़ता है, भूतादिको देनेसे विघ्नोंका नाश होता है। इस प्रकार उचित उपयोग करनेपर लाभ ही होता है। दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। भोगसे केवल ऐहिक सुखोंकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नाश तो होता ही है।"

पुत्रकी यह बातें सुनकर विचार चतुर मंत्रीको बड़ाही आनन्द हुआ। उसने यह सारा हाल राजाको कह सुनाया। राजाने कहा—"हे भद्र! उसके हृदयमें अब विवेकरूपी सूर्यका उदय हुआ है। अब वह मेरे और तुम्हारे सभीके मनोरथ पूर्ण करेगा। उसका विचार गम्भीर्य, उसकी चतुराई और उसकी अद्भुत मति निःसन्देह प्रशंसनीय है। उसकी बुद्धि गुरु और शास्त्रसे भी आगे दौड़ लगा रही है। मैं समझता हूं कि उसे अब पूर्ण ज्ञान हो गया है अतएव उसे हाथीपर बैठाल कर मेरे पास ले आओ।" यह कह राजाने उसी समय उसे लिवा लानेके लिये एक हाथी और कई अनुचरोंको भेज दिया। मन्त्री भी खुश होता अपने घर गया और पुत्रको वस्त्राभूषणसे सज्जित कर मंगलाचार पूर्वक राजाके यहां ले गया। उसके आनेपर राजाने बड़े प्रेमसे उसे बुलाकर अपने पास बैठाया और उसका नाम सुमति रखा। इसके बाद राजाने उससे कहा—"सुमति! आजसे मेरे महलमें जहां तेरी इच्छा हो,

वहां तू विचरण कर सकता है। तुझे अब यहीं भी जानेका प्रतिबन्ध नहीं है। यह कहकर उसने सत्कार पूर्वक उसे विदा किया। मन्त्रीपुत्र अब राजाके महलमें नित्य आने जाने और स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने लगा।

एक वार उसने राजाके खजानेमें प्रवेश किया। वहां एक मोतीका हार देखकर उसके चित्तमें लोभ हुआ अतः उसने उसे चुरा लिया। अनन्तर उसे छिपाकर वह बाहर निकलने लगा। इसी समय विवेकके कारण उसे विचार आया कि अहो, मुझे धिक्कार है! मैंने यह क्या कर डाला? संसारमें चोरीके समान दूसरा कोई पापही नहीं है। यह सोचकर वह उलटे पैरों लौट गया और उस हारको फिर वहीं भाण्डारम रख अपने घर लौट आया।

एक वार वह खेलते-खेलते राजाके अन्तःपुरमें चला गया। वहां रानी उसे देखकर मोहित हो गयी। उसने सुमतिको एकान्त में बुलाकर उससे अनुचित प्रस्ताव किया। सुमति पहले तो इसके लिये राजी हो गया, किन्तु ज्यों ही इसके लिये अग्रसर हुआ त्योंहीं विवेकने उसे रोक लिया। वह अपने मनमें कहने लगा— "अहो, मुझे धिक्कार है, कि माताके समान राजपत्नीको बात सुनकर मेरे चित्तमें भी विकार उत्पन्न हो गया। पर स्त्रीके संगसे इस जन्ममें शिरच्छेद आदिकी राजा और उस जन्ममें नरकका दुःख प्राप्त होता है। इसलिये संसारमें वही बड़ा और वही पण्डित है जो इन साँपके समान कुलटाओंसे दूर रहता है। मैं आजसे पर स्त्रीको बहनके समान समझूंगा और भूलकर भी इस तरह किसी

को बातोंमें न आऊँगा। इस तरह सोचता हुआ, वह राज पत्नीसे क्षमा प्रार्थना कर अपने घर लौट आया।

एक बार वह घूमता-घूमता कहीं जूआरियोंके पास जा निकला। वहाँ उसने देखा कि कोई जूआरी लड़ रहा है, कोई अपना धन खो रहा है, कोई हंस रहा है, कोई रो रहा है और कोई चोरीकी फिक्र कर रहा है। यह देखकर उसे द्यूतके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। वह अपने मनमें सोचने लगा—"यह वही तो दुर्व्यसन है, कि जिसके कारण एक मनुष्य क्षण भरमें अमीरसे फकीर हो जाता है। जिसके कारण मनुष्य किसी कामका नहीं रहता। इसी व्यसनसे नलराजाको भी राजसुखसे पृथक हो जाना पड़ा था। अतएव इस व्यसनका तो नाम लेना भी महापाप है। यह सोच-कर वह उसी समय वहांसे अपने घर चला आया।

एक बार वह विचरण करता हुआ राज सभामें जा पहुँचा। उसे आते देख राजाने बड़े प्रेमसे बुलाकर उसे अपने पास बैठाया। अनन्तर सुमतिने अवसर देखकर राजासे कहा—"हे स्वामिन्! नीतिशास्त्रमें कहा है कि किसीका विश्वास न करना चाहिये। फिर भी आप मुझपर इतना विश्वास क्यों रखते हैं? निःसन्देह आप यह अच्छा नहीं करते।" यह सुनकर राजाने कहा—"हे वत्स! तेरा जन्म देवीके वरदानसे हुआ है और तू हमारा वंश परम्परागत मन्त्री है, इसलिये मैं तेरा विश्वास न करूँ तो और किसका करूँ? तुझे देवीने विनय और विवेक—यह दो गुण दिये हैं। यह सदा तेरी सहायता करेंगे।" राजाकी यह बात सुन

उसने अपना सारा हाल कह सुनाया। सुनकर राजाने कहा—"हे वत्स! विनय और विवेकके कारण तू सदोप होनेपर भी निर्दोष ही है। कहा भी है कि :—

"यस्य कस्य प्रसूतोऽत्र, गुणवान् पूज्यते नरः।
सुवंशोपि धनुर्दण्डो, निर्गुणः किं करिष्यति॥"

अर्थात्—"चाहे जिस वंशमें जन्म हुआ हो, किन्तु पूजा तो सदा गुणवान पुरुषकी ही होती है। जिस प्रकार अच्छे बाँसका बना हुआ धनुष भी गुण (प्रत्यंचा) के बिना कोई काम नहीं दे सकता, उसी तरह अच्छे वंशमें जन्म होनेपर भी निर्गुणी हो तो वह किसी कामका नहीं होता।"

राजाकी यह बातें सुमति नीचा सिर किये हुए सुन रहा था। राजाने बड़े प्रेमसे हृदय लगाकर उसी दिन उसे मन्त्री बना दिया। सुमतिने भी अपने इस नये पदका भार बड़े हर्षसे अङ्गीकारपर उठा लिया। और योग्यता पूर्वक राज काज कर, अन्तमें उसने सद्धर्म-पालनके कारण सद्गति प्राप्त की। सुमतिकी इस कथासे शिक्षा ग्रहण कर प्रत्येक मनुष्यको विनय और विवेक अवश्य धारण करना चाहिये।

किन्तु विनय और विवेककी प्राप्ति ऐसे ही नहीं हो जाया करती। इसके लिये सत्संगकी आवश्यकता पड़ती है। संगति करनेके पहले भी यह अच्छी तरह देख लेना चाहिये कि मनुष्य सज्जन है या नहीं। जो सज्जन हों उन्हींको संगति करनी चाहिये। सज्जनोंकी संगतिसे सिवा लाभके हानि नहीं होती। शास्त्रमें

संगति करने योग्य सज्जनोंके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं :—"पराये दोष प्रकट न करना, दूसरेके गुण अल्प होनेपर भी उनकी प्रशंसा करना, परधन देखकर निरन्तर सन्तोष मानना, दूसरोंका दुःख देखकर दुःखित होना, आत्मश्लाघा न करना, नीतिका त्याग न करना, अप्रिय कहनेपर भी औचित्यका उल्लंघन न करना और क्रोधसे सदा दूर रहना। इन लक्षणोंसे युक्त सज्जनोंकी संगति करनेसे क्या लाभ होता है, यह बतलाते हुए कहा गया है, कि सत्संग दुर्गतिको दूर करता है, मोहको भेदता है, विवेकको लाता है, प्रेमको देता है, नीतिको उत्पन्न करता है, विनयको बढ़ाता है, यशको फैलाता है, धर्मको धारण कराता है और मनुष्यके सभी अभीष्ट सिद्ध करता है। किसीने यह भी कहा है कि हे चित्त ! यदि तुझे सद्बुद्धि प्राप्त करनी हो, यदि तू आपत्तिको दूर करना चाहता हो, यदि तू सन्मार्गपर चलना चाहता हो, यदि तू कीर्ति प्राप्त करना चाहता हो, यदि तू कुटिलताको दूर करना चाहता हो, यदि तुझे धर्मसेवनकी इच्छा हो, यदि तू पापविपाकको रोकना चाहता हो और यदि तुझे स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो, तो गुणीजनोंका संग कर। क्योंकि सत्संगतिके प्रतापसे ही जीवको सभी तरहका सुख प्राप्त होता है। कहा भी है कि :—

"पश्य सत्सग माहात्म्यं, स्पर्श पाषाणयोगत'।
लोह स्वर्णी भवेत्स्वर्ण—योगात्काचो मणीयते॥'

अर्थात्—"सत्संगकी महिमा तो देखो, कि पारसमणिके

योगसे लोहा भी सुवर्ण हो जाता है और सुवर्णके योगसे काच भी मणिके समान दिखायी देने लगता है।"

इसके अतिरिक्त अकुलीन होनेपर भी मनुष्य विवेकी बनता है और कुलीन होनेपर भी कुसंगसे अविवेकी बनता है। अग्निके योगसे शंख भी दाह उत्पन्न करने लगता है। चेतनायुक्त मनुष्योंके संगसे गुण दोष तो उत्पन्न होतेही हैं, किन्तु संगका प्रभाव इतना जबर्दस्त होता है कि वृक्षोंकी संगतिका भी मनुष्यपर प्रभाव पड़ता है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि अशोक वृक्षकी संगतिसे शोक दूर होता है और कलिवृक्षके संगसे कलह होता है। धर्मकी प्राप्ति भी जीवको सत्संगसे ही होती है। इस सम्बन्धमें प्रभाकरकी कथा मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है:—

प्रभाकरकी कथा।
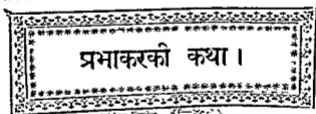
भरतक्षेत्रके वीरपुर नामक नगरमें दिवाकर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह प्रभृति षट्कर्मोंमें सदा लीन रहता था। उसके प्रभाकर नामक एक दुर्गुणी पुत्र था। वह स्वेच्छा पूर्वक इधर उधर भटकता और नाना प्रकारके उपद्रव किया करता था। दिवाकर अपने पुत्रको सदा उपदेश देता और उसे अनेक प्रकारसे

समझाकर सुमार्गपर लानेकी चेष्टा करता। कभी कभी वह उससे कहता—"हे वत्स! यह तू क्या कर रहा है? यह शरीर भी अपना नहीं है, तब दूसरोंका कौन भरोसा? इसलिये दुर्व्यसनोंको त्याग दे, शास्त्रोंका अध्ययन कर, काव्य रसामृतका पान कर, अच्छी कलाओंका अभ्यासकर, धर्मका व्यापार कर और अपने कुलका उद्धार कर। कहा भी है कि :—

"एकेनापि सुपुत्रेण, विद्यायुक्तेन साधुना।
कुलं पुरुष सिंहेन, चन्द्रेण गगनं यथा॥"

अर्थात्—"जिस प्रकार चन्द्रसे आकाशकी शोभा बढ़ती है, उसी तरह विद्वान्, श्रेष्ठ, और शूरवीर केवल एक ही पुत्र होनेपर भी कुलकी शोभा बढ़ जाती है।"

शोक और सन्ताप उत्पन्न करनेवाले अनेक पुत्र उत्पन्न होनेसे क्या लाभ? ऐसे अनेक पुत्रोंकी अपेक्षा वह एक ही पुत्र अच्छा जो कुलके लिये अवलम्बन रूप हो—जिससे समस्त कुलको विश्रान्ति मिले। जिस प्रकार सुगन्धयुक्त फूलोंसे लदे हुए एक ही वृक्षसे समूचा वन सुगन्धित हो उठता है, उसी तरह एक ही सुपुत्रसे समूचे कुलकी शोभा बढ़ जाती है। जो लोग ठीक रास्ते पर न चलकर बेकार चीजोंके पीछे अपनी शक्ति और अपना समय व्यय करते हैं, उनकी एक भी आशा सफल नहीं होती। किसीने कहा भी है कि, धातुर्वादीसे धनकी आशा रखना, रसायनसे जीवनकी आशा रखना और वेश्यासे घर बसानेकी आशा रखना यह तीनों ही बातें पुरुषोंके लिये मतिभ्रंश रूप हैं।

पिताके इस उपदेशको सुनकर प्रभाकरने हंसकर कहा—"पिताजी! आप पढ़नेके लिये तो कहते हैं, परन्तु पढ़नेसे क्या लाभ होगा? पढ़नेसे न तो सुख ही मिलता है, न कोई स्वर्ग ही जाता है। किसीने कहा भी है :—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः॥"

अर्थात्—"भूख लगनेपर व्याकरण खाया नहीं जा सकता। प्यास लगनेपर काव्यरस पिया नहीं जा सकता, और छंद शास्त्र-से कुलका उद्धार नहीं हो सकता। इसलिये कलाओंको निष्फल समझकर धनोपार्जन करनेके लिये लिये यत्न चाहिये। इसके अति-रिक्त संसारमें यह भी देखा जाता है, कि लक्ष्मीकी कृपा होनेपर निर्गुणोको भी लोग गुणवान्, रूप हीनको भी सुन्दर, मूर्खको भी बुद्धिमान, निर्बलको भी बलवान और अकुलीनको भी कुलीन मानते हैं। इसलिये संसारमें केवल लक्ष्मीकी ही कृपा सम्पादन करनी चाहिये।"

पुत्रकी यह ऊटपटांग बातें सुनकर दिवाकर अपने मनमें कहने लगा—"अहो, यह मेरा पुत्र होकर भी निर्गुणी, कुशील और कुलके लिये कलंक रूप हुआ। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?" किन्तु अन्तमें कोई उपाय न देख वह अपना माथा पीटकर चुप-चाप बैठ गया। इसी तरह शोक-सन्तापमें उसने अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया। अन्तमें जब उसका मृत्युकाल समीप आया, तब उसने फिर एक बार प्रभाकरको एकान्तमें बुलाकर

समझाया और कहा—"हे वत्स! न तो तूने कभी मेरी बात मानी है, न मेरे वचनोंपर तुझे विश्वासही है, किन्तु फिर भी मैं तुझे एक श्लोक बतलाता हूँ। आशा है कि तदनुसार आचरण कर तू मेरी अन्तिम आशा पूर्ण करेगा।" यह सुन प्रभाकरने कहा—"अच्छा कहिये, मैं आपकी यह अन्तिम इच्छा अवश्य पूर्ण करूंगा।" तब उसने प्रसन्न होकर कहा—"वत्स! ध्यानापूर्वक सुन। वह श्लोक यह है :—

"कृतज्ञ स्वामि-संसर्ग—मुत्तम स्त्री परिग्रहम्।
कुर्वन्मित्रमलोभं च, नरो नैवावसोदति॥"

अर्थात्—"कृतज्ञ स्वामीकी सेवा करनेसे, उत्तम कुलीन स्त्रीके साथ शादी करनेसे और निर्लोभी मनुष्यको मित्रता करनेसे मनुष्यको कभी दुःखी नहीं होना पड़ता है।

पिताके मुंहसे यह श्लोक सुन, प्रभाकर उसी समय जूआ खेलने चला गया। इधर उसके पिताने आनन्दपूर्वक अपना प्राण त्याग दिया। इसके बाद तुरत ही प्रभाकरका एक मित्र उसे यह खबर देने दौड़ा। उसने प्रभाकरसे जाकर कहा—"प्रभाकर! तेरे पिताका देहान्त हो गया है!" यह सुन प्रभाकरने जूआ खेलते ही खेलते उत्तर दिया कि देहान्त हो गया है, तो मैं चलकर क्या करूंगा। तुम्हीं जाकर सब व्यवस्था कर दो। अन्तमें मित्रके बहुत समझानेपर वह उठा और घर आकर पिताके अग्निसंस्कार-की व्यवस्था की।

पिताकी उत्तर क्रियासे निवृत्त होनेपर प्रभाकर पिताके बतलाये हुए श्लोकका अर्थ सोचने लगा। अर्थ समझमें आनेपर

उसने विचार किया कि यह कोई जरूरी बात नहीं है, कि पिता-जीने जैसा कहा है, वैसा ही मुझे करना चाहिये। पहले यह भी देखना चाहिये कि उन्होंने जो कहा है, उससे उलटा करनेपर क्या फल होता है? यह सोचकर यह घरसे निकल पड़ा और विदेशके लिये प्रस्थान किया। चलते-चलते रास्तेमें एक गांव मिला। उस गांवमें सिंह नामक एक राजा राज्य करता था। उसके सम्बन्धमें प्रभाकरने सुना कि वह बड़ा ही कृतघ्नी, अभिमानी और नीच है। यह सुनकर उसने सोचा, कि बस, इसीके यहां रहकर पिताके वचनकी परीक्षा करनी चाहिये। अतः वह तुरत ही सिंहके पास गया और उसके यहां नौकरी कर ली। इस राजाके यहां सेवा धर्महीन, नीच, मूर्ख और रूखे स्वभावकी एक दासी थी। उसे प्रभाकरने अपनी स्त्री बना कर अपने घरमें रख लिया। अब कमी रह गयी केवल एक लोभी मित्रकी। इसके लिये उसने लोभचन्दी नामक एक निर्धन वणिक्को खोज निकाला। इस प्रकार पिताके बतलाये हुए तीनों उपकरणसे विपरीत उपकरण एकत्र कर वह समय बिताने लगा। अपने बुद्धिबल और पराक्रम द्वारा उसने कुछ ही दिनोंमें राजाका खजाना बढ़ा दिया। दासीको अनेक वस्त्राभूषण बनवा दिये और लोभचन्दीको खूब धनवान बना दिया। अपने इन कार्योंके कारण वह तीनोंका प्रियपात्र बन गया और वे उसे प्राणसे भी अधिक चाहने लगे। इसी तरह बहुत दिन व्यतीत हो गये।

सिंह राजाके यहां एक बहुत बढ़िया मयूर था। उसे सिंहने स्वयं

लालन-पालन कर बड़ा किया था। अतः यह मयूर उसे बड़ा ही प्यारा था और वह उसे सदा अपनी नजरके सामने रखता था। एक बार प्रभाकरकी वह भार्यारूप दासी गर्भवती हुई। गर्भावस्थामें दोहदके कारण उसे मयूरका मांस खानेकी इच्छा हुई। अतः उसने प्रभाकरसे कहा—"यदि मुझे राजाके मयूरका मांस खिला दो, तो मुझे बड़ाही आनन्द होगा!" दासीकी यह बात सुन प्रभाकरने सोचा कि राजाके प्यारे मयूरको मारकर उसका कोपभाजन बनना ठीक नहीं। अतः उसने दासीको प्रसन्न रखनेके लिये एक दूसरीही युक्ति खोज निकाली। तदनुसार उसने राजाके मयूरको कहीं छिपा दिया और एक दूसरे मयूरका वधकर उसके मांससे दासीको तृप्त किया। इस भेदको दासी जरा भी न जान सकी। इधर कुछ ही समयके बाद जब भोजनका समय हुआ और मयूर दिखलायी न दिया, तब राजा चारों ओर उसकी खोज कराने लगा। किन्तु उसका पता कहांसे चले? उसे तो प्रभाकरने छिपा रखा था। निदान सब दास दासी निराश हो लौट आये। इससे राजाको बहुत ही दुःख हुआ और उसने नगरमें घोषणा करा दी, कि जो मयूरको ला देगा, उसे एक सौ स्वर्ण मुद्रायें इनाम दी जायगी। राजाकी यह घोषणा सुन, दासीके मुंहमें पानी भर आया। वह अपने मनमें कहने लगी—"मुझे इस परदेशी मनुष्यकी चिन्ता क्यों करनी चाहिये? इसका चाहे जो हो। यदि मैं इस समय राजासे यह हाल कह दूँ, तो मुझे सौ स्वर्णमुद्रायें इनाम मिल सकती हैं। इस धनसे प्रभाकर जैसे हजार प्रेमियोंको मैं जुटा सकती हूँ। मुझे यह

अवसर कदापि हाथसे न खोना चाहिये।" यह सोचकर वह राजा के पास गयी और उससे एकान्तमें कहने लगी—"राजन्! मैं आपसे एक सत्य बात कहने आयी हूँ। क्योंकि —

"सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिरलीक मधुरंद्विषा।
अनुकूलं च सत्यं च, वक्तव्यं स्वामिना सह॥"

अर्थात्—"मित्रोंके साथ सत्य, स्त्रियोंके साथ प्रिय, शत्रुके साथ असत्य किन्तु मधुर और स्वामीके साथ अनुकूल सत्य बोलना चाहिये।" हे स्वामीन्! कल मुझे मयूरका मांस खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी, तब मैंने यह बात अपने पतिसे कहा। इसलिये उसने मेरे मना करनेपर भी आपके मयूरको मार डाला और उसका मांस खिलाकर मेरी इच्छा पूर्ण की। दासाका यह बात सुन राजाको बड़ाही क्रोधसे आया। वह कहने लगा—"प्रभाकर तो ऐसा न था, किन्तु मालूम होता है कि दुष्टोंकी संगतिके कारण उसकी मति भ्रष्ट हो गयी है। अब उसे इस कायके लिये अवश्य ही शिक्षा देनी चाहिये। यह सोच कर उसने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि प्रभाकरको इसी समय पकड़ लाओ और उसे नगरके बाहर ले जाकर मार डालो।"

प्रभाकरको किसी तरह यह समाचार शीघ्र ही मालूम हो गया। उसने सोचा कि दो बातोंकी तो परीक्षा हो चुकी। अब लगे हाथ इसी समय मित्रको भी आजमाना चाहिये। यह सोचकर वह लोभचन्द्रके घरमें घुस गया और उससे गिड़गिड़ाकर कहने लगा—"हे मित्र! मेरी रक्षा कर! राजाके सिपाही मुझे पकड़ने

आ रहे हैं। लोभचन्दीने पूछा—"तूने क्या अपराध किया है जिसके कारण राजाने तुझे पकड़नेके लिये अनुचर भेजे हैं?" प्रभाकरने कहा—"मैंने अपनी स्त्रीको मांस खिलानेके लिये राजाके मयूरको मार डाला है। यह सुनते ही उस स्वार्थी मित्रने कहा—"राजाके अपराधीको अपने घरमें कौन बैठाये? भाई! मैं इस समय तुझे अपने घरमें आश्रय नहीं दे सकता।" लोभचन्दीके यह कहनेपर भी प्रभाकर उसके घरमें घुस गया किन्तु इसपर भी लोभचन्दीको दया न आयी। उसने उसी समय राजाके सिपाहियोंको बुलाकर प्रभाकरको पकड़ा दिया। वे लोग उसके हाथ पैर बांध कर, वध करनेके लिये नगरके बाहर ले आये। वहां वे जब उसको वध करनेको तैयार हुए, तब उसने दीनता पूर्वक कहा—"भाइयो! मैंने तुम लोगोंपर अनेक उपकार किये हैं। तुम क्या एक बार मुझे राजाके पास न ले चलोगे? संभव है कि वहां चलनेसे मेरी जान बच जाय।" प्रभाकरकी यह बात सुन राजाके सिपाही उसे राजाके पास ले आये। प्रभाकरने राजासे दीनता-पूर्वक क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा—"हे राजन्! आप मेरे स्वामी हैं। आपको मैं अपने पिता तुल्य समझता हूँ। यह मेरा पहला ही अपराध है। इसे क्षमा करनेकी कृपा करें।" राजाने लाल लाल आंखें निकाल कर कहा—"मैं तो प्राणके बदले प्राण चाहता हूँ। तूने मेरे मयूरको जिस निर्दयताके साथ मारा है, उसी निर्दयताके साथ तेरा भी वध किया जायगा। तू या तो मेरा मयूर ला दे या मरनेके लिये तैयार हो जा। मयूर घातकपर मैं किसी प्रकारकी दया नहीं

करना चाहता।" राजाकी यह बात सुन प्रभाकरके मित्र और उसकी स्त्रीको छोड़ सभीको बड़ा ही दुःख हुआ और वे व्याकुल हो उठे।

प्रभाकरने कहा---"बस, राजन्! अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। मैंने केवल अपने पिताकी बातकी परीक्षा करनेके लिये ही यह सब किया था। मैं देखना चाहता था, कि उन्होंने जो कहा है वह ठीक है या नहीं। अस्तु, अब मेरा विश्वास हो गया कि उन्होंने जो कहा था, वह अक्षरशः ठीक है। अब आप खुशीसे अपने सिपाही मेरे साथ भेजिये, मैं उन्हें आपका मयूर सौंप देता हूँ। मैंने उसे मारा नहीं है। केवल छिपा रखा है।" यह कहकर प्रभाकरने राजाको सारा हाल कह सुनाया और मयूर लाकर उसको दे दिया। यह देखकर सिंहने बहुत पश्चाताप किया और प्रभाकरसे कहा कि जो होनी थी वह हो गयी, अब किसी तरहका ख़याल न कर इसी जगह आनन्दसे जीवन व्यतीत करो। किन्तु इससे प्रभाकर रहनेको राजी न हुआ। उसने कहा--- "प्रत्यक्ष दोष दिखायी देनेपर भी उसका त्याग न करना तो परले सिरेकी मूर्खता कही जा सकती है।"

यह कहते हुए प्रभाकर उसी दिन वहांसे चल पड़ा। रास्तेमें वह इन दुष्टोंकी दुष्टतापर विचार करने लगा। वह कहने लगा-- "अहो! दुर्जनकी संगति किंपाक वृक्षकी छायाकी भाँति दुःखदायक होती है। मैंने इन लोगोंपर जो उपकार किया था, उसकी इन लोगोंने ज़रा भी परवाह न की। मूर्ख और दुष्टोंकी संगति की अपेक्षा मृत्यु भी अधिक श्रेयस्कर होती है। किसीने ठीक

ही कहा है कि मूर्ख मित्रको अपेक्षा विद्वान शत्रु अच्छा—नादान दोस्तसे दाना दुश्मन भला। किसीने यह ठीकही कहा है कि—

"शिरसा सुमनः संगाद्धार्यते तंतवोपि हि।
तेपि पादेन मृद्यंते, पटेपि मलसंगताः॥"

अर्थात्---"पुष्पके संगसे सूत भी शिरपर धारण किया जाता है, किन्तु वस्त्रमें रहनेपर जब मैलसे संग हो जाता है, तब वही सूत कूटा-पीटा और पटका जाता है।" मैंने अधम स्वामी, भार्या और मित्रकी परीक्षा कर ली। अतएव अब मैं पिताके आदेशानुसार ही आचरण करूंगा।

इसी तरहकी वातें सोचता हुआ वह सुन्दरपुर नामक एक नगरमें आ पहुँचा। इस नगरमें हेमरथ नामक एक राजा राज करता था। इस राजाके गुणसुन्दर नामक एक पुत्र था। जिस समय प्रभाकर यहां पहुँचा, उस समय गुणसुन्दर अपने सेवकोंके साथ नगरके वाहर किसी वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था। प्रभाकरने उसके पास जाकर उसे प्रणाम किया। राजकुमारने भी उसे भद्र पुरुष समझकर अपने पास बैठाया। प्रभाकर वहां बैठकर शास्त्र चर्चा करने लगा। कुछ देरके बाद राजकुमारने वहीं जलपान किया और प्रभाकरको भी जलपान कराया। इसके बाद दोनों जन एक दूसरेसे मीठी मीठी वातें करने लगे। किसीने ठीक ही कहा है कि प्रसन्न दृष्टि, शुद्धमन, ललितवाणी और नम्रता रखनेवाला मनुष्य निभव न होने पर भी अर्थीजनोंमें स्वाभाविक ही पूजा जाता है। अस्तु, वातचीत होनेपर राजकुमारने प्रभाकरसे

पूछा—"आप कौन हैं और कहां जा रहे हैं? यहां किस उद्देशसे आपका आगमन हुआ है?" प्रभाकरने कहा—"मैं देशाटन करनेके लिये बाहर निकला हूँ और अनायास ही भ्रमण करता हुआ यहां आ पहुँचा हूँ।" राजकुमारने कहा—"यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो आप मेरे पास रह सकते हैं।" राजकुमारकी यह बात सुन प्रभाकरने वहा रहना स्वीकार कर लिया। अब दोनों जन वहांसे उठकर नगरमें गये और मित्रकी तरह रहने लगे।

प्रभाकर मन-ही-मन राजकुमारके चातुर्य और उसके मधुर वचनोंपर मुग्ध हो रहा था। वह अपने मनमें कहने लगा—"युवावस्था होनेपर भी राजकुमारमें कितना गांभिर्य है, कितना ज्ञान है! किसीने ठीक ही कहा है कि द्राक्षकी तरह अनेक मनुष्य बाल्यवयसे ही मधुर सर्व गुण सम्पन्न होते हैं। अनेक मनुष्य आम्र फलकी तरह परिपक्व होनेपर ही मधुर होते हैं और अनेक मनुष्योंमें इन्द्रायणके फलोंकी भांति कभी माधुर्य आता ही नहीं। कहा है कि :—

"आकृतौ हि गुणा यान्ति, सत्यी भूत मिद वचः।
यस्यैव दर्शने नापि, नेत्रं च सफलो भवेत्॥"

अर्थात्—"आकृतिमें ही गुण रहते हैं, यह बात बिलकुल ठीक है, क्योंकि उसके दर्शन मात्रसे नेत्र सफल हो जाते हैं।" इसलिये अब इसीकी सेवा कर कुस्वामीके संगसे दोष रूपी जो मैल लगा है, उसे धो डालना चाहिये। यह सोचकर प्रभाकर राजकुमारकी सेवा करने लगा और उसके दिये हुए निवासस्थानमें आनन्द

पूर्वक रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद वहीं उसने सुप्रभा नामक एक स्त्रीसे विवाह कर लिया। सुप्रभाकी प्रकृति बहुत ही उत्तम और उसका स्वभाव शान्त, गंभीर और विनयशील था। इसी प्रकार उसने वसन्त नामक एक वणिकको अपना मित्र बनाया। यह वणिक भी एक बहुत बड़ा व्यापारी था। और बड़ाही दयालु, परोपकारी सज्जन पुरुष था। इस प्रकार यहां अपने पिताके आदेशानुसार तीनों अनुकूल उपकरण जुटाकर वह सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद राजाकी मृत्यु होनेपर गुणसुन्दर सिंहासनारूढ़ हुआ। अब गुणसुन्दरने शासनकी बागडोर हाथमें आते ही प्रभाकरको अपना मन्त्री बनाया। इस प्रकार वे दोनों राजा और मन्त्रीके रूपमें प्रजाका पालन करने लगे। कुछ दिनोंके बाद राजाको किसीने दो घोड़े भेट दिये। यह घोड़े सभी सुलक्षणोंसे युक्त और बहुत ही बढ़िया थे; किन्तु इन्हें शिक्षा अच्छी न मिली थी। राजाने गुण जाने बिना ही एक दिन एक घोड़ेपर स्वयं सवारी की और दूसरे घोड़ेपर प्रभाकरको बैठनेको आज्ञा दी। इसके बाद अनेक अनुचरोंको, साथ ले वे दोनों जन सैर करनेके लिये बाहर निकले। नगरके बाहर पहुँचने पर गुणसुन्दर और प्रभाकरने घोड़ोंकी चाल देखनेके लिये उन्हें कसकर दो दो चाबुक लगाये। चाबुक पड़ते ही दोनों घोड़े आग बबूले हो गये और एक ओरको बेतहाशा भागे।

अश्वोंको इस तरह भगते देख राजाने अपने अनुचरोंको पुकार

कर घोड़ोंको पकड़नेकी आज्ञा दी, किन्तु जब तक कोई उनके पास पहुँचा, तबतक घोड़े पवनवेगसे दौड़कर उनकी दृष्टि मर्यादासे आगे निकल गये। उन्हें रोकनेके लिये राजा और मन्त्री ज्यों ज्यों उनका लगाम खींचते, त्यों त्यों विपरीत शिक्षाके कारण वे और भी भागते थे। इस प्रकार दोनों अश्व जंगलमें जा पहुँचे। इसी समय प्रभाकरका घोड़ा एक आवलेके वृक्ष नीचेसे आ निकला। प्रभाकरने हाथ ऊँचा कर उस वृक्षसे तीन आवले तोड़ लिये। इसके बाद अश्व और भी आगे निकल गये। राजा और मन्त्रीके हाथोंसे अब लगाम भी छूट गयी, किन्तु उन दोनोंको यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि इस अवस्थामें और भी स्वच्छन्दता पूर्वक भागनेके बदले दोनों घोड़े खड़े हो गये। उनके खड़े होते ही राजा और मन्त्री नीचे उतर पड़े और दोनों घोड़ोंने उसी क्षण अपना प्राण विसर्जन कर दिया। उनकी यह अवस्था देख दोनोंको बड़ा ही दुःख हुआ। इसके लिये कुछ समयतक खेद करनेके बाद दोनों जन एक वृक्षकी छायामें जा बैठे। उन्हें इस बातका पता भी न था, कि वे अपने नगरसे कितनी दूर और कहां निकल आये थे। इस समय प्यासके मारे राजाका मुँह सूख रहा था। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो, इस संसारमें वास्तविक रत्न तो अन्न, जल और प्रियवचन यह तीन ही हैं। पाषाणके टुकड़ोंको रत्न कहना निरी मूर्खता ही कही जायेगी, क्योंकि इस समय वे मेरे किस काम आ सकते हैं?" अस्तु, कुछ समय तक तो राजाने धैर्य धारण किया, किन्तु अन्तमें जब उससे न रहा

गया, तब उसने मन्त्रीसे कहा—"हे मन्त्री! प्यासके कारण मेरा जी छटपटा रहा है। यदि इसे दूर करनेका कोई उपाय न किया जायगा, तो यहीं मेरे जीवनका अन्त आ जायगा।" राजाकी यह बात सुन मन्त्रीने कहा—"राजन्! चिन्ता न कीजिये। मैं आपकी तृषा दूर करनेका उपाय करता हूँ।" यह कहकर उसने राजाको एक आँवला खानेको दे दिया। आँवला खानेसे क्षण भरके लिये राजाको तृप्ति मालूम हुई किन्तु थोड़ी देरके बाद. फिर प्याससे व्याकुल हो उठा। उसने कहा—"मन्त्री! मुझे तो फिर उसी तरह तृषा सता रही है। क्या करूँ?" मन्त्रीने पुनः उसे सान्त्वना दे एक आँवला खानेको दिया। इसके बाद भी फिर वही अवस्था हुई। इस बार राजा तृषाके कारण मूर्च्छित भी हो गया। प्रभाकरने अब तीसरा आँवला भी उसे खिला दिया। इसी समय सौभाग्य वश राजाके कर्मचारी भी उन दोनोंको खोजते हुए वहां आ पहुंचे। उन्हें देखते ही प्रभाकरने कहा—"पहले जल्दी दौड़ो और कहींसे थोड़ा जल ले आओ!" कहने भरकी देर थी कि चारों तरफ अश्वारोही अनुचर दौड़ पड़े और बातकी बातमें कहींसे पानी ले आये। राजाने जब जल पिया, तब उसकी तबियत ठिकाने आयी। इसके बाद सब लोग नगरको लौट आये। नगर निवासियोंने इस प्रकार राजाकी प्राण रक्षा हुई देख फिरसे उसका जन्मोत्सव मनाया।

कुछ दिनोंके बाद प्रभाकरने विचार किया, कि इस स्वामी, स्त्री और मित्रकी भी परीक्षा करनी चाहिये और देखना चाहिये,

कि उनमें और इनमें क्या अन्तर है। गुणसुन्दरका कुमार, जिसकी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी, वह खेलनेके लिये उसके यहां रोज आया करता था। उसके साथ एक सेवक भी रहता था। प्रभाकरने उस सेवकको कुछ समझा बुझाकर उसे और राजकुमारको अपने घरमें छिपा रखा। इधर कुमार जब निश्चित समयपर घर न पहुँचा, तब चारों ओर उसकी खोज होने लगी, किन्तु कहीं भी उसका पता न चला। इससे राजाको बड़ी चिन्ता हुई और वह अपने मनमें नाना प्रकारके संकल्प विकल्प करने लगा। वह अपने मनमें कहने लगा कि राजकुमार मन्त्रीके यहां गया था और वहींसे गायब हो गया है, परन्तु मन्त्रीके ऊपर किसी प्रकारका सन्देह किया हो कैसे जा सकता है? क्या यह कभी सम्भव है कि उससे उसका कोई अनिष्ट हुआ हो?

देखते-ही-देखते यह समाचार समूचे नगरमें फैल गया। इससे राज परिवारकी भांति नगरनिवासियोंके चेहरोंपर भी उदासी छा गयी। दूसरी ओर प्रभाकर भी मुँह बनाकर अपने घरमें ही बैठ रहा। उसको इस प्रकार दुःखित देखकर सुप्रभाने पूछा—"नाथ! आज आप इस तरह उदास क्यों दिखायी दे रहे हैं? राज-सभामें जानेका समय हो गया है। क्या आज वहाँ नहीं जाना है?" प्रभाकरने दुःखित स्वरमें कहा—"प्रिये! क्या कहूँ? मैं राजाको मुँह दिखाने लायक नहीं रहा क्योंकि मैंने राजकुमारको मार डाला है?" सुप्रभाने आश्चर्य और भयसे दांतों उंगली दाब कर कहा—"नाथ! यह क्या कह रहे हैं? सच कहिये, मुझे आपकी बातपर

विश्वास नहीं हो रहा है।" प्रभाकरने कहा—"प्रिये! मैं जो कहता हूँ वह ठीकही है। कल गर्भावस्थाके कारण जब तूने मांस खानेकी इच्छा व्यक्त की थी, तब मुझे अन्यत्र कहीं मांस न मिल सका अतएव मैंने राजकुमारको मारकर तुझे उसका मांस खिला दिया। निःसन्देह मैंने यह कार्य मोहवश किया है और इसके कारण मुझे अब पश्चताप भी हो रहा है, किन्तु अब इससे लाभ ही क्या हो सकता है?"

पतिकी यह बात सुन सुप्रभाने कहा—"नाथ! यह कार्य तो बड़ा ही अनुचित हुआ है, किन्तु अब धैर्य धारण कर आप घरमें बैठिये। मैं इसके लिये उचित व्यवस्था करूंगी।" इस प्रकार पतिको सान्त्वना दे, सुप्रभा उसी समय प्रभाकरके मित्र वसन्तके यहां पहुँची और उसे सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर वसन्तने कहा—"हे सुन्दरी! तू चिन्ता न कर। सज्जनोंकी मैत्री जल और दूधकी तरह होती है। दूध और जल दोनों एकमें मिलनेपर दूध अपने समस्त गुण अपने मित्रको दे देता है। इसके बाद जब आंचसे दूध जलने लगता है, तब जल पहले अपनेको जला देता है। अपने मित्रकी यह अवस्था देख दूध भी उबलकर अग्निमें गिरनेको तैयार हो जाता है और उसे तभी शान्ति मिलती है, जब उसे अपना मित्र—जल मिल जाता है। इसलिये हे सुन्दरी तू चिन्ता न कर। मैं अपना सर्वस्व—यहांतक कि जीवन तक देकर अपने मित्रका प्राण बचाऊंगा।"

इस प्रकार सुप्रभाको सान्त्वना दे, वसन्त; राजाके पास गया

और उससे कहने लगा—"हे राजन्! मैंने आपके पुत्रका वध किया है, इस लिये आप मेरा सर्वस्व हरण कर मुझे शीघ्र ही प्राणदण्ड दीजिये।" वसन्तकी यह बात सुन राजा चिन्तामें पड़ गया और सोचने लगा, कि इसने राजकुमारको किस लिये मारा और अब यह क्यों इस प्रकार दण्डित होने आया है? किन्तु वसन्तसे इस सम्बन्धमें कुछ प्रश्नोत्तर होनेके पूर्वही वहां सुषमा आ पहुंची और राजासे कहने लगी—"हे राजन्! मैंने अपना दोहद पूर्ण करनेके लिये राजकुमारको मरवाया है। अत: इसके लिये जो दण्ड देना हो, वह आप मुझे दीजिये।" इस तरह दोनों अपने अपनेको हत्या का अपराधी बतलाते थे। यह देख राजा किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। अब वह किसे सच्चा अपराधी समझे और किसे दण्ड दे!

इसी समय प्रभाकर भी राजाके पास आ पहुंचा। उसने कृत्रिम स्वरसे कांपते हुए कहा—"राजन्! पाप-बुद्धिके कारण राजकुमारका वध तो मैंने किया है। आप जानतेही हैं कि यह मेरी स्त्री और यह मेरा मित्र है। इसी लिये यह दोनों मुझे बचानेके लिये अपनेको अपराधी बतला रहे हैं। राजकुमारकी हत्याके कारण आप मुझे जो चाहें वह दण्ड दे सकते हैं। मैं अपने कियेका फल भोगनेको तैयार हूं।

मन्त्रीकी यह बातें सुन राजा और भी आश्चर्यमें पड़ गया। वह बड़ी देरतक सोचनेके बाद कहने लगा—"मन्त्री! मैं थोड़ी देरके लिये मान लेता हूँ कि आपहीने राजकुमारकी हत्या की है, किन्तु इस अपकारके कारण यदि मैं आपके उन उपकारोंको भी भुला

दूं जो आपने अनेक बार मुझपर किये हैं, तो मुझसे बढ़कर कृतघ्नी इस संसारमें दूसरा हो ही नहीं सकता। मैं अपने जीवनमें वह दिन कभी न भूलूँगा, जब आपने तीन आँवले खिलाकर तीन बार मेरी प्राण रक्षा की थी। यदि उस दिन आपने मेरा प्राण न बचाया होता, तो आज कहाँ मैं होता, कहाँ राज्य होता, कहां पुत्र होता, कहां परिवार होता और कहां यह सब होता? इसलिये दण्डकी तो बातही छोड़ दीजिये। जो होनी बदा थी वह हो गयी। अब दण्ड देनेसे राजकुमार थोड़े ही लौट आयेगा?" यह सुन प्रभाकरने कहा—"नहीं, राजन्! अपराधीको उसके अपराधके लिये दण्ड मिलना ही चाहिये। मेरे पूर्वकार्योंका जरा भी ख़याल करनेकी आवश्यकता नहीं है। खुशीसे दण्ड दीजिये। राजाने कहा—"यदि आपकी यही इच्छा है कि दण्ड दिया जाय, तो मैं आपको राजी रखनेके लिये कह सकता हूं कि आपने तीन आंवले देकर तीन बार मेरा प्राण बचाया था, इसलिये अब एक आंवलेका उपकार इस अपकारसे कट गया। अब मैं केवल दोही आँवलोंके लिये आपका ऋणी रहा।" यह कह राजाने प्रभाकरको गलेसे लगाकर कहा—"मन्त्री! इस घटनाको इस प्रकार भूल जाइये कि जैसे कभी कुछ बना ही न हो। मनुष्योंके हाथसे अनेक बार किसी कारणवश ऐसे काम हो जाया करते हैं। इसलिये इसकी चिन्ता छोड़ दीजिये और अपने मित्र एवं अपनी धर्मपत्नीके साथ घर जाइये और मौज कीजिये। अब आप किसी तरहका ख़याल न कर कलसे यथानियम राजकाज देखना और मुझे

सहायता करता।" राजाकी यह बात सुन प्रभाकरको अब विश्वास हो गया कि पिताने जो बात कही थी, वह बिलकुल ठीक थी। स्त्री और मित्रके सम्बन्धमें भी उसे अब पूरा विश्वास हो गया। अतएव उसने राजासे क्षमा प्रार्थना करते हुए अपने प्रपञ्चका सारा हाल कह सुनाया और कुमारको भी उसी समय सेवकके साथ लाकर राजाको सौंप दिया। पुत्रको देखकर राजाको जितना हर्ष हुआ, उतना ही प्रभाकरकी बातें सुनकर आश्चर्य हुआ। उसने फिर प्रभाकरको गले लगाकर कहा—"मन्त्री! मैं आपको अपने भाईसे भी बढ़कर समझता हूँ। आपने मुझपर बड़े ही उपकार किये हैं। इसलिये आप यहीं रहकर आनन्द कीजिये।" इसके बाद प्रभाकर राजाके आदेशानुसार वहीं रहकर अपनी जीवन-यात्रा सुखपूर्वक बिताने लगा और दीर्घकाल तक ऐश्वर्य-सुख भोगनेके बाद दीक्षा ग्रहण कर अन्तमें अनशन द्वारा स्वर्ग-सुखका अधिकारी हुआ।

गुरु-मुखसे यह धर्मोपदेश सुनकर कुबेरको ज्ञान हुआ और वह उनसे कहने लगा—"हे भगवन्! एक बार फिर मुझे संक्षेपमें धर्मका रहस्य समझानेकी कृपा कीजिये।" यह सुन गुरुने कहा—"हे महाभाग! यदि तेरी धर्म श्रवण करनेकी इच्छा है तो ध्यान पूर्वक सुन!"

"विनय, उत्तम नियमोंका पालन, धर्मोपदेशक गुरुकी सेवा, उनकी वन्दना, उनकी आज्ञाका पालन, मधुर भाषण, जिन पूजादिमें विवेक, मन, वचन और कायाकी शुद्धि, सत्संगति और

तत्वश्रद्धान अर्थात् जिनेश्वर कथित सुतत्वोंपर दृढ़ प्रतीति—इन लोकोत्तर गुणोंसे लोकोत्तर सुखोंकी प्राप्ति होती है। अधिक भोजन, अति परिश्रम, अति प्रजल्प (बहुत बोलना) नियम न लेना, लोगोंकी अत्यन्त संगति और दीनता—यह छः बातें योगियोंके लिये वर्जनीय मानी गयी हैं। इसके साथ यह भी जान रखना आवश्यक है, कि योगी होना क्रियासे ही संभव है, बातोंसे नहीं। क्रिया रहित स्वेच्छाचारसे चारित्र नष्ट हो जाता है। धर्मानुरागी मनुष्य चाहे जिस स्थानमें रहकर धर्मकी उपासना कर सकता है। क्योंकि धर्म सभी प्राणियोंपर समान भाव रखता है। जाति किंवा किसी अन्य भेदके कारण उसके भावमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।" इस प्रकार धर्मोपदेश श्रवण करनेके बाद कुबेरने गुरुदेव से फिरसे प्रश्न किया—"हे भगवन्! देव, गुरु और धर्म किसे कहना चाहिये?" गुरुने कहा—हे महाभाग! सुन :—

रागद्वेषसे रहित, मोह महामल्लका नाश करनेवाले, केवल ज्ञान और केवल दर्शन युक्त, देव और दानवोंके पूज्य, सद्भूतार्थके उपदेशक और समस्त कर्मोंका क्षयकर परम पदको प्राप्त करनेवाले वीतराग भगवानको देव कहते हैं। धूप, पुष्प और अक्षतादिकसे इनकी द्रव्य पूजा करनी चाहिये और उनके बिम्बकी पूजामें भी यथा शक्ति द्रव्य खर्च करना चाहिये। सर्वज्ञकी भावपूजा व्रतके आराधन रूप कही गयी है। उसके देशविरति और सर्वविरति नामक दो भेद हैं। एक देशसे जीव हिंसादिके निषेधको देश विरति और सर्वथा निषेधको सर्वविरति कहते हैं।

लालन करनेका समय है।" यह सुन राजाने कहा—"वत्स! दीक्षाके लिये अवस्था और समय देखना ठीक नहीं। इसलिये मेरे धर्मकार्यमें बाधा न डाल। जैसा पूर्वसे होता आया है, तुझे शासनभार ग्रहण कर मेरे इस कार्यमें सहायता पहुंचानी चाहिये।"

पिताकी यह बात सुन चक्रायुध चुप हो गया। अतएव वज्रनाभने इसे सम्मतिसूचक लक्षण समझ, उसे सिंहासनपर बैठा दिया। इसके बाद क्षेमंकर नामक तीर्थंकरके पास जाकर, उसने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार वज्रनाभ मुनिने बाह्य राज्य का त्याग कर धर्मरूपी अन्तरंग राज्यका स्वीकार किया। अब विरतिरूपी उनकी पत्नी, संवेगरूपी पुत्र, विवेकरूपी मन्त्री, विनयरूपी, घोड़ा आर्जवरूपी, पट्ट हस्ती, शीलांग रूपी रथ, शमदमादिक रूपी सेवक, सम्यक्त्व रूपी महल, सन्तोष रूपी सिंहासन, यश रूपी विस्तृत छत्र और धर्म-ध्यान तथा शुक्लध्यान रूपी उनके दो चमर थे। इस प्रकार बहुत दिनोंतक अंतरंग राज्यका पालन करने के बाद गुरुकी आज्ञासे वे एकल विहारी और प्रतिमाधारी हुए। इसके बाद वे दुस्तप करने लगे। तपके प्रभावसे उन्हें आकाश गमनकी लब्धि प्राप्त हुई। अनन्तर एक बार विहारके समय आकाश गमन करते हुए वे सुकच्छ नामक विजयमें जा पहुँचे।

इधर उस सर्पका जीव नरकसे निकल कर भव-भ्रमण करता हुआ सुकच्छ विजयके ज्वलनाद्रि पर्वतपर कुरंगक नामक एक भील हुआ। वह पापका मूर्तिमान पिण्ड था। उसकी आंखें

जिनेश्वर भगवानने इस प्रकार नव तत्त्व बतलाये हैं। (१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आश्रव (६) संवर (७) निर्जरा (८) बन्ध और (९) मोक्ष। इनमेंसे कर्मको करनेवाला, कर्म-फलका भोगनेवाला और चैतन्य लक्षण युक्त हो वह, जीव कहलाता है। इससे विपरीत परिणामीको अजीव कहते हैं। सत्कर्मके पुद्गलको पुण्य और उससे विपरीतको पाप कहते हैं। बन्धनके हेतुभूत, मन, वचन और कायादि व्यापार आश्रव कहलाते हैं। इनके निरोधको संवर कहते हैं। जीवका कर्मके साथ जो सम्बन्ध किंवा ऐक्य होता है उसे बन्ध कहते हैं। बद्ध कर्मोंका नाश होना निर्जरा कहलाता है और देहादिकके आत्यंतिक वियोगको मोक्ष कहते हैं। इन नव तत्वों पर स्थिर आशयसे श्रद्धा करनेपर सम्यक्त्व और ज्ञानके योगसे चारित्रकी योग्यता प्राप्त होती है। सिद्धान्तमें भी कहा है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनोंके समायोगको जिन शासनमें मोक्ष कहा गया है। जिस प्रकार पंकरहित तुम्बी अपने आप जलपर तैरती है, उसी प्रकार कर्मरूप मल क्षीण होनेपर जीवको अनायास मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार वीतराग देव, तत्त्वोपदेशक गुरु और दयामूल धर्मकी आराधना करनेसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है।

यह तत्वोपदेश सुनकर कुबेर और राजा दोनोंको प्रतिबोध प्राप्त हुआ। इसके बाद वे दोनों गुरुको नमस्कार कर अपने निवास स्थानको लौट आये। इसके बाद शीघ्र ही वज्रवीर्य राजाने वज्रनाभ

नामक अपने कुमारको शासनभार सम्हालनेके लिये उपयुक्त समझ उसे सिंहासनपर बैठाया और उसने अपनी पत्नी तथा कुबेरके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। अब वज्रनाभ राजा न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा। उसकी रानीका नाम विजया था। जिसके उदरसे यथासमय चक्रायुध नामक कुमारका जन्म हुआ। और जब वह बड़ा हुआ तब उसे वज्रनाभने युवराज बना दिया।

एक बार राजा झरोखेमें बैठकर शुभ ध्यान कर रहा था। ध्यान करते-करते उसे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ अतएव पूर्वजन्मके आराधित चारित्रका उसे ख़याल हो आया। वह मनमें सोचने लगा—"अहो! संसार-सागरकी उत्ताल तरंगोंमें पड़कर किसकी दुर्गति नहीं होती! कितनेही उत्पन्न होते हैं, कितनेही विनाश होते हैं, कितने ही गाते हैं, कितने ही माथेपर हाथ रख विलाप करते हैं। जिस प्रकार आग लगनेपर मनुष्य मूल्यवान और हलकी-हलकी चीज़ें साथ लेता है, उसी प्रकार इस मनुष्य जन्ममें भी करना चाहिये। यह संसार-सागर बिना चरित्र रूपी नौकाके पार कैसे किया जा सकता है?" इस प्रकार विचार करते हुए राजाके मनमें वैराग्य हो आया इसलिये उसने व्रत लेनेका निश्चय किया। निदान उसने राजकुमारको बुलाकर उसे अपनी इच्छा कह सुनायी। पिताकी बात सुनकर राजकुमार चक्रायुधने कहा— "पिताजी! आप जो आज्ञा दें वह मैं अङ्गीकार करनेको तैयार हूं, किन्तु अभी आप ऐसा विचार क्यों करते हैं? दीक्षा तो वृद्धा वस्थामें ही लेना उचित है। अभी तो प्रजाका पालन और भोग

उसने उसी समय मुनिराजको राण मारना आरम्भ कर दिया। [पृष्ठ २८१]

अंगारेके समान लाल और शरीर स्याहीके समान काला था। वह अनेक जीवोंका संहार कर पाप कर्मों द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता था। एक दिन भवितव्यता वश वज्रनाभ मुनीन्द्र भी उसी ज्वलनाद्रि पर्वतपर रात्रिके समय कायोत्सर्ग करनेके लिये रह गये। उस समय वह स्थान उलूक, शृगाल और व्याघ्र प्रभृति पशु पक्षियोंके भयंकर स्वरसे पूरित हो रहा था और भूतादिक अट्टहास्य कर रहे थे, किन्तु इससे लेशमात्र भी विचलित न हो, वे धर्मजागरण करते रहे। सवेरा होते ही वह कुरंगक भील उसी जगह शिकारकी खोजमें आ पहुँचा। इधर उधर निगाह करते वह मुनिकी ओर ताकने लगा। उन्हें देखते ही पूर्वजन्मके द्वेषके कारण वह कहने लगा—"अहो! आज सवेरे ही इस दुष्टका अनिष्ट दर्शन हुआ। इसलिये अब तो पहले इसीका विनाश करना चाहिये। यह सोचकर उसने उसी समय मुनिराजको बाण मारना आरम्भ कर दिया। किन्तु मुनि बाण लगनेपर भी क्रुद्ध किंवा दुखित न हुए। वे अपने मनमें कहने लगे"—हे जीव! तुझे अपने पूर्वकर्मोंका फल भोगना ही चाहिये। क्योंकि :—

> उपेक्ष्य लोष्टक्षेप्तारं, लोष्टं दश्वाति मंडलः।
> सिंहस्तु शरमप्रेक्ष्य, शरक्षेप्तारमीक्षते॥

उपदेश माला भी ऐसी ही एक गाथा है। उसका तात्पर्य यह है कि श्वान ढेला फेंकनेवालेको न देखकर ढेलोंको काटने दौड़ता है; किन्तु सिंह बाणको न देखकर बाण मारनेवालेपर आक्रमण करता है।"

इसके बाद पंच नमस्कार स्मरण कर एवं सम्यक् प्रकारसे आलोचनाकर मुनिने इस प्रकार अनशन किया—"मैं चार शरणों को अंगीकार करता हूँ—अरिहंत शरण, सिद्ध शरण, साधु शरण और जिनधर्म शरण। इन चारों शरणोंकी मुझे प्राप्ति हो। साथही मैं अठारह पाप स्थानोंका पच्चक्खाण करता हूँ। यथा—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, द्रव्यमूर्च्छा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, परपरिवाद, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य। इन अठारह पाप स्थानोंका मैं विसर्जन करता हूं। और अपने धर्माचार्य एवं धर्मोपदेशक गुरुको नमस्कार करता हूं।"

सातवाँ भव।

इस प्रकार एकाग्र चित्तसे शुभ ध्यान करते हुए मुनिराज को समाधि मरण प्राप्त हुआ। इसके बाद उनका जीव मध्यम ग्रैवेयकमें, आनन्दसागर नामक विमानमें, ललितांग नामक देव हुआ। वहां सत्ताईस सागरोपमकी आयु प्राप्त कर वह विविध सुख उपभोग करने लगा। दूसरी ओर वह कुरंगक भील भी बहुत दिनोंतक जीवित रहनेके बाद मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद वह तमस्तमः प्रभा नामक सातवीं नरक पृथ्वीमें, सत्ताईस सागरोपमकी मध्य आयु प्राप्तकर नारकीके रूपमें उत्पन्न हुआ। और वहाँ वह नाना प्रकारके दुःख सहन करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

आठवाँ भव।

इस जंबू द्वीपके पूर्व महाविदेह क्षेत्रमें सुरपुर नामक एक नगर था। वह बारह योजन लम्बा और नव योजन चौड़ा था। उसमें वज्रबाहु नामक राजा राज करता था। वह निष्कलंक, यशस्वी, उदार, गम्भीर, शान्त और गुणग्राही पुरुष था। उसकी रानीका नाम सुदर्शना था। वह भी रूप लावण्य, माधुर्य, चातुर्य, लज्जा और विनयादि गुणोंसे विभूषित थी। राजा और रानीमें बड़ा ही प्रेम था और वे दोनो आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करते थे।

वज्रनाभका जीव मध्य ग्रैवेयकसे च्यवन होकर सुदर्शनाके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। जिस समय सुदर्शनाको यह गर्भ रहा उस समय रात्रिके समय रानीको चक्रवर्तीके जन्म सूचक चौदह महास्वप्न दिखायी दिये। रानीने इन स्वप्नोंकी बात राजासे कह सुनायी इसलिये उसने ज्योतिषियोंको बुलाकर स्वप्नोंका फल पूछा। ज्योतिषियोंने विचार कर कहा—"हे राजन्! आपके एक ऐसा पुत्र

होगा जो छः खण्डोंका अधिपति परम् चक्रवर्ती होगा।" स्वप्नों का यह फल सुनकर राजा और रानीको बड़ा ही आनन्द हुआ। इसके बाद गर्भकाल व्यतीत होनेपर जिस तरह पूर्वदिशा सूर्यको जन्म देती है, उसी तरह रानीने एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। राजाने बड़े समारोहके साथ उसका जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम सुवर्णबाहु रखा। जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें चन्द्रकी कलायें बढ़ती हैं, उसी तरह माता पिताके लालन पालनसे सुवर्ण बाहु भी बढ़ने लगा। क्रमशः उसने बाल्यावस्था अतिक्रमण कर यौवनकी सीमामें पदार्पण किया। इस समय तक उसने समस्त विद्या और कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। इधर राजा वज्रनाभको भी वैराग्य आ गया था, इसलिये उसने अपने इस सुयोग्य पुत्रको राज्य-भार सौंपकर दीक्षा ले ली। और निरतिचार पवित्र चारित्रका पालन करनेके बाद केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्षकी प्राप्ति की।

जिसका विशाल वक्षस्थल है, वृषभके समान स्कंध है, विशाल भुजायें हैं, जो कर्तव्य पालनमें सदा तत्पर रहता है और जिसका शरीर क्षात्रधर्मके लिये आश्रय समान हो रहा है ऐसा सुवर्णबाहु राजा प्रेमपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करने लगा। उसके राज्यमें किसी समय ईतियोंका उपद्रव न होता था। ईतियां सात मानी गयी हैं। वे इस प्रकार हैं—

"अतिवृष्टिरनावृष्टि—र्मूषकाः शलभाः शुकाः।
स्वचक्रं परचक्रं च, सप्तैता ईतयः स्मृताः॥"

अर्थात्—"अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, तीड़, शुक, स्वचक्र और परचक्र यह सात ईतियां कहलाती हैं। इनका उपद्रव बढ़ने पर खेती नष्ट हो जाती है और देशमें भयंकर दुष्काल पड़ जाता है। किन्तु सुवर्णबाहुके राज्यमें ऐसा कभी न होता था। इसी लिये उसकी प्रजा सुखी रहती थी। उसके राज्यमें सब लोग आनन्दपूर्वक रहते थे।

एक बार वसन्त ऋतु आनेपर अनेक वृक्ष विकसित होने लगे। इलायची, लवंग, कपूर और सुपाड़ी प्रभृति वृक्षोंमें नवपल्लव आनेके कारण इनकी शोभा देखते ही बनती थी। द्राक्ष और वसन्ती प्रभृति लतायें अपने पत्तोंसे मानों नृत्य कर रही थी। मालती, यूथिका, मल्ली, केतकी, माधवी और चम्पकलता प्रभृति लतायें फूलोंसे लदी हुई ऐसी सुन्दर मालूम होती थीं, कि उन्हें देखते ही बनता था। चारों ओर इस समय वसन्तकी अपूर्व छटा छायी हुई थी। यह देखकर वनपालने राजसभामें आकर राजाको सूचना दी कि—"हे राजन्! वनमें इस समय चारों ओर वसन्त ऋतु विलास कर रही है। अतएव वसन्त क्रीडा करनेके लिये यही उपयुक्त अवसर है।"

वनपालकी यह सूचना मिलते ही राजाने सपरिवार वसन्त विलासके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया और वहां पहुंच कर नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें अपना समय बिताने लगा। कभी वह कदली गृहके अन्दर क्रीड़ा करता और कभी वह माधवी मण्डपमें क्रीड़ा करता और कभी वह अश्वक्रीड़ा करता और कभी हस्ती-

क्रीड़ा। कभी जलक्रीड़ामें अपना समय व्यतीत करना और कभी मल्लक्रीड़ामें। किसी दिन गाने-बजानेका रंग जमता। इसी तरह वह नाना प्रकारकी वसन्तक्रीड़ामें अपना समय व्यतीत करता था।

एक दिन राजा जंगलमें अश्वक्रीड़ा कर रहा था, उस समय उसे जंगम रजतगिरिके समान श्वेत और चार दन्तोंसे युक्त गर्जना करता हुआ एक हाथी दिखायी दिया। उसे देखते ही राजाने पकड़नेके लिये उसका पीछा किया। ज्यों ज्यों हाथी भागता गया, त्यों त्यों राजा भी उसके पीछे बढ़ता चला गया। अन्तमें हाथीके समीप पहुंचनेपर राजा उसकी पीठपर चढ़ बैठा। हाथीको यह मालूम होते ही वह आकाशमें उड़ने लगा। और वह उड़ते-उड़ते वैताढ्य गिरिपर पहुंचा। वहां एक नगरके बाहर उपवनमें राजाको उतार कर वह हाथी नगरमें चला गया। अनन्तर उसने उत्तर श्रेणीके मणिचूड़ राजाके निकट उपस्थित हो उसे शुभसंवाद सुनाते हुए कहा कि—"हे स्वामिन्! मैं सुवर्ण-बाहु राजाको ले आया हूँ और नगरके बाहर एक उपवनमें उन्हें बैठाकर आया हूं।" वास्तवमें वह हाथी नहीं किन्तु एक विद्याधर था। राजाने यह शुभसंवाद सुन उसे पुरस्कार देकर विदा किया और स्वयं विमानमें बैठकर सुवर्णबाहुके पास आया। वहां उसे नमस्कार कर उसने उससे नगरमें चलनेका अनुरोध किया। सुवर्ण बाहुने इसे तुरत स्वीकार कर लिया इसलिये वह बड़े समारोहके साथ उसे नगरमें ले आया। यहां भोजनादिसे निवृत्त होनेपर चन्द्रचूड़ने सुवर्णबाहुसे कहा—

"राजन्! मेरे पद्मावती नामक एक पुत्री है। उसके सब मिलाकर एक हजार सखियां हैं। उन्होंने एक दूसरेका वियोग न हो इसलिये प्रतिज्ञा की है कि हम सब एक ही पतिसे विवाह करेंगी। यह बात सुनकर मैंने नैमित्तिकसे पूछा कि इनका पति कौन होगा? तब नैमित्तिकने आपकी प्रशंसा करते हुए मुझसे बतलाया कि आप ही उनके पति होंगे। इसीलिये मैंने एक विद्याधरको आपका हरण कर लानेकी आज्ञा दी और श्वेत हाथीके रूपमें वह आपको हरणकर ले आया। अब आप इन सभी कुमारियोंका पाणिग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये।"

चन्द्रचूड़की यह बात सुन सुवर्णबाहुने सहर्ष उन कुमारियोंका पाणिग्रहण कर लिया। यह देखकर और भी अनेक विद्याधर लालायित हो उठे और उन्होंने भी अपनी अपनी कन्याका विवाह सुवर्णबाहुके साथ कर दिया। जब यह बात दक्षिण श्रेणीके अनेक विद्याधरोंको मालूम हुई तो उन्होंने भी इसका अनुकरण किया। इस प्रकार सब मिलाकर पांच हजार कन्याओंका सुवर्णबाहुने वहां पाणिग्रहण किया। किसीने ठीक ही कहा है कि:—

"गुणैः स्थानच्युतस्यापि, जायते महिमा महान्।
अपि भ्रष्टं तरोः पुष्पं, जनैः शिरसि धार्यते॥"

अर्थात्—"स्थान भ्रष्ट होनेपर भी गुणोंके कारण महिमा ज्योंकी त्यों बनी रहती है। यही कारण है कि वृक्षसे नीचे गिर जानेपर भी पुष्पको लोग सिरपर चढ़ाते हैं।"

कुछ दिनोंके बाद विद्याधरोंसे विदा ग्रहणकर सुवर्णबाहुने

पद्मावती प्रभृति पांच हजार रानी और अनेक दास दासियोंके साथ अपने नगरके लिये प्रस्थान किया। इधर नगरनिवासी उसकी अनुपस्थितिके कारण अत्यन्त चिन्तित हो रहे थे। उसे इस प्रकार लौटते देख वे आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। अब सुवर्णबाहु पहलेसे भी अधिक प्रेमपूर्वक प्रजा-पालन करने लगा। क्रमशः राज्य करते हुए सुवर्णबाहुको चौदह महारत्नोंकी प्राप्ति हुई। वे चौदह महारत्न यह हैं:—चक्र, चर्म, छत्र, दण्ड, खड्ग, काकिणी-रत्न, मणि, गज, अश्व गृहपति, सेनापति, पुरोहित, वार्धकी और स्त्री। यह रत्न प्राप्त होनेपर राजाने बड़ी धूमधामके साथ अट्ठाई महोत्सव किया। इसी समयसे वह चक्रवर्ती कहलाने लगा।

एक बार आयुधशालामेंसे चक्ररत्न पूर्वदिशाकी ओर चला, इसलिये चक्रवर्ती सैन्य भी उसके पीछे चला। चलते-चलते जब वह सेना समुद्र तटके मागध तीर्थके समीप पहुंची तब चक्रीने अट्ठम तपकर मागधतीर्थेश्वरकी ओर एक बाण छोड़ा। राज-सभामें बैठे हुए मागधतीर्थेश्वरने बाण देखकर कहा—"आज किसकी शामत आयी है, जो मुझपर यह बाण छोड़ रहा है? किन्तु उसने जब बाण उठाकर देखा और उसपर चक्रवर्तीका नाम दिखायी दिया, तब वह शान्त हो गया। इसके बाद वह नजराना लेकर चक्रवर्तीकी सेवामें उपस्थित हुआ और उसे नमस्कार कर कहा कि—"मैं आपका सेवक हूँ।" मागधतीर्थेश्वरकी यह बात सुन चक्रीने उसे छोड़ दिया और बादको पारणकर अट्ठाई महोत्सव किया। यही चक्रवर्तीकी विधि है। इस प्रकार

सब जगह अट्ठम तप कर, वाण छोड़, चक्रीने अधिष्ठायक देवको वश किया। इसके बाद उसने वैताढ्य पर्वतके निकट सैन्य स्थापित कर सिन्धुके पश्चिम खण्डको अधिकृत किया। अनन्तर तमिस्रा गुफाके स्वामी और वैताढ्य पर्वतपर रहनेवाले कृतमाल नामक यक्षको जीत कर, सेनापति द्वारा रत्नदण्डसे उसका द्वार खुलवाया। इसके बाद चक्रीने गजारूढ़ हो दोनों ओरकी दीवारोंपर काकिणी रत्नसे मण्डलावली आलेखित करते हुए उस गुफामें प्रवेश किया। उस प्रकाशको देखते हुए सैन्यने भी उसका अनुसरण किया। कुछ दूर चलनेपर निम्नगा और उन्निम्नगा नामक दो नदियां मिलीं। इन्हें निर्विघ्न पारकर चक्रीने पचास योजनकी यह गुफा पार की। इसके बाद गुफाके दूसरी ओरका द्वार खोलकर चक्री बाहर निकला। वहां उसने आपात जातिके म्लेच्छ राजाओंको जीतकर तीन खण्ड अधिकृत किये। इसके बाद क्षुद्र, हिमवन्त, कुमार देवको वश कर, ऋषभकूटपर काकिणी रत्नसे अपना नाम लिख, उसने खण्डप्रताप नामक गुफा खुलवायी। इसके बाद उसने वैताढ्य पर्वतपर जाकर दक्षिण और उत्तर दोनों श्रेणियोंके समस्त विद्याधरोंको जीता और सेनापतिको भेजकर गंगाका पूर्ण खण्ड उससे अधिकृत कराया। अन्तमें उसने गंगादेवीको भी वश कर लिया, फलतः वहां नव निधान उत्पन्न हुए।

इस प्रकार छः खण्ड पृथ्वी-मण्डल अधिकृत कर चक्रवर्ती सुवर्णबाहु अपने नगर वापस आया। इसके बाद अन्याय राजा और देवताओंने मिलकर महोत्सव पूर्वक तीर्थजलके अभिषेकसे बारह

वर्ष पर्यन्त उसका राज्याभिषेक किया। सब मिलाकर बत्तीस हजार राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार की। इसके अतिरिक्त चौंसठ हजार रानियां, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, और छीयानवे कोटि ग्रामोंका वह स्वामी हुआ। इस प्रकार सुवर्णबाहु चक्रीने चक्रवर्तीकी समस्त विभूतियोंसे विभूषित हो दीर्घकाल तक प्रजाका पालन किया।

एक दिन सुवर्णबाहु अपने प्रासादके झरोखेमें बैठा था। इसी समय उसे आकाशमें देवता दिखायी दिये। उनके मुहसे जगन्नाथ तीर्थंकरका आगमन सुनकर राजाको शुक्ल पक्षके रत्नाकरकी भांति बड़ा ही आनन्द हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! वही देश और वही नगर धन्य है, जहां भगवन्तका आगमन होता है। जीवनमें वही दिन और वही घड़ा धन्य, है जिसमें प्रभुके दर्शन और वन्दन होते हैं।" इस प्रकार विचार कर सुवर्णबाहु जिनेन्द्र भगवानको वन्दन करने गया। वहां उसने मुकुट, छत्र और चामर प्रभृति पांच राज चिन्होंको दूर रख, जिनेश्वरके दर्शन किये। इसके बाद वह यथा स्थान बैठकर जिनेश्वर भगवानका उपदेश श्रवण करने लगा।

जिनेश्वरने कहा—"हे भव्य प्राणियों! सम्यक्त्व, सामायिक, सन्तोष, संयम, और सज्झाय—यह पांच सकार जिसके पास हों उसे अल्प संसारी समझना चाहिये। इसमें सर्वप्रथम निरतिचार सम्यक्त्वका पालन कर मिथ्यात्वका सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये। मिथ्यात्वके दो भेद हैं—लौकिक और लोकोत्तर।

इनके भी दो दो प्रकार है—देव सम्बन्धी और गुरु सम्बन्धी। इनका विशेष विवरण इस प्रकार है—

(१) हरि, हर, ब्रह्मादिकके मन्दिरमें जाना, उनको नमस्कार करना या उनकी पूजा करना (२) किसी कार्यके आरम्भमें या दूकान आदिमें प्रवेश करते समय लाभके लिये गणपति आदिका नाम लेना या उनकी पूजा करना (३) चन्द्र और रोहिणीके गीत गाना (४) विवाहादिमें गणपतिकी स्थापना करना (५) पुत्र जन्मादिमें छठोंके दिन षष्ठी देवताका पूजनादि करना (६) विवाहादिमें मातृकाओंकी स्थापना करना (७) चंडिका आदिकी मानतायें मानना (८) तुला आदि राशिग्रहोंका पूजन करना (६) चन्द्र और सूर्य ग्रहण किंवा व्यतीपातादिकमें विशेषता पूर्वक स्नान, दान और पूजनादिक करना (१०) पितृओंको पिण्डदान करना (११) रेवन्त पथ देवताका पूजन करना (१२) कृषिकार्यका समारंभ करते समय हल किंवा सीताका पूजन करना (१३) पुत्रादिकका जन्म होनेपर देवियोंको भेंट आदि चढ़ाना (१४) सुनहले,या रंगीन वस्त्र पहनते समय देवता विशेषका पूजन या भेंट इत्यादि करना (१५) मृतकके निमित्त जलाञ्जलि, तिल, कुश, और जलकुम्भ आदि देना (१६) नदी और तीर्थादिकमें मृतकका अग्निसंस्कार करना (१७) मृतकके निमित्त शैया आदिका दान देना (१८) धर्मार्थ पूर्व पत्नी (सौत) या पूर्वजनोंके निमित्त मूर्ति बनवाना (१६) भूतोंको बलीदान देना (२०) बारहवें दिन, एक मास, छः मास या वर्ष भरमें श्राद्ध करना (२१) प्याऊ बैठाना (२२) कुमा-

रिकाओंको भोजन कराना और वस्त्रदान देना (२३) धर्मार्थ किसीकी कन्याका व्याह करा देना (२४) नाना प्रकारके यज्ञ कराना (२५) लौकिक तीर्थकी यात्रा करना एवं उसकी मानता करना, तीर्थ-स्थानोंमें पिण्ड-दान देना, मुण्डन कराना या छाप लेना (२६) तीर्थ यात्राके निमित्त भोजनादि देना (२७) धर्मार्थ कुए, आदि खुदवाना (२८) क्षेत्रादिमें गोचरदान करना (२६) पितृओंके निमित्त दान देना (३०) काक और मार्जार प्रभृतिको पिण्डका दान देना (३१ पीपल, निम्ब, वट और अम्रादि वृक्ष रोपना और उन्हें जल देना (३२) सांडकी पूजा करना (३३) गो पुच्छकी पूजा करना (३४) शीतकालमें धर्मार्थ अग्नि जलाना (३५) गूलर, इमली आदि वृक्षोंका पूजन करना (३६) राधा और कृष्णादिके रूप धारण करनेवाले नटोंके नाटक आदि देखना (३७) सूर्य-संक्रान्तिके दिन विशेष रूपसे स्नान पूजा और दानादि करना (३८) रवी, या सोम आदि किसी वारके दिन एक वार भोजन करना (३६) उत्तरायणके दिन विशेष स्नानादि करना (४०) शनिवारको पूजाके निमित्त तिल और तेल आदिका विशेष रूपसे दान करना (४१) कार्तिक मासमें स्नान करना (४२) माघ मासमें स्नान करना और घृत एवं कम्बल आदिका दान देना (४३) चैत्र मासमें धर्मार्थ सांवत्सरिक दान और नवरात्र करना (४४) आजा पड़वेके दिन गोहिंसादि करना (४५) भ्रातृ द्वितीया मानना (३६) शुक्ल द्वितीयाको चन्द्रदर्श करना (४७) माघ शुक्ल तृतीयाके दिन गौरी

पूजन करना (४८) अक्षय तृतीयाके दिन भेट देना (४९) भाद्र मासमें कजली तीज और हरितालिकाके दिन देव देवियोंका पूजन करना (५०) आश्विन मासमें शुक्ल गोमय तृतीया मनाना। (५१) अगहन और माघ मासकी कृष्ण चतुर्थी—गणेश चतुर्थीके दिन चन्द्रोदयके बाद भोजन करना (५२) श्रावण शुक्ल पंचमी—नागपञ्चमीके दिन नाग पूजनादि करना (५३) पञ्चमी आदि तिथियोंके दिन दही मथना और फतेनादि करना (५४) माघ शुक्ल षष्ठीको सूर्यकी रथ यात्रा निकालना (५५) श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन चन्दन षष्ठी मनाना (५६) भाद्र शुक्ल षष्ठीको सूर्य षष्ठी मनाना (५७) श्रावण शुक्ल सप्तमीको वासी पदार्थ खाना (५८) बुधवार और अष्टमीको केवल गेहूं खाना (५९) जन्माष्टमीको कृष्णका जन्मोत्सव मनाना (६०) दुर्वाष्टमीको जलमें भिगोये और उगे हुए पदार्थ खाना (६१) आश्विन और चैत्रमासमें नवरात्रि मनाना और नागपूजा एवम् उपवासादि करना (६२) चैत्र और आश्विनकी शुक्ल अष्टमी तथा नवमी को गोत्र देवताओंकी विशेष रूपसे पूजा करना (६३) नकुल नवमीको मनाना (६४) भाद्र शुक्लकी अविधवा दशमीको जागरणादि करना (६५) विजया दशमीको शमीपूजन आदि करना (६६) देवशयनी और देवोत्थानी, फाल्गुन और ज्येष्टके शुक्लपक्षकी किंवा समस्त एकादशियोंको उपवासादि करना (६७) सन्तानादिके निमित्त वत्स द्वादशी मनाना (६८) ज्येष्ट की त्रयोदशीको ज्येष्ठिनी (जेठानी) को सत्कुलका दान करना

(६६) धन त्रयोदशीको धन-पूजादि करना (७०) शिवरात्रिके दिन उपवास और जगरणादि करना (७१) नवरात्रिमें यात्रादि करना (७२) अनन्त चतुर्दशीको अनन्त बांधना (७३) अमावस्याको दामाद और भानजेको भोजन कराना (७४) सोमवारी अमावस्या और नवोदद. अमावास्याको नदी, तालाव आदिमें विशेष रूपसे स्नान करना (७५) दीवालीके दिन पितृयोंके निमित्त दीये जलाना (७६) कार्तिक और वैशाखकी पूर्णिमाको स्नान करना (७७) होलीकी प्रदक्षिणा, नमस्कार, और उस दिन भोजनादि करना (७८) श्रावणकी पूर्णिमाको श्रावणी कर्म करना (७६) दीवसाको जागरण आदि करना (८०) उत्तरायणकी रचना करना।

इस प्रकार देशप्रसिद्ध लौकिक देवगत मिथ्यात्व अनेक प्रकारका होता है। इनके अतिरिक्त लौकिक गुरु, ब्राह्मण, तापस, योगी आदिको नमस्कार करना, तापसके पास जाकर 'ॐ शिवाय' आदि बोलना, मूल अश्लेषादिक नक्षत्रमें बालकका जन्म होनेपर ब्राह्मणके कथनानुसार क्रिया करना, ब्राह्मणसे कथायें सुनना, ब्राह्मणोंको गाय, तिल, तैल आदिका दान देना, उन्हें प्रसन्न रखनेके लिये उनके घर जाना प्रभृति लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है। परतीर्थियों द्वारा संग्रहित जिनबिम्बादि की अर्चना करना, और श्रीशान्तिनाथ पार्श्वनाथादि प्रतिमाओंकी ऐहिक सुखके निमित्त यात्रा और मानतादि करना लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व कहलाता है। लोकोत्तर लिंगी पासत्थादिकको गुरुबुद्धिसे वन्दना करना और गुरु स्थानादिको ऐहिक फल निमित्त

यात्रा और मानतादि करना लोकोत्तर मिथ्यात्व कहलाता है। संक्षेपमें सम्यकत्व और मिथ्यात्वका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये :—

"या देवे देवताबुद्धि—र्गुरौ च गुरुतामतिः।
धर्मे च धर्म धीः शुद्धा, सम्यक्त्व मुपलभ्यते॥
अदेवे देवताबुद्धिगु रुधीरगुरौ च या।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्व मेतदेव हि॥'

अर्थात्—"सुदेवमें देवबुद्धि, सुगुरुमें गुरुबुद्धि और सुधर्ममें शुद्ध धर्म बुद्धि रखनेको सम्यकृत्व कहते हैं और कुदेवमें देवबुद्धि, कुगुरुमें गुरुबुद्धि और कुधर्ममें धर्मबुद्धि रखनेको मिथ्यात्व कहते हैं।"

मिथ्यात्व सर्वथा और सर्वदा त्याज्य है। मिथ्यात्वसे जीव अनन्तकाल तक संसारमें भ्रमण करता है। इसलिये केवल सम्यकृत्वको ही अंगीकार करना चाहिये। किसीने कहा है कि जो केवल अंतर्मुहूर्त सम्यकृत्व धारण करते हैं, उनके लिये संसार अर्द्ध पुद्गल परावर्त मात्र रह जाता है। करोड़ों जन्मके बाद कहीं मनुष्यका जन्म प्राप्त होता है इसलिये इसे व्यर्थ न गँवाकर धर्मकी आराधनामें सदा तत्पर रहना चाहिये। धर्माराधनका अवसर मिलनेपर, विवेकी पुरुषको उसमें किसी भी कारणसे प्रमाद न करना चाहिये। हे महानुभाव! इस असार संसारमें केवल धर्मही सार है, इसलिये धर्मकी ही अराधना करनी चाहिये।

इस प्रकार एकाग्र चित्तसे जिनेश्वरके वचनामृतका पान

करते हुए चक्रवर्ती सुवर्णबाहुको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो आया इसलिये उसी समय उसे अपने पूर्वजन्मके आराधित चारित्रकी याद आयी इससे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने निर्णय किया कि अब मैं राज-काजके झंझटोंमें न पड़कर केवल मोक्षहीके लिये यत्न करूंगा।" यह निश्चय कर उसने पंचमुष्टि लोच किया और जगन्नाथके निकट दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद निरतिचार चारित्रका पालन करते हुए ग्यारह अंगोंका भला भांति अध्ययन कर वे क्रमशः गीतार्थ हुए और बाईस परिषह सहन करने लगे। कुछ दिनोंके बाद जिनेश्वरकी आज्ञा प्राप्त कर वे एकाकी विहारकर धर्मध्यान द्वारा कर्मोंका क्षय करने लगे। इसके बाद उन्होंने इस प्रकार बीस स्थानकोंकी आराधना आरम्भ की—

(१) अरिहन्त (२) सिद्ध (३) प्रवचन (४) गुरु (५) स्थविर (६) बहुश्रुत (७) तपस्वी—इन सातोंकी भक्ति करना (८) बारम्बार ज्ञानका अभ्यास करना (९) दर्शन (१०) विनय (११) आवश्यक (१२) ब्रह्मचर्य (१३) क्रिया (१४) क्षणलवतप (१५) ध्यान (१६) वैयावृत्त्य (१७) समाधि (१८) अपूर्वज्ञान ग्रहण (१९) सूत्र भक्ति और (२०) प्रवचनकी प्रभावना—इन बीस स्थानकोंके आराधनसे जीवको तीर्थंकर पदकी प्राप्ति होती है।

एक बार सुवर्णबाहु मुनीश्वर विहार करते हुए क्षीर-गिरिके निकट एक अरण्यमें जा पहुँचे। इसी जंगलमें कमठका जीव कुरंगक भिल्ल नरकसे निकलकर सिंहकी योनीमें उत्पन्न हुआ था।

शुक्ल ध्यान करते हुए मुनि पर भीषण वेगसे आक्रमण कर उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। [पृष्ठ २६७]

वह इधर उधर भ्रमण करता हुआ मुनिके समीप आ पहुँचा। उन्हें देखते ही पूर्वजन्मके वैरके कारण वह क्रुद्ध हो उठा और पूछ पटकता हुआ मुँह फैलाकर मुनिकी ओर दौड़ा। उसी समय उसने शुक्ल ध्यान करते हुए मुनि पर भीषण वेगसे आक्रमण कर उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। किन्तु मुनिराज इससे लेशमात्र भी विचलित न हुए। उन्होंने अपने ध्यानको और भी बढ़ाकर, उसे अपना प्रिय अतिथि मानते हुए रागद्वेषसे रहित हो सम्यक् आलोचना की। अन्तमें समस्त प्राणियोंसे क्षमा प्रार्थना कर, इक्षुरसकी भांति उत्तम धर्मरसको ग्रहण कर मुनिराजने इस असार शरीरको त्याग दिया।

नवाँ भव।

इस प्रकार सिंह द्वारा आहत हो प्राण त्याग करनेके बाद मुनिराज सुवर्णबाहु दशवें प्राणत नामक देव लोकमें,महाप्रभ नामक विमानमें, बीस सागरोमकी आयु प्राप्तकर सर्वोत्तम देवरूपमें उत्पन्न हुए और वहां विशेष सुख उपभोग करने लगे।

इधर उस पापिष्ठ सिंहकी मृत्यु होनेपर वह चौथी पंकप्रभा नामक नरक पृथ्वीमें नारकी हुआ। वहां वह शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, भय, शोक, परवशता, ज्वर और व्याधि प्रभृति नरककी इन वेदनाओंको सहन करने लगा। अन्तमें वहांसे निकल कर वह तिर्यंच योनिमें भ्रमण करता हुआ तीव्र दुःख भोग करने लगा।
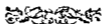
पञ्चम सर्ग ।

दसवाँ भव ।

सिंहका जीव नरक और तिर्यंच योनिके विविध दुःखोंको सहन करता हुआ किसी संनिवेशमें ब्राह्मणका पुत्र हुआ। कर्म वशात् बाल्यावस्थामें ही उसके माता पिताका शरीरान्त हो गया। इसलिये लोगोंने उसे अनाथ समझकर उसका पालन किया और उसका नाम कमठ रखा। क्रमशः बाल्यावस्था पूर्ण होनेपर उसने यौवन प्राप्त किया तब वह स्वयं भीख मांगने लगा; किन्तु घर घर भटकने पर भी उसे पेट भर खानेके लिये भोजन भी नहीं मिलता था। इसलिये वह बहुत दुःखी रहता, और पर धन देखकर मन-ही-मन सोचता कि कर्मने मुझे बहुत दुःख दिया, किन्तु क्या किया जाय ? ब्रह्माको जिसने कुम्हारकी तरह ब्रह्माण्ड रूपी पात्र बनानेमें लगाया। विष्णुको बारंबार अवतार लेनेके संकटमें फँसाया, महादेवको हाथमें खोपड़ी लेकर भिक्षाटन कराया और सूर्यको सदा आकाशमें भ्रमण करते रहनेके काममें लगाया, ऐसे कर्मको बारम्बार नमस्कार है।

एक समय कई मनुष्य गहने-कपड़ोंसे सजकर कहीं जा रहे थे, उन्हें देखकर कमठको वैराग्य आ गया। वह अपने मनमें कहने लगा कि—"एक यह पुण्यवान पुरुष हैं जो उत्तम वस्त्र धारण करते हैं और हजारों मनुष्योंको सहायता देते हैं और एक मैं हूं जोकि अपना पेट भी नहीं भर सकता। किसीने ठीक ही कहा है कि अनेक मनुष्य ऐसे हैं जो हजारोंका पालन करते हैं, अनेक मनुष्य ऐसे हैं, जो लाखोंका पालन करते हैं और अनेक मनुष्य ऐसे भी हैं जो अपना पेट भी नहीं भर सकते। यह केवल सुकृत और दुष्कृत होका फल है। इसलिये मैं भी तपस्या करूं ताकि अब दरिद्र न भोगना पड़े। इस तरह सोचते हुए उसने तापसी दीक्षा ग्रहण कर ली। पश्चात् कन्द मूलादि भक्षण कर वह पञ्चाग्नि तप करने लगा।

इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें साक्षात् स्वर्गपुरीके समान वाराणसी नामक एक नगरी है। इसी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न अश्वसेन नामक राजा राज्य करता था। दान और शौर्यके कारण उसका उज्वल यश दसों दिशाओंमें फैल रहा था। वह युद्धमें सूर्यके समान प्रतापी, गरीबोंपर सोमके समान सौम्य, दुष्टोंपर मंगलके समान वक्र, शास्त्रमें बुधके समान कुशल, वाणीमें बृहस्पतिके समान निपुण, नीतिमें शुक्रके समान प्रवीण और मंदोंके लिये शनिके समान मन्द था। उसके वामादेवी नामक एक पटरानी थी। वह रूप यौवन, पवित्रता और पुण्यकी तो मानो मूर्तिमान प्रतिमा ही थी। राजा और रानी दोनोंमें बड़ाही प्रेम था। वे अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करते थे।

कुछ दिनोंके बाद प्राणत देवलोकमें उत्तम देव ऋद्धि भोगकर सुवर्णबाहुका जीव विशाखा नक्षत्रको कृष्ण चतुर्थीके दिन देव लोकसे च्यवन होकर मध्यरात्रिके समय वामादेवीकी कोखमें अवतीर्ण हुआ। उस समय वामादेवीने तीर्थंकरके जन्मको सूचित करनेवाले चौदह उत्तम स्वप्न देखे। वे स्वप्न इस प्रकार थे। गजेन्द्र, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, माला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुम्भ, सरोवर, समुद्र, विमान, रत्न राशि और अग्नि। यह स्वप्न देखतेही रानीकी निद्रा भङ्ग हो गयी। उसने जागृत हो, इन स्वप्नोंका हाल राजाको कह सुनाया। राजाने सवेरा होते ही स्वप्न पाठकोंको बुलाकर इन स्वप्नोंका फल पूछा। स्वप्न पाठकोंने विचार कर कहा—"राजन्! हमारे शास्त्रमें बहत्तर स्वप्नोंका वर्णन है। उनमें तीस स्वप्न उत्तम कहे गये हैं। उन्हींमेंसे यह चौदह स्वप्न रानीने देखे हैं। गर्भमें तीर्थंकर किंवा चक्रवर्ती होने पर ही इन स्वप्नोंको उसकी माता देखती है इसलिये वामादेवीने यह जो चौदह स्वप्न देखे हैं इससे प्रतीत होता है, कि रानी जिस पुत्रको जन्म देंगी, वह तीर्थंकर होगा या चक्रवर्ती होगा।" स्वप्नका यह फल सुनकर राजाको अत्यन्त आनन्द हुआ। उसने स्वप्न पाठकोंको विपुल धन और वस्त्रादि दे विदा किया। जब यह समाचार रानीने सुना तो वह भी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

इस गर्भके प्रभावसे कुबेरने देवताओंको अश्वसेन राजाको राजलक्ष्मी बढ़ानेका आदेश दिया, फलतः राजाका धन इतना अधिक बढ़ने लगा, कि चाहे जितना खर्च करनेपर भी उसमें कमी
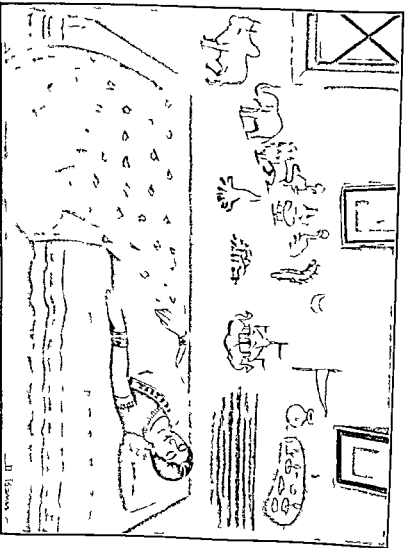
नहीं आती थी। उधर देवियां भी दासीकी भांति वामादेवीके समस्त मनोरथ पूर्ण करती थीं। इस प्रकार गर्भकाल पूर्ण होनेपर वामादेवीने पौष मासकी कृष्ण दशमीको विशाखा नक्षत्रमें, तीनों भुवनको प्रकाशित करनेवाले, सर्पके लाञ्छनसे युक्त और नील रत्नके समान नील कान्तिवाले पुत्र-रत्नको जन्म दिया। इस समय आकाशमें दुंदुभी बज उठी। सभी दिशायें प्रसन्न हो उठीं। नरकके जीवोंको भी क्षणभरके लिये सुखका अनुभव हुआ। वायु शीतल और सुगन्धित हो उठा। पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों जीवोंको भी आनन्द हुआ और तीनों लोक आलोकित हो उठे।

इस समय दिक्कुमारियोंके आसन चलायमान हो गये। अवधिज्ञानसे उन्हें प्रभुके जन्मकी बात मालूम हो गयी, अतएव वे नृत्य करती हुई अपने स्थानसे सूतिकास्थान आ पहुंची। इनमेंसे मेरु रुचकके अधोभागमें रहनेवाली भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा पुष्पमाला और अनिन्दिता नामक आठ दिक्कुमारियां पहले अग्रसर हुईं और जिनेश्वर तथा जिन माताको नमस्कार कर कहने लगीं—"हे जगन्मात! हे जगतको आलोकरनेवाली! आपको नमस्कार है। अधोलोककी रहनेवाली हम दिक्कुमारीयें जिनेश्वरका जन्मोत्सव मनाने आयीं हैं।" यह कह उन कुमारियोंने संवर्तक पवनको विकुर्वित कर एक योजन प्रमाण भूमि शुद्ध की और वहीं जिनेश्वरके पास बैठ कर गाने लगीं। इसके बाद मेघंकरा मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और बलाहका—इन उर्ध्वलोककी

रहनेवाली आठ दिक्कुमारियोंने पानी बरसाकर एक योजन प्रमाण भूमि सींच कर वहां पुष्पवृष्टि की। इसके बाद जिनेश्वर और जिन माताको नमस्कार कर वे नाना प्रकारके मंगलगान गाने लगी। इसके बाद नंदोत्तरा, नंदा, सुनंदा, नंदिवर्धिनी, विजया, वेजयन्ती; जयंता और अपराजिता इन आठ दिक्कुमारियोंने पूर्व रुचकसे वहा आकर जिनेश्वर और जिन-जननीको नमस्कार किया और हाथमें दर्पण लेकर उनके पास खड़ी हो गयीं। इसके बाद समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा—यह दक्षिण रुचककी आठ दिक्कुमारियां उपस्थित हुई और हाथमें कलश लेकर खड़ी हो गयीं। इसके बाद इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा और सीता यह पश्चिम रुचककी आठ कुमारिया उपस्थित हुई और जिनेश्वर तथा जिन माताको प्रणाम कर हाथमें पखा लेकर खडी हो गयीं। इसके बाद अलम्बुसा, अमितकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ही—यह आठ कुमारिया उत्तर रुचकसे आकर हाथमें चामर लेकर खड़ी हो गयीं। इसके बाद चित्रा, चित्रकनका, तारा और सौदामिनी यह चार दिक्कुमारियां विदिशा स्थित रुचक पर्वतसे आकर उपस्थित हुई और हाथमें दीपक लेकर खडी हो गयीं। इसके बाद रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती इन चार दिक्कुमारियोंने रुचक द्वीपसे आकर जिनेश्वरके नाभि-नालको चार अंगुल छोड़कर काट दिया और भूमिमें एक

खड्डा खोदकर वहां उसकी स्थापना की। इसके बाद रत्न माणिक्य और मौक्तिकसे उस खड्डेको भरकर उसके ऊपर पीठिका बन्ध किया। इसके बाद सूतिका गृहसे पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशामें उन्होंने तीन कदली-गृह निर्माण किये। इनमेंसे दक्षिण दिशाके कदली गृहमें उन्होंने सर्वप्रथम भगवान् और उनकी माताको ले जाकर रत्न सिंहासनपर विराजमान करनेकेबाद तैल मर्दन कर उन्हें उद्वर्तन कराया गया। इसके बाद उन्हें पूर्व कदली गृहमें ले जाया गया। वहां मणिके पीठपर बैठाकर इन्हें सुगन्धित जलसे स्नान कराया गया। इसके बाद दिव्य वस्त्राभूषणसे सजाकर इन्हें उत्तर दिशाके कदली गृहमें रत्न सिंहासनपर बैठाया गया। वहां अरणिकाष्ठसे अग्नि उत्पन्न कर उसमें गोशीर्ष चन्दनको जलाकर उससे दो रक्षा पोटलीये बनायी गयीं और वे दोनों पोटलियां दोनोंके हाथमें बाँधी गयीं। इसके बाद जिनेश्वरके गुणगान कर, उनके चिरायु होनेकी कामना व्यक्त की गयी। इसके बाद दिक्कुमारियोंने पत्थरके दो गोलोंको एक दूसरेके साथ लड़ाया और वामादेवी तथा जिनप्रभुको पूर्व शैय्यामें रख, उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानको चली गयीं।

इस अवसरपर स्वर्गमें इन्द्रका आसन भी कम्पायमान हो उठा। इन्द्रको अवधिज्ञानसे जिनेश्वरके जन्मकी बात मालूम हो गयी इसलिये उसने उनके सम्मुख जाकर उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम किया और शक्रस्तवसे प्रभुका स्तवन किया। इसके बाद इन्द्रने हरिणो गमेषी देवको आदेश दे, सुघोषा घंट द्वारा

देवताओंको तीर्थंकरके जन्मकी सूचना दी। यह सूचना मिलतेही सभी देव यहां इकट्ठे हुए। इन्द्रकी आज्ञासे पालक नामक देवताने पालक नामक विमानका रूप धारण किया। इस विमानमें बैठकर देवताओं समेत इन्द्र नन्दीश्वर द्वीपमें आये। और उस लक्ष योजनके विस्तृत विमानको संकुचित कर जिनेश्वरदेवके जन्म गृहमें पहुंचे। यहां जिनेन्द्र और जिन माताको नमस्कार कर वे कहने लगे—"हे रत्न धारिणी! हे शुभ लक्षण वाली जगन्माता! आपको नमस्कार है। आपने त्रिभुवनमें धर्म-मार्गको प्रकाशित करनेवाले, दिव्य रत्नके प्रदीपरूप इन जिनेश्वर भगवानको जन्म देकर हम उपकार किया है। मैं शक्रेन्द्र हूं और भगवानका जन्मोत्सव मनाने आया हूँ।" यह कहते हुए इन्द्रने वामादेवीको अवस्वापिनी निद्रामें डाल, उनके पास भगवानका प्रतिबिम्ब रख दिया। इसके बाद इन्द्रने पांच रूप धारण किये। एक रूपसे इन्द्रोंने अंजलीमें भगवानको उठा लिया। दो रूपसे उनके दोनों ओर चमर डुलाने लगे। एक रूपसे प्रभुके सिरपर छत्र धारण किया और एक रूपसे वज्र घुमाते हुए जिन भगवानके आगे चलने लगे। इस प्रकार प्रभुको लेकर वे देवताओं समेत आकाश मार्गसे शीघ्रही श्री मेरुपर्वतपर जा पहुंचे। यहां पांडुक वनमें पांडुकवल नामक शिलापर भगवानको स्नान करानेके लिये प्रभुको गोदीमें लेकर वह पूर्वाभिमुख बैठे। उस समय और भी ६२ इन्द्र अवधिज्ञानसे जिन भगवानके जन्मका हाल जानकर वहां उपस्थित हुए। सब मिलाकर वैमानिकके दस, भुवनाधिपके बीस, व्यंतरके बत्तीस और

ज्योतिष्कके दो—सूर्य और चन्द्र—यह सभी चौंसठ इन्द्र यहां इकट्ठे हुए।

इसके बाद यहां सुवर्णके, रजतके, रत्नके, सुवर्ण और रत्नके, सुवर्ण और रजतके, रजत और रत्नके, सुवर्ण रजत और रत्नके तथा मिट्टीके—इस प्रकार आठ जातियोंके हर एक इन्द्रने एक हजार और आठ कलश बनवाये गये। कलश तैयार होनेपर उन्हें क्षीर समुद्रके जलसे भरकर अच्युतादि देवेन्द्रोंने विधिपूर्वक भगवानका अभिषेक किया और पारिजातक पुष्पादिसे उनकी अर्चना की। इसके बाद अनेक देव स्तुति करने लगे, अनेक हर्षित हो नृत्य करने लगे, अनेक गांधार, बंगाल, कौशिक, हिंडोल, दीपक, वसन्त, सोहाग, प्रभृति दिव्य देवरागोंसे गीत गान करने लगे। कई देवता छप्पन कोटि तालके भेदोंसे दिव्य नाटक करने लगे। अनेक देवता तत, वितत, घन और सुषिर यह चार प्रकारके बाजे बजाने लगे। और अनेक कौतुक वश हर्ष-नाद करने लगे।

इसके बाद जिन भगवानको ईशानेन्द्रकी गोदीमें बैठाकर सौधर्मेन्द्रने चार वृषभोंका रूप धारण किया और उनके आठ शृंगोंसे निकलते हुए जलसे प्रभुको नहलाया। पश्चात् दिव्य वस्त्र से उनका शरीर पोंछकर, उन्हें दिव्य चन्दन विलेपन करनेके बाद पुष्पोंसे उनका पूजन किया। यह सब हो जानेपर इन्द्रने स्वामीके सम्मुख रजताक्षत द्वारा दर्पण, वर्धमान, कलश, मीनयुगल, श्रीवत्स, स्वस्तिक, नंद्यावर्त और भद्रासन—यह आठ मंगल अंकित किये। इसके बाद सभी देवता प्रभुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

"देवताओंके नतमस्तक रूपी भ्रमरोंके संगसे मनोहर चरण कमलवाले, अश्वसेन नृपके पुत्र और लक्ष्मीके निधान हे स्वामिन्! आपकी जय हो! हे जिनेन्द्र! आपके दर्शनसे मेरा शरीर सफल हुआ, नेत्र निर्मल हुए और धर्मकृत्यमें मैं स्नात हुआ। हे नाथ! आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हुआ। और इस भवसागरसे मैं उत्तीर्ण हुआ। हे जिनेन्द्र। आपके दर्शनसे मैं सुकृता हुआ मेरे अशेष दुष्कृतका नाश हुआ। और मैं भुवनत्रयमें पूज्य हुआ। हे देव! आपके दर्शनसे कषाय सहित मेरे कर्मका जाल नष्ट हो गया और दुर्गतिसे मैं निवृत्त हुआ। आपके दर्शनसे आज यह मेरी देह और मेरा बल सफल हुआ और सारे विघ्न नष्ट हुए। हे जिनेश! आपके दर्शनसे कर्मोंका दुःखदायक महाबन्ध नष्ट हुआ और सुखसंग उत्पन्न हुआ। आज आपके दर्शनसे मिथ्या अंधकारको दूर करनेवाले ज्ञानसूर्यका मेरे हृदयमें उदय हुआ। हे प्रभो! आपके स्तवन, दर्शन और ध्यानसे आज मेरे हृदय, नेत्र और मन निर्मल हुए,। इसलिये हे वीतराग! आपको वारम्वार नमस्कार है!"

इस प्रकार जगत् प्रभुको स्तुतिकर इन्द्र देवता उन्हें वामादेवीके पास वापस ले आये और पूर्ववत् माताके पासमें उन्हें सुला दिया। इसके बाद उन्होंने अवस्वापिनी निद्रा और प्रतिरूपक हरण कर प्रभुके मनो-विनोदके लिये उनकी शय्यापर उन्होंने रत्नमय गेंद, दो कुण्डल और सुशोभित वस्त्र रख दिये। अनन्तर शक्रके आदेशसे इसी समय कुबेरने वहां बत्तीस करोड़ द्रव्य और रत्नोंकी

चर्या की। इसके बाद जिनेश्वरके अंगुष्टमें अमृतसींचन कर, उन्हें प्रणाम कर समस्त सुरेन्द्र और सुरासुर नन्दी द्वीप पहुँचे। वहां उन्होंने शाश्वत जिनेश्वरोंको वन्दन कर अट्ठाई महोत्सव किया और इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानको चले गये।

सुबह वामादेवको निद्रा खुलनेपर उन्होंने जब दिव्य अंग-वाले और वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए विकसित वदन कमलवाले पुत्रको अपने पासमें सोता हुआ देखा, तब उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। शीघ्रही कुमारके जन्म और दिक्कुमारियोंके आगमन आदिका समाचार राजाको पहुँचाया गया। यह शुभ संवाद सुनकर अश्वसेन राजाने भी जन्मोत्सव मनानेका आयोजन किया। उसने सर्वप्रथम कारावासके समस्त कैदियोंको मुक्त कर दिया और गरीबोंको अन्न-वस्त्र दिया। इसके बाद नाना प्रकारसे जन्मोत्सव मनाया। उस समय अंगनाओंके नृत्य और दिव्य-गानसे, तथा विविध वाद्योंके मनोहर नादसे, एवं जयजयकारके घोषसे तथा शंख ध्वनिसे सारा नगर आन्दोलित हो उठा। दान, सम्मान और बढ़ती हुई लक्ष्मीके कारण राजभवन विशाल होनेपर भी उस समय छोटासा मालूम होने लगा। इसके बाद सूतक बीत जाने पर राजाने कुलाचारके अनुसार समस्त सज्जनोंको निमन्त्रित कर उन्हें भोजन और वस्त्राभूषणों द्वारा सम्मानित किया। पश्चात् उसने समस्त स्वजनोंसे निवेदन किया कि हे बन्धुओ! जिस समय यह बालक गर्भमें था उस समय इसकी माताने अन्ध-कारमें भी पाससे जाते हुए साँपको देखा था, अतएव

इस बालकका नाम मैं पार्श्व रखता हूँ। यह कहते हुए अश्वसेन राजाने सबके समक्ष राजकुमारका नाम पार्श्व रखा। अनन्तर धात्रियों द्वारा बड़े यत्नसे राजकुमारका लालन-पालन होने लगा। जब इन्हें क्षुधा लगती, तब वे अंगूठेमें रखे हुए अमृतका पान करते थे। इन्द्रको नियुक्त की हुई देवाङ्गनायें भी इनको खेलाती थीं। इस प्रकार वज्रऋषभनाराच संघयण, समचतुरस्त्र संस्थान और बिम्ब फलके समान ओष्ठको धारण करनेवाले, कृष्ण शरीरवाले, नीलकान्तिवाले, दिव्यनेत्रवाले, पद्मके समान श्वासवाले और बतीस लक्षणोंवाले पार्श्वकुमारने बाल्यावस्था अतिक्रमण कर युवावस्थामें प्रवेश किया। बतीस सुलक्षण यह माने गये हैं।

नाभि, सत्त्व और स्वरमें गंभीरता हो, स्कन्ध, पाद और मस्तकमें ऊँचाई हो, केश नख और दांतोंमें सूक्ष्मता हो, चरण भुजा और अंगुलियोंमें सरलता हो, भ्रकुटो, मुख और छातीमें विशालता हो, आंखकी पुतली, वृंत और केशमें श्यामता हो, कमर, पीठ और पुरुष-चिन्हमें लघुता हो, दाँत और नेत्रोंमें सुफेदी। हो, हाथ, पैर, गुदा, तालु, जीभ, दोनों ओष्ट, नख और मांस इनमें लालिमा हो। इतनी बातें जिसमें पायी जाती हों, वह पुरुष बत्तीस लक्षणोंसे युक्त माना जाता है।

भगवानके न केवल यह बत्तीस ही लक्षण थे, बल्कि और भी १००८ सुलक्षण थे। उनका शरीर नव हाथ ऊंचा, अद्भुत रूप और देह गन्धयुक्त थी। उनके आहार और नीहार अदृश्य थे।

उनका शरीर रोग, मल और पसिनेसे रहित था। युवावस्था प्राप्त होनेपर मानो सोनेमें सुगन्ध आ गयो। उनका रूप-सौन्दर्य उनकी कान्ति और उनके गुण अधिकाधिक शोभा पाने लगे।

एक दिन राजा अश्वसेन अपनी राज-सभामें बैठे हुए थे। इसी समय एक पुरुष वहां उपस्थित हो कहने लगा—"हे स्वामिन्! यहांसे पश्चिम दिशामें कुशस्थल नामक एक नगर है। वहां कुछ दिन पहले नरवर्मा नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही सदाचारी सत्यवादी और धर्म-प्रवर्तक था। वह जिन धर्ममें अत्यन्त अनुरक्त होकर साधु-सेवामें तत्पर रहा करता था। बहुत दिनोंतक न्याय और नीतिपूर्वक प्रजापालन करनेके बाद अन्तमें उसने राजलक्ष्मीका त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद अब वहाँ उसका पुत्र प्रसेनजित् राज्य करता है। वह भी अर्थी जनोंके लिये सुरतरु रूप है। उसे प्रभावती नामक एक कन्या है। इस समय वह नवयौवन प्राप्त होनेके कारण देव कन्या सी प्रतीत हो रही है। राजाने उसे विवाह योग्य समझ, चारों ओर उसके लिये वरकी खोज करायी, किन्तु कहीं भी उसके उपयुक्त वर न मिल सका।

एक बार वह राजकुमारी सखियोंके साथ उद्यानक्रीड़ा करने गयी थी। उस समय उसने किन्नरियोंके मुखसे पार्श्वकुमारका गुण-गान सुना। सुनते ही वह पार्श्वकुमार पर तन मनसे इस प्रकार लुब्ध हो गयी, कि उसने खेलना कूदना सब कुछ त्याग कर दिया और व्याकुलताके कारण वहीं मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

उसकी यह अवस्था देख दासियें व्याकुल हो गयीं। अन्तमें उन्होंने शीतलोपचार कर उसकी मूर्च्छा दूर की और वे उसे समझा कर घर ले आयीं। इसके बाद दासियों द्वारा यह हाल उसके माता पिताको मालूम हुआ। राजकुमारी पार्श्वकुमार पर अनुरक्त है, यह जानकर उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ। वे कहने लगे—"प्रभावतीने बहुत ही उपयुक्त वर पसन्द किया है। क्योंकि पार्श्वकुमारसे बढ़कर सुन्दर, सुशील और सद्गुणी वर इस समय संसारमें मिलना कठिन है। अतएव सुमुहूर्त देखकर स्वयंवरा प्रभावतीको पार्श्वकुमारके पास भेज देना चाहिये।" माता-पिताके इस निश्चयकी सूचना पाकर प्रभावतीको भी बड़ा ही आनन्द हुआ।

इधर कलिंगदेशका राजा पहलेसे ही प्रभावती पर अनुरक्त हो रहा था, इसलिये उसने जब सुना कि प्रभावती पार्श्वकुमारसे व्याह करनेवाली है, तब वह क्रुद्ध होकर कहने लगा—"प्रभावतीसे तो मैं ही व्याह करूंगा। प्रसेनजितकी क्या मजाल है जो वह मुझको छोड़कर पार्श्वकुमारसे उसका व्याह कर दे। इसके बाद वह बहुतसा सैन्य लेकर कुशस्थल नगर पर चढ़ आया और नगरको चारों ओरसे घेर लिया। इससे नगरमें आने-जानेका मार्ग बन्द हो गया। यह देखकर प्रसेनजित राजाको बड़ी चिन्ता हुई और उसने मन्त्रियोंके साथ सलाह कर आपसे सहायता मांगना स्थिर किया है। मैं उनके मन्त्रीका पुत्र हूँ। आपसे यह हाल निवेदन करनेके लिये ही मुझे उन्होंने यहां भेजा है। अब आप जो उचित समझें, करें।

यह हाल सुनकर अश्वसेन राजाने रोषपूर्वक कहा—"प्रसेनजितको जरा भी भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं इसी समय सैन्य लेकर कुशस्थलकी रक्षा करने चलता हूँ और कलिंग राजाको भी इस धृष्टताके लिये अवश्य ही सजा दूंगा।" यह कहकर राजा अश्वसेनने रणभेरी बजवायी। उसे सुनते ही चारों ओरसे सैनिक आ आकर इकट्ठे होने लगे। सैनिकोंको रण-यात्राकी तैयारी करते देख पार्श्वकुमारने अश्वसेनसे पूछा—"हेपिताजी! यह सैनिक लोग किस लिये तैयार हो रहे हैं?" यह सुन अश्वसेनने पार्श्वकुमारको कुशस्थलके मन्त्रीको दिखलाते हुए उसे सारा हाल कह सुनाया। सुनकर पार्श्वकुमारने कहा—"पिताजी! उस कायर यवनको सजा देनेके लिये आप जायंगे? यह ठीक नहीं। आप यहीं रहिये, मैं ही उसे शिक्षा देनेको जाता हूँ।" यह सुनते ही राजाने उसकी युक्ति-युक्त बात जानकर प्रसन्नता पूर्वक उसे वहां जानेकी अनुमति दे दी। अनन्तर पार्श्वकुमारने शीघ्रही सैन्यको तैयार कर लिया और मन्त्रीपुत्र पुरुषोत्तम तथा कई राजाओंके साथ कुशस्थलके लिये प्रस्थान किया। उनकी सेनामें हाथी सबसे आगे चलते थे और वे पर्वतके समान दिखायी देते थे। नदीके वेग समान घोड़े, क्रीड़ागृह समान रथ और सागर सेनाके समान पदातियोंकी शोभा देखते ही बनती थी। जिधर ही यह सेना जा निकलती उधर ही बन्दी जनोंके घोष, शंखोंके शब्द और बाजोंके नादसे आकाश प्रतिध्वनित हो उठता था। मार्गमें उन्हें रथ समेत इन्द्रका मातलि नामक सारथि आ मिला। उसने प्रणाम

कर पार्श्वकुमारसे निवेदन किया—"हे नाथ! मैं इन्द्रका सारथि हूँ। वे आपको अतुल बलवान समझते हैं। इसलिये उन्होंने श्रद्धापूर्वक आपके लिये यह रथ लेकर मुझे भेजा है।" मातलिका यह निवेदन सुन पार्श्वकुमारने इन्द्रके रथपर बैठना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार यह सैन्य बड़ी शानसे आगे बढ़ता हुआ शीघ्रही कुशस्थल आ पहुँचा। नगरके बाहरही सेनाके लिये शिविरकी स्थापना की गयी। पार्श्वकुमारके लिये देवताओंने पहलेसे ही यहाँपर एक उद्यानमें सात खंडका अत्यन्त रमणीय महल बना रखा था उसीमें उन्होंने आकर निवास किया।

शिविरकी स्थापना करनेके बाद पार्श्वकुमारने एक चतुर दूतको भलीभांति सब बातें सिखा कर उसे कलिंगराजके पास भेजा। उसने जाकर राजासे कहा कि—"पार्श्वकुमारने आपको आदेश दिया है कि आप अब किसी प्रकारका उपद्रव न कर चुपचाप अपने नगरको लौट जाइये। यदि आप उनके आदेशका पालन न करेंगे तो आपका कल्याण न होगा।" दूतकी यह बात सुन कलिंग राजाने क्रुद्ध होकर कहा—"हे दूत! तू मुझे पहचानता नहीं है, इसीलिये ऐसी बातें कह रहा है। मैं अश्वसेन या पार्श्वकुमार किसीसे भी नहीं डरता। उनमें यह शक्ति ही कहां, कि मुझसे युद्ध करनेका साहस करें। दूत होनेके कारण मैं तेरे धृष्ट वचनोंके लिये तुझे क्षमा करता हूँ, अन्यथा तुझे भी इसके लिये कड़ा दण्ड देता।" कलिंगराजकी यह बात सुन दूतने क्रुद्ध होकर कहा—"हे मूढ़! तू वृथा ही इतना अभिमान कर

रहा है। क्या तू पार्श्वकुमारके बल-विक्रमसे परिचित नहीं है? निःसन्देह वे तुझे रणभूमिमें ऐसी शिक्षा देंगे, कि तेरा यह सब अभिमान मिट्टीमें मिल जायगा।"

दूतके यह कटुवचन सुनकर कलिंगराजके सुभट लोग उसे मारने दौड़े; किन्तु वृद्ध मन्त्रीने उन्हे रोककर कहा—"यह क्या करने जा रहे हो? जिन पार्श्वकुमारकी देव सहित इन्द्र भी सेवा करते हैं, उनके दूतको मारनेसे तुम्हारी क्या गति होगी?" यह सुनकर सुभट लोग भयभीत होकर चुप हो गये। इसके बाद मंत्रीने दूतको समझा कर कहा कि—"हमलोग तो पार्श्वकुमारके सेवक हैं। उनसे जाकर कह दो कि हमलोग शीघ्र ही आपको वन्दन करनेके लिये आनेवाले हैं। यह कहकर मन्त्रीने दूतको विदा किया। इसके बाद उसने राजाको समझाते हुए कहा—"हे राजन्! पार्श्वकुमार तीनों लोकके नाथ हैं। समस्त सुरासुर, नागेन्द्र और इन्द्र भी सेवककी भांति उनकी सेवा करते हैं। वे चक्रवर्ती किंवा जिनेश्वर होनेवाले हैं। उनसे विरोध करना ठीक नहीं। कहां सूर्य और कहां खद्योत? कहां सिंह और कहां मृग? कहां पार्श्वकुमार और कहां आप? क्या आपने यह नहीं सुना कि स्वयं इन्द्रने अपने मातलि नामक सारथिको रथ देकर पार्श्वनाथके पास भेजा है? यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो आपको कंठपर कुठार रख, पार्श्वकुमारके पास इसी समय चलना चाहिये और उनसे क्षमा प्रार्थना कर अपने अपराधको क्षमा कराना चाहिये। इसीमें आपका श्रेय है।

मन्त्रीके यह वचन सुन कलिंगराजने कहा—"मन्त्री! मैं यह नहीं जानता था कि पार्श्वकुमार इस तरह बलवान हैं। इसी भुलावेमें मैंने यह अपराध कर डाला। और, अब तुम जो कहो, वह मैं करनेको तैयार हूँ।" मन्त्रीने कहा—"इसी समय चलकर उनसे क्षमा प्रार्थना कीजिये। यह सुन उसी समय कलिंगराज कंठपर कुठार रखे, समस्त सामन्त और मण्डलेश्वरोंके साथ पार्श्वकुमारसे क्षमा प्रार्थना करने चला। मार्गमें उनकी समुद्रसी सेना देख मृगककी भांति यह भयभीत होता हुआ कांपने लगा और किसी तरह उनके निवास-स्थानतक पहुँचा। द्वारपालने पार्श्वकुमारकी आज्ञा प्राप्त कर उसे सभामें उपस्थित किया। उसे देखतेही पार्श्वकुमारने कुठार रख देनेको कहा। अब कलिंगराजने कुठार रखकर पार्श्वकुमारको प्रणाम करते हुए कहा—"हे स्वामिन्! मैं आपका सेवक हूँ। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे शरण दीजिये।" यह सुन पर्श्वकुमारने उसकी क्षमा-प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—"हे भद्र! तेरा कल्याण हो। मैं तुझे क्षमा करता हूँ। तू सानन्द राज्य कर। अब कभी ऐसा आचरण न करना।" कलिंगराजने सिर नवां कर पार्श्वकुमारकी यह बात मान ली। अतएव उन्होंने उसका यथोचित सम्मान कर उसे बिदा किया। इसके बाद कलिंगराजने अपना सैन्य समेट लिया और शीघ्र ही कुशस्थलका त्यागकर अपने देशके लिये प्रयाण किया।

प्रसेनजीतको यह समाचार सुनकर बड़ाही आनन्द हुआ। अतएव वह उसी समय प्रभावतीके साथ पार्श्वकुमारकी सेवामें उपस्थित हो

उन्हें नमस्कार कर कहने लगा—"हे नाथ! आपके दर्शनसे मेरा जीवन आज सफल हो गया। और यह यवन भी आपके प्रतापसे सज्जन हो गया। आप सूर्यकी तरह संसारमें प्रकाश फैलानेवाले हैं। कृपया अब इस कन्याका पाणिग्रहण कर मुझे कृतकृत्य कीजिये।" प्रसेनजितको यह प्रार्थना सुन पार्श्वकुमारने कहा—"राजन्! मैं पिताके आदेशानुसार कलिंगराजको दण्ड देने ही आया था। विना उनकी आज्ञाके मैं कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव मैं आपको कन्याका पाणिग्रहण करनेके लिये असमर्थ हूँ। कृपया इस सम्बन्धमें व्यर्थ ही आग्रह न करें।" पार्श्वकुमारकी यह बात सुन प्रभावती अपने भाग्यको कोसने लगी। वह कहने लगी—"मालूम होता है कि मेरा भाग्य ही बुरा है। अन्यथा पार्श्वकुमार पिताकी यह प्रार्थना ही क्यों अस्वीकार करते?" इधर प्रसेनजितने अपने मनमें सोचा कि पार्श्वकुमार तो सर्वथा निःस्नेह मालूम होते हैं, इसलिये अब इनसे कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। अब तो अश्वसेन राजाको समझानेसे ही काम निकल सकता है।

इस प्रकार सोचते हुए प्रसेनजित्‌ने प्रभावतीको धैर्य दिया और उसे साथ ले पार्श्वकुमारके साथ वाराणसीके लिये प्रस्थान किया। इधर अश्वसेन राजाको पार्श्वकुमारका विजय समाचार पहलेही मिल चुका था। अतएव पार्श्वकुमारके पहुँचनेपर उन्होंने बड़ा ही महोत्सव किया और बड़े समारोहके साथ पार्श्वकुमारको नगरमें प्रवेश कराया। इसके बाद प्रभावती और प्रसेनजित्

राजाको अश्वसेन राजाने एक महलमें ठहराया और उनका आदर सत्कार किया। इस समय इन्द्रने भी उपस्थित हो वन्दनादिक कर आठ दिन पर्यन्त महोत्सव मनाया। इन सब कामोंसे निवृत्त होनेपर अश्वसेनने प्रसेनजितके पास जाकर उनका कुशल समाचार पूछा। इधर उधरकी बातें होनेके बाद अवसर देखकर प्रसेनजितने कहा—"राजन्! मेरी यह पुत्री पार्श्वकुमारपर किस तरह अनुरक्त हो रही है, यह तो आपने मन्त्री-पुत्रसे सुना ही होगा। आपने मुझपर बड़ी दया की है और यह उसीका फल है कि कलिंगराज हम लोगोंका कुछ भी न बिगाड़ सका और हम लोग आज कुशलपूर्वक बैठे हैं। अन्यथा न जाने हम लोगोंकी क्या दुर्गति होती। जहां आपने इतनी कृपा की है, वहां अब इतनी दया और कीजिये, कि इन दोनोंका पाणिग्रहण भी हो जाय। इससे मैं आपका आजन्म ऋणी रहूंगा।" यह सुन अश्वसेन राजाने कहा—"आप ठीक कहते हैं। और हम भी यही चाहते हैं कि पार्श्वकुमारका ब्याह हो, किन्तु यह तो संसारसे विरक्त सा मालूम होता है। यह क्या करेगा यह तो समझ ही नहीं पड़ता। फिर भी मैं आपके अनुरोधके कारण उसकी अनिच्छा होनेपर भी आपकी कन्याका उससे अवश्य ही पाणिग्रहण कराऊंगा। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।" यह कह राजा अश्वसेन प्रसेनजित्‌को अपने साथ ले पार्श्वकुमारके पास गये और उनसे कहा—"हे वत्स! प्रसेनजित राजा अपनी कन्याका तेरे साथ ब्याह करना चाहते हैं।" अतएव यह तुझे स्वीकार कर

लेना चाहिये।" यह सुन पार्श्वकुमारने कहा—"पिताजी! अब मैं ब्याह नहीं करना चाहता, क्योंकि यह संसार सागर दुस्तर है। संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवने अनेक बार ब्याह किये हैं। अब तो मैं इस संसारका उन्मूलन करना चाहता हूँ। फिर स्त्री तो इस संसार रूपी वृक्षका मूल है। इसलिये मुझे इस संसारकी स्थितिके साथ कुछ भी प्रयोजन नहीं है।" पुत्रकी यह बात सुनकर राजा अश्वसेनने कहा—"हे वत्स! तेरी इच्छा न होनेपर भी तुझे एक बार ब्याह कर मेरा मनोरथ पूर्ण करना ही होगा। पहलेके तीर्थंकरोंने भी एक बार संसार-सुख भोग कर, बादको दीक्षा ग्रहण की थी। इस लिये तुझे भी उन्हींका अनुसरण करना चाहिये।" यह सुन पार्श्वकुमारने पिताके वचनको अलंघनीय मानकर उनकी बात मानली।

जब यह समाचार चारों ओर फैल गया तो सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी दिनसे सब लोगोंने विवाहोत्सव मनाना आरम्भ कर दिया। जहां देखो वहीं गीत गान, नाटक, वाद्य, मांगल्य, दान और भोजन प्रभृति मांगलिक कार्य होने लगे। विवाहके दिन सुमुहूर्त्तमें कुल वधुओंने प्रभावतीको स्वर्णकुम्भके जलसे स्नान कराया और गुरुप्रदत्त अक्षत उसके सिरपर छोड़ कर, उसे विविध वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया। इधर पार्श्वकुमार के मित्रोंने उनको सुन्दर आभूषण और वस्त्रोंसे सजाकर बड़ो सज-धजके साथ सुफेद हाथीपर बैठाये। इसके बाद छत्र-चामर आदि राज चिन्हों से अलंकृतकर विविध वाद्योंकी गगनभेदिके

साथ विवाद-मण्डपसे लाये गये। अनन्तर एक सुशील पण्डितने यथाविधि कुलाचार करानेके बाद मंगलाचार पूर्वक दोनोंका पाणिग्रहण करा दिया। इसके बाद गांठ जोड़े हुए वरवधू वेदिका मण्डपमें प्रविष्ट हुए। इस अवसरपर चन्दन, पुष्प ताम्बूल, वस्त्र, घोड़े और हाथी आदिसे सज्जनोंको भी सम्मानित किया गया और याचकोंको दान दिया गया। इसके बाद विवाह विधि सम्पन्न हो जानेपर अग्नीके आस-पास फेरे दिलवाये गये। पहले फेरेमें प्रसेनजित राजाने हजारों तोला सोना दिया। दूसरे फेरेमें कुण्डल और हार आदि आभूषण दिये। तीसरे फेरेमें थाल प्रभृति बर्तन और हाथी घोड़े तथा चौथे फेरेमें बहुमूल्य वस्त्र दिये गये। इसी प्रकार और भी प्रसंगानुसार मंगल कार्य किये गये। इसके बाद विवाहोत्सव पूर्ण होनेपर पार्श्वकुमार अपने निवासस्थानको लौट आये। मणि काञ्चन तुल्य प्रभावती और पार्श्वकुमारका यह सम्बन्ध देखकर सबको अत्यन्त आनन्द और सन्तोष हुआ। अनन्तर प्रसेनजितने राजा अश्वसेनसे विदा ग्रहणकर स्वजनोंके साथ अपने निवासस्थानको ओर प्रस्थान किया और पार्श्वकुमार अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक दिन विताने लगे।

षष्ठ सर्ग।
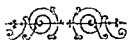
एक दिन श्रीपार्श्वप्रभु अपने महलके झरोखेमें बैठकर काशी पुरीकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें पूजाकी सामग्री लेकर नगरके बाहर जाते हुए नगर निवासियोंको देखकर पूछा—"आज सब लोग दही, दूध, पत्र, पुष्प और फल आदि सामग्री लेकर प्रसन्नता पूर्वक नगरके बाहर कहां जा रहे हैं ? क्या कोई विशेष उत्सव है या देव यात्रा है ?" पार्श्वकुमारका यह प्रश्न सुनकर एक कर्मचारीने कहा —"हे कृपानिधान स्वामिन् ! कमठ नामक एक तपस्वीका जंगल में आगमन हुआ है। वे तप करते हुए पंचाग्निकी साधना करते हैं। उन्हींकी पूजा करने यह सब लोग जा रहे हैं।" अनुचरकी यह बात सुन पार्श्वप्रभु भी कौतुकवश घोड़ेपर सवार हो सेवकोंके साथ उसे देखनेके लिये चले। वहां जाकर उन्होंने देखा कि कमठ तीव्र पंचाग्निमें बैठा हुआ, धूम्रपान और अज्ञान कष्टसे देह-दमन कर रहा है। इसी समय तीन ज्ञानके धारक पार्श्वप्रभुने देखा कि

अग्निकुण्डमें डाले हुए काष्ठमें एक बड़ासा नाग* जल रहा है। यह देखकर दयालु पार्श्वकुमारने कहा—"अहो! कैसा अज्ञान है कि तपमें भी दया नहीं दिखायी देती। यह तो सभी लोग जानते हैं कि दया रहित धर्मसे मुक्ति नहीं मिलती। कहा भी है कि जो प्राणियोंके वधसे धर्मको चाहता है, वह मानो अग्निसे कमल-वन, सूर्यास्तके बाद दिन, सर्प-मुखसे अमृत, विवादसे साधुवाद, अजीर्णसे आरोग्य और विषसे जीवन चाहता है। इसलिये दयाही प्रधान है। जिस प्रकार स्वामी बिना सैन्य, जीव बिना शरीर, चन्द्र बिना रात्रि और हंस-युगल बिना नदी शोभा नहीं देती, उसी प्रकार दयाके बिना धर्म नहीं सोहता। इसलिये हे तपस्विन्! दया रहित वृथा ही क्लेश दायक कष्ट क्यों सहन करते हो? जीवघातसे पुण्य हो ही कैसे सकता है?" पार्श्वकुमारकी यह बात सुनकर कमठने कहा—"हे राजकुमार! राजा लोग तो केवल हाथी और अश्व क्रीड़ा करना ही जानते हैं। धर्मको तो हमारे जैसे महामुनि ही जान सकते हैं।" कमठका यह अभिमान पूर्ण वचन सुनकर जगत्पति पार्श्वकुमारने अपने अनुचरों द्वारा अग्निकुण्डसे वह काष्ठ बाहर निकलवाया और उसे यत्न पूर्वक चिरवाकर उसमेंसे

* इस चरित्रके मूल लेखक उदयवीर गणिने एवं हेमचन्द्राचार्य आदि अन्यान्य पार्श्वनाथ-चरित्रके रचयिताओंने भी अपने-अपने चरित्रोंमें केवल एक साँपका उल्लेख किया है, किन्तु "कल्पसूत्र" की कई टिकाओंमें नाग-नागिन दोनोंका उल्लेख दिया गया है इसीसे यहांपर हमने अपने चित्रमें नाग-नागिन दोनोंका भाव दिखाया है। —सम्पादक

जलता और व्याकुल होता हुआ सर्प बाहर निकल आया। [पृष्ठ १८५]

जलता और व्याकुल होता हुआ सर्प बाहर निकलवाया एवं उसी समय प्रभुने उस नागको नमस्कार मन्त्र सुनाया। इस प्रकार प्रभुके वचनामृतका पान कर वह सर्प समाधिपूर्वक मृत्युको प्राप्त हो नागाधिप धरणेन्द्र बनकर नागदेवोंके बीचमें विराजने लगा।

इस घटनाको देखकर लोग कमठके अज्ञानकी निन्दा करते हुए पार्श्वकुमारको स्तुति करने लगे। इधर पार्श्वकुमार भी अपने निवासस्थानको लौट आये। इसके बाद कमठ भी उनसे द्वेष करता हुआ कहीं अन्यत्र चला गया। वहाँ वह हठपूर्वक बड़ा ही कष्ट कर बालतप करने लगा। इसी तरह अज्ञान तप करते हुए और प्रभुपर द्वेष रखते हुए उसकी मृत्यु हो गयी। अनन्तर वह भवनवासी मेघ कुमार देवताओंमें मेघमाली नामक असुर हुआ। क्योंकि बाल तप करनेमें सावधान, उत्कट रोष धारण करनेवाले, तपसे गर्विष्ठ और वैरसे प्रतिबद्ध प्राणियोंकी मृत्यु होनेपर असुरयोनिमें ही उनका जन्म होता है। इस प्रकार वह असुराधम मेघमाली दक्षिण श्रेणीमें डेढ़ पल्योपमका आयुष्य प्राप्त कर विविध प्रकारके देवसुख उपभोग करने लगा। इधर पार्श्वकुमार भी पूर्ववत् संसार-सुख भोगते हुए आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक बार लोगोंके अनुरोधसे पार्श्वकुमार वसन्त ऋतुमें उद्यानकी शोभा देखने गये। वहां लता, पुष्प, वृक्ष और नाना प्रकारके कौतुकोंको देखते-देखते पार्श्वप्रभुकी दृष्टि एक विशाल प्रासादपर जा पड़ी। वह प्रासाद तोरण और ध्वजा पताकाओंसे बहुत ही

उत्तमता पूर्वक सजाया गया था। इसलिये कौतुकवश भगवानने उसमें प्रवेश किया। प्रासादकी दीवालोंपर नाना प्रकारके सुशोभित चित्र अंकित थे। इन चित्रोंमें राज्य और राजीमतीका त्यागकर संयमश्रीको वरण करनेवाले श्रीनेमिनाथ भगवानका भी एक चित्र था। उसे देखकर पार्श्वकुमार अपने मनमें कहने लगे—"अहो! श्रीनेमिका वैराग्य भी कैसा अनुपम था, कि उन्होंने युवावस्थामें ही राज्य और राजीमतीका त्याग कर, विरक्त हो दीक्षा ग्रहण कर ली थी। अतएव अब मुझे भी इस असार संसारका त्याग कर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

इस प्रकारका विचारकर पार्श्वकुमार संयम ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए। उनके हृदय-पटपर अब वैराग्यका पक्का रंग चढ़ गया था और उनके भोगावली कर्म भी क्षय हो गये थे। इसी समय सारस्वतादि नव प्रकारके लोकान्तिक देवताओंने पांचवें ब्रह्मलोक से आकर प्रभुको नमस्कार कर निवेदन किया कि—"हे स्वामिन्! हे त्रैलोक्य नायक! हे संसार तारक! आपकी जय हो! हे सकल कर्म निवारक प्रभो! त्रिभुवनका उपकार करनेवाले धर्म तीर्थकी आप स्थापना करें। हे नाथ! आप स्वयं ज्ञानी और संवेगवान हैं, इसलिये सब कुछ जानते ही हैं, हम लोग तो केवल अपने कर्त्तव्यकी पालना करनेके लिये आपसे प्रार्थना कर रहे हैं।" इस प्रकार प्रार्थना कर, देवता लोग पुनः पार्श्वप्रभुको प्रणाम कर अपने निवासस्थानको चले गये।

तदनन्तर पार्श्वकुमार उस प्रासादसे निकलकर अपने निवास

सस्थानको लौट आये। पश्चात् अपने मित्रोंको विदा करनेके बाद वे पलंगपर बैठकर विचार करने लगे—"अहो! सम्पत्ति जल-तरंगकी भांति अस्थिर है, यौवन चार दिनकी चांदनी है और जीवन शरद ऋतुके बादलोंकी तरह चंचल है। इसलिये हे प्राणियो! तुम लोग धनसे दूसरेका उपकार क्यों नहीं करते? जहांसे जन्म होता है, वहीं लोग अनुरक्त होते हैं और जिसका पान करते हैं, उसीका मर्दन करते हैं। किन्तु लोग कितने मूर्ख हैं कि यह सब देखनेपर भी उन्हें वैराग्य नहीं आता। हे प्राणियो! हृदयमें नमस्कार रूप हारको धारण करो। कानोंमें शास्त्र श्रवण रूपी कुण्डल, हाथमें दान रूपी कंकण और सिरपर गुरु-आज्ञा रूप मुकुट धारण करो। इससे शिव वधू तुम्हारे कंठमें शीघ्रही वरमाला आरोपित करेगी। अहो! इस संसारमे सूर्य और चन्द्र रूपी दो वृषभ रात्रि और दिन रूपी घटमालसे जीवोंका आयुष्य रूपी जल ग्रहण किया करते हैं और काल रूपी अरघट्टको घुमाया करते हैं। ऐसी कोई जाति नहीं है, ऐसी कोई योनि नहीं है, ऐसा कोई स्थान नहीं है, और ऐसा कोई कुल नहीं है, जहां प्राणियोंका अनन्तवार जन्म और अनन्तवार मरण न हुआ हो!" इसी प्रकारके विचारोंमें पार्श्व-कुमारने वह समूची रात्रि व्यतीत कर दी। सुबह सूर्योदय होनेपर नित्यकर्मसे निवृत्त हो वे अपने माता-पिताके पास गये और उन्हें नमस्कार कर उनसे सारा हाल निवेदन किया। उनकी बात सुन कर माता-पिताने पहले उन्हें बहुत कुछ समझाया, किन्तु अन्तमें उनका दृढ़ निश्चय देख, उन्होंने उन्हें दीक्षा ग्रहण करनेके लिये खुशीसे अनुमति दे दी।

उत्तमता पूर्वक सजाया गया था। इसलिये कौतुकवश भगवानने उसमें प्रवेश किया। प्रासादकी दीवालोंपर नाना प्रकारके सुशोभित चित्र अंकित थे। इन चित्रोंमें राज्य और राजीमतीका त्यागकर संयमश्रीको वरण करनेवाले श्रीनेमिनाथ भगवानका भी एक चित्र था। उसे देखकर पार्श्वकुमार अपने मनमें कहने लगे—"अहो! श्रीनेमिका वैराग्य भी कैसा अनुपम था, कि उन्होंने युवावस्थामें ही राज्य और राजीमतीका त्याग कर, विरक्त हो दीक्षा ग्रहण कर ली थी। अतएव अब मुझे भी इस असार संसारका त्याग कर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

इस प्रकारका विचारकर पार्श्वकुमार संयम ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए। उनके हृदय-पटपर अब वैराग्यका पक्का रंग चढ़ गया था और उनके भोगावली कर्म भी क्षय हो गये थे। इसी समय सारस्वतादि नव प्रकारके लोकान्तिक देवताओंने पांचवें ब्रह्मलोक से आकर प्रभुको नमस्कार कर निवेदन किया कि—"हे स्वामिन्! हे त्रैलोक्य नायक! हे संसार तारक! आपकी जय हो! हे सकल कर्म निवारक प्रभो! त्रिभुवनका उपकार करनेवाले धर्म तीर्थकी आप स्थापना करें। हे नाथ! आप स्वयं ज्ञानी और संवेगवान हैं, इसलिये सब कुछ जानते ही हैं, हम लोग तो केवल अपने कर्त्तव्यकी पालना करनेके लिये आपसे प्रार्थना कर रहे हैं।" इस प्रकार प्रार्थना कर, देवता लोग पुनः पार्श्वप्रभुको प्रणाम कर अपने निवासस्थानको चले गये।

तदनन्तर पार्श्वकुमार उस प्रासादसे निकलकर अपने निवास

अत्यन्त शोभा दे रहे थे। चारों ओर बाजे बज रहे थे, मंगल-गान गाये जा रहे थे और वन्दीजन जय-जयकार कर रहे थे। प्रभुकी पालखीको सुरासुर और मनुष्य वहन कर रहे थे। जिधर शिबिका निकलती, उधर ही लोग उनके दर्शन करनेको खडे हो जाते और उनकी स्तुति करने लगते थे। इस प्रकार आनन्द पूर्वक संयम श्रीको वरण करनेके लिये भगवान आश्रमपद उद्यानमें पहुँचे। यहां शिबिकासे नीचे उतर कर अशोक वृक्षके नीचे भगवानने अपने समस्त रत्नाभरणोंको त्याग कर, ज्ञान,दर्शन तथा चारित्र रूपी रत्नोंको ग्रहण किया। उस समय शक्रेन्द्रने प्रभुके कंधे पर देवदूष्य-वस्त्र रखा। इस प्रकार पौष कृष्ण एकादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें अट्ठम तपकर पंचमुष्टिसे केशोंका लोच किया और "नमो सिद्धाणं" यह पद स्मरण करते हुए भगवानने चारित्र अंगीकार किया। चारित्र अंगीकार करतेही उन्हें चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। पंचमुष्टिसे लुंचित किये हुए भगवंतके केशोंको शक्रेन्द्रने अपने वस्त्रमें लेकर क्षीरसागरमें विसर्जन किये। प्रभुके साथ तीन सौ राजकुमारोंने भी संवेगके कारण चारित्र अंगीकार किया। इसके बाद सुरासुर और राज परिवार भगवानको नमस्कार कर अपने स्थानको गये और भगवान अपनी दोनों भुजाये लम्बी कर वहीं कायोत्सर्ग करने लगे। अनन्तर सवेरा होते ही प्रभुने वहांसे विहार किया।

अब अट्ठम तपका पारण करनेके लिये भगवानने कोपकटाक्ष नामक सन्निवेशमें धन्य नामक एक गृहस्थके घरमें प्रवेश किया।

अब पार्श्वप्रभुने दीक्षा लेनेके लिये धार्मिक दान देना आरम्भ किया। उस समय प्रभुके आदेशसे इन्द्रने सर्वत्र घोषणा कर दी कि पार्श्वप्रभु खूब दान दे रहे हैं। जिसकी इच्छा हो, वह खुशीसे दान ग्रहण कर सकता है।" इसके बाद शक्रेन्द्रके आदेशसे कुबेर भगवानके धन-भण्डारमें मेघकी भांति धनकी वृष्टि करने लगे। इधर प्रभु भी प्रति दिन एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्रायें दान देने लगे। इससे समस्त संसारका दारिद्र रूपी दावानल शान्त हो गया और चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द दिखायी देने लगा। इस अवसरपर भगवानने सब मिला कर तीन अरब, अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख (३८८८००००००) स्वर्ण मुद्रायें दान कीं।

इसके बाद दीक्षाका अवसर जानकर चौंसठ इन्द्र वहां उपस्थित हुए और उन्होंने दीक्षाका महोत्सव मनाना आरम्भ किया। इस समय सर्व प्रथम तीर्थजलसे भरे हुए सोने, चान्दी और रत्नों के कुम्भ द्वारा भगवानको स्नान कराया। इसके बाद चन्दन कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यसे प्रभुको विलेपन करा, उन्हें दिव्य वस्त्र पहनाये गये। उस समय पारिजात पुष्पोंके रमणीय हार प्रभृति धारण करनेके कारण भगवान बहुत ही सुन्दर दिखलायी देने लगे। इसके बाद इन्द्रोंने उन्हें सुन्दर हार, कुण्डल, मुकुट, कंकण और बाजूबन्द प्रभृति आभूषण पहनाये। तदनन्तर शक्रेन्द्रकी बनायी हुई पालखीपर आरूढ हो प्रभुने उद्यान की ओर प्रस्थान किया। उस समय भगवानके ऊपर छत्र और दोनों ओर दो चामर

अत्यन्त शोभा दे रहे थे। चारों ओर बाजे बज रहे थे, मंगल-गान गाये जा रहे थे और बन्दीजन जय-जयकार कर रहे थे। प्रभुकी पालखीको सुरासुर और मनुष्य वहन कर रहे थे। जिधर शिविका निकलती, उधर ही लोग उनके दर्शन करनेको खड़े हो जाते और उनकी स्तुति करने लगते थे। इस प्रकार आनन्द पूर्वक संयम श्रीको वरण करनेके लिये भगवान आश्रमपद उद्यानमें पहुँचे। यहां शिविकासे नीचे उतर कर अशोक वृक्षके नीचे भगवानने अपने समस्त रत्नाभरणोंको त्याग कर, ज्ञान,दर्शन तथा चारित्र रूपी रत्नोंको ग्रहण किया। उस समय शक्रेन्द्रने प्रभुके कंधे पर देवदूष्य-वस्त्र रखा। इस प्रकार पौष कृष्ण एकादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें अट्ठम तपकर पंचमुष्टिसे केशोंका लोच किया और "नमो सिद्धाणं" यह पद स्मरण करते हुए भगवानने चारित्र अंगीकार किया। चारित्र अंगीकार करतेही उन्हें चौथा मन. पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। पंचमुष्टिसे लुंचित किये हुए भगवंतके केशोंको शक्रेन्द्रने अपने वस्त्रमें लेकर क्षीरसागरमें विसर्जन किये। प्रभुके साथ तीन सौ राजकुमारोंने भी सवेगके कारण चारित्र अंगीकार किया। इसके वाद सुरासुर और राज परिवार भगवानको नमस्कार कर अपने स्थानको गये और भगवान अपनी दोनों भुजाये लम्बी कर वहीं कायोत्सर्ग करने लगे। अनन्तर सवेरा होते ही प्रभुने वहांसे विहार किया।

अब अट्ठम तपका पारण करनेके लिये भगवानने कोपकटाक्ष नामक सन्निवेशमें धन्य नामक एक गृहस्थके घरमें प्रवेश किया।

उस समय साक्षात् कल्पवृक्षके समान भगवानको देख कर धन्यने अपनेको पुण्यशाली माना और तत्काल उत्पन्न हुए विवेकके कारण प्रभुको नमस्कार कर उन्हें शुद्ध बुद्धिपूर्वक परमान्न (खीर) से पारण कराया। उस समय आकाशके देवताओंने "अहो दानं, अहो दानं" की घोषणा कर आकाशमें दुंदुभी बजायी, सुगन्धित जलकी वृष्टिसे पृथ्वीको शीतल किया, सुवर्णकी वृष्टि की, नाना प्रकारके पुष्पोंसे भूमीको अलंकृत किया और दिव्य नाटकोंका अभिनय किया। इस प्रकार भगवानको पारण करानेसे धन्यसेठको बड़ी प्रसन्नता हुई। जिस स्थानपर प्रभुने पारण किया था, उस स्थानपर उसने हर्षपूर्वक पाद पीठकी रचना करायी।

इसके बाद भगवान ग्राम, और नगरादिकमें विचरण करने लगे। वसुधाकी भांति सर्वसह, शरद ऋतुके बादलोंकी भांति निर्मल, आकाशकी भांति निरालम्ब, वायुकी भांति अप्रतिबद्ध, अग्निकी भांति देदीप्यमान, समुद्रकी भांति गंभीर, मेरुकी भांति अप्रकंप, भारंड पक्षीकी भांति अप्रमादी, पद्मपत्रकी भांति निर्लेप, पांच समितिसे समित, तीन गुप्तियोंसे गुप्त, बाईस परिषहोंको जीतनेवाले, चरण न्याससे पृथ्वीको पावन करनेवाले और पंचाचारका पालन करनेवाले पार्श्वप्रभु भ्रमण करते हुए कलिपर्वतके नीचे कादम्बरी अरण्यमें पहुँचे। वहां उन्होंने कुण्ड सरोवरके तटपर उन्नीस दोष रहित कायोत्सर्ग करना आरम्भ किया। उन्नीस दोष इस प्रकार हैं—

(१) घोटक दोष—घोड़ेकी तरह पैर ऊँचा या टेढ़ा रखना।
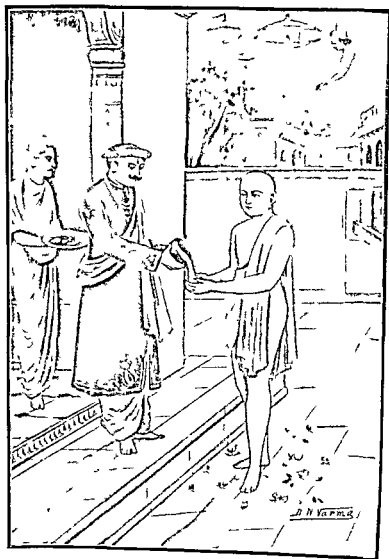
आकाशके देवताओंने "अहो दानं, अहो दानं"की घोषणा कर आकाशमें दुंदुभी बजायी।

[पृष्ठ ३२६]

(२) लता दोष—वायुसे जिस तरह लता कांपती है, उस तरह शरीरको हिलाते रहना।

(३) स्तंभादि दोष—खंभ आदिके सहारे रहना।

(४) माल दोष—मकानके खंडसे सिर लगाकर रहना।

(५) उधि दोष—गाड़ेकी उधिकी तरह अंगूठा और एँडो मिला कर दोनों पैर साथ रखना।

(६) निगड़ दोष—पैरोंको फैला कर रखना।

(७) शबरी दोष—भिल्लिनीकी भांति गुह्य स्थानपर हाथ रखना।

(८) खलिण दोष—घोड़ेकी लगामको तरह हाथमें रजोहरण रखना

(९) वधू दोष—नव विवाहिता वधूकी भांति सिर नीचा रखना।

(१०) लंबुत्तर दोष—नाभोसे लेकरके घुटनेके नोचेतक लंबा वस्त्र रखना।

(११) स्तन दोष—मच्छरोंके भय किंवा अज्ञानताके कारण स्त्रियों-की तरह शरोरको ढक रखना।

(१२) संयती दोष—शीतादिकके भयसे साध्वीकी भांति दोनों कंधे या सारे शरीरको ढक रखना।

(१३) भमुहंगुली दोष—आलोयना आदिका कायोत्सर्ग करनेके समय गिननेके लिये उंगली और भौंह हिलाना।

(१४) वायस दोष—कौव्वेकी तरह आंखकी पुतलियां नचाना।

(१५) कपित्थ दोष—जूं किंवा पसीनेके भयसे वस्त्रको कपित्थ (कैथा) की तरह छिपा रखना।

(१६) शिरः कंप दोष—भूतादिके आवेशितकी तरह सिर धुनाते रहना।
(१७) मूक दोष—गुंगेकी तरह हूँ हूँ करना।
(१८) मदिरा दोष—उन्मत्तकी भांति हाथ मटकाते हुए वक झक करना।
(१९) प्रेक्ष्य दोष—वानरकी भांति इधर उधर देखना और मुंह बनाना।

इस प्रकार उन्नीस दोषोंको बचाकर पार्श्व प्रभु कायोत्सर्ग करने लगे। दोनों दृष्टियोंको नासिकाके अग्रभागपर रख, ऊपर-नीचेके दांतोंको स्पर्श कराये विना, पूर्व या उत्तरकी ओर मुंह रख, प्रसन्न चित्तसे अप्रमत्त और सुसंस्थान पूर्वक ध्यानमें तत्पर हुए। जिस समय भगवान इस तरह कायोत्सर्ग कर रहे थे, उसी समय महीधर नामक एक हाथी वहां जल पीनेके लिये आया। प्रभुको देखते ही उसे जाती स्मरण ज्ञान हो आया अतएव वह अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा :—

पूर्व जन्ममें मैं हेम नामक एक कुलपुत्रक था। दैव-योगसे मेरा शरीर वामन हो गया, इसलिये लोग मेरी हँसी किया करते थे। जब पिताकी मृत्यु हो गयी तब मैं इसी आफतके मारा घर छोड़ कर जंगलमें चला गया। वहां विचरण करते-करते एक दिन मेरी एक मुनिसे भेंट हो गयी। उन्होंने मुझे यतिव्रतके लिये अयोग्य समझ कर श्रावकत्व ग्रहण कराया और तबसे मैं श्रावक हो गया; किन्तु लोग मेरी हँसी उड़ाया करते थे इसलिये

में बहुतही दुःखी रहता। अन्तमें अपने छोटे शरीरकी निन्दा करता और बड़े शरीरको चाहता हुआ आर्तध्यानसे मृत्युको प्राप्त करनेके बाद मैं अपनी आन्तरिक इच्छाके कारण विशाल-काय हाथी हुआ। खेद है कि पशु होनेके कारण मैं इस समय कुछ भी नहीं कर सकता। हाँ, अपनी सूंढ़से भगवानकी कुछ अर्चना अवश्य कर सकता हूँ।" यह सोचते हुए उसने सरोवरमें प्रवेश कर स्नान किया और वहाँसे कमल लेकर भगवानके पास आया। इसके बाद उसने पार्श्व प्रभुकी तीन प्रदक्षिणा कर कम-लोंसे उनके चरणकी पूजा की। एवं स्तुति तथा प्रणामकर अपनेको धन्य मानता हुआ वह अपने निवासस्थानको चला गया।

इसके बाद निकटवर्ती देवताओंने सुगंधित वस्तुओंसे प्रभुकी पूजा की और उनके सम्मुख नाटकका अभिनय किया। उस समय किसी पुरुषने चम्पानगरीके करकंडु नामक राजाको यह सारा हाल कह सुनाया। इससे राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह अपनी सेना तथा वाहनोंको लेकर भगवानको वन्दना करनेके लिये उनकी सेवामें आ उपस्थित हुआ। इसके बाद वहां उसने एक चैत्य बनवाया और उसमें पार्श्वनाथ भगवानकी नव हाथ ऊंची एक प्रतिमा स्थापित की। देवताओंने प्रसन्न हो वहां भी अभिनय किया। पश्चात् वह प्रतिमा अधिष्ठायकके प्रभावसे बड़ी प्रभावशाली हुई और लोगोंको अभीष्ट फल देने लगी। उसके पास ही कलि नामक पर्वत और कुण्ड नामक सरोवर होनेके कारण वहां संसारको पावन करनेवाला कलिकुण्ड नामक तीर्थ हुआ। प्रभुके

प्रति भक्ति होनेके कारण उस हाथीकी मृत्यु होनेपर, वह महर्द्धिक व्यन्तर हुआ और इसी तीर्थका उपासक हुआ।"

पार्श्वप्रभु विहार करते हुए अब शिवपुरी नामक नगरीके समीप पहुँचे। वहां वे कौशंब्य नामक वनमें कायोत्सर्ग करने लगे। उस समय धरणेन्द्रने अपने पूर्व जन्मका उपकार स्मरण कर महर्द्धिके साथ वहां आकर प्रभुको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और स्तवन कर प्रभुके सम्मुख अभिनय करने लगा। उस समय उसने मनमें विचार किया कि जबतक मैं प्रभुकी सेवामें उपस्थित रहूं, तबतक इन्हें धूप न लगे तो अच्छा हो। यह सोच कर उसने उनके मस्तकपर सहस्र फणका छत्र धारण किया। कुछ दिनोंके बाद जब भगवानने अन्यत्र विहार किया तब धरणेन्द्र भी अपने स्थान चला गया। उस समयसे लोगोंने वहां अहिच्छत्रा नामक एक नगरी बसायी और उसी जगह 'अहिच्छत्रा' नामक तीर्थ प्रसिद्ध किया।

अब भगवान राजपुर नगरके समीप एक उपवनमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगे। वहां ईश्वर नामक एक राजा राज करता था। वह एक दिन अपने उपवनकी ओर जा रहा था, इतनेमें उसके सेवकोंने कहा कि—"हे स्वामिन्! यहां पासहीमें अश्वसेन राजाके पुत्र पार्श्व भगवान् व्रत कर रहे हैं।" यह सुनकर उसे बड़ा ही आनन्द हुआ और वह पार्श्वनाथके दर्शन करनेके लिये उनके पास गया। वहां पहुँचने पर जब उसने पार्श्वनाथको देखा, तब वह अपने मनमें सोचने लगा कि—"मैंने इन्हें अवश्य कहीं देखा है।"

यह विचार करते-करते उसे मूर्च्छा आ गया और तुरत ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। वह सावधान हो कहने लगा—"अहो! आश्चर्यको बात है, कि मुझे अपने पूर्व जन्मकी सभी बातें याद आ रही हैं।" यह सुन उसके मन्त्रीने पूछा—"राजन्! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह बातें हमें भी कह सुनायें।" राजाने कहा—"सुनाता हूं। ध्यानसे सुनो।

पूर्व कालमें वसन्तपुर नामक नगरमें दत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने लग्न और निमित्त-ज्ञानके कथनसे संसारमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी। एक बार उस ब्राह्मणको कर्मवशात् कुष्ठ रोग हो गया। नाना प्रकारके उपचार करने पर भी उसका वह रोग शान्त न हुआ। कुछ दिनोंके बाद घृणाके कारण उसके परिवारवालोंने उसका त्याग कर दिया। अतएव उसे बहुत ही दुःख हुआ। इस दुःखसे मुक्ति लाभ करनेके लिये वह गंगाके तटपर पहुँचा और पानीमें कूद पड़नेका विचार किया। इतनेमें आकाश-मार्गसे जाते हुए एक मुनिने उसे देखा। उन्होंने उससे पूछा—"हे महाभाग! तू गंगामें क्यों कूदना चाहता है?" दत्तने कहा—"हे साधो! रोगके कारण मैं बहुत ही दुःखी हो रहा हूँ। इसीलिये प्राण देकर सदाके लिये मैं छुटकारा प्राप्त करना चाहता हूँ। यह सुन मुनिने कहा—"हे महाभाग! तू सर्व रोग नाशक जिन धर्म रूपी महा रसायनका सेवन कर और उसीको निरन्तर सेवा कर तथा विषवृक्ष (संसार) के मूलभूत दुष्कर्मका छेदन कर।" मुनिकी यह बात सुन कर दत्तने पूछा—"भगवन! आप धर्मको

प्रति भक्ति होनेके कारण उस हाथीकी मृत्यु होनेपर, वह महर्द्धिक व्यन्तर हुआ और इसी तीर्थका उपासक हुआ।"

पार्श्वप्रभु विहार करते हुए अब शिवपुरी नामक नगरीके समीप पहुँचे। वहां वे कौशंब्य नामक वनमें कायोत्सर्ग करने लगे। उस समय धरणेन्द्रने अपने पूर्व जन्मका उपकार स्मरण कर महर्द्धिके साथ वहां आकर प्रभुको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और स्तवन कर प्रभुके सम्मुख अभिनय करने लगा। उस समय उसने मनमें विचार किया कि जबतक मैं प्रभुकी सेवामें उपस्थित रहूं, तबतक इन्हें धूप न लगे तो अच्छा हो। यह सोच कर उसने उनके मस्तकपर सहस्र फणका छत्र धारण किया। कुछ दिनोंके बाद जब भगवानने अन्यत्र विहार किया तब धरणेन्द्र भी अपने स्थान चला गया। उस समयसे लोगोंने वहां अहिच्छत्रा नामक एक नगरी बसायी और उसी जगह 'अहिच्छत्रा' नामक तीर्थ प्रसिद्ध किआ।

अब भगवान राजपुर नगरके समीप एक उपवनमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगे। वहां ईश्वर नामक एक राजा राज करता था। वह एक दिन अपने उपवनकी ओर जा रहा था, इतनेमें उसके सेवकोंने कहा कि—"हे स्वामिन्! यहां पासहीमें अश्वसेन राजाके पुत्र पार्श्व भगवान् व्रत कर रहे हैं।" यह सुनकर उसे बड़ा ही आनन्द हुआ और वह पार्श्वनाथके दर्शन करनेके लिये उनके पास गया। वहां पहुँचने पर जब उसने पार्श्वनाथको देखा, तब वह अपने मनमें सोचने लगा कि—"मैंने इन्हें अवश्य कहीं देखा है।"

यह विचार करते-करते उसे मूर्च्छा आ गया और तुरत ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। वह सावधान हो कहने लगा—"अहो! आश्चर्यकी वात है, कि मुझे अपने पूर्व जन्मकी सभी वातें याद आ रही हैं।" यह सुन उसके मन्त्रीने पूछा—"राजन्! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह वातें हमें भी कह सुनायें।" राजाने कहा—"सुनाता हूं। ध्यानसे सुनो।

पूर्व कालमें वसन्तपुर नामक नगरमें दत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने लग्न और निमित्त ज्ञानके कथनसे संसारमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी। एक वार उस ब्राह्मणको कर्मवशात् कुष्ठ रोग हो गया। नाना प्रकारके उपचार करने पर भी उसका वह रोग शान्त न हुआ। कुछ दिनोंके वाद घृणाके कारण उसके परिवारवालोंने उसका त्याग कर दिया। अतएव उसे वहुत ही दुःख हुआ। इस दुःखसे मुक्ति लाभ करनेके लिये वह गंगाके तटपर पहुँचा और पानीमें कूद पडनेका विचार 'किया। इतनेमें आकाश-मार्गसे जाते हुए एक मुनिने उसे देखा। उन्होंने उससे पूछा—"हे महाभाग! तू गंगामें क्यों कूदना चाहता है?" दत्तने कहा—"हे साधो! रोगके कारण मैं वहुत ही दुःखी हो रहा हूँ। इसीलिये प्राण देकर सदाके लिये मैं छुटकारा प्राप्त करना चाहता हूँ। यह सुन मुनिने कहा—"हे महाभाग! तू सर्व रोग नाशक जिन धर्म रूपी महा रसायनका सेवन कर और उसीको निरन्तर सेवा कर तथा विषवृक्ष (संसार) के मूलभूत दुष्कर्मका छेदन कर।" मुनिकी यह वात सुन कर दत्तने पूछा—"भगवन्! आप धर्मको

प्रति भक्ति होनेके कारण उस हाथीकी मृत्यु होनेपर, वह महर्द्धिक व्यन्तर हुआ और इसी तीर्थका उपासक हुआ।"

पार्श्वप्रभु विहार करते हुए अब शिवपुरी नामक नगरीके समीप पहुँचे। वहां वे कौशंब्य नामक वनमें कायोत्सर्ग करने लगे। उस समय धरणेन्द्रने अपने पूर्व जन्मका उपकार स्मरण कर महर्द्धिके साथ वहां आकर प्रभुको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और स्तवन कर प्रभुके सम्मुख अभिनय करने लगा। उस समय उसने मनमें विचार किया कि जबतक मैं प्रभुकी सेवामें उपस्थित रहूं, तबतक इन्हें धूप न लगे तो अच्छा हो। यह सोच कर उसने उनके मस्तकपर सहस्र फणका छत्र धारण किया। कुछ दिनोंके बाद जब भगवानने अन्यत्र विहार किया तब धरणेन्द्र भी अपने स्थान चला गया। उस समयसे लोगोंने वहां अहिच्छत्रा नामक एक नगरी बसायी और उसी जगह 'अहिच्छत्रा' नामक तीर्थ प्रसिद्ध किया।

अब भगवान राजपुर नगरके समीप एक उपवनमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगे। वहां ईश्वर नामक एक राजा राज करता था। वह एक दिन अपने उपवनकी ओर जा रहा था, इतनेमें उसके सेवकोंने कहा कि—"हे स्वामिन्! यहां पासहीमें अश्वसेन राजाके पुत्र पार्श्व भगवान् व्रत कर रहे हैं।" यह सुनकर उसे बड़ा ही आनन्द हुआ और वह पार्श्वनाथके दर्शन करनेके लिये उनके पास गया। वहां पहुँचने पर जब उसने पार्श्वनाथको देखा, तब वह अपने मनमें सोचने लगा कि—"मैंने इन्हें अवश्य कहीं देखा है।"

यह विचार करते-करते उसे मूर्च्छा आ गया और तुरत ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। वह सावधान हो कहने लगा—"अहो! आश्चर्यको बात है, कि मुझे अपने पूर्व जन्मकी सभी बातें याद आ रही हैं।" यह सुन उसके मन्त्रीने पूछा—"राजन्! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह बातें हमें भी कह सुनायें।" राजाने कहा—"सुनाता हूं। ध्यानसे सुनो।

पूर्व कालमें वसन्तपुर नामक नगरमें दत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने लग्न और निमित्त-ज्ञानके कथनसे संसारमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी। एक बार उस ब्राह्मणको कर्मवशात् कुष्ठ रोग हो गया। नाना प्रकारके उपचार करने पर भी उसका वह रोग शान्त न हुआ। कुछ दिनोंके बाद घृणाके कारण उसके परिवारवालोंने उसका त्याग कर दिया। अतएव उसे बहुत ही दुःख हुआ। इस दुःखसे मुक्ति लाभ करनेके लिये वह गंगाके तटपर पहुँचा और पानीमें कूद पड़नेका विचार किया। इतनेमें आकाश-मार्गसे जाते हुए एक मुनिने उसे देखा। उन्होंने उससे पूछा—"हे महाभाग! तू गंगामें क्यों कूदना चाहता है?" दत्तने कहा—"हे साधो! रोगके कारण मैं बहुत ही दुःखी हो रहा हूँ। इसीलिये प्राण देकर सदाके लिये मैं छुटकारा प्राप्त करना चाहता हूँ। यह सुन मुनिने कहा—"हे महाभाग! तू सर्व रोग नाशक जिन धर्म रूपी महा रसायनका सेवन कर और उसीको निरन्तर सेवा कर तथा विषवृक्ष (संसार) के मूलभूत दुष्कर्मका छेदन कर।" मुनिकी यह बात सुन कर दत्तने पूछा—"भगवन्! आप धर्मको

रसायन क्यों कहते हैं ?" मुनिने कहा—"हे महाभाग ! कर्म जन्म रोगोंको नष्ट करनेके लिये धर्म रसायन रूप ही है।" मुनिकी यह बात सुन दत्तने शुद्ध भावसे सम्यक्त्व सहित पंचअणुव्रत रूपी गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। उस समयसे वह अचित आहार, प्रासुक जलपान और पंचपरमेष्टी नमस्कार ध्यान करने लगा। साथही अपने हृदयमें सदा शुभ भावनाओंको ही स्थान देने लगा।

किसी समय दत्त एक चैत्यमें गया और वहां जिनेश्वर तथा मुनिको वन्दन कर वहीं बैठ गया। उसी जगह पुष्कलिक नामक एक श्रावक पहलेसे ही मुनिके पास बैठा हुआ था। उसने दत्तको देखकर मुनिसे पूछा—"हे भगवन्! इस प्रकारके विविध व्याधिसे युक्त मनुष्योंको जिन मन्दिरमें आना और जिन-वन्दन करना उचित है ?" मुनिने कहा—"हे महाभाग ! अवग्रहका पालन और आशातनाका निवारण कर देव-वन्दन करनेमें क्या दोष है ? साधुओंका शरीर भी पसीनेके कारण मलीन हो जाता है, किन्तु वे भी उसी रूपसे चैत्यमें देव-वन्दन करते हैं।" यह सुन पुष्कलिकने पुनः पूछा—"हे भगवन्! यह मनुष्य किस गतिको प्राप्त होगा ?" मुनिने ज्ञानके प्रभावसे सोच कर कहा—"पूर्व कालमें आयुका बन्धन होनेसे यह मृत्यु होनेपर राजपुरमें तिर्यंच गतिमें मुर्गेके रूपमें उत्पन्न होगा।" अपना यह भविष्य सुनकर दत्तको बड़ा ही दुःख हुआ और वह वहीं बैठ कर रोने कलपने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर मुनिने उसे उपदेश देते हुए कहा—"हे सुज्ञ ! खेद मत कर। जिस तरह प्रचण्ड वायुके कारण

उछलते हुए समुद्रके उत्ताल-तरंगोंका रोकना असंभव है, उसी तरह पूर्वकर्मके विपाकको भी कोई रोक नहीं सकता। ज्ञानी पुरुषोंने ठीक ही कहा है कि जीवको सुख दुःख देनेवाला और कोई नहीं है। "इनको देनेवाला कोई और है" यह मानना निरी अज्ञानता है। हे निष्ठुर आत्मा! पूर्वकालमें तूने जो दुष्कर्म किये हैं, वही इस समय तुझे भोग करने पड़ते हैं। किसीने ठीक ही कहा है कि—

"आरोहतु गिरिशिखरं, समुद्रमुल्लंघ्य यातु पातालं।
विधि लिखिताक्षर मालं, फलति सर्वं न संदेहः॥"
उदयति यदि भानुः, पश्चिमायां दिशायां,
प्रचलति यदि मेरुः, शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं, पर्वताग्रे शिलायां,
तदपि न चलतीयं, भाविनी कर्म रेखा॥

अर्थात्—"पर्वतके शिखरपर चढ़िये, या समुद्रका उल्लंघन कर पातालमें जाइये, किन्तु विधाताने ललाटमें जो लेख लिख दिये हैं, उनका फल बिना मिले नहीं रह सकता।" सूर्य चाहे पश्चिममें उदय हो, मेरु चाहे चलायमान हो जाये, या अग्नि शीतल हो जाये, पर्वतके पत्थरोंपर चाहे कमल विकसित हों, किन्तु भावी कर्म रेखायें कभी अमिट नहीं होतीं।" इसलिये कर्मोंकी गति विषम है। अनन्त बलधारी तीर्थंकर भी कर्मकी गतिका उल्लंघन नहीं कर सकते। उन्हें भी पूर्व कृत कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवानको भी कर्म गतिके कारण एक वर्षतक आहार न मिल सका था, इसलिये किसीसे

कर्मकी गतिका उल्लंघन नहीं हो सकता। तथापि तेरे हितके लिये मैं तुझे बतला देना चाहता हूँ कि राजपुरमें जब तू मुर्गा होगा तब मुनिको देखकर तुझे जातिस्मरणज्ञान होगा और तू अनशन पूर्वक प्राण त्याग कर उसी राजपुरका राजा होगा। उस समय उपवन जाते समय पार्श्वप्रभु को देखकर तुझे ज्ञान उत्पन्न होगा।" मुनिके इन वचनोंको श्रवण कर दत्तको बड़ा ही आनन्द हुआ। मुनिके कथनानुसार मरनेके बाद दत्त पहले मुर्गा और फिर राजा हुआ। वही मैं स्वयं हूं और प्रभुको देखकर मुझे जातिस्मरण-ज्ञान हुआ है।" इस प्रकार मन्त्रीको अपना यह वृत्तान्त सुनानेके बाद राजाने प्रभुको नमस्कार कर, उनके कायोत्सर्ग करनेकी जगह एक चैत्य बनवाया और उसमें बड़े समारोहके साथ प्रभु-प्रतिमा स्थापन की। इसके बाद यह चैत्य कुर्कटेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ और इसी जगह राजाने कुर्कटेश्वर नामक एक नगर भी बसाया।"

एक बार विहार करते हुए भगवान किसी नगरके समीप एक तापसके आश्रममें जा पहुँचे। उस समय सूर्य अस्त हो गये इसलिये पार्श्वप्रभु एक कूपके पास वटवृक्षके नीचे रात्रिके समय कायोत्सर्ग करने लगे। इसी समय वह अधमदेव मेघमाली अपने अवधिज्ञानसे पूर्व जन्मके वैरका वृत्तान्त जान कर क्रोधसे जलता हुआ भगवानको कष्ट देनेके लिये आ उपस्थित हुआ। वह पापात्मा बड़ाही दुष्ट, और नीच था। उसने सर्व प्रथम पर्वत जैसे विशालकाय हाथियोंका रूप धारण किया। वे चिग्घाड़ते हुए

पूंछ पटकफर भीषणवेगसे दहाड़ने लगे। [पृष्ठ ३३५]
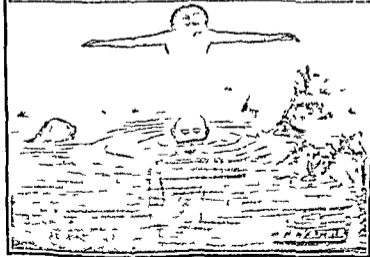
नासिकाके अग्रभाग तक पहुँच गया। [पृष्ठ ३३६]

अपनी-अपनी सूंड़से प्रभुको कष्ट पहुंचाने लगे, किन्तु इससे प्रभुको जरा भी क्षोभ न हुआ। यह देखकर हाथियोंको लज्जा हुई और वे वहीं लोप हो गये। इसके बाद आरेके समान दाढ़ें, कुदालीके समान नख और अंगारेके समान आंखोंवाले अनेक व्याघ्र प्रभुके सम्मुख प्रकट हुए और भूमिपर पूंछ पटक-पटककर भीषणवेगसे दहाड़ने लगे। किन्तु इनका भी प्रभुपर कोई असर न पड़ा और कुछ समयके बाद सिंहोंको भी लज्जित हो लोप हो जाना पड़ा। इसके बाद मेघमालीने भयंकर चीतें, विषधर सर्प और बिच्छुओंको प्रकट किया। इनसे भी भगवान रंचमात्र भी विचलित न हुए। अन्तमें उस अधम देवने बाजे बजाती, गान गाती और नाना प्रकारके हाव-भाव तथा कामचेष्टा करती हुई अनेक किन्नरियोंको प्रकट किया और उनके द्वारा भगवानको चलायमान करनेकी चेष्टा करने लगा। किन्तु इससे भी प्रभु विचलित न हुए। जिस प्रकार प्रचण्ड वायु चलनेपर भी मेघ चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार प्रभु भी चलायमान न हुए। इसके बाद उस पापात्माने प्रभुके मस्तकपर धूली बरसायी, किन्तु भगवान पर इसका भी कोई प्रभाव न पड़ा। इसके बाद उस दुष्टात्माने विकीर्ण केश, विकृत आकृति और मुण्डमाल धारण करनेवाले विविध आकार-प्रकारके अनेक प्रेत और वेताल प्रकट किये परन्तु प्रभु इनके उपद्रवोंसे भी विचलित न हुए। यह देखकर उस दुष्टको बहुत ही ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने प्रभुको जलमें डुबा देनेके लिये आकाशमें मेघ उत्पन्न किये। देखते-ही-देखते काल-जिह्वाके

समान बिजली चमकने लगी। गगनभेदी गर्जनाओंसे दसों दिशायें पूरित हो गयीं। सारा संसार व्याकुल हो उठा और थोड़ीही देरमें मूशलाधार वृष्टि होने लगी। इससे कुछही समयमें सारी पृथ्वी जल-मय हो गयी और जल-प्रलयका भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया। पशु, पक्षी, मनुष्य और वृक्ष-सभी पानीमें बहने लगे। जानु, कटि और छातीसे बढ़ते-बढ़ते अन्तमें प्रभुके कंठ पर्यन्त जल आ गया और क्षण भरके बाद ही नासिकाके अग्रभाग तक पहुँच गया, किन्तु इतने पर भी भगवान अपने ध्यानसे चलायमान न हुए। भवसागरमें डूबते हुए संसारके लिये आधारभूत स्तम्भकी भांति वे अब भी स्थिर थे। किन्तु अब हद हो चुकी थी। इस घटना को देख कर धरणेन्द्रका आसन हिल उठा। भगवानको उपसर्ग होते देख वह तत्काल अपनी देवियोंके साथ वहां दौड़ आया। उसने प्रभुको नमस्कार कर तुरत उनके चरणोंके नीचे कमलकी स्थापना की और मस्तकपर सात फनका छत्र धारण किया। उस समय भगवान ध्यान-समाधि सुखके लीला रूप कमलपर राज हंसकी भांति शोभने लगे। भक्ति भावसे भरी हुई धरणेन्द्र-की देवियां (इन्द्राणियां) प्रभुके निकट वेणु, वीणा और मृदंगादि बाजोंके साथ संगीत और नाटकका समारोह करने लगीं। उस समय भक्तिमान धरणेन्द्र और उपसर्ग करनेवाले कमठ—दोनोंपर प्रभुकी समान मनोवृत्ति थी। अन्तमें धरणेन्द्रसे न रहा गया तब उसने कमठसे क्रोध और आक्षेप पूर्वक कहा—"हे दुर्मते! अपने अनर्थके लिये तू यह क्या कर रहा है? मैं

उस समय भगवान ध्यान समाधि सुखके लीला रूप कमलपर राजहंसकी भांति शोभते लगे ।

[पृष्ठ ३३६]

भगवानका सेवक हूँ। अब और अनर्थ मैं नहीं सह सकता। तू जानता है कि मैं काष्टमें जल रहा था, उस समय भगवानने नमस्कार मन्त्र सुनाकर मेरा उद्धार किया और तुझे भी पापसे बचाया। इसमें भगवानने अनुचित ही क्या किया? भगवान तो अकारणही सबके प्रति बन्धुता दिखाते हैं। और तू व्यर्थही क्यों उनका शत्रु हो रहा है? जो भगवान तीनों लोकको तारनेका सामर्थ्य रखते हैं, वे तेरे डुबाये जलमें नहीं डूब सकते, बल्कि मैं समझता हूँ कि तू आप ही अगाध भवसागरमें डूबनेवाला है" यह कहते हुए धरणेन्द्रने मेघमालीको खदेड़ा। इससे मेघमाली भयभीत हुआ। उसने तुरत ही समस्त जल समेट लिया और प्रभुके चरणोंमें गिर कर, पश्चाताप पूर्वक उनसे क्षमा प्रार्थना की। पश्चात् अपने निवासस्थानको लौट गया। धरणेन्द्रने भी अब किसी उपद्रवकी संभावना न देख, स्तुति पूर्वक भगवानको नमस्कार कर स्वस्थानके लिये प्रस्थान किया। अनन्तर भगवानने वह रात्रि उसी अवस्थामें वहीं व्यतीत की।

दीक्षा लेनेके बाद जब तिरासी दिन बीत गये तब चौरासीवें दिन चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र आने पर चैत्र कृष्णा चतुर्थीको घनघाती कर्म चतुष्टय क्षय होनेपर अष्टम तप करनेवाले और शुक्ल ध्यानको धारण करनेवाले त्रिभुवनपति पार्श्वनाथ भगवान को दिनके पूर्व भागमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उन्हें लोकालोकका ज्ञान प्रकाशित करनेवाला और त्रिकाल विषयक सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन होनेपर देवताओंके आसन हिल उठे।

उन्होंने उसी समय वहां उपस्थित हो अपने समस्त कार्य इस प्रकार सम्पन्न किये :—

सर्व प्रथम वायुकुमार देवताओंने एक योजन भूमि साफ की और मेघकुमार देवताओंने वहां सुगन्धित जलका वृष्टि कर भूमि को सिंचन किया। इसके बाद व्यंतर देवताओंने वहां स्वर्ण और रत्न द्वारा भूमिपीठकी रचना कर, नाना प्रकारके पुष्प बिछा दिये। उस स्थानकी शोभा बढ़ानेके लिये उन्होने चारों ओर रत्न, माणिक्य और कंचनके तोरण बांधे। इसके बाद वैमानिक, ज्योतिष्क और भवनपति देवताओंने मणि, रत्न और स्वर्णके कंगूरोंसे सुशोभित रत्न, स्वर्ण और रजतमय तीन गढ़ बनाये। अनन्तर व्यन्तरोंने गढ़के चारों द्वारपर स्वर्ण कमलोंसे अलंकृत चार बावलियां बनायीं। दूसरे किलेके अन्दर ईशानकोणमें भगवानके विश्रामके लिये देवच्छन्द तैयार किया और समवसरणके बीचमें उन्होने सत्ताईस धनुष ऊंचा एक अशोक वृक्ष उत्पन्न किया। उसके नीचे विविध रत्नमय चार पादपीठ बनाये। उनके बीचमें मणिमय प्रतिच्छन्द बनाया। उसके ऊपर पूर्व ओर तथा अन्यान्य दिशाओंमें रत्नमय सिंहासनोंकी स्थापना की। इन सिंहासनोंपर तीन छत्र धारण किये गये। दो दो यक्षोंने चारों ओर दो दो चामर धारण किये। चारों द्वारके स्वर्णकमलपर चार धर्मचक्र तैयार किये गये। इनके अतिरिक्त और भी जो काम थे, वे सभी उन्होंने पूर्ण किये।

इसके बाद सुर संचारित स्वर्ण कमलोंपर चरण रखते हुए

करोड़ों देवताओंसे घिरे हुए श्रीपार्श्वनाथ प्रभुने समवसरणमें प्रवेश किया। इसके बाद पहले उन्होंने अशोक वृक्षकी प्रदक्षिणा की और "नमो तित्थस्स" इस पदसे तीर्थङ्करको नमस्कार कर पूर्वाभिमुख सिंहासन पर वह विराजमान हुए। यह देखते ही व्यन्तरोंने अन्य तीन दिशाओंमें प्रभुके समान तीन और रूप उत्पन्न किये। इसके बाद प्रभुके शरीरका तेज असह्य जानकर इन्द्रने उनके शरीरसे थोड़ा-थोड़ा तेज लेकर भामण्डल तैयार किया और उसे प्रभुके सिरके पीछे स्थापित किया। प्रभुके सम्मुख एक रत्नमय ध्वज शोभित होने लगा। इसी समय आकाशमें मेघनादके समान देव-दुंदुभी बज उठी और उसके शब्दसे दसों दिशायें पूरित हो गयीं।

इसके बाद पर्षदाने इस प्रकार आसन ग्रहण किया:—साधु, वैमानिक देवियां और साध्वियां अग्नीकोणमें। भवनपति ज्योतिष्क और व्यन्तरकी देवियां नैऋत्यकोणमें। भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवता वायव्यकोणमें और वैमानिक देवता, पुरुष तथा स्त्रियें क्रमशः ईशानकोणमें। इस प्रकार बारह पर्षदायें बैठती हैं। तीन-तीन पर्षदायें भिन्न-भिन्न चारों द्वारसे प्रवेश कर, प्रदक्षिणापूर्वक प्रभुको नमस्कारकर पूर्वोक्त चारों दिशाओंमें यथा स्थान बैठती हैं। इनमेंसे यदि साधु साध्वियोंका अभाव होता है, तो उनके स्थानमें और कोई नहीं बैठता। प्रभुके अतिशयसे करोड़ों तिर्यंच, मनुष्य और देवता समवसरणमें समा जाते हैं, फिर भी किसीको कोई कष्ट नहीं होता। दूसरे विमर्में पारस्परिक आनि-

वैरका त्याग कर तिर्यंच बैठते हैं। कहा भी है कि—"समतावंत, कलुषता रहित और निर्मोही योगी महात्माका आश्रय ग्रहणकर (उनके प्रतापसे) हरिणी वात्सल्य भावसे सिंहके बच्चेको स्पर्श करती है, मयूरी भुजंगको, बिल्ली हंसके बच्चोंको और गाय प्रेम-विवश हो बाघके बच्चेको स्पर्श करती है।" इस प्रकार जन्मसे ही स्वभाविक वैर धारण करनेवाले प्राणी भी वैर भाव त्यागदेते हैं।

त्रिभुवनपति श्रीपार्श्वनाथके इस वैभवको उद्यान-पालसे सुनकर राजा अश्वसेन रोमाञ्चित हो उठे। उन्होंने यह शुभ संवाद लानेवाले वनपालको अपने समस्त आभूषण उतारकर इनाम दे दिये। इसके बाद उन्होंने वामादेवी और प्रभावतीको भी यह हाल कह सुनाया। अनन्तर उन्होंने हाथी, घोड़े तथा रथादिक सजाकर, वामादेवी और प्रभावतीके साथ महर्द्धिपूर्वक श्रीपार्श्व-नाथको वन्दना करनेके लिये प्रस्थान किया। वहां पंच अभिगम सम्हाल कर उन्होंने तीन प्रदक्षिणायें कीं और भक्तिपूर्वक प्रभुको नमस्कार कर उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

"हे नाथ ! मोहरूपी महागजका निग्रह करनेवाले आप ही एकमात्र पुरुषसिंह है—यह समझकर ही देवताओंने इस सिंहा-सनकी रचना की हो ऐसा मालूम होता है। हे विभो ! रागद्वेष रूपी महाशत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके कारण आपके दोनों ओर दो चन्द्र उपस्थित हो, आपकी सेवा कर रहे हों, इस तरह यह दो चामर शोभा दे रहे हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी रत्नोंने आपमें जो एकता प्राप्त की है, उसकी सूचना दे रहे हों इस प्रकार

आपके मस्तकपर तीन छत्र शोभा दे रहे हैं। आपके चार मुखोंसे चार प्रकारके धर्मोंको प्रकाशित करनेवाली जो दिव्यध्वनि प्रकट होती है, वह आकाशमें चारों ओर इस प्रकार ध्वनित हुआ करती है, मानो चार कषायोंका नाश सूचित कर रही हो। आपने पञ्चेन्द्रियोंपर जो विजय प्राप्त की है, उससे सन्तुष्ट होकर देवता आपकी देशनाभूमिमें मन्दारादि पांच प्रकारके पुष्पोंकी वृष्टि करते हैं। आपके द्वारा छकायकी जो रक्षा होती है—आपके सिरपर सुशोभित और नवपल्लवोंसे विकसित यह अशोकवृक्ष मानो उसकी सूचना दे रहा है। हे नाथ! सप्तभय रूपी काष्ठको भस्म करनेसे अग्निके समान होनेपर भी आपके संगसे ही मानो यह भामण्डल शीतलता धारण करता हो ऐसा प्रतीत होता है। आठों दिशाओंमें यह जो दुंदुभी नाद हो रहा है, वह मानो अष्टकर्म रूपी रिपु, समूह परकी आपकी विजय सूचित कर रहा है। हे नाथ! साक्षात् अंतरंग गुणलक्ष्मी ही हो ऐसी यह प्रातिहार्यकी शोभा देखकर किसका मन आपमें स्थिर न होगा?"

इस प्रकार जगत्प्रभुकी स्तुतिकर राजा अश्वसेनने सपरिवार यथा स्थान आसन ग्रहण किया। इसके बाद भगवानने योजन गामिनी, अमृत सींचनेवाली और सभी जीव समझ सकें ऐसी (३५ गुणवाली) वाणीसे मधुर देशना देना आरम्भ किया।

"हे भव्यप्राणियो! मानसिक दृष्टिसे तुम लोग अन्तरभाव का आश्रय ग्रहण करो और असारको निरीक्षण पूर्वक त्यागकर सारका संग्रह करो; क्योंकि क्रोधरूपी बड़वानलसे दुधृष्य,

मानरूप पर्वतसे दुर्गम, माया प्रपंच रूपी मगरोंसे युक्त, लोभरूपी आवर्तोंसे भयंकर, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक और दुःखरूपी जलसे परिपूर्ण, साथ ही इन्द्रियेच्छा रूपी महावातसे उत्पन्न हुई चिन्ता रूपी उर्मिओंसे व्याप्त—ऐसे इस अपार संसार सागरमें प्राणियोंको मूल्यवान महारत्नकी भांति मनुष्य जन्म मिलना परम दुर्लभ है। जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करार्ध—यह मिलकर ढाई द्वीप होते हैं। इसमें पांच महाविदेह, पांच भरत और पांच ऐरवत—यह पन्द्रह कर्म भूमि कहलाते हैं। इनमेंसे पांच महाविदेहमें एक सो साठ विजय हैं। यह एक सौ साठ विजय और पांच भरत तथा पांच ऐरवत मिलाकर एक सौ सत्तर कर्म-क्षेत्र होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक क्षेत्रमें पांच खण्ड अनार्योंके तथा छठा खण्ड आर्यभूमि होता है। यह आर्यभूमि भी प्रायः म्लेच्छादिकोंसे भरी हुई होती है। मध्य किंवा छठे खण्डमें भी धर्म-सामग्रीके अभाव वाले अनार्यदेश बहुत होते हैं। आर्यदेशमें भी सद्वंशमें जन्म, दीर्घायु, आरोग्य, धर्मेच्छा और सद्गुरुका योग—यह पांच चीजें मिलना बड़ा कठिन है। पांच प्रमादके स्तंभ रूपी मोह और शोकादि कारणोंसे पुण्यहीन प्राणी मनुष्य जन्म मिलनेपर भी अपना हित समझ या साध नहीं सकते। हितकारी बातें सुननेपर भी धर्मकी ओर शायद ही किसीकी प्रवृत्ति होती है, क्योंकि सभी सीपोंमें मेघका जल पड़नेपर वह मुक्ताफल नहीं हो जाता। इसलिये फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको सुखके हेतुरूप धर्मकी ही सदा आराधना करनी चाहिये।"

धर्म—दान, शील, तप और भाव, चार प्रकारका है। दानधर्मके तीन भेद हैं, यथा—ज्ञान दान, अभयदान और धर्मोपग्रह दान। सम्यग् ज्ञानसे आत्मा पुण्य पाप जान सकता है फलतः वह प्रवृत्ति और निवृत्ति (पुण्यमें प्रवृत्ति और पापसे निवृत्ति) द्वारा मोक्षकी प्राप्ति कर सकता है। अन्यान्य दानोंमें तो शायद कुछ विनाश (कम होना) भी दिखायी देता है। किन्तु ज्ञान दानसे तो सदा वृद्धि ही होती है। स्व और परकी कार्य सिद्धिका भी उसीमें समावेश होता है। जिस प्रकार सूर्यसे अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार ज्ञानसे रागादि दूर होते हैं, इसलिये ज्ञान दानके समान संसारमें और कोई भी उपकार नहीं है। ज्ञान दानसे प्राणी संसारमें वह तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है। जिसकी त्रिभुवनमें पूजा होती है। इस सम्बन्धमें धनमित्रकी कथा जानने योग्य है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि दान तीन प्रकारके होते हैं—(१) ज्ञानदान (२) अभयदान और (३) धर्मोपग्रहदान। इन तीनमेंसे धन मित्रकी कथा ज्ञानदानसे सम्बन्ध रखती है। वह इस प्रकार है :—

मगध नामक देशमें राजपुर नामक एक नगर है। वहां किसी समय जयन्त नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम कमलावती था। उसके उदरसे चन्द्रसेन और विजय नामक दो गुणवान पुत्रोंका जन्म हुआ था; किन्तु पूर्व कर्मके दोषसे वे दोनों एक दूसरेके प्रति ईर्ष्या भाव रखते थे। एक दिन जिस समय राजा राज सभामें बैठा था, उसी समय द्वारपालने आकर

निवेदन किया कि—"हे राजेन्द्र! बाहर दो पुरुष आये हुए हैं और वे आपके दर्शन करना चाहते हैं।" राजाने कहा—"उन्हें अन्दर ले आओ।" राजाकी आज्ञा मिलते ही द्वारपाल उन दोनोंको राजसभामें ले आया। दोनोंने राजाको नमस्कार कर उसके सामने एक पत्र रख दिया। राजा उस पत्रको खोल कर पढ़ने लगा। उसमें यह बातें लिखी हुई थीं :—

"स्वस्ति श्री मगधेश्वर, विजयवन्त, समस्त राजाओंके मुकुट समान, गंगापर्यन्त वसुधाके स्वामी जयन्त महाराजाको पञ्चाङ्ग नमस्कार कर कुरुदेव निवेदन करता है कि हमलोग आपके चरण कमलोंको स्मरण करते हुए आनन्दपूर्वक रहते हैं; पर सीमा प्रदेशका सेवाल राजा हमारे देशमें बहुतही उपद्रव करता है, इसलिये हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। अब आप ही हमारी रक्षा कीजिये।" यह पत्र पढकर क्रोधके कारण राजाके नेत्र लाल हो गये। वह अपने सुभटोंसे कहने लगा—"यह कितने आश्चर्यकी बात है कि एक शशक सोते हुए सिंहको जगा रहा है। मूढ़ सेवाल इस प्रकार उपद्रव क्योंकर रहा है? तुम सब लोग शीघ्रही शस्त्र बांध कर तैयार हो जाओ। इसी समय हमलोग रणयात्राके लिये प्रस्थान करेंगे।

राजाको इस प्रकार रणयात्राकी तैयारी करते देख, दोनों कुमारोंने पूछा,—"पिताजी! यह सब तैयारी किस लिये हो रही है?" राजाने कहा—"सेवाल राजा कुरुदेवको कष्ट दे रहा है। उसीको दण्ड देनेके लिये मैंने योद्धाओंको सज्जित होनेकी आज्ञा

दी है।" यह सुन राजकुमारोंने कहा—"पिताजी! कहां सेवाल, कहां आप? कहां शृगाल और कहां सिंह? उसको दण्ड देनेके लिये आपका शस्त्र धारण करना ठीक नहीं। कहा भी है कि—

"यद्यपि रटति सरोषं, मृगपति पुरतोपि मत्तगोमायुः।
तदपि न कुप्यति सिंहोऽसदृश पुरुषेषु कः कोपः॥"

अर्थात्—"उन्मत्त सियार सिंहके सम्मुख शोर मचाता है, तब भी सिंह कुपित नहीं होता, क्योंकि असमान जनोंपर कोप कैसा?"

राजाने कहा—"यह ठीक है, पर सेवाल बड़ा ही दुष्ट और नीच प्रकृतिका मनुष्य है। उसे सीधा करना बहुत ही कठिन है। किसीने कहा भी है कि—

"यद्यपि मृगमद चन्दन, कुंकुम कर्पूरैर्वेष्टितो लशुनः।
तदपि न मुञ्चति गंध, प्रकृतिगुणा जाति दोषेण॥"

अर्थात्—"लहसुनको कस्तूरी, चन्दन कुंकुम और कपूरसे लपेटकर रखनेपर भी उसकी दुर्गन्ध दूर नहीं होती; क्योंकि जाति दोषके कारण स्वभाव और गुण ज्योंका त्यों बना रहता है।"

पिताकी यह बात सुनकर कुमारोंने कहा—"हे तात! हमें आज्ञा दीजिये। उस अभिमानीका मानमर्दन करनेके लिये हम ही पर्याप्त हैं। जो काम सेवकोंसे हो सकता हो, उसके लिये स्वामीको कष्ट क्यों उठाना चाहिये?" कुमारोंका यह वचन सुन कर मन्त्रीने कहा—"हे राजेन्द्र! कुमारोंका कहना ठीक है। जब

कुमार यह काम कर सकते हैं, तब आपको कष्ट क्यों उठाना चाहिये ?" मन्त्रीकी यह सलाह सुनकर राजाने ज्येष्ठ पुत्र विजयकुमारको प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी। इससे छोटे राजकुमार चन्द्रसेनको कुछ असन्तोष हुआ और वह राजसभा छोड़ जानेको तैयार हुआ। उसे इस तरह क्रोधित होते देख राजाने उसे समझाते हुए कहा—"चन्द्रसेन! तुझे व्यर्थ ही क्रोध न करना चाहिये। उत्तम प्रकृतिके पुरुष सम्मानकी इच्छा नहीं रखते। विजयकुमार तुम्हारा ज्येष्ठ बन्धु है, इसलिये पहले उसीको काम सौंपना मेरा कर्तव्य है। छोटे भाईके लिये तो बड़ा भाई पिताके समान होता है। बड़ा भाई जीवित रहनेपर छोटे भाईको राजसिंहासन दिया जाय, तो वह उसे भी स्वीकार नहीं करता।" इसी प्रकार मन्त्रियोंने भी चन्द्रसेनको बहुत कुछ समझाया बुझाया। किसी तरह समझाने बुझानेपर चन्द्रसेनको अपने कर्तव्यका ज्ञान हुआ और वह अपनी भूल समझकर पुनः अपने आसनपर आ बैठा।

इधर विजयकुमारने अपनी समुद्रके समान सेनाको तैयारकर यथा समय रणयात्राके लिये प्रस्थान किया। स्वदेशकी सीमापर पहुँचनेपर विजयकुमारने सेवालको सन्देश भेजा, कि तू उपद्रव छोड़कर अपने स्थानको चला जा। अन्यथा युद्ध करनेके लिये तैयार हो। विजयकुमारका यह सन्देश सुनकर सेवाल क्रोधसे कांप उठा। उसने कहा—"वीर पुरुष वाग्युद्ध नहीं करते। यदि युद्ध करनेकी सामर्थ्य हो, तो सन्मुख आकर युद्ध करो, वर्ना

चुपचाप यहांसे लौट जाओ।" सेवालका यह गर्वपूर्ण उत्तर सुनकर विजयकुमारने अपनी सेनाको आगे बढ़ाया। देखते ही-देखते दोनों ओरकी सेनामें मुठभेड़ हो गयी और भीषण मारकाट होने लगी। दोनों दलोंमें बहुत समय तक युद्ध हुआ। विजयकुमारकी सेनाने शत्रुओंसे मोर्चा लेनेमें कोई कसर न रखी; किन्तु अन्तमें भवितव्यतावश उसीको मैदान छोड़कर भागना पड़ा। जब यह समाचार जयन्त राजाने सुना, तब उसने स्वयं प्रस्थान करनेका विचार किया, किन्तु कनिष्ठ पुत्र चन्द्रसेनने कहा—"पिताजी। अब कृपया मुझे जाने दीजिये।" मन्त्रीने भी राजाको समझाते हुए कहा, कि—"चन्द्रसेनको पहले भी उसकी इच्छाके विपरीत रोक रखा गया था, इसलिये अब उसे आज्ञा दे देनी चाहिये।" मन्त्रियोंकी बात राजाने मान ली और चन्द्रसेनको एक बहुत बड़ी सेनाके साथ सेवालसे युद्ध करनेके लिये भेज दिया। चन्द्रसेनने शीघ्रही रणक्षेत्रके लिये प्रस्थान किया और बड़े कौशलके साथ उसने सेवालसे युद्धकर उसे गिरफ्तार कर लिया। कुछ दिनोंके बाद वह विपुल धनसम्पत्ति और सेवालको साथ लेकर अपने नगर लौट आया। राजाने बड़े समारोहके साथ उसे नगर प्रवेश कराया। अनन्तर सेवालने जयन्तसे क्षमा प्रार्थना की, अतएव उसने उसका अपराध क्षमा कर उसे बन्धन मुक्तकर दिया। किसीने ठीक ही कहा है कि "सन्तो गृहागतं दीनं, शत्रुमप्यनुगृह्णते।" अर्थात् संतजन अपने घर आये हुए दीन और शत्रुपर भी अनुग्रह करते हैं।

अस्तु। कुछ दिनोंके बाद चन्द्रसेनकुमारको बुद्धि और पराक्रम आदिमें बड़ा समझकर राजाने उसको युवराज बना दिया। इससे विजयकुमार बहुत ही लज्जित हुआ और वह उसी दिन रात्रिके समय चुपचाप घरसे निकल पड़ा। घूमते घूमते कुछ दिनोंके बाद वह एक दिन किसी शून्य नगरमें जा पहुँचा और किंकर्तव्य विमूढ़ हो रात्रिके समय एक पुराने देवमन्दिरमें सो रहा। सुबह होते ही वह वहांसे भी चल पड़ा। किसीने ठीक ही कहा कि "फल मिलना कर्माधीन है और बुद्धि भी कर्मानुसारिणी होती है, तथापि ज्ञानवान पुरुषोंको बहुत सोच विचारकर काम करना चाहिये।" विजयकुमार इसी तरह अकेला घूमता रहा, किन्तु इस अवस्थासे वह दुःखी हो गया। कहा भी है कि—"जिस समय पासमें धन नहीं रहता, उस समय कोई मित्र भी नहीं बनता। सूर्य कमलका प्यारा मित्र माना जाता है, किन्तु जब सरोवरमें जल नहीं होता, तब वह भी उसका शत्रु हो पड़ता है।" विजय कुमार इसी तरह भटकता हुआ उड्डीयाण भूमिमें जा पहुचा। यहा उसने कीर्तिधर मुनिको कायोत्सर्ग करते देखा। उन्हें देख कर उसे बहुत ही आनन्द हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा— "अहो! धन्य भाग्य कि आज मुझे साधुके दर्शन प्राप्त हुए।" किसीने ठीक ही कहा है कि"—देवदर्शनसे सन्तोष, गुरु-दर्शनसे आशीर्वाद और स्वामी-दर्शनसे सम्मान मिलनेपर आनन्द होना स्वाभाविक ही है। अब मुनिराजको वन्दना कर मुझे अपनी आत्माको निर्मल बनाना चाहिये। इस प्रकार विचार कर शुद्ध

बुद्धिसे उसने मुनीश्वरको तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दन किया। अनन्तर मुनिने धर्मलाभ रूपी अशोर्वाद दे उसे इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया :—

हे महानुभाव! आर्यदेश, उत्तमकुशल, रूप, बल, आयु और बुद्धि आदिसे युक्त मानव-देहको प्राप्त कर जो मूर्ख धर्म नहीं करता, वह मानो समुद्रमें रहकर नावका त्याग करता है। मोहरूपी रात्रिसे व्याकुल प्राणियोंके लिये धर्म, दिनोंदयके समान और सूखते हुए सुख वृक्षके लिये मेघके समान है। सम्यक् प्रकारसे उसकी आराधना करनेपर वह भव्यजनोंको सुखसम्पत्ति देता है। और दुर्गतिमें फँसे हुए प्राणियोंको बचाकर अनेकों दु:खसे मुक्त करता है। बन्धुरहित मनुष्योंके लिये वह बन्धु समान, मित्र रहितके लिये मित्र समान, अनाथका नाथ और संसारके लिये एक वत्सल रूप है। जीव दयामय इस सम्यग् धर्मको भगवानने गृहस्थ और यति दो रूपमें बतलाया है। हे भद्र! यथाशक्ति उस धर्मका तू आश्रय ग्रहण कर।"

मुनिराजके इस उपदेशसे विजयकुमारके मोहान्धकारका नाश हो उसे सद्धर्मकी प्राप्ती हुई और उसी समय उसने उनसे यति दीक्षा ग्रहण कर ली। इस अवसरपर मुनीने उसे इस प्रकार धर्मोपदेश दिया :—"हे विजयराजर्षि! तू एकाग्र चित्तसे हितशिक्षा श्रवण कर। हे मुने! राग द्वेषादि शत्रुओंपर जिनेश्वरने बल-पूर्वक विजय प्राप्त की है, उन शत्रुओंको पोषण करने वालोंपर जिनेश्वर कैसे प्रसन्न रह सकते हैं? इसलिये तुझे रागद्वेषादि

शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना चाहिये। शास्त्रमें यह भी कहा गया है, कि—"तपके अजीर्ण क्रोधको, ज्ञानके अजीर्ण अहंकारको और क्रियाके अजीर्ण पर-अपवर्णवादको जीतकर निवृत्ति प्राप्त करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त क्षमासे क्रोध, मृदुतासे मान, आर्जवसे माया, और अनिच्छासे लोभ—इस प्रकार चार कषायोंको जीतनेसे संवरकी प्राप्ति होती है। अज्ञानसे दुःख और ज्ञानसे सुख प्राप्त होता है, इसलिये निरन्तर ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये। जिससे आत्मा ज्ञानमय हो। जो धीर, ज्ञानी, मौनी, और संगरहित होकर संयम मार्ग पर चलते हैं, वे यह ध्यान मोहादिकसे भी पराजित न होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। हे भद्र! मैंने तेरे दीक्षा रूपी पात्रमें तत्वोपदेश रूपी जो अन्न परोसा है, उसे उपभोग कर तू सुखी होना।" पुनः गुरुने कहा—"हे महाभाग! जिस प्रकार रोहिणाने व्रीहिके पांच दाने प्राप्तकर उनकी वृद्धि की था, उसी तरह पंचमहाव्रतकी तू वृद्धि करना।" मुनिराजका यह धर्मोपदेश सुन विजय मुनिने पूछा—"हे प्रभो! रोहिणी कौन थी और उसने व्रीहिके पाँच दानोंकी किस प्रकार वृद्धि की थी?" गुरुदेवने कहा—"रोहिणीका वृत्तान्त बतलाता हूँ। उसे सुन!

नामक चार स्त्रियां थी। एक बार गृहकार्यमें नियुक्त करनेके विचारसे दत्तने अपनी चारों पुत्रवधुओंके सम्बन्धियोंको इकट्ठा किया और भक्तिपूर्वक भोजनादिसे उनका सत्कार कर उन्हें यथोचित स्थान पर बैठाया। इसके बाद उसने क्रमशः एक-एक बहूको बुलाकर उन्हें ब्रीहिके पांच पांच दाने दिये और कहा—कि "इन पांच दानोंको सम्हालकर रखना और जब मैं मांगूं तब मुझे देना।" इतनी प्रक्रिया करनेके बाद उसने सबको सम्मानपूर्वक विदा किया।

दाने मिलनेपर बड़ी बहु मनमें कहने लगी—"मालूम होता है कि बुढ़ापेके कारण मेरे ससुरजीकी बुद्धि मारी गयी है। अन्यथा वह सबके सामने मुझे यह पांच दाने क्यों देते? अतएव इन्हें लेकर मुझे क्या करना है? यह सोचते हुए उसने तुरत उन दानोंको बाहर फेंक दिया। इसके बाद दूसरी बहूने विचार किया कि इन दानोंको मैं क्या करूं और कहां रखूं? यह विचार कर वह उन्हें खा गयी। तीसरी बहूने विचार किया कि बूढ़े ससुरजीने इतने आडम्बरसे स्वजनोंके सम्मुख यह दाने दिये हैं, तो इसमें अवश्य कोई कारण होना चाहिये। यह सोच कर उसने उन्हें एक अच्छे कपड़ेमें बांध कर यत्न पूर्वक बकसमें रख दिया और उनकी रक्षा करने लगी। सबसे छोटी बहू रोहिणीने वे दाने अपने भाइयोंको दे दिये और उन्हें खेतमें बुवा कर उत्तरोत्तर उनकी संख्यामें वृद्धि करने लगी।

इसके बाद पांचवे वर्ष दत्तने विचार किया कि बहुओंको

दाने दिये पांच वर्ष व्यतीत होने चले, अतएव अब देखना चाहिये, कि उन्होंने उनका क्या किया ? यह सोचकर उसने फिर पूर्ववत् अनेक स्वजनोंको इकट्ठे किये और उन्हें भोजनादि द्वारा सम्मानित करनेके बाद उनके सामने ही बहुओंसे वे दाने मांगे। पहले उसने बड़ी बहूसे कहा,—"हे वत्से! क्या तुझे स्मरण है कि मैंने पांच वर्ष पर तुझे व्रीहिके पांच दाने दिये थे?" यह सुन उसने कहा,—"हां, मुझे अच्छी तरह स्मरण है।" दत्तने कहा—"अच्छा, तो वे दाने मुझे इसी समय ला दो। ससुरकी यह बात सुनकर उज्झिता घरमें गयी और वहांसे दूसरे पांच दाने लाकर श्वसुरके हाथमें रख दिये। श्वसुरने पूछा,—"हे वत्से! ये वही दाने हैं या दूसरे?" उज्झिता कुलवधु थी अतएव उसने झूठ बोलना उचित न समझ कर कहा,—"यह दाने वही नहीं, बल्कि दूसरे हैं। यह सुन श्वसुरने फिर पूछा,—"तूने मुझे दूसरे दाने क्यों दिये?" बहूने कहा,—"पिताजी! क्षमा कीजिये। मैंने उन्हें निरर्थक समझ कर उसी समय फेंक दिया था। उसकी यह बात सुनकर श्वसुरने क्रुद्ध होकर कहा,—

"दानानुसारिणी कीर्त्ति र्लक्ष्मीः पुण्यानुसारिणी।
प्रज्ञानुसारिणी विद्या, बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥"

अर्थात्—"दानके अनुसार कीर्ति, पुण्यके अनुसार लक्ष्मी, बुद्धिके अनुसार विद्या और कर्मानुसार बुद्धि होती है।" यह कहते हुए उसने उज्झिताको घर झाड़ने-बटोरने आदिका काम-

सौंपा। इससे उज्झिताको बहुत ही दुःख हुआ, किन्तु इसे स्वीकार करनेके सिवा दूसरा कोई चारा ही न था।

इसके बाद दत्तने भक्षिता नामक दूसरी बहूको बुलाकर पूछा,—"वत्से! मुझे वही पांच दाने ला दो। यह सुन कर भक्षिताने भी घरसे दूसरे दाने लाकर दत्तके हाथमें रखे। दत्तने पूछा—"हे वत्से! यह वही दाने हैं या दूसरे? जो बात हो वह सच्ची ही कहना; क्योंकि असत्यका पाप सभी पापोंसे बढ़कर होता है।" श्वसुरकी यह बात सुन कर उसने कहा,—"हे पिताजी! यह तो दूसरे दाने हैं। आपने जिस समय मुझे दाने दिये, उस समय मैंने सोचा, कि इन्हें कहां रखूं? कहीं ऐसा न हो, कि यह खो जायें? यह सोचकर उसी समय मैं उन्हें खा गयी थी।" भक्षिताकी यह बात सुनकर दत्तने अपने समस्त स्वजनोंके समक्ष उसे कूटने, पीसने और भोजनादिके तैयार करनेका काम सौंपा। भक्षिताको भी यह काम पाकर किसी प्रकारका सुख या सन्तोष न हुआ।

इसके बाद दत्तने तीसरी बहू रक्षिताको बुला कर कहा,—"हे वत्से! मुझे वही पांच दाने ला दो। यह सुन रक्षिताने उन्हें अपने गहनोंकी सन्दूकमें सुरक्षित रख छोड़े थे, अतएव वह उसी समय उन्हें ले आयी। दत्तने पूछा,—हे वत्से! यह वही दाने हैं या और हैं? यह सुन रक्षिताने कहा,—"पिताजी! यह वही दाने हैं; क्योंकि मैंने इन्हें अच्छी तरह अपने गहनोंकी सन्दूकमें रख छोड़े थे।" रक्षिताकी यह बात सुनकर दत्तने

उसे अपनी समस्त सम्पत्ति और स्वर्ण रत्नादिक सम्हालनेका काम सौंपा। इससे वह सुखी हुई और लोगोंने भी उसकी खूब प्रशंसा की।

इसके बाद दत्तने रोहिणीको बुलाकर उससे भी वही पांच दाने मांगे। रोहिणीने कहा,—"अच्छा, पिताजी, मैं उन्हें अभी मंगाये देती हूं। किन्तु इसके लिये कुछ गाड़ियोंकी आवश्यकता होगी। यह सुन दत्तने कहा,—"गाडियोंका क्या होगा?" रोहिणीने कहा,—"पिताजी! जिस समय आपने सबके सामने मुझे ये दाने दिये, उस समय मैंने सोचा कि अवश्य इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। इसलिये मैंने अपने भाईको ये दाने देकर कहा कि इन्हें खेतमें बुवा दो। अतएव भाईने ये दाने एक किसानको दे दिये। किसानने उन्हें पहले वर्ष बोये। पहले वर्षमें बोनेसे जितने दाने उत्पन्न हुए, उतने सब दूसरे वर्ष बो दिये गये। इसी तरह बोते-बोते ये अब इतने अधिक हो गये हैं, कि उन्हें लानेके लिये वास्तवमें कई गाडियोंकी आवश्यकता पड़ेगी।" रोहिणीकी यह बात सुनकर दत्तने तुरत गाड़ियां मंगवा दीं। इसके बाद रोहिणीने वह सब चावल भरवा मंगाये। यह देख कर सब लोग उसकी बार बार प्रशंसा करने लगे। दत्तको भी इससे परम सन्तोष हुआ और उसने रोहिणीको गृहस्वामिनी बनाकर सबको आज्ञा दी, कि यही बहू मेरे गृहकी स्वामिनी है अतएव कोई इसकी आज्ञा उल्लंघन करनेका साहस न करें।

इस दृष्टान्तका तात्पर्य यह है :—"दत्तको सद्गुरू समझना चाहिये। पांच वोहिके दाने पांच महाव्रत समझना चाहिये। जो प्राणी पंच महाव्रत ग्रहण कर उन्हें त्याग देते हैं, वे उज्झिताकी तरह दुःखी होते हैं और इस असार संसारमें गोते लगाया करते हैं। जो लोग व्रत लेकर उसकी विराधना करते हैं, वे भी दूसरी वहूकी तरह कष्ट पाते हैं। जो लोग गुरुकी आज्ञानुसार महाव्रत ग्रहण कर निरतिचारपूर्वक उसे पालनेकी चेष्टा करते हैं, वे रक्षिकाकी भांति सुखी होते हैं और जो महाव्रत ग्रहण कर उसकी वृद्धि करते हैं, वे रोहिणीकी भांति सर्वत्र महत्व प्राप्त करते हैं, इसलिये हे महाभाग! तुझे पंच महाव्रत ग्रहण कर उनकी वृद्धि करनी चाहिये।"

इस प्रकार विजय मुनि व्रत अंगीकार कर शुभ ध्यानमें तत्पर हो, सम्यक् प्रकारसे संयम पालते हुए गुरुके साथ विचरण करने लगे। कुछ दिनोंके बाद उनकी योग्यता देखकर गुरुमहाराजने उन्हें आचार्यके पदपर स्थापित किया और स्वयं संमेत शिखर पर जा, अनशन कर मोक्षपद प्राप्त किया।

अनन्तर विजयसूरि अपने शिष्योंको पढ़ाते और धर्मोपदेश देते हुए संसारमें विचरण करने लगे। बहुत दिनोंके बाद जब वे शास्त्राभ्यासके श्रम और विविध प्रश्नोंके उत्तर देनेके कारण क्लान्त हो उठे, तब वे अपने मनमें कहने लगे—"अहो! उन मुनियोंको धन्य है, जो अनपढ़ हैं और प्रश्न तथा शास्त्रार्थकी चिन्ता न होनेके कारण आनन्दपूर्वक दिन बिताते हैं। वास्तवमें

मूर्ख रहना ही उत्तम है। किसीने कहा भी है,—"हे सखे! मुझे मूर्खता ही पसन्द है, क्योंकि उसमें आठ गुण है। मूर्ख मनुष्य निश्चिन्त, बहुत भोजन करनेवाला, लज्जारहित, रात-दिन सोनेवाला, कार्याकार्यका विचार करनेमें अंध और बधिर, मानापमानमें समान, बहुधा राग रहित और शरीरसे सुदृढ़ होता है। अहो! मूर्ख मनुष्य आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। मैं अधिक पढ़ा हूं, इसीलिये लोग नानाप्रकारके प्रश्न पूछकर मुझे तंग किया करता है।" इस प्रकारके दुर्ध्यानसे आचार्य विजयसूरिने ज्ञानावरणीय कर्मका बन्ध किया और इस कर्मको क्षय किये बिना ही वे मृत्युको प्राप्त कर सौधर्म देव-लोकमें देव हुए। अनन्तर आयु पूर्ण होनेपर वहांसे च्युत होकर पद्मपुरमें वे धनश्रेष्टीके पुत्र रुपमें उत्पन्न हुए। वहां उनका नाम जयदेव रखा गया। जब वह विद्याध्ययन करनेके योग्य हुआ तब उसे पाठशालामें पढ़ानेके लिये भेज दिया। किन्तु पण्डित पढ़ाते-पढाते थक गये, फिर भी जयदेवको एक अक्षर न आया। यह देखकर उसके पिताको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा,—"पुत्रोंका न होना और मर जाना ही अच्छा है, क्योंकि उससे पुरुषको थोड़ा ही दुःख होता है, किन्तु मूर्ख पुत्र होना अच्छा नहीं; क्योंकि उसके रहते निरन्तर जीजला करता है। उसने जयदेवको पढ़ानेके लिये अनेक मिन्नतें मानीं और अनेक प्रकारसे औषधोपचार भी कराये; किन्तु उससे कुछ भी फल न हुआ। यथा समय उसे यौवन प्राप्त हुआ और वह भली युवी

बातें भी समझने लगा। लोग उसे मूर्ख कह कह कर चिढ़ाते। यह बात उसे अच्छी न लगती थी। अन्तमें एक दिन इसीसे ऊब कर वह घरसे निकल पड़ा। उसे कुछ कुछ वैराग्य भी आ गया था, अतएव उसने विमलचन्द्र आचार्यके पास दीक्षा ले ली। इसके बाद वह आचार्यके आदेशानुसार चारित्रका पालन करता और योग साधता, किन्तु उसे अपना पाठ याद न आता। इससे उसने बारह वर्ष पर्यन्त आयम्बिल आदिके तप किये, किन्तु फिर भी उसे एक अक्षर न आया। यह देखकर गुरुमहाराजने कहा,—"हे साधो! यह तुम्हारे पूर्व जन्मका कर्म उदय हुआ है। इसीसे तुमको अपना पाठ याद नहीं होता। उदास मत हो। अब तुम केवल "रे जीव! मारुष, मा तुष!" इतना ही कहा करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। किन्तु जयदेवको यह भी याद न रहा। वह "मास तुस,मास तुस" इस प्रकार बारम्बार रटने लगा। गुरुदेवने यह देखकर उसका नाम 'मासतुस ऋषि' रख दिया और लोग भी उसे इसी नामसे पहचानने लगे। इसके बाद बहुत दिनोंतक अयम्बल आदि तप करने तथा शुक्लध्यान धरनेपर मासतुस ऋषिको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। यह देखकर समीपस्थ देवताओंने दुंदुभीनाद पूर्वक सुवर्ण कमलकी रचना की। वहां बैठकर वह केवली भगवान इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे :—"हे भव्य प्राणियो! मैंने पूर्वजन्ममें शिष्योंको शास्त्र पढ़ाते और शंका समाधान करते-करते उद्विग्न मनसे ज्ञानावरणीय कर्मका बंध किया था, इसीसे इस जन्ममें मेरा

यह कर्म उदय हुआ और इसी कारणसे मुझे एक अक्षर भी न आता था। किसीने ठीक ही कहा है कि "हंसते-हंसते भी जो कर्म गले बँध जाता है, वह रोते-रोते भी नहीं छूटता। इसलिये जीवको कर्म न बांधना चाहिये।" इस प्रकार केवली भगवानके उपदेशसे बहुत लोगोंको प्रतिबोध प्राप्त हुआ। अनन्तर केवली भगवान धर्मोपदेश देते हुए दीर्घकाल तक इस संसारमें विचरण करते रहे। अन्तमें उन्होंने शत्रुंजय तीर्थपर सिद्धपद प्राप्त किया। इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, कि ज्ञान प्राप्त करनेके बाद जलमें गिरे हुए तैल-बिन्दुकी भांति सर्वत्र उसका विस्तार करना चाहिये।

अब हमलोग अभयदानके सम्बन्धमें विचार करेंगे। अभयदान अर्थात् जो जीव दुःख भोग रहे हों या मर रहे हों उनको रक्षा करना। त्रिभुवनके ऐश्वर्यका दान भी अभयदानकी समता नहीं कर सकता। भयतीत प्राणियोंको अभय देने या भयमुक्त करनेका नाम भी अभयदान ही है। किसीने अभयदानकी प्रशंसा करते हुए ठीक ही कहा है कि सुवर्ण, गाय और भूमिके दान देनेवाले इस संसारमें बहुत मिल सकते हैं; किन्तु प्राणियोंको अभयदान देनेवाले पुरुषोंका मिलना दुर्लभ है। इस सम्बन्धमें वसन्तकका दृष्टान्त मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है :—

वसंतपुर नामक एक नगरमें महाबलवान, तेजस्वी और परम प्रतापी मेघवाहन नामक एक राजा राज्य करता था। उसे प्रियंकरा नामक एक पटरानी थी। इसके अतिरिक्त उसे पांचसौ और भी रानियां थीं। इन रानियोंके साथ वह आनन्दपूर्वक जीवन बिताता था और प्रजा भी उसके राज्यमें सब तरहसे सुखी थी।

एक दिन रात्रिके समय सिपाहियोंने चोरीके मालके साथ किसी चोरको देखा और उसे गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दिन उन्होंने उसे राजाके सम्मुख उपस्थित किया। उसे देखकर राजाने प्रसन्नता पूर्वक उसके बन्धन ढीले करा दिये और उससे पूछा—"हे युवक! तेरा कौन देश और कौन जाति है? इस अवस्थामें तूने यह पापकार्य क्यों आरम्भ किया है?" राजाकी यह बात सुन चोरने लज्जित होते हुए कहा—"हे राजन्! वंध्यपुर नगरमें वसुदत्त नामक एक वणिक रहता है, उसीका मैं पुत्र हूं। मेरा नाम वसन्तक है। पिताने भलीभांति मेरा लालन-पालन किया, मुझे पढाया-लिखाया और मेरा ब्याह भी किया; किन्तु दुष्कर्म योगसे मैं जुआरी बन गया। माता-पिता और स्वजनोंने मुझे बहुत

समझाया और मना भी किया। मुझे बारम्बार उपदेश दिये, किन्तु मैं किसी प्रकार उस दुर्व्यसनको न छोड़ सका अतः अन्यान्य लोग भी शिक्षा देते हुए मुझसे कहने लगे, कि उत्तम और कुलीन पुरुषोंको जुआ कभी न खेलना चाहिये। यह ठीक है कि लोग ईर्ष्या करनेमें कुशल होते हैं, किन्तु तुझे यह ख़याल नहीं करना क्योंकि जब गधा दूसरेके अंगूर खाता है, तब अपनी हानि न होने पर भी, पड़ोसी लोगोंको उसका अनुचित कार्य देख कर दुःख होता है।

अस्तु। मेरे कुलक्षण देख, पिताने पैतृक सम्पत्ति परसे मेरा अधिकार उठाकर मुझे घरसे निकाल दिया। किसीने ठीक ही कहा है कि उत्तम होनेपर शत्रुका भी आदर किया जाता है,— औषधी कटु होनेपर भी वह गुणकारी होनेसे ग्रहण की जाती है, किन्तु प्यारा पुत्र होनेपर भी वह यदि दुष्ट होतो सर्पके काटे हुए अंगूठेकी भांति उसका त्याग किया जाता है। हे राजन! इस प्रकार पिताने जबसे निकाल दिया तबसे मैं स्वतन्त्र होकर चारों ओर भटकता हूं, चोरी करता हूं, जुआ खेलता हूं, घर घर भीख मांगता हूं और किसी शुन्य मन्दिरमें सो रहता हूं। आज रात्रिके समय जब मैं चोरी कर रहा था तो आपके इन सेवकोंने मुझे देख लिया और ये मुझे यहां बांधकर ले आये। हे राजेन्द्र! यही मेरा सच्चा वृत्तान्त है। अब आपको जो ठीक लगे, वह करें।

वसन्तककी यह बातें सुनकर राजाको बड़ी दया आयी पर;

उसे ख़याल हो आया कि चोरको कदापि अछूता न छोड़ना चाहिये अतएव नियमानुसार उसे शूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। इस समय राजाकी बायीं ओर प्रियकरा पटरानी बैठी हुई थी। उसने वसन्तकको दीन शरण रहित देखकर राजासे प्रार्थना की कि:— "हे नाथ! केवल आज एक दिनके लिये इस चोरको मेरे हवाले कर दीजिये। मैं आज इसके मनोरथ पूर्णकर कल फिर इसे आपको सौंप दुंगी।" रानीकी यह प्रार्थना राजा अस्वीकार न कर सका। उसने वसन्तकको रानीके साथ जानेको आज्ञा दे दी। रानी उसे बन्धन मुक्तकर तुरत अपने महलमें ले आयी। वहां उसकी आज्ञा-से दास दासियोंने तैल मर्दनकर स्वर्ण कुम्भोंमें भरे हुए स्वच्छ सुगन्धित और उष्ण जलसे उसको स्नान कराया। इसके बाद सुकोमल और सूक्ष्म वस्त्रसे उसका शरीर पोंछकर उसे दिव्य वस्त्र पहनाये गये। तदन्ततर कृष्णागुरू धूपके धुपसे उसके केश सुवा-सितकर चन्दनसे उसका अंग विलेपित किया गया। इसके बाद दोनों बाहुओंमें बाजूबन्ध, अंगुलियोंमें अंगूठी, कानमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट, कंठमें हार प्रभृति आभूषण पहनाये गये। इसके बाद एक उत्तम आसनपर बैठाकर रानीने उसे नाना प्रकारके पदार्थ खिलाये। तदनन्तर कर्पूर मिश्रित ताम्बुल खिलाकर रानीने उसे पलंगपर बैठाया और कथा-कहांनी तथा काव्य विनोद द्वारा उसका मनोरंजन किया। क्रमशः जब शाम हुई तब रानीकी आज्ञासे सेवकोंने उसे एक अच्छे घोड़ेपर सवार कराया और उसके सिरपर छत्र धारणकर सैकड़ों सुभट तथा विविध वाजि-

स्त्रीके साथ उसे समुचे नगरकी सैर करायी। इस प्रकार नगरमें घुमाकर रात्रिके समय वे उसे रानीके महलमें वापस ले आये। इधर रानीने उसके लिये सुकोमल शय्याका प्रबन्ध पहलेहीसे कर रखा था, उसीपर उसे सुलाया और सबेरा होतेही उसने फिर उसके पुराने कपड़े पहनाकर राजाको सौंप दिया।

तदनन्तर राजा उसे ज्योंही अधिकारीके हवाले करने चला त्योंही दूसरी रानीने आकर उसकी याचना की। यह देख राजाने उसकी भी याचना स्वीकार कर ली। उसी समय उसने वसन्तकको घर ले जाकर पूर्ववत् मज्जन, स्नान, भोजनसे उसका आदर-सत्कार किया। इसी तरह पारस्परिक स्पर्द्धाके कारण अन्यान्य रानियोंने भी राजासे प्रार्थना कर एक-एक दिनके लिये वसन्तकको अपना अतिथि बनाया और विपुल धन *व्यय कर नाना प्रकारसे उसके मनोरथ पूर्ण किये।*

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि राजाके एक पटरानी और पांच सौ रानियां थीं। इनके अतिरिक्त उसके शीलवती नामक एक और भी रानी थी। वह दुर्भाग्यवश राजाके हृदय पर अधिकार न कर सकी थी। व्याह के बाद राजाने कभी उसका मुंह भी न देखा था। शीलवती यह सब अपने कर्मका ही दोष मानकर सन्तोष धारण करती थी। सभी रानियोंको वसन्तकका आतिथ्य करते देख, उसे भी वही कार्य करनेकी इच्छा हो आयी। यद्यपि राजाके पास जानेकी उसकी हिम्मत न पड़ती थी, तथापि वह साहस कर उनके पास

पहुंची और हाथ जोड़ कर कहने लगी—"हे स्वामिन्! हे प्राणधार! हे प्राणवल्लभ! मैंने आजतक आपसे कभी किसी वस्तुको याचना नहीं की है। यदि आप आज्ञा दें तो आज मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूं। राजाने विरक्ति पूर्वक इसके लिये अनुमति दे दी। शीलवतीने कहा,—"हे नाथ! इस चोरको मुझेदीजिये और सदाके लिये इसे मुक्त करनेकी कृपा कीजिये।" राजाने परोपकार बुद्धिपूर्वक की हुई रानीकी यह प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा,—"प्रिये! तूने निस्वार्थ भावसे यह प्रार्थना की है, इसलिये मैं तेरे कथनानुसार वसन्तकको अभयदान देकर इसे मुक्त करता हूं। अब तू इसे अपने साथ ले जा सकती है।"

राजाकी यह बात सुनकर रानीको बड़ा ही हर्ष हुआ। उसी समय वह वसन्तकको अपने साथ महलमें ले गयी और यथाशक्ति उसे स्नान, भोजन तथा वस्त्रादि द्वारा सम्मानित कर उसे अभयदान दिया। इससे वसन्तकको बड़ा ही आनन्द हुआ और वह उस अभयदानको राज्यप्राप्तिसे भी बढ़ कर मानने लगा। सब रानियोंकी तरह शीलवतीने एक दिन और एक रात अपने घर रखनेके बाद दूसरे दिन उसे धर्म पुत्र मान कर विदा किया। इसके बाद वसन्तक वहांसे विदा हो, राजाके पास गया और उसे प्रणाम करने लगा। यह देखकर राजाने पूछा—"वसन्तक! सच बताओ कि आज तू इतना प्रसन्न क्यों दिखायी देता है? रोज तेरे शरीरपर बहुमूल्य वस्त्राभूषण होनेपर भी तेरे चेहरेपर श्यामता छायी रहती थी, किन्तु

आज साधारण वेशमें होनेपर भी तेरा चेहरा क्यों चमक रहा है ?" राजाकी यह बात सुनकर वसन्तकने कहा—"हे नाथ ! आप मुझे शूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दे चुके थे अतएव सदा मेरे कानोंमें उन्हीं शब्दोंका भनक आया करती थी। उस दिनसे मुझे सारा संसार सूना दिखायी देता था। अन्न और जल विषके समान मालूम होता था। मुलायम गद्दे काँटोंकी शैयाके समान मालूम होते थे और थोड़ा गधेकी तरह दीखता था—इसी तरह सभी मुझे विपरीत मालूम होते थे। सदा मेरे नेत्रोंके सम्मुख मृत्यु नाचा करती थी, इसलिये सुखके साज भी मुझे दुःखदायक प्रतीत होते थे। आज आपने शीलवती रानीकी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे जो अभयदान दिया है, उसके कारण मुझे अब सारा संसार आनन्द प्रद दिखायी दे रहा है।"

इसी समय शीलवती रानी भी वहां आ पहुंची। उसने राजासे निवेदन किया कि—"हे नाथ ! आप इसे स्वयं अपने मुखसे अभय-दान दीजिये।" यह सुन राजाने कहा—"तथास्तु। मैं इसे अभय-दान देता हूं। क्या तुझे और भी कुछ कहना है ?" रानीने कहा—नहीं, नाथ ! आपकी कृपासे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। मैं पूर्ण रूपसे सुखी हूं।" रानीके यह शब्द सुनकर राजा अपने मनमें कहने लगा—"अहो ! धन्य है इसके गाम्भीर्यको, धन्य है इसकी परोपकार बुद्धिको और धन्य है इसके वचन-माधुर्यको ! वास्तवमें इसीके पुण्य प्रतापसे मेरा राज्य बढ़ रहा है!" इसके बाद दिन प्रतिदिन इस रानीके प्रति राजाका अनुराग बढ़ता गया और

अन्तमें उन्होंने उसीको पटरानी बना दिया। इस प्रकार पतिके प्रसादको प्राप्त कर शीलवती सद्गुण रूपी जलसे अपने पाप धोने लगी। कुछ ही दिनोंमें उसने अपने शील स्वभावके कारण सबको वशीभूत कर लिया। वसन्तक भी अब वहीं रहकर राजसेवा करने लगा। अब उसने जुआ, चोरी आदि बुरे कर्मोंका त्याग कर दिया और सदाचारी बनकर दिन बिताने लगा। इधर शीलवती रानी गृहस्थ धर्ममें प्रवृत्त हो सुख भोगने लगी और अभयदानके प्रभावसे यथा समय वह नवें ग्रैवेयकमें देवपनेको प्राप्त हुई। वहां एकतीस सागरोपमकी आयु भोगकर वह महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धिपद प्राप्त करेगी। वसन्तकने भी गुरुयोगसे पंच अणुव्रत ग्रहण किये और सम्यक् प्रकारसे उनका पालन कर अन्तमें स्वर्ग लाभ किया। इस दृष्टान्तसे शिक्षा ग्रहणकर लोगोंको अभयदान में प्रवृत्त होना चाहिये।"

भगवान पार्श्वनाथ भव्य जीवोंको उपदेश देते हैं कि—"हे भव्य जीवो! साधुओंको अन्न, उपाश्रय, औषधि, वस्त्र, पात्र और जलदान देनेसे प्राणीके करोड़ों जन्मके संचित पातक नष्ट हो जाते हैं और वह चक्रवर्ती तथा तीर्थंकरका पद प्राप्त करता है। सुपात्रको दिया हुआ दान मनुष्योंके लिये बहुत ही फलदायक सिद्ध होता है। कहा भी है कि—

"खलोपि गवि दुग्धं स्यादुग्धमप्युरगे विषम्।
पात्रापात्र विचारेण, तत्पात्रे दानमुत्तमम्॥"

अर्थात्—"गायको खली पिलानेसे वह भी दूधका रूप

धारण करती है और सर्पको दूध देनेसे वह भी विषरूप हो जाता है, इसलिये पात्रापात्रका विचारकर सुपात्रको दान देना उत्तम है।

इस प्रकारके उत्तम पात्र केवल साधु ही कहे जा सकते हैं। सत्ताईस गुणोंसे युक्त, पंच महाव्रतके पालनेवाले और अष्ट प्रवचन माताके धारक होनेके कारण साधु ही उत्तम पात्र हैं। सिद्धान्तमें भी कहा है कि सबसे उत्तम पात्र साधु और उससे मध्यम पात्र श्रावक और उससे जघन्य पात्र अविरति सम्यग् दृष्टिको जानना चाहिये। इस प्रकार साधु प्रधान पात्र होनेके कारण उन्हें पहले दान देना चाहिये। इसके अतिरिक्त स्वधर्मानुयायीको भी दान देना चाहिये। श्री सिद्धान्तमें कहा है कि तथा प्रकारके श्रमण माहण (साधु) को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थोंका दान देनेसे प्राणी आयुके अतिरिक्त अन्यान्य सात कर्मोंकी निविड़ प्रकृतियोंको शिथिल करनेमें समर्थ होता है और इससे अनेक जीव उसी जन्ममें मोक्ष प्राप्त करते हैं, अनेक जीव दो जन्ममें समस्त दुःखोंका अन्त कर सिद्ध होते हैं, जघन्यसे ऋषभ देव स्वामीके जीवकी तरह तेरह जन्मका उल्लंघन तो करते ही नहीं।

सरलभावसे भी सुपात्रको दान देनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। इस सम्बन्धमें निम्नलिखित दृष्टान्त विचारणीय है :—

महाविदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती विजयमें जयपुर नामक एक नगर है। वहां जयशेखर नामक राजा राज्य करता था। वहांपर चार वणिक पुत्रोंमें परस्पर गहरी मित्रता थी। उनमेंसे एकका नाम

चन्द्र, दूसरेका नाम भानु, तीसरेका नाम भीम और चौथेका नाम कृष्ण था। यह चारों सदा एक दूसरेका हित चाहते और परस्पर हास्यविनोद किया करते थे। दूध और पानीकी तरह सदा वे एक दूसरेसे मिले रहते थे। किसीने कहा है, कि—देना और लेना, गुप्त बात कहना और सुनना, भोजन करना और कराना—यह प्रीतिके छः लक्षण बतलाये हैं।" यह सभी बातें इन चारों मित्रोंमें पायी जाती थीं। इससे वे चारो जन बड़े ही आनन्द पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे।

एक समय चन्द्र सोचने लगा, कि हम लोग अपनेको भाग्यवान् भले हो समझें, पर वास्तवमें हम वैसे नहीं हैं, क्योंकि बाल्यावस्थामें तो माताका दूध और पिताका धन उपभोग करना ठीक हैं, किन्तु युवावस्थामें जो अपने हाथोंसे पैदा कर खाये-खर्चे वही वास्तवमें भाग्यवान है किन्तु जो मूल पुंजीको उड़ाता है, वह नीच कहलाता है। इसलिये धन कमानेके लिये कोई उपाय करना चाहिये। विना आमदनीके खर्च करना ठीक नहीं। यह सोचते हुए शीघ्र ही चन्द्रने अपना यह विचार अपने तीन मित्रोंको कह सुनाया। उसकी बात सुनकर सबोंने निर्णय किया कि—हम लोगोंको नौकाओं द्वारा समुद्र यात्रा कर व्यापार करना चाहिये।" इसके बाद उन सबोंने अपने-अपने पितासे इस सम्बन्धमें जिक्र किया; किन्तु सबोंके पिताओंने प्रायः यही उत्तर दिया कि घरमें काफी धन है, फिर तुम्हें इस तरह विदेश-गमन करनेको क्या आवश्यता है? अभी तुम लोग युवक हो, दूसरे

संसारके लोग भी बहुत ही धूर्त होते हैं, तीसरे विदेश यात्रा भी बहुत ही कष्टदायक होती है और फिर सामुद्रिक व्यापार करना तो बड़ाही कठिन काम है, इसलिये हम तुम्हें अनुमति देना उचित नहीं समझते।

दुर्भाग्यवश बड़ोंकी यह बात उन युवकोंको अच्छी न लगी। वे अपने विचारमें दृढ़ रहते हुए नौकाओंमें किराना भराकर समुद्र यात्राकी तैयारी करने लगे। चलते समय बुरे शकुन भी हुए किन्तु उसको भी उन्होंने परवाह न की। इस प्रकार प्रस्थान करनेके बाद तीसरे दिन आकाशमें एकायक बादल घिर आये, घोर गर्जना होने लगी और बिजली चमकने लगी। साथ ही इतने ज़ोरका बवंडर आया, कि नौकायें टूट कर चूर चूर हो गयी और इनमें बैठे हुए सब लोग समुद्रमें जा गिरे। कुछ लोग नौकाके काष्ट खण्डोंके सहारे तैरते हुए बाहर निकल आये। इसी तरह चन्द्र भी एक काष्ठके सहारे सातवें दिन बाहर आ निकला। अनन्तर वह अपने मनमें सोचने लगा—"अहो! मेरे सब साथियोंकी न जाने क्या गति हुई होगी? उन सबोंको मैंने ही आफतमें डाला। पिता और स्वजनोंके मना करने पर भी मैंने यह काम किया इसीलिये मुझे यह फल मिला। अब मेरा जीना ही बेकार है! ऐसे जीवनसे तो मर जानाही उत्तम है!" यह सोचकर उसने एक वृक्षके सहारे अपने गलेमें फाँसी लगा ली, किन्तु उसकी मृत्यु होनेके पूर्वही वहां एक ब्राह्मण आ पहुंचा और उसी समय उसने छुरीसे पाशको काट कर उसे नीचे उतारनेके बाद कहा—

"हे सात्विक ! आत्म-हत्याका पातक करना ठीक नहीं। शास्त्रमें भी इसकी बहुत ही निन्दा की गयी है।" यह कहकर वह ब्राह्मण चन्द्रको वहीं छोड़कर चला गया। इसके बाद चन्द्र वहांसे चलकर एक पहाड़पर पहुँचा। अभी उसके विचारोंमें परिवर्तन न हुआ था। अब भी उसके सिरपर आत्म-हत्या करनेका भूत सवार था, अतएव उसने फिर फांसी लगानेकी तैयारी की। इसी जगह एक मुनि कायोत्सर्ग कर रहे थे। उन्होंने उसका यह कार्य देखकर कहा—"हे भाई ! यह पाप-कर्म न कर !" यह सुनकर उसे बड़ाही आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह उस स्थानको सर्वथा एकान्त समझता था। चारों ओर निगाह करनेपर वृक्षोंकी घटामें उसे एक मुनि दिखायी दिये। उसी समय वह उनके पास पहुँचा और नमस्कार कर कहने लगा—"हे नाथ ! मैं बड़ा ही दुर्भागी हूँ। मुझे अपना यह जीवन भाररूप मालूम हो रहा है। अब मैं क्या करूँ, यही समझ नहीं पड़ता। यह सुन मुनिने कहा—"हे भद्र ! आत्म-हत्याके पातकसे प्राणीकी दुर्गति होती है और जीवित रहनेसे तो किसी न किसी दिन अवश्य ही कल्याण होता है, इसलिये आत्म-हत्या करनेका विचार छोड़ दे। इस सम्बन्धमें तुझे अपना ही उदाहरण देता हूँ। ध्यानसे सुन !

मंगलपुरमें चन्द्रसेन नामक एक राजा राज्य करता था। उसके भानु नामक एक प्रधानमन्त्री था। उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था। उन दोनोंमें बड़ा ही प्रेम था, एक दूसरेको प्राणसे भी अधिक चाहते थे। एक दिन घर आनेपर भानुने देखा कि सर-

स्वती पलंगपर बैठी हुई रो रही है। यह देख भानु तुरत उसके पास पहुँचा और उससे पूछने लगा कि—"प्रिये! क्यों रो रही हो?" यह सुन सरस्वतीने कहा—"योंही।" किन्तु इस उत्तरसे भानुको सन्तोष न हुआ। वह फिरसे उससे रोनेका कारण पूछने लगा। उसे इस तरह आग्रह करते देख सरस्वतीने कहा—"स्वामिन्! मैंने आज स्वप्नमें देखा कि आप किसी अन्य स्त्रीसे विलास कर रहे हैं। इसीलिये मुझे दुःख हो आया और रो रही हूँ।" यह सुनकर भानु अपने मनमें कहने लगा—"अहो! जब यह स्वप्नमें भी सौतको देखकर दुःखी हो रही है, तब यदि साक्षात् सौत आ जाय तो इसकी क्या अवस्था हो!" यह सोचते हुए उसने कहा—"हे प्रिये! मेरे हृदयपर तेरा ही एक मात्र अधिकार है और भविष्यमें भी यही रहेगा। यह शायद तुझे बतलाना न होगा कि मैं तुझे ही देखकर जीता हूं। ईश्वर न करे, यदि तेरे जीवनको कुछ हुआ, तो मेरे लिये प्राण धारण करना भी कठिन हो जायगा।" भानुकी यह बात सुन सरस्वतीको बड़ा ही आनन्द हुआ और वे दोनों फिर उसी तरह दिन बिताने लगे।

कुछ दिनोंके बाद राजाको मन्त्री और सेनाके साथ कहीं दूर विदेश जाना पड़ा। वहां एक दिन स्त्री-पुरुषके प्रेमके सम्बन्धमें बातचीत होनेपर मन्त्रीने राजाको अपने दाम्पत्य-प्रेमकी बात कह सुनायी। मन्त्रीकी बातपर राजाको विश्वास न हुआ। उसने सोचा कि मन्त्री और सरस्वतीके इस प्रेमकी परीक्षा लेनी चाहिये। यह सोचकर उसने एक मनुष्यको जयपुर भेजा और

उसके द्वारा सरस्वतीको कहलाया कि मन्त्रीको मृत्यु हो गयी है। जब यह समाचार सरस्वतीने सुना तो वह कटे हुए कदली-वृक्षकी तरह जमीनपर गिर पड़ी और उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। यह देखकर राजाके दूतको बड़ा ही दुःख हुआ। वह उलटे पैरों राजाके पास पहुंचा और उसे यह हाल कह सुनाया। सुनकर राजाको भी अत्यन्त दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा—"अहो! मैंने व्यर्थही स्त्री-हत्याका पाप अपने सिर बटोर लिया। अब यदि यह समाचार मन्त्री सुन लेगा, तो वह भी शायद प्राण छोड़ देगा, इसलिये उसे बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह सोचकर राजा मन्त्रीके डेरेपर पहुंचा। राजाको आते देखकर मन्त्रीको बड़ाही आश्चर्य हुआ। वह चकित होकर कहने लगा—"स्वामिन्! आज आपने सेवकके यहां आनेकी कृपा की है, इसलिये कोई विशेष कारण होना चाहिये। बतलाइये सेवकको क्या आज्ञा है?" यह सुन राजाने कहा—"मन्त्री! आज मैं तुम्हारे पास कुछ मागने आया हूं। यदि वचन दो तो कहूं।" मन्त्रीने कहा—"स्वामिन्! शीघ्र कहिये। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?" यह सुन राजाने कहा—"मन्त्री! तुम्हें खयाल होगा कि एक दिन तुमने अपने दाम्पत्य-प्रेमकी सराहना कर अपनेको बड़ाही भाग्य-वान बताया था। उस समय मुझे तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं हुआ अतएव मैंने परीक्षा लेनेके लिये सरस्वतीको तुम्हारा मृत्यु समाचार कहला भेजा; पर मुझे कहतेही दुःख होता है कि इसका परिणाम अत्यन्त बुरा हुआ। तुम्हारी मृत्युके समाचार सुनतेही

सरस्वतीने प्राण त्याग दिये। अब मैं तुमसे यही चाहता हूँ कि मेरा यह अपराध क्षमा करो। यदि तुम भी उसकी तरह आत्म-हत्या करोगे तो मुझे बड़ाही दुःख होगा।" राजाकी यह बात सुनते ही मन्त्री मुर्च्छित होकर गिर पड़ा। अनेक उपचार करनेके बाद जब किसी तरह उसे होश आया तब उसने कहा—"राजन्! मैंने अपनी पत्नीसे जो कहा था वह वास्तवमें ठीक ही था। उसके बिना अब मेरा जीना कठीन हो रहा है। यह सुन राजाने कहा—"मन्त्री! और कुछ नहीं, तो कम-से-कम मुझे प्रसन्न रखनेके लिये भी तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है। यदि तुमने भी परलोककी राह ली, तो शायद इसी दुःखके कारण मेरे जीवनका भी अन्त आ जाय! इस प्रकार अनेक तरहकी बात बनाते हुए राजाने उसे समझाया बुझाया। तदनन्तर मन्त्रीने अपने हृदयको पत्थरका सा बना कर जीवित रहना स्वीकार कर लिया, किन्तु उसी समय उसने प्रतिज्ञा कर ली कि अब मैं दूसरी स्त्रीसे ब्याह न करूंगा।

कुछ दिनोंके बाद सब लोग अपने नगरको लौट आये। मन्त्रीके घरमें अभी सरस्वतीकी चिताभस्म और अस्थियोंका शेषांश रखा हुआ था। उसे देखकर वह करुण क्रन्दन करने लगा। यहांतक कि अपने शरीरकी भी ममता छोड़ दी और रात-दिन उसी चिता भस्मकी पूजामें लीन रहने लगा। इसी तरह कुछ दिन बीत गये तब उसने एक दिन सोचा कि अब इस चिताभस्मको गंगामें डाल आना चाहिये। यह सोचकर वह काशी पहुंचा और वहां

जब चिताभस्म और अस्थिशेष गंगामें डालने लगा तब उसे सरस्वतीका स्मरण हो आया। वह उसका नाम लेकर रोने लगा। संयोगवश उसका यह विलाप काशीराजकी सरस्वती नामक पुत्रीके कानोंमें जा पड़ा, वह सुनते ही मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी। उसकी यह अवस्था देखकर सखियां राजाके पास दौड़ गयीं और उसे सारा हाल कह सुनाया। सुनते ही राजाने जाकर देखा तो वास्तवमें राजकुमारीकी दशा बड़ी शोचनीय हो रही है। इससे वह चिन्तित होने लगा। शीतल वायु और विविध उपचारोंसे राजकुमारीको जब होश हुआ तब राजाने उससे इस अस्वस्थाका कारण पूछा। सुनकर राजकुमारीने कहा—"पिताजी! गंगा-तटपर जो पुरुष रो रहा है वह मेरा पूर्व जन्मका पति है। अतः इस जन्ममें भी उसीको मैं अपना पति बनाऊंगी। अब उसके सिवा संसारमें सभी पुरुष मेरे लिये भाई और पिताके समान हैं।"

पुत्रीकी यह बात सुनकर राजाने भानुको उसी समय बुलाया और उससे सारा हाल कहते हुए सरस्वतीके साथ शादी करनेकी प्रार्थना की। यह सुन भानुने कहा—"राजन्! मैंने नियम कर लिया है, कि अब दूसरी स्त्रीसे ब्याह न करूंगा, किन्तु आपकी बातोंसे मुझे विश्वास हो आया है कि आपकी पुत्री शायद मेरी वही पहली स्त्री है, इसी लिये मैं आपकी बात मंजूर करता हूँ।" उसकी यह बात सुनकर राजाने बड़े समारोहके साथ दोनोंका पाणि ग्रहण करा दिया। इसके बाद भानु वहीं रहने और

सुखोपभोग करने लगा। कुछ दिनोंके बाद राजाने उसे राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार भानु मन्त्री काशीराजका उत्तराधिकारी हुआ और न्याय एवम् नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगा।

किसीने ठीक ही कहा है कि सभी दिन समान नहीं होते। दुःखके बाद सुख और सुखके बाद दुःख यही संसारका नियम है। तदनुसार कुछ दिनोंके बाद सरस्वतीको एक दिन बड़े जोरका बुखार आया और उसीके कारण उसका प्राणान्त हो गया। यह देख भानुराजाको न केवल दुःख ही हुआ बल्कि इस घटनाके कारण उसे वैराग्य आ गया और उसी समय उसने दीक्षा भी ग्रहण कर ली। अनन्तर वह चारित्रका पालन करने लगा। हे भद्र! वह भानुराजा मैं ही हूं और अपने अनुभवसे ही कहता हूँ कि जीते रहनेसे अवश्य ही कल्याण होता है। अब तुझे धर्म करना चाहिये। इसीसे तेरा कल्याण होगा। यह सुन चन्द्रने कहा—"गुरुदेव! आपकी आज्ञा माननेको तैयार हूं, किन्तु मुझे ऐसी कोई युक्ति बतलानेकी कृपा करें, जिससे परिश्रम तो थोड़ा ही करना पड़े और फल अधिक मिले।" चन्द्रकी यह बात सुन मुनिराजने उसे पंचपरमेष्ठी नमस्कार कह सुनाया। इससे चन्द्रको ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने वह मन्त्र उसी समय कण्ठस्थ कर लिया। अनन्तर मुनिने उसे उपदेश देते हुए कहा—"हे भद्र! इसी मन्त्रका निरन्तर स्मरण कर सम्यक्त्वका भली भांति पालन करना।" मुनिका यह उपदेश ग्रहणकर, चन्द्र विचरण करता

हुआ पुष्पपुर पहुँचा। वहां वह बड़ाही महर्द्धिक हुआ, फिर भी उसने नमस्कार महामन्त्रका स्मरण करना किसी भी अवस्थामें नहीं छोड़ा।

दैवयोगसे कुछ दिनोंके बाद अन्यान्य मित्र भी आ पहुँचे। एक दिन सबके इकट्ठा होनेपर चारोंने क्रमशः अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय चन्द्रके मुखसे नमस्कारका महात्म्य सुनकर अन्य तीन मित्रोंने भी उससे नमस्कार मन्त्र सीख लिया और इससे वे तीनों ही व्यापार कर बड़े ही महर्द्धिक हुए।

एक बार उन चारों मित्रोंने विचार किया कि हम लोगोंने काफी धन कमा लिया है, अतएव अब अपने नगर चलना चाहिये। यह सोचकर उन लोगोंने नौका द्वारा समुद्र पारकर अपने नगरकी राह ली। मार्गमें एक सरोवरके पास जा, वहां वे खाने-पीनेकी तैयारी करने लगे। भोजन तैयार होनेपर ज्योंही वे खाने चले, त्योंही उनकी दृष्टि एक मुनिपर जा पड़ी। वह मुनि छः महीनेके उपवासी थे और नगरमें गोचरी करनेके लिये जा रहे थे। उन्हें देखकर उन चारोंने उसी समय बुलाया और भावपूर्वक अहार देकर भोग-कर्म फल उपार्जन किया। इसके बाद वे चारो-जन सकुशल अपने नगर आ गये। वहां सब स्वजनोंसे भेंट होने-पर उन्होंने अनेक तरहके उत्सव मनाये। इसके बाद दीर्घकालतक ऋद्धि सुख भोगकर वे चारों दानके प्रभावसे बारहवें देवलोकमें देव हुए। देव आयु पूर्ण होनेपर वहांसे च्युत होकर वे चारोंजन भिन्न-भिन्न देशोंके राजा हुए। पूर्व जन्मके संस्कारसे इन चारोंमें

सुखोपभोग करने लगा। कुछ दिनोंके बाद राजाने उसे राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार भानु मन्त्री काशीराजका उत्तराधिकारी हुआ और न्याय एवम् नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगा।

किसीने ठीक ही कहा है कि सभी दिन समान नहीं होते। दुःखके बाद सुख और सुखके बाद दुःख यही संसारका नियम है। तदनुसार कुछ दिनोंके बाद सरस्वतीको एक दिन बड़े जोरका बुखार आया और उसीके कारण उसका प्राणान्त हो गया। यह देख भानुराजाको न केवल दुःख ही हुआ बल्कि इस घटनाके कारण उसे वैराग्य आ गया और उसी समय उसने दीक्षा भी ग्रहण कर ली। अनन्तर वह चारित्रका पालन करने लगा। हे भद्र! वह भानुराजा मैं ही हूं और अपने अनुभवसे ही कहता हूँ कि जीते रहनेसे अवश्य ही कल्याण होता है। अब तुझे धर्म करना चाहिये। इसीसे तेरा कल्याण होगा। यह सुन चन्द्रने कहा—"गुरुदेव! आपकी आज्ञा माननेको तैयार हूं, किन्तु मुझे ऐसी कोई युक्ति बतलानेकी कृपा करें, जिससे परिश्रम तो थोड़ा ही करना पड़े और फल अधिक मिले।" चन्द्रकी यह बात सुन मुनिराजने उसे पंचपरमेष्ठी नमस्कार कह सुनाया। इससे चन्द्रको ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने वह मन्त्र उसी समय कण्ठस्थ कर लिया। अनन्तर मुनिने उसे उपदेश देते हुए कहा—"हे भद्र! इसी मन्त्रका निरन्तर स्मरण कर सम्यक्त्वका भली भांति पालन करना।" मुनिका यह उपदेश ग्रहणकर, चन्द्र विचरण करता

प्रसिद्ध नगर है। वहां एक समय मणिरथ नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही पापी और स्त्री-लम्पट था। उसके युगबाहु नामक एक भाई था जो युवराजके पदपर था। वह दयालु दानी, गुणवान और बहुत ही उत्तम प्रकृतिका पुरुष था। उसके मदनरेखा नामक एक सती साध्वी स्त्री थी। वह बड़ीही रूपवती और पतिव्रता थी। वह सदा पौषध और प्रतिक्रमणादिक किया करती थी। उसके चन्द्रयशा नामक एक पुत्र भी था।

एक बार परदेकी ओटसे मदनरेखाको गहने-कपड़ोंसे सजी हुई देखकर मणिरथ अपने मनमें कहने लगा—"अहो! कैसी देवाङ्गनाके समान सुन्दरी है। मेरी स्त्री भी इतनी सुन्दर नहीं है। अतएव जिस तरह हो, इसे हाथमें करना चाहिये। यह सोचकर उसी दिनसे वह फल-फूल, वस्त्र और अलंकारादि चीजें उसके पास भेजने लगा। सरल हृदया मदनरेखा भी इन चीजोंको ज्येष्ठका प्रसाद समझकर रख लेने लगी। इसी तरह कुछ दिन बीत गये, तब एक दिन उसने अपनी दूतीको उसके पास भेजा। वह उसके पास आकर कहने लगी—"हे भद्रे! राजा मणिरथ तेरे गुणोंपर तन-मनसे मुग्ध हो रहे हैं। वे तुझे अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर अपने राज्यको स्वामिनी बनाना चाहते हैं। यह तेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है, अतएव तुझे शीघ्रही स्वीकार कर लेना चाहिये।" दूतीकी यह बात सुनकर रानीने कहा—"उत्तम जनोंको ऐसा काम शोभा नहीं देता। शास्त्रमें भी कहा है कि—"हे गौतम! जब अनन्त पापराशिका उदय होता है तब स्त्रीत्व

(५) कुड्यन्तर—अर्थात् दीवारके अन्तरका भी त्याग करना चाहिये। जिस घरमें स्त्री-पुरुष सोते हों और जहांसे कङ्कण आदिकी या हाव भाव, विलास और हास्यादिकी अवाज सुनायी देती हो, वहां दीवारका अन्तर होनेपर भी ब्रह्मचारीको न रहना चाहिये।

(६) पुव्वकीलीय—पूर्व क्रीड़ित अर्थात् पूर्वकालमें स्त्रीके साथ जो क्रीड़ा आदि की हो उसका भी स्मरण न करना चाहिये।

(७) पणीय—अत्यन्त स्निग्ध आहार यानि जिस पदार्थके सेवनसे कामोद्दीपन होनेकी संभावना हो, ऐसे पदार्थका त्याग करना चाहिये।

(८) अइमायाहार—ज़ियादा आहार न करना चाहिये।

(९) विभूसणाई—आभूषण, स्वच्छ वस्त्र, स्नान, मज्जन और अंगशोभा आदिका भी ब्रह्मचारीको त्याग करना चाहिये।

इन नव मर्यादाओंकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये और निरतिचार पूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। इसमें पुरुषको स्वदारासन्तोष व्रत और स्त्रीको स्वपुरुष सन्तोष व्रत धारण करना चाहिये। जो लोग विषयाकुल हो मनसे भी शीलका खण्डन करते हैं, वे मणिरथ राजाकी तरह घोर नरकके अधिकारी होते हैं। और जो सती मदनरेखाकी भांति निर्मल शीलका पालन करते हैं, वह भाग्यवान जीवोंमें सम्मानित होकर सुगतिको उपार्जन करते हैं। मणिरथ और मदनरेखाका दृष्टान्त इस प्रकार है :—

इस भरत क्षेत्रके अवन्ती नामक देशमें सुदर्शन नामक एक

प्रसिद्ध नगर है। वहां एक समय मणिरथ नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही पापी और स्त्री-लम्पट था। उसके युगबाहु नामक एक भाई था जो युवराजके पदपर था। वह दयालु दानी, गुणवान और बहुत ही उत्तम प्रकृतिका पुरुष था। उसके मदनरेखा नामक एक सती साध्वी स्त्री थी। वह बड़ीही रूपवती और पतिव्रता थी। वह सदा पौषध और प्रतिक्रमणादिक किया करती थी। उसके चन्द्रयशा नामक एक पुत्र भी था।

एक बार परदेकी ओटसे मदनरेखाको गहने-कपड़ोंसे सजी हुई देखकर मणिरथ अपने मनमें कहने लगा—"अहो! कैसी देवाङ्गनाके समान सुन्दरी है। मेरी स्त्री भी इतनी सुन्दर नहीं है। अतएव जिस तरह हो, इसे हाथमें करना चाहिये। यह सोचकर उसी दिनसे वह फल-फूल, वस्त्र और अलंकारादि चीजें उसके पास भेजने लगा। सरल हृदया मदनरेखा भी इन चीजोंको ज्येष्टका प्रसाद समझकर रख लेने लगी। इसी तरह कुछ दिन बीत गये, तब एक दिन उसने अपनी दूतीको उसके पास भेजा। वह उसके पास आकर कहने लगी—"हे भद्रे! राजा मणिरथ तेरे गुणोंपर तन-मनसे मुग्ध हो रहे हैं। वे तुझे अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर अपने राज्यकी स्वामिनी बनाना चाहते हैं। यह तेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है, अतएव तुझे शीघ्रही स्वीकार कर लेना चाहिये।" दूतीकी यह बात सुनकर रानीने कहा—"उत्तम जनोंको ऐसा काम शोभा नहीं देता। शास्त्रमें भी कहा है कि—"हे गौतम! जब अनन्त पापराशिका उदय होता है तब स्त्रीत्व

प्राप्त होता है और स्त्रीत्व प्राप्त होनेपर यदि उसमें शील न हुआ तो उसका जीवन वेकार ही समझना चाहिये। अतएव स्त्रियोंका मुख्य गुण शील ही है। इसके अतिरिक्त जो पुरुष सज्जन होते हैं, वे मृत्युको भेंटना पसन्द करते हैं, किन्तु किसीके शीलको खण्डित नहीं करते। इससे दोनों लोक बिगड़ते हैं। और भी कहा है कि जीवहिंसा, असत्य और परद्रव्यके अपहरण एवम् परस्त्रीकी कामना करनेसे प्राणियोंको नरककी प्राप्ति होती है। इसलिये तू राजासे जाकर कह दे कि हे राजन्! सन्तोष कीजिये और इस दुराग्रहको छोड़ दीजिये। ऐसी तृष्णाको कभी भूलकर भी हृदयमें स्थान न देना चाहिये।" मदनरेखाकी यह बातें सुन दूतीने ज्यों की-त्यों राजाको कह सुनायी; किन्तु इससे उसकी कामतृष्णा शान्त होनेके बदले और भी प्रबल हो उठी।

एक दिन राजाके मनमें विचार आया कि जबतक युगबाहु जीता रहेगा तबतक मदनरेखाको वश करना कठिन है। अतएव किसी तरह पहले इस कण्टकको दूर करना चाहिये। इसके बाद मदनरेखा बातोंसे न मानेगी तो उसे बलसे भी वश कर लूंगा। यह सोचकर वह किसी उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा। वास्तवमें काम और मोहकी विडम्बना ऐसी ही होती है। जात्यन्ध, मदोन्मत्त और अर्थी कभी भी अपने दोषको नहीं देख सकते। किसीने ठीक ही कहा है कि नीमके पेड़को दूधसे सींचा जाय और उसके चारों ओर गुड़का थाला बनाया जाय, तब भी वह अपनी कटुताको नहीं छोड़ सकता। कहनेका तात्पर्य यह

है कि लोगोंके जाति गुण विपरीत परिस्थितिमें भी परिवर्तित नहीं होते।

एक बार मदनरेखाको स्वप्नमें चन्द्र दिखायी दिया। यह बात उसने अपने पति युगबाहुसे निवेदन की। उसने कहा—"हे देवि! यह स्वप्न बहुत ही अच्छा है। इससे मालूम होता है कि तुझे चन्द्रके समान पुत्रकी प्राप्ति होगी।" यह स्वप्न फल सुनकर मदनरेखाको बड़ा ही आनन्द हुआ। क्योंकि उस समय वह वास्तवमें गर्भवती थी। तीसरे महीने गर्भके प्रभावसे मदनरेखाको जिन पूजा करने और जिनेश्वरकी कथा सुननेका दोहद हुआ। यह जान कर युगबाहुने शीघ्रही उसका यह दोहद पूर्ण कर दिया। अनन्तर कुछ ही दिनोंके बाद वसन्तऋतु आ पहुंची। इस समय वन और उपवनोंकी शोभा सौगुनी बढ़ गयी। जिधर ही देखिये उधर ही नाग, पुन्नाग, मल्लिका, कुन्द, मचकुन्द, एला, लवङ्ग, द्राक्ष, कदली, जुई और चम्पक प्रभृति पुष्पों और वृक्षोंकी बहार दिखायी देती थी। चारों ओर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। कोयलें कूक रही थीं और पक्षीगण क्रीड़ा कर रहे थे। उपवनकी यह शोभा देख कर युगबाहु मदनरेखाके साथ क्रीड़ा करने गया। उस समय अनेक नगर निवासी भी वहां क्रीड़ा करनेके लिये पहलेहीसे गये हुए थे। युगबाहुने सारा दिन वहीं जलक्रीड़ा, एवं खाने-पीने और सोनेमें बिता दिया। जब रात्रि हो गयी तो वह वहीं कदली गृहमें सो रहा। युगबाहुके साथ जो लोग गये हुए थे उनमेंसे कुछ तो नगरको लौट आये और कुछ वहीं रह गये।

इधर राजा मणिरथ हमेशाँ युगबाहुके कामोंपर ध्यान रखता था। जब उसे उद्यान-क्रीड़ाका हाल मालूम हुआ, तब वह अपने मनमें कहने लगा—"आजसे बढ़कर अच्छा अवसर फिर शायदही मिलेगा। उद्यानमें भी आज उसके साथ बहुत ही कम मनुष्य हैं अतएव आज ही उसे तलवारके घाट उतार देना चाहिये।" यह सोचकर वह हाथमें तलवार ले उद्यानमें पहुंचा। वहां उसने पहरेदारोंसे पूछा—"युगबाहु कहा है? शीघ्रही बतलाओ। जंगलमें अपने भाईको अकेला जान कर मेरा चित्त विचलित हो उठा है। इसीलिये मैं अधीर होकर यहां दौड़ आया हूँ।" राजा और पहरेदारोंकी यह बातचीत सुनकर युगबाहु जग पड़ा। वह तुरतही कदली गृहके बहार निकल आया और राजाको प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। यह देख राजाने कहा—"हे वत्स! चलो, हमलोग नगरमें चलें। हमलोगोंके हजार दोस्त और हजार दुश्मन होते हैं अतएव इस तरह जंगलमें रहना ठीक नहीं।" राजाकी यह बात सुनकर युगबाहुने उसी समय मदनरेखा तथा अन्यान्य मनुष्योंको साथ ले नगरकी ओर प्रस्थान किया। रास्तेमें युगबाहुको साथ ले मणिरथ सब लोगोंसे कुछ आगे निकल गया। उसके मनमें तो आज पाप बसा हुआ था। अतएव एकान्त मिलते ही उसने युगबाहुकी गर्दनपर एक तलवार जमा दी। इससे तुरत ही युगबाहु मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा। इधर मदनरेखा इन लोगोंसे थोड़ी ही दूरीपर थी। इसलिये वह इस घटनाको देखते ही बड़े जोरसे चिल्ला उठी। उसकी यह चिल्लाहट

सुनते ही युगबाहुके अनुचर वहां दौड़ आये। वहां जो उन्होंने दृश्य देखा उससे उनके आश्चर्यका पारापार न रहा। युगबाहु लहूसे लथपथ अवस्थामें जीवनकी अन्तिम घड़ियां व्यतीत कर रहा था और उसके पासही मणिरथकी रक्त रंजित तलवार पड़ी हुई थी। इस समय मणिरथने सब लोगोंको शान्त करते हुए कहा कि—"मेरे हाथसे अचानक तलवार छूटकर इसे लग गयी! अब मैं क्या करूं और संसारको कौन मुंह दिखाऊं? इसी तरह की बातें बना कर वह लोगोंको दिखानेके लिये गला फाड़-फाड़ कर रोने लगा। कुछ समय तक यह अभिनय करनेके बाद वह युगबाहुको नगरमें उठवा ले गया। उधर युगबाहुके पुत्र चन्द्रयशाने जब यह समाचार सुना, तो वह हाहाकार करता हुआ वहां दौड़ आया और पिताकी यह अवस्था देखकर वह क्षण भरके लिये किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गया; किन्तु शीघ्र ही उसने अपने आपको सम्हाला और युगबाहुका उपचार करनेके लिये नगरके सुचतुर वैद्योंको बुला लाया। उसी समय वैद्य लोग यत्नपूर्वक युगबाहुकी चिकित्सा करने लगे, किन्तु अब उसके जीवनकी कोई आशा न थी: उसके जख्मसे बहुत सा रक्त निकल जानेके कारण वह मृत प्राय हो रहा था। उसकी बोली बन्द हो गयी थी, शरीर स्तब्ध हो गया था और आंखें झेंप गयी थीं। पतिकी यह अवस्था देखते ही मदनरेखा समझ गयी कि अब इनका अन्तिम समय आ पहुंचा है। अतएव वह उसके कानके पास आकर कोमल स्वरसे कहने लगी—"हे प्राणनाथ! अब आप स्वहितकी साधनाके लिये

तैयार हो जाइये। उसके लिये यही उपयुक्त अवसर है। आपके भाईने आपके साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उसका कोई ख़याल न कीजिये। यह सब अपने कर्मका ही दोष है। इसमें और किसीका दोष नहीं हैं। किसीने कहा भी है कि इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें जो जिस कर्मको करता है, वह उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। दूसरे तो केवल निमित्त मात्र हैं। इसलिये आप उसका कोई ख़याल न कर केवल धर्मकी साधना कीजिये। आपने अपने जीवनमें यदि कोई दुष्कर्म किया हो तो उसकी निन्दा कीजिये। मित्र, शत्रु या स्वजन, परजनका कोई अपराध किया हो, तो उनसे क्षमा प्रार्थना कीजिये और सबसे मैत्रीभाव बढ़ाइये। जिन्होंने आपको दुःखमें डाला हो, उनसे भी क्षमा प्रार्थना कीजिये। जीवन, धन, यौवन, रूप और प्रिय समागम—यह सब समुद्रके तरंगोंकी भाँति चंचल हैं। व्याधि, जन्म, जरा और मृत्युसे ग्रसित प्राणियोंके लिये जिन धर्मके अतिरिक्त और कोई अवलम्बन नहीं है। आप किसीका भी प्रतिबन्ध न कीजिये। प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही सुख दुःखका अनुभव करता है। शरीर, धन, धान्य और परिवार यह सभी अनित्य हैं। रुधिर, मांस, अस्थि, अन्त्रावली, विष्ठा और मूत्रसे परिपूर्ण इस शरीरपर आसक्त न होइयेगा। लालन-पालन करने पर भी यह शरीर अपना कभी नहीं होता। धीर या भीरु सबको एक न एक दिन मरना ही है। मृत्युसे केवल बालक और सुकृत-वर्जित मनुष्य ही डरते हैं। पण्डितगण तो मृत्युको प्रियतम

अतिथि मानते हैं। इसलिये मरना इस तरह चाहिये, कि जिससे फिर मरना न पडे। इसके लिये मनमें सोचना चाहिये कि मुझे जिनेश्वरकी शरण प्राप्त हो, सिद्धकी शरण प्राप्त हो, साधुकी शरण प्राप्त हो और केवली भाषित धर्मकी शरण प्राप्त हो। अठारह पाप-स्थानोंका प्रतिक्रमण कीजिये। पञ्चपरमेष्ठी मन्त्रका स्मरण कीजिये। ऋषभादि जिनेश्वरोंको तथा भरत, ऐरवत, और महाविदेहके समस्त जिनेश्वरोंको नमस्कार कीजिये, क्योंकि तीर्थंकरोंको नमस्कार करनेसे ही ससारके भ्रमणसे छुटकारा होता है और भव्य जीवोंको उच्च प्रकारके सम्यक्त्वका लाभ होता है। साथ ही सिद्ध भगवानको नमस्कार कीजिये, जिससे कर्मका क्षय हो। मनमें कहिये कि ध्यान रूपी अग्निसे सहस्र जन्मके कर्मरूपी इन्धनको जला देनेवाले सिद्ध भगवानोंको नमस्कार है। इसी तरह धर्माचार्योंको भी नमस्कार कीजिये। उपाध्यायको नमस्कार कीजिये। जिनकल्पी, स्थविरकल्पी, जंघाचारण, विद्याचारण इत्यादि सब प्रकारके साधुओंको भी नमस्कार कीजिये। इन पाच नमस्कारोंसे जीवको यदि मोक्षकी प्राप्ति न हुई तो वह वैमानिक देव तो अवश्य ही होता है। साथ ही चतुर्विध आहारका त्याग कर अनशन ग्रहण कीजिये। इससे अवश्य आपका कल्याण होगा और आपके इहलोक तथा परलोक सुधरेंगे।

मदनरेखाके इन अमृतके समान वचनोंको श्रवणकर युगबाहुका क्रोध शान्त हो गया। उसी समय उसने मस्तकपर अंजलि जोडकर यह सब स्वीकार किया। इसके बाद शुभ ध्यानपूर्वक

मृत्युको प्राप्त कर यह पांचवें ब्रह्मदेवलोकमें देव हुआ और उसे दस सागरोपमकी आयु प्राप्त हुई।

पिताकी मृत्यु देखकर चन्द्रयशा अत्यन्त कल्पान्त करने लगा। मदनरेखाको भी बहुत दुःख हुआ। वह अपने मनमें सोचने लगी,—"अहो! मेरे रूपको धिक्कार है। मैं कैसी अभागिनी हूं कि मेरा रूप ही मेरे पतिके विनाशका कारण हुआ। जिस दुरात्माने मेरे निमित्त अपने भाईकी हत्या की, वह अवश्य ही बलपूर्वक मुझे वश करनेकी चेष्टा करेगा। इसलिये अब यहाँ मेरा रहना ठीक नहीं। अब मुझे कहीं अन्यत्र जाकर जीविकाका कोई निर्दोष साधन खोज निकालना चाहिये। यहां रहनेसे सम्भव है कि यह पापी मेरे पुत्रको भी मार डाले।" यह सोच कर मदनरेखा मध्यरात्रिके समय घरसे निकल पड़ी और पूर्व दिशाके एक जंगलमें जा पहुंची। रात्रि व्यतीत होनेपर दूसरे दिन मध्यान्हके समय एक सरोवर पर जा, उसने फलाहार और जलपान द्वारा उदरपूर्ती की। थकावटके कारण उसका शरीर चूर चूर हो रहा था। पैरोंमें अब एक कदम भी चलनेकी शक्ति न थी अतएव वह एक कदली-गृहमें जाकर सो रही। इसी तरह वह दिन बीत गया। रात्रिके समय भी उस कदली-गृहको अन्यान्य स्थानोंसे अधिक सुरक्षित समझ कर वह वहीं सो रही। रात्रिमें व्याघ, सिंह, चीते और शृगाल प्रभृति वन्य पशुओंकी बोलियां सुनकर उसका कलेजा कांप उठता था। फिर भी, वह नमस्कार मंत्रका स्मरण करती हुई वहीं पड़ी रही। मध्यरात्रिके

समय उसे प्रसव वेदना आरम्भ हुई और कुछ ही देरके बाद उसने एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। इस समय उसके कष्टोंका कोई वारापार न था, परन्तु लाचार, सिरपर जो आ पड़ी थी, उसे सहन करनेके सिवा और कोई चारा न था।

सूर्योदय होनेपर उसने अपने पुत्रको उंगलीमें एक मुद्रिका पहना दी। जिसपर युगबाहुका नाम अङ्कित था। इसके बाद एक कम्बलपर उसे सुलाकर, वह अपने कपड़े तथा शरीर धोनेके लिये पासके सरोवर पर गयी। उस समय वहां जलमें एक हाथी क्रीड़ा कर रहा था। उसने मदनरेखाको सूंढसे पकड़ कर आकाशकी ओर उछाल दिया। इसी समय एक युवक विद्याधर, जो नन्दीश्वर द्वीपसे आ रहा था, यहीं आ निकला। वह मदनरेखाको देखते ही उसपर मोहित हो गया। उसी समय उसने उसे आकाशमें गोंच लिया और वैताढ्य पर्वतपर उठा ले गया। वहां पहुंचनेपर मदनरेखाने धैर्य रखते हुए कहा—"हे महासत्व! आजही रात्रिको मैंने जगलमें पुत्रको जन्म दिया है। उसे मैं कदली-गृहमें रख सरोवरपर गयी थी। वहांपर जलक्रीड़ा करते हुए हाथीने मुझे आकाशकी ओर उछाल दिया। किन्तु मेरे सौभाग्यसे उसी समय आप यहां आ पहुंचे और आपने मुझे उठा लिया। वर्ना नीचे आनेपर तो मेरे प्राण ही निकल जाते। अब मुझे अपने बच्चेकी फिक्र लगी है। यदि मैं इसी समय वहां न पहुँचूंगी, तो वन्य पशु उसे मार डालेंगे या निराहार अवस्थामें वह आप ही मर जायगा। इसलिये हे दयालु! मुझे

पुत्रदान देनेकी कृपा कीजिये। या तो उसे यहां ले आइये या मुझे ही यहां पहुँचा दीजिये।"

मदनरेखाकी यह प्रार्थना सुनकर विद्याधरने कहा,—हे भद्रे ! यदि तू मेरी पत्नी होना स्वीकार करे, तो मैं तेरी बात मान सकता हूं। देख, इस वैताढ्य पर्वतके रत्नावह नामक नगरमें मणिचूड़ नामक एक राजा राज्य करते थे। उन्हींका मैं पुत्र हूँ। पिताने राजगद्दीपर मुझे बैठाकर, चारणश्रमण मुनिके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली है। कल वे नन्दीश्वर द्वीपके जिनेश्वरोंको वन्दना करने गये उस समय मैं भी उनके साथ वन्दना करनेके लिये गया था। वहांसे वापस आते समय मार्गमें मैंने तुझे देखा और तेरा रूप सौन्दर्य देखकर तुझपर मुग्ध हो गया, इसीलिये मैंने तुझे बचा लिया है। अब तू मेरी बात मान कर मेरी गृहिणी होना स्वीकार कर। इससे हम दोनों सुखी होंगे। पुत्रके सम्बन्धमें तो अब तुझे चिन्ता करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। उसे मिथिलापति पद्मरथ राजा, जो अश्वक्रीड़ा करते हुए उधरसे आ निकले थे, उठा ले गये हैं। और उसे अपनी रानी पुष्पमालाको सौंप दिया है। वह भी पुत्रकी भांति उसका लालन-पालन कर रही है। यह सब बातें मैं प्रज्ञप्तिविद्यासे जान सका हूं। अब तू उसकी चिन्ता छोड़ दे और सानन्द मेरे साथ ऐश्वर्य उपभोग कर।

विद्याधरकी यह बातें सुनकर मदनरेखा अपने मनमें कहने लगी,—"अहो ! मेरा भाग्य कैसा विचित्र है, कि एक न एक आफत मेरे सिरपर मँडराया ही करती है। जिस आफतसे

बचनेके लिये मैं इतनी दूर आयी, वह अब भी मेरे पीछे पड़ी हुई है। खैर, चाहे जो हो, जिस शीलकी मैंने अबतक रक्षा की है, उसे भविष्यमें भी प्राणपणसे बचानेकी चेष्टा करूंगी।" यह सोचकर उसने विद्याधरसे कहा,—"महानुभाव! पहले आप मुझे नन्दीश्वरद्वीप ले चलिये और जिन वन्दन तथा मुनि-वन्दन कराइये। इसके बाद आप जो कहेंगे वही करूंगी।" मदनरेखाके इन वचनोंसे सन्तुष्ट होकर विद्याधरने उसी क्षण उसे विमानमें बैठाकर नन्दीश्वरद्वीपके लिये प्रस्थान किया।

नन्दीश्वर द्वीपकी शोभा अवर्णनीय थी। चार चैत्य चार अंजन गिरिपर, सोलह चैत्य सोलह दधिमुखपर और बत्तीस चैत्य बत्तीस रतिकरपर सुशोभित हो रहे थे। सब मिलाकर बावन जिनालय थे। वे सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊंचे थे। विमानसे उतर कर दोनोंने ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्धमान नामक शाश्वत जिनेश्वरोंकी प्रतिमाओंका भक्तिपूर्वक पूजन वन्दन किया। इसके बाद मणि-चूड़ मुनीश्वरको नमस्कार कर वे दोनों उनके पास बैठे गये। मुनीश्वर परम ज्ञानी थे। वे अपने ज्ञानसे मदनरेखाके मनोभाव तुरत ही ताड़ गये। उन्होंने मणिप्रभको धर्मोपदेश देते हुए शीलके सम्बन्धमें बहुत कुछ शिक्षा दी। इससे मणिप्रभको अपने पापके लिये पश्चाताप हुआ और उसने मदनरेखासे क्षमा प्रार्थना कर अपना अपराध क्षमा कराया। मणिप्रभने कहा,—आजसे मैं तुझे अपनी बहिन मानूंगा। मेरे योग्य जो कार्यसेवा

हो, वह निःसंकोच भावसे सूचित कर। यह सुन मदनरेखाने कहा,—"हे बंधु! आपने इस तीर्थका दर्शन करानेकी जो कृपा की है उससे मैं कृतकृत्य हो गयी हूं। अब मुझे और कोई अभिलाषा नहीं है।" इसके बाद मदनरेखाने मुनिसे अपने पुत्रके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न पूछे। मुनिने उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा,—"हे भद्रे! पूर्वकालमें दो राजकुमार थे, उन्होंने धर्माराधन कर देवत्व प्राप्त किया था। वहांसे च्युत होकर एक तो मिथिलापति पद्मरथ राजा हुआ और दूसरा तेरा पुत्र हुआ। इस समय पद्मरथ तेरे पुत्रको अपने साथ ले गया है और उसे अपनी रानी पुष्पमालाको सौंप दिया है। वह निःसन्तान होनेके कारण उसे अपना पुत्र ही समझकर उसका भलीभांति लालन-पालन कर रही है। पूर्वजन्मके प्रेमके कारण राजा इस जन्ममें भी उसे बहुत चाहता है। उसने नगरमें पुत्रजन्मका महोत्सव भी कराया है। इस समय तेरा पुत्र सब तरहसे सुखी है। तुझे उसकी लेशमात्र भी चिन्ता न करनी चाहिये।"

जिस समय मुनि यह बातें बतला रहे थे, उसी समय चन्द्र और रविकी प्रभासे भी अधिक तेजस्वी, रत्नों द्वारा निर्मित, घुंघुरोंके शब्दसे शब्दायमान, बाजोंके नाद और देवताओंकी जयध्वनिसे पूरित एक विमान वहां आ पहुँचा। उसमेंसे वस्त्राभूषण विभूषित एक तेजस्वी देव नीचे उतरा। उसने सर्वप्रथम मदनरेखाको तीन प्रदक्षिणायें देकर प्रणाम किया। इसके बाद वह मुनिको प्रणाम कर उनके पास बैठ गया। देवकी यह

असंबद्ध क्रिया देखकर मणिप्रभने कहा,—"जब देवता ही ऐसा विरुद्धाचरण कर रहे हैं, तब औरोंको क्या कहा जाय? पहले चार ज्ञानके धारण करनेवाले और रम्य चारित्रसे विभूषित मुनिको प्रणाम करना चाहिये था, किन्तु इस देवने पहले एक स्त्रीको प्रणाम किया। यह विरुद्धाचरण नहीं तो और क्या है?" मणिप्रभकी यह बातें सुनकर वह देव उसे जवाब देना चाहता ही था, कि उतनेमें मुनिराज बोल उठे। उन्होंने कहा—"हे मणिप्रभ! तेरा यह आक्षेप अनुचित है। इस देवको इसके कार्यके लिये उपालम्भ नहीं दिया जा सकता। मणिरथ राजाने मदनरेखापर आसक्त हो जिस समय युगबाहुकी हत्या की थी उस समय मृत्यु शय्यापर पड़े हुए युगबाहुको मदनरेखाने ही कोमल शब्दोंमें जिन धर्मका उपदेश दिया था और उसी धर्मके प्रभावसे युगबाहु पांचवें देव लोकमें देव हुआ। वही यह है और मदनरेखा इसकी धर्मगुरुणी है। इसीलिये इस देवने प्रथम इसे प्रणाम किया है। कहा भी है कि जो यति या गृहस्थ किसीको धर्ममें लगाता है, वही सद्धर्म दानके कारण उसका गुरु कहलाता है। इसके अतिरिक्त जो सम्यक्त्व दे, उसके लिये यही समझना चाहिये कि उसने शिवसुख दिया है। इस उपकारके समान और कोई उपकार ही नहीं है।" मुनीश्वरकी यह बातें सुन मणिप्रभको जिन धर्मके अद्भुत सामर्थ्यका ज्ञान हुआ और उसने उस देवसे क्षमा प्रार्थना की। उस समय उसने मदनरेखासे कहा—"हे भद्रे! तुझे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो तो सूचित कर, मैं उसे पूर्ण

करनेके लिये तैयार हूं।" यह सुन मदनरेखाने कहा—"हे देव! जन्म, जरा, मृत्यु, रोग और शोकादिकसे वर्जित मोक्ष सुख प्राप्त करना यही एक मात्र मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। यदि आप मेरा कुछ अभीष्ट करना ही चाहते हैं, तो मुझे शीघ्रही मिथिलापुरी ले चलिये। क्योंकि पहले मैं अपने पुत्रको एक वार जी भरकर देख लेना चाहती हूं। इसके बाद मैं धर्म कर्ममें विशेष रूपसे प्रवृत्त होनेकी चेष्टा करूंगी।"

मदनरेखाकी यह बात सुनकर देवने उसे उसी क्षण मिथिलापुरी पहुंचा दिया। इसी मिथिलापुरीमें श्रीमल्लिनाथ महाप्रभुके दीक्षा, जन्म और केवल ज्ञान—यह तीन कल्याणक हुए थे। इसीलिये मिथिलापुरी एक तीर्थस्थान मानी जाती है। मदनरेखा और उस देवने यहां पहुंचकर जिनचैत्यों और उपाश्रय स्थित साध्वियोंको सर्व प्रथम वन्दन किया। साध्वियोंने उन्हें धर्मोपदेश देते हुए कहा—"मनुष्य जन्म बड़ा ही दुर्लभ है, इसीके द्वारा धर्माधर्मका फल जाना जा सकता है अतएव मनुष्य जन्म प्राप्त होनेपर धर्मकार्यमें सदा तत्पर रहना चाहिये।" साध्वियोंका यह धर्मोपदेश सुननेके बाद उस देवताने मदनरेखासे कहा—"हे सुन्दरी! चलो, अब तुम्हें राज-मन्दिरमें ले चलूं और वहां तुम्हें तुम्हारा पुत्र दिखलाऊं।" यह सुन मदनरेखाने कहा—"हे देव! अब मेरी मनोवृत्ति बदल गयी है। अब मैं पुत्र स्नेहको हृदयसे सदाके लिये दूर करना चाहती हूँ। पुत्रादि परिवार तो इस संसारमें भ्रमण करते हुए अनेक वार प्राप्त हो चुका है। अब मुझे उसकी

अपेक्षा नहीं है। अब तो मैं केवल दीक्षा लेना चाहती हूं और इसके लिये मैं इन्हीं साध्विओंकी शरण ग्रहण करती हूं।" मदनरेखाकी यह बात सुनकर वह देव साध्विओं और मदनरेखाको नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। अनन्तर मदनरेखाने साध्विओंके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली। साध्विओंने उसका नाम बदलकर सुव्रता रखा। मदनरेखा अब दुष्कर तप करने और निरतिचार पूर्वक चारित्रका पालन करनेमें अपना समय व्यतीत करने लगी।

उधर मदनरेखाके उस पुत्रके प्रभावसे पद्मरथ राजाका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। अनेक राजाओंने नम्रता पूर्वक उसकी सेवामें उपस्थित होकर उसकी अधीनता स्वीकार की। पद्मरथने इस प्रतापी बालकका नाम नमि रखा। एवं उसके लालन-पालन के लिये अनेक धात्रियोंको नियुक्त कर दिया। क्रमशः जब नमिने यौवनावस्थामें पदार्पण किया, तब पद्मरथने एक हजार और आठ कुलीन कन्याओंसे उसका विवाह कर दिया। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद जब पद्मरथने देखा, कि नमिकुमार राज्यभार सम्हालने योग्य हो गया है, तब उसे राज गद्दीपर बैठा कर, उसने दीक्षा ले ली। इसके बाद पद्मरथ राजाने अपने कर्मोंको क्षयकर मोक्षकी प्राप्ति की और नमिकुमारने अनेक राजाओंको अधीनकर अपनी और अपने राज्यकी खूब उन्नति की।

इधर युगबाहुकी हत्या करनेके बाद मणिरथ राजा भी किसी प्रकार सुखी न हो सका। जिस रात्रिको उसने युगबाहुपर तलवारसे वार किया था, उसी रात्रिको एक विषधर सर्पने उसे

डस लिया और इसके कारण उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर वह पंकप्रभा नामक चौथी नरक पृथ्वीमें नारकी हुआ। उसके कोई पुत्र नहीं था इसलिये मन्त्री और अधिकारियोंने सलाहकर युगबाहुके पुत्र चन्द्रयशाको सिंहासनपर बैठाया। अनन्तर चन्द्रयशाने राज्यका समस्त भार सम्हाल लिया और बड़ी योग्यताके साथ प्रजाका पालन करने लगा।

इस प्रकार मदनरेखाके दोनों पुत्र अलग-अलग राज्यके अधिकारी हुए। किन्तु दैव दुर्विपाकसे कुछ दिनोंके बाद एक ऐसी घटना घटित हुई, जिससे दोनोंके बीच घोर संग्राम होनेकी नौबत आ गयी। बात यह हुई कि नमिराजाके यहां एक बहुत ही बलवान और विशालकाय सफेद हाथी था, वह एक दिन अपने बन्धनोंको तोड़कर सुदर्शन पुरकी ओर चला आया। जब वह सुदर्शनपुरकी सीमामें पहुंच गया तब लोगोंने चन्द्रयशाको उसके आनेकी सूचना दी। सुनकर कौतूहल वश वह उसे देखने गया और तुरत उसे पकड़ कर अपने साथ ले आया। कुछ दिनोंके बाद अनुचरों द्वारा यह समाचार नमिराजाके पास पहुंचा। चन्द्रयशाकी यह धृष्टता नमिको असह्य हो पड़ी। उसने उसी समय एक दूतको उसके पास भेज कर अपना हाथी वापस मांगा। दूतके पहुंचनेपर चन्द्रयशाने उससे कहा—"तेरे स्वामीको क्या मति विभ्रम हो गया है, जो वह हाथीको वापस मांग रहा है। उसने मुझे यह हाथी नहीं दिया है। यह तो ईश्वरकी कृपासे स्वयं मेरे पास आया है। तेरे राजाको यह जानना और समझना

चाहिये कि लक्ष्मी वंश परम्परासे प्राप्त नहीं होती। वह तो खड्ग द्वारा आक्रमण करनेसे ही भोगी जाती है और इसी लिये यह कहावत प्रचलित हुई है कि वसुन्धराको वीर पुरुष ही उपभोग कर सकते हैं।

नमिराजाके दूतको इस तरहकी बातें सुना कर, बल्कि कहना चाहिये कि उसे अपमानित कर चन्द्रयशाने उसे बिदा किया। उसने जाकर, यह सारा हाल नमिराजाको कह सुनाया। इससे नमिराजाको बड़ा ही क्रोध चढ़ा और उसने उसी क्षण रणभेरी बजवा कर सैनिकोंको रणयात्रा करनेकी आज्ञा दी। देखते-ही-देखते नमिराजाकी यह सेना सुदर्शनपुर जा पहुंची और नगरपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगी। इधर चन्द्रयशा भी पहलेसे तैयार बैठा था। उसने भी अपने सैनिकोंको तैयार होनेकी आज्ञा दे दी। उसकी इच्छा थी कि नगरके बाहर निकल कर नमिराजा की सेनासे मोर्चा लिया जाय; किन्तु बुरे शकुनोंने उसे रोका और मन्त्रियोंने भी उसे सलाह दी कि इस समय नगरके दरवाजे बन्द कर यहीं बैठ रहना और शत्रुकी गति विधि देखते रहना अधिक लाभ दायक है। यह सुन चन्द्रयशाने मन्त्रियोंकी सलाह मान ली और ऐसा ही किया। उधर नमिराजाने भी चारों ओरसे नगरको घेर लिया।

इस दुर्घटनाका समाचार जब साध्वी सुव्रताने सुना; तब वह अपने मनमें कहने लगी—संग्राममें मनुष्योंका नाश कर निःसन्देह मेरे दोनों पुत्र अधोगति प्राप्त करेंगे। किन्तु यह ठीक नहीं।

डस लिया और इसके कारण उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर वह पंकप्रभा नामक चौथी नरक पृथ्वीमें नारकी हुआ। उसके कोई पुत्र नहीं था इसलिये मन्त्री और अधिकारियोंने सलाहकर युगबाहुके पुत्र चन्द्रयशाको सिंहासनपर बैठाया। अनन्तर चन्द्रयशाने राज्यका समस्त भार सम्हाल लिया और बड़ी योग्यताके साथ प्रजाका पालन करने लगा।

इस प्रकार मदनरेखाके दोनों पुत्र अलग-अलग राज्यके अधिकारी हुए। किन्तु दैव दुर्विपाकसे कुछ दिनोंके बाद एक ऐसी घटना घटित हुई, जिससे दोनोंके बीच घोर संग्राम होनेकी नौबत आ गयी। बात यह हुई कि नमिराजाके यहां एक बहुत ही बलवान और विशालकाय सफेद हाथी था, वह एक दिन अपने बन्धनोंको तोड़कर सुदर्शन पुरकी ओर चला आया। जब वह सुदर्शनपुरकी सीमामें पहुंच गया तब लोगोंने चन्द्रयशाको उसके आनेकी सूचना दी। सुनकर कौतूहल वश वह उसे देखने गया और तुरत उसे पकड़ कर अपने साथ ले आया। कुछ दिनोंके बाद अनुचरों द्वारा यह समाचार नमिराजाके पास पहुंचा। चन्द्रयशाकी यह धृष्टता नमिको असह्य हो पड़ी। उसने उसी समय एक दूतको उसके पास भेज कर अपना हाथी वापस मांगा। दूतके पहुंचनेपर चन्द्रयशाने उससे कहा—"तेरे स्वामीको क्या मति विभ्रम हो गया है, जो वह हाथीको वापस मांग रहा है। उसने मुझे यह हाथी नहीं दिया है। यह तो ईश्वरकी कृपासे स्वयं मेरे पास आया है। तेरे राजाको यह जानना और समझना

चाहिये कि लक्ष्मी वंश परम्परासे प्राप्त नहीं होती। वह तो खड्ग द्वारा आक्रमण करनेसे ही भोगी जाती है और इसी लिये यह कहावत प्रचलित हुई है कि वसुन्धराको वीर पुरुष ही उपभोग कर सकते हैं।

नमिराजाके दूतको इस तरहको बातें सुना कर, बल्कि कहना चाहिये कि उसे अपमानित कर चन्द्रयशाने उसे विदा किया। उसने जाकर, यह सारा हाल नमिराजाको कह सुनाया। इससे नमिराजाको बड़ा ही क्रोध चढ़ा और उसने उसी क्षण रणभेरी बजवा कर सैनिकोंको रणयात्रा करनेकी आज्ञा दी। देखते-ही-देखते नमिराजाकी यह सेना सुदर्शनपुर जा पहुंची और नगरपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगी। इधर चन्द्रयशा भी पहलेसे तैयार बैठा था। उसने भी अपने सैनिकोंको तैयार होनेकी आज्ञा दे दी। उसकी इच्छा थी कि नगरके बाहर निकल कर नमिराजा की सेनासे मोर्चा लिया जाय; किन्तु बुरे शकुनोंने उसे रोका और मन्त्रियोंने भी उसे सलाह दी कि इस समय नगरके दरवाजे बन्द कर यहीं बैठ रहना और शत्रुको गति विधि देखते रहना अधिक लाभ दायक है। यह सुन चन्द्रयशाने मन्त्रियोंकी सलाह मान ली और ऐसा ही किया। उधर नमिराजाने भी चारों ओरसे नगरको घेर लिया।

इस दुर्घटनाका समाचार जब साध्वी सुव्रताने सुना; तब वह अपने मनमें कहने लगी—संग्राममें मनुष्योंका नाश कर निःसन्देह मेरे दोनों पुत्र अधोगति प्राप्त करेंगे। किन्तु यह ठीक नहीं।

जिस तरह हो मुझे इन दोनोंको युद्ध करनेसे रोकना चाहिये। यह सोचकर वह साध्वियोंके साथ वह सुदर्शनपुरमें नमिराजाके पास गयी। वहाँ नमिराजाने उसे आते देख विनय पूर्वक वन्दन किया एवं उनको उच्च आसनपर बैठाकर आप उनके चरणोंके पास भूमि पर बैठ गया। पश्चात् साध्वियोंने उसे धर्म लाभ दे, समझाते हुए कहा कि,—"हे राजन्! यह राज्य लक्ष्मी असार है। जीव हिंसा से प्राणियोंको अवश्य ही नरककी प्राप्ति होती है। इसलिये युद्ध करनेका विचार छोड़ दे। इसके अतिरिक्त बड़े भाईसे युद्ध करना तो बिलकुल असंगत है।" यह सुन नमिराजाने कहा—"हे देवि! चन्द्रयशा मेरा बड़ा भाई कैसे हुआ?" सुव्रताने अब नमिराजाको सारा वृत्तान्त कह सुनाया और प्रमाणके लिये उस कम्मलको, जो उसे ओढ़ाया था और उस मुद्रिकाकी निशानी बतलायी। इससे सुव्रताके कथनको पुष्टि हो गयी और नमिराजाको विश्वास हो गया, कि सुव्रता जो कह रही हैं, वह अक्षरशः सत्य है। फिर भी वह मानके कारण युद्धको बन्द करनेके लिये तैयार न हुआ।

इसके बाद साध्वी सुव्रता चन्द्रयशाके पास गयी। वह उसे देखते ही पहचान गया। उसी समय उसने सुव्रताको उच्च आसन देकर नम्रता पूर्वक वन्दन किया। यह देख उसके परिवारने भी आदरपूर्वक सुव्रताको वन्दन किया। इस प्रकार सुव्रताका समुचित सत्कार करनेके बाद चन्द्रयशाने कहा—"हे भगवति! आपको यह उग्रव्रत क्यों धारण करना पड़ा।" पुत्रका यह प्रश्न सुनकर सुव्रताने उसे सारा हाल ज्यों-का-त्यों कह सुनाया।

सुनकर उसने पूछा,—"देवी! वह स्वप्न-सूचित मेरा भाई कहां है?" सुव्रताने कहा,—"हे वत्स! जिस नमिराजाने तेरे नगरको घेर रखा है, वही तेरा वह भाई है।"

माताकी यह बात सुनकर चन्द्रयशाके आनन्दका वारापार न रहा। वह उसी समय नेमिराजाको भेटनेके लिये चल पड़ा। जब यह समाचार नेमिराजाने सुना, तो वह भी सम्मुख चलकर मार्गमें ही चन्द्रयशासे आ मिला। दोनों जन एक दूसरेके गलेसे चिपट गये। उनका वह प्रेम-मिलन संसारमें एक देखने योग्य वस्तु थी।

भेंट होनेके बाद चन्द्रयशाने बड़े समारोहके साथ नमिराजाको अपने नगरमें प्रवेश कराया। इसके बाद उसने आंखोंसे आंसू गिराते हुए नमिराजासे कहा—"हे वत्स! पिताकी मृत्यु देखनेके बादसेही मुझे राज्यसे विरक्ति हो गयी है, किन्तु इस गुरुतर भारके उठानेवालाका अभाव होनेके कारण मुझे इच्छा न होते हुए भी यह भार उठाना पड़ा। अब तू इस भारको स्वीकार कर। इस प्रकार नमिको समझा बुझा कर चन्द्रयशाने अपना राज्य भी उसीको सौंप दिया और स्वयं दीक्षा ले ली।

एक बार नमिराजाको बड़े जोरका बुखार आया। उसे शान्त करनेके लिये अनेक उपचार किये गये, किन्तु कोई लाभ न हुआ। ज्वरको शान्त करनेके लिये चन्दनके लेपकी आवश्यकता थी अतएव सभी रानियां चन्दन घिसने लगीं। रानियोंके हाथमें अनेक कंकण थे। चन्दन घिसते समय उनसे जो रणकार होता

था, यह राजाको बहुत ही अप्रिय मालूम होने लगा। इसलिये रानियोंने केवल एक एक कंकण हाथमें रखकर शेष सभी कंकण निकाल डाले। इससे आवाज आनी बन्द हो गयी। जब राजाको अवाज न सुनायी दी, तो उसने मन्त्रीसे पूछा,—"अब कंकणोंकी आवाज क्यों नहीं सुनायी देती। रानियोंने चन्दन घिसना क्या बन्द कर दिया है?" यह सुन मन्त्रीने कहा—"नहीं, स्वामिन्! रानियां चन्दन घिस रही हैं किन्तु अब उनके हाथमें केवल एक एक कंकण रहनेके कारण आवाज नहीं आती।"

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राजाके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह अपने मनमें कहने लगा,—"अहो! बहुतोंका संयोग होनाही दुःखदायक है। अनेक कंकणोंसे मुझे कष्ट हो रहा था। उनके कम हो जानेसे वह कष्ट दूर हो गया। अतः इस दृष्टान्तसे यही प्रतीत होता है, कि अकेले रहनेमें ही परम आनन्द है। अब यदि किसी प्रकार मेरा यह ज्वर शान्त हो जाय, तो मैं अपने राज्य परिवारको त्याग कर अकेला रहूंगा और चारित्र ग्रहण करूंगा।

इसी तरहकी बात सोचते-सोचते नमिराजाको निद्रा आ गयी। प्रातःकाल उसने स्वप्नमें अपनेको पर्वतके शिखरपर श्वेत हाथीपर बैठा हुआ देखा। जब सूर्योदय होनेपर शंख एवम् वाद्यध्वनिसे नमिराजाकी निद्रा भङ्ग हुई, तब उसने अपनेको सर्वथा स्वस्थ पाया। वह अपने मनमें कहने लगा,—"अहो! आज मैंने कैसा शुभ स्वप्न देखा! गायपर, पर्वतके अग्रभागपर, प्रासादपर, फले हुए वृक्षपर और गजेन्द्रपर आरूढ़ होनेका स्वप्न दिखायी दे तो

उसे बहुत ही शुभ समझना चाहिये। किन्तु मुझे खयाल आता है कि मैंने पहले कभी इस शैलराजको देखा है।" इस तरहकी बातें सोचते-सोचते शुभ अध्यवसायसे राजाको जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसे अब स्पष्ट रूपसे पूर्व जन्मकी सारी बातें याद आने लगीं। उसे मालूम हो गया कि पूर्व जन्ममें जब मैं मनुष्य था तब चारित्रका पालन कर मैं दसवें प्राणत देवलोकमें देव हुआ था। उस जन्ममें जिनेश्वरके जन्मोत्सवके समय मैं मेरुपर्वतपर गया था और उसी समय मैंने उसे देखा था। इस प्रकार नमिराजाको अपने आप ज्ञान उत्पन्न हुआ। फलतः उसने अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

जिस समय नमिराजाने साधुवेषमें नगरसे प्रस्थान किया उस समय नगरकी समस्त प्रजा हाहाकार कर विलाप करने लगी। इसी समय शक्रेन्द्रको नमिराजाकी परीक्षा लेनेकी सूझी अतः वे ब्राह्मण वेषमें नमिराजाके सम्मुख उपस्थित हो कहने लगे—"महाराज! आपने यह जीव दयाका कैसा व्रत धारण किया है? इधर आपने तो व्रत लिया है और उधर समस्त नगरनिवासी क्रन्दन कर रहे हैं। इस व्रतसे लोगोंको पीड़ा हो रही है, अतएव इसे अयोग्य समझ कर त्याग कीजिये।"

ब्राह्मणके यह वचन सुन कर मुनिराजने कहा,—"हे विप्र! वास्तवमें मेरे व्रतके कारण इन लोगोंको कोई कष्ट नहीं हो रहा है। यह तो अपनी स्वार्थहानि देखकर रो रहे हैं। इस समय तो मैं भी उन्हींकी तरह अपना स्वार्थ सिद्ध करने जा रहा

हूँ, अतएव मुझे दूसरोंकी ओर देखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।" नमिराजाका यह उत्तर सुन इन्द्रने राज प्रासादमें कृत्रिम अग्नि उत्पन्नकर उसे दिखलाते हुए कहा—"हे मुने! आपका यह महल और अन्तःपुर तो जोरोंसे जल रहा है, इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?" नमिराजाने कहा—"जलने दीजिये। इनके जलनेसे मेरी कोई हानि नहीं है।" यह सुन इन्द्रने कहा,—"खैर, कमसे कम नगरके चारों ओर मंत्रयुक्त एक किला ही बनवा दीजिये। इससे आपकी प्रजा सुरक्षित रहेगी। इसके बाद फिर आप संयम ग्रहण कीजिये। राजर्षिने कहा,—"हे भद्र! संयम मेरा नगर है, उसके आस-पास समभाव रूपी किला है और नयरूपी मन्त्रोंसे उसकी रक्षा होती है।" यह सुन पुनः शक्रने कहा—"हे राजन्! लोगोंको रहनेके लिये एक उत्तम प्रासाद बनवा कर तब दीक्षा लीजिये।"

है। इसमें दीन जनोंको दान देनेका भी अवसर मिलता है। इसके मुकाबले मुनिधर्म कोई चीज नहीं।" नमिराजाने कहा— "नहीं, ब्रह्मदेव! यह तुम्हारी भूल है। गृहस्थ धर्म सावद्य होनेके कारण राईके समान छोटा है और मुनिधर्म निरवद्य होनेके कारण मेरु पर्वतके समान बड़ा है।" इन्द्रने कहा—"ऐश्वर्य भोग करनेका जो अवसर मिला है, उसे इस प्रकार क्यों खो रहे हैं? पहले ऐश्वर्य भोग कीजिये, बादको संयम लीजियेगा। मुनिने कहा— "ऐश्वर्य और भोगसे इस जीवको कभी तृप्ति होती ही नहीं। भोगके बाद संयम ग्रहण करनेका अवसर कभी मिल ही नहीं सकता।"

इस प्रकार इन्द्रने अनेक बातें कहीं, किन्तु नमिराजा अपने व्रतसे लेशमात्र भी विचलित न हुए। यह देखकर इन्द्रने अपने प्रकृत रूपमें उपस्थित होकर कहा—"हे महात्मन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप धन्य और कृत-कृत्य हैं। आप महानुभाव हैं। आपका कुल भी प्रशंसनीय है क्योंकि आपने इस संसार का तृणवत् त्याग किया है। इस प्रकार नमस्कार, स्तुति और तीन प्रदक्षिणा कर इन्द्र देवलोकको चले गये और राजर्षि नमि निरतिचार पूर्वक चारित्रका पालन करने लगे। कुछ दिनोंके बाद कर्मक्षय होनेपर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ एवं अन्तमें उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

मदनरेखा साध्वीने भी चारित्रका पालन कर मोक्ष प्राप्त किया। जो लोग मदनरेखाकी भांति अखंड शीलका पालन करते

है, उन्हें धन्य है। ऐसे लोगोंको मोक्ष प्राप्त करते देर नहीं लगती। जो लोग राजर्षि नमिकी भांति राज्य त्याग कर चारित्र ग्रहण करते हैं और निरतिचार पूर्वक पालते हैं, उन्हें भी धन्य है। ऐसे भव्यजीव अवश्य ही मोक्षको प्राप्त करते हैं।

अब हमलोग तप धर्मपर विचार करेंगे। अनन्त कालका संचित और निकाचित कर्मरूपी काष्ट भी तपरूपी अग्निसे भस्म हो जाता है। कहा भी है कि जिस प्रकार जंगलको जलानेके लिये दावाग्निके सिवा और कोई समर्थ नहीं है। दावाग्निको शान्त करनेके लिये मेघके सिवा और कोई समर्थ नहीं है, मेघको छिन्न-भिन्न करनेके लिये जिस प्रकार पवनके सिवा और कोई समर्थ नहीं है। उसी प्रकार कर्म समूहका नाश करनेके लिये तपके सिवा और कोई समर्थ नहीं है। इससे समस्त विघ्न दूर होते हैं, देवता आकर सेवा करते हैं; काम शान्त होता है, इन्द्रियां सन्मार्गमें प्रेरित होती हैं, लब्धियें प्रकट होती हैं, कर्मसमूहका नाश होता है और स्वर्ग एवम् मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये तपके समान प्रशंसनीय वस्तु और नहीं है। हे महानुभाव! इन्हीं कारणोंसे तपधर्मकी आराधना करना कहा है। विस्तृत राज्यका त्याग कर चारित्र अंगीकार करनेवाले सनत्कुमार चक्रीको भी तपके प्रभावसे अनेक लब्धियोंकी प्राप्ति हुई थी। वह कथा इस प्रकार है :—
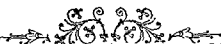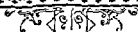
इस भरतक्षेत्रके कुरुदेशमें महर्द्धिपूर्ण हस्तिनागपुर नामक एक नगर है। वहां अतुल पराक्रमी वीरसेन नामक राजा राज्य करता था। उसे सहदेवी नामक एक पटरानी थी। वह परम पवित्र और शीलवती थी। उसके उदरसे चौदह स्वप्न सूचित सनत्कुमार नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। सनत्कुमारके महेन्द्रसेन नामक एक बाल मित्र था। महेन्द्रसेनकी माताका नाम कालिन्दी और पिताका नाम सूरराज था। इन दोनोंकी शिक्षा दीक्षा एक साथ ही होती थी। कुछ ही दिनोंमें सनत्कुमार समस्त कलाओंमें पारङ्गत हो गया। और अपना अधिकांश समय विद्या-विनोदमें व्यतीत करने लगा।

क्रमशः राजकुमारने युवावस्थामें पदार्पण किया और वह अब आमोद-प्रमोद तथा क्रीड़ाओंमें भी भाग लेने लगा। एक वार वसन्त ऋतु आनेपर वह अपने मित्र और नगरजनोंके साथ वनमें गया और वहां नाना प्रकारकी वसन्तक्रीड़ा करने लगा। जिस समय वह नजदीकके एक सरोवरमें जलक्रीड़ा कर रहा था, उसी

समय वहां एक हाथी आ पहुंचा। उसको देखकर कुमारको कुछ चिन्ता हुई, किन्तु आत्म रक्षाका कोई उपाय करनेके पहले ही उस हाथीने अपनी सूंढसे उसे और उसके मित्रको अपनी पीठपर बैठाकर आकाश मार्गसे अपनी राह ली। सनत्कुमार और महेन्द्रसेन उसकी पीठपर बैठे हुए पृथ्वीके विविध दृश्य देखनेमें लीन हो रहे थे। इधर हाथी उड़ता हुआ वैताढ्य पर्वतपर पहुंचा और दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नगरके बाहर एक उपवनमें दोनों कुमारोंको उतार दिया। इसके बाद उस हाथीने नगरमें जाकर राजासे निवेदन किया कि—"हे स्वामिन्! मैं आपकी आज्ञानुसार सनत्कुमारको ले आया हूं। यह सुनकर कमलवेग राजा सपरिवार उस उपवनमें गया और सनत्कुमारको प्रणामकर कहने लगा—"हे स्वामिन्! मेरे मदनकला नामक एक पुत्री है। उसकी विवाह योग्य अवस्था जानकर मैंने एक नैमित्तिकसे पूछा कि इसका पति कौन होगा?" नैमित्तिकने आपका नाम बतलाते हुए कहा, कि सनत्कुमार चक्रवर्ती इसका पति होगा। इसीलिये मैंने इस हाथी रूपी विद्यासागरको आपको लिवा लानेके लिये भेजा था। आप यहां आये यह बहुतही अच्छा हुआ। अब सहर्ष नगरमें चलिये और मेरी कन्यासे पाणिग्रहण कीजिये।"

इतना कह कमलवेग बड़ी धूमके साथ सनत्कुमारको नगरमें ले गया और वहां यथाविधि अपनी पुत्रीके साथ उसका ब्याह कर दिया। इसी समय अन्यान्य विद्याधरोंने भी अपनी-अपनी कन्याएं उससे ब्याह दीं। इस प्रकार सब मिलाकर पांचसौ

कन्याओंके साथ सनत्कुमारने पाणिग्रहण किया। इसके बाद उत्तर श्रेणीके विद्याधरोंने भी अपनी पांचसौ कन्याएं सनत्कुमारसे व्याह दी। अब सनत्कुमार वहीं रहने और आनन्द करने लगे। कुछ दिनोंके बाद समस्त विद्याधर राजाओंने सनत्कुमारको राज्याभिषेक किया और उनकी अधीनता स्वीकार की। इस प्रकार बहुत दिनोंतक विद्याधरोंका आतिथ्य ग्रहण करनेके बाद सनत्कुमार चतुरंग सेनाके साथ आकाशगामी विमानपर आरूढ़ हो अपने नगरको लौट आये। यहां पर सनत्कुमारके माता-पिता उनकी राह देख रह थे। इसलिये वे सनत्कुमारका आगमन-समाचार सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए। अनन्तर सनत्कुमारने उनको प्रणामकर सब हाल कह सुनाया। इससे उनके माता-पिताओंको बड़ाही आनन्द हुआ और वे पुत्रोंका मुंह फिर दिखानेके लिये ईश्वरको अनेकानेक धन्यवाद देने लगे।

एक बार चक्र आदि चौदह महारत्न प्रकट हुए तब सनत्कुमारने समूचे भरत क्षेत्रको अधिकृत कर लिया। इसके बाद कुछ दिनोंमें नवनिधान प्रकट हुए तब उसने अन्यान्य देशोंको अधिकृत कर चक्रवर्तीका पद प्राप्त किया। इस प्रकार वह चक्रवर्ती हो सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा।

एक बार सौधर्मेन्द्र इन्द्रसभामें बैठ कर नाटक देख रहे थे। इसी समय ईशान देवलोकसे संगम नामक देव किसी कार्य वश सौधर्मेन्द्रको मिलने आया। उसकी प्रभाके सम्मुख इन्द्रसभा उसी तरह तेज हीन मालूम होने लगी जिस तरह सूर्योदय होने पर चन्द्र

और तारागण निस्तेज हो जाते हैं। उसके चले जाने पर देवताओंने विस्मित हो सौधर्मेन्द्रसे पूछा कि—"यह देव इतना तेजस्वी क्यों मालूम होता था ?" इन्द्रने कहा—"इसने पूर्व जन्ममें आयम्बिल—वर्धमान नामक तप किया था। इसीलिये यह इतना तेजस्वी मालूम होता है। पुनः देवताओंने पूछा—"हे स्वामिन्! क्या मनुष्य लोकमें भी कोई अधिक स्वरूपवान है ?" देवेन्द्रने कहा—"इस समय मनुष्य लोकमें हस्ति-नागपुर नामक नगरमें कुरुवंश-विभूषण सनत्कुमार चक्रवर्ती राज करता है, वह देवताओंसे भी अधिक रूपवान है। यह सुनकर सब देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनमें जय और विजय नामक दो देवताओंको इन्द्रकी इस बातमें कुछ अतिशयोक्ति प्रतीत हुई अतः वे ब्राह्मणका रूप बनाकर मनुष्य लोकमें आये और द्वारपालकी आज्ञा प्राप्त कर सनत्कुमारके महलमें प्रवेश किया। सनत्कुमारको देखतेही दोनोंको विश्वास हो गया कि सौधर्मेन्द्रकी बात बिलकुल सत्य थी। उस समय सनत्कुमार चक्री तैल-मर्दन करा रहे थे। इन दोनों विप्रोंको देख कर चक्रीने पूछा—"आप लोग कौन हैं ? और यहां किसलिये आये हैं ?" ब्राह्मणोंने कहा—"हे नरेन्द्र! हम लोग ब्राह्मण हैं। आजकल तीनों लोकमें आपके रूपकी प्रशंसा हो रही है, इसीलिये हम आपके दर्शन करने आये हैं।"

ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर सनत्कुमार अपने मनमें कहने लगा—"अहा! मैं धन्य हूं, कि तीनों लोकमें मेरे रूपकी प्रशंसा हो रही है।" इसके बाद उसने ब्राह्मणोंसे कहा—"इस समय आप लोग

मेरा रूप क्या देख रहे हैं। इस समय तो मैं स्नान करने जा रहा हूं। आप लोग कुछ समय ठहरिये। जब मैं स्नान कर वस्त्राभूषणसे विभूषित हो राज-सिंहासन पर बैठूँ तब मेरा रूप देखियेगा।" सनत्कुमारको यह बात सुनकर दोनों ब्राह्मण वहांसे अन्यत्र चले गये। सनत्कुमारने स्नानादिसे निवृत्त हो, वस्त्राभूषण धारण कर जब राज-सभामें प्रवेश किया तब उसने दोनों ब्राह्मणोंको बुला भेजा। ब्राह्मणोंको यह देख कर बहुत ही आश्चर्य हुआ, कि इतनेही समयमें राजा रोग ग्रस्त हो गया था और उसका समस्त तेज नष्ट हो गया था। इससे ब्राह्मणोंको बहुत ही विषाद हुआ और उन्होंने राजासे कहा"—अहो! मनुष्योंके रूप, तेज, यौवन और सम्पत्ति अनित्य और क्षणभंगुर हैं।" सनत्कुमारने कहा—"आप लोग ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं?" यह सुन ब्राह्मणोंने कहा—"हे नरेन्द्र! देवताओंका रूप, तेज, बल और लक्ष्मी आयु पूर्ण होनेके केवल छः ही मास पहले क्षीण होते हैं, किन्तु मनुष्यके शरीरको शोभा तो क्षणमात्रमें ही विनाश हो जाती है। यह संसार ही अनित्य है। जो सुबह होता है वह दोपहरको नहीं रहता और जो दोपहरको होता है, वह रात्रिको नहीं रहता। इस संसारके समस्त पदार्थ अनित्य हैं।" ब्राह्मणोंको इस तरहकी बातें करते देख सनत्कुमारको बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"हे ब्राह्मणो! मैं आप लोगोंकी बात न समझ सका। आप जो कहना चाहते हों, वह साफ कहिये। ब्राह्मणोंने कहा—"राजन्! क्या कहें? कुछ देर पहले जब हमलोगोंने आपको देखा, तब

जितनी प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं अधिक रूपवान आपको पाया। किन्तु अब हम देखते हैं कि आपका समस्त तेज नष्ट हो गया है और आप नाना रोगोंसे ग्रसित हो रहे हैं। इसके लिये आपको जो करना हो, वह कर सकते हैं।" "यह कह वे ब्राह्मण रूपी दोनों देवता स्वर्ग चले गये।

उपदेशमालामें कहा है कि—"क्षणमात्रमें शरीर क्षीण होने पर देवताओंके कहनेसे जिस प्रकार सनत्कुमार चक्रीको ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार अनेक सत्पुरुषोंको अपने आप ज्ञान हो जाता है।"

देवताओंकी बात सुन सनत्कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कंकण और बाजूबन्द विभूषित दोनों बाहुओंकी ओर देखा तो वे उन्हें निस्तेज मालूम हुईं। हार और अर्ध हारसे विभूषित वक्षस्थल धूलिसे आच्छादित सूर्यबिम्बकी भांति शोभारहित दिखायी दिया। इसी तरह समस्त अंग प्रभा रहित देख कर वे अपने मनमें कहने लगे—"अहो! यह संसार कैसा असार है! मेरा रूप देखते ही देखते नष्ट हो गया। अब यहां किसकी शरणमें जाया जाय! कोई किसीकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। उन्हीं मुनिओंको धन्य है जो सर्व संगका परित्याग कर वनमें जा धर्माराधन करते हैं।" इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें वैराग्य हो आया अतएव उसी समय उन्होंने निःसंग हो विनयधर गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर भी उनके स्त्री प्रभृति चौदह रत्न, कर्मचारी, आभियोगिक देवता और सैन्यके मनुष्य छः मास तक उनके पीछे पीछे भ्रमण करते रहे, किन्तु सनत्कुमारने उनकी ओर आंख उठा कर देखनेकी

भी इच्छा न की। जिस प्रकार अगन्धक कुलोत्पन्न नाग वमन किये हुए पदार्थोंको पुनः ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, उसी तरह सनत्कुमारने सबका परित्याग कर दिया।

अनन्तर सनत्कुमार मुनिने निश्चय किया कि छट्ठके पारणमें मामूली चावल और बकरीका मट्ठा सेवन कर तपश्चर्या करूँगा। अतः उन्होंने छट्ठका व्रत करना आरम्भ किया। पारणके दिन चावल और बकरीका मट्ठा, जो उन्हें अनायास मिल जाता था, उसीसे पारण कर पुनः वही व्रत कर रहे। इससे उन्हें अनेक दुष्ट व्याधियां हो गयीं। सूखी खाज, ज्वर, खांसी, श्वास, अन्नकी अरुचि, नेत्र-पीड़ा और उदर पीड़ा—यह सात व्याधियां अत्यन्त दारुण गिनी जाती हैं। इनके अतिरिक्त सनत्कुमारको और भी अनेक रोग हो गये। इस तरह सात सौ वर्ष पर्यन्त वे इन व्याधिओंको सम्यक् भावसे सहन करते रहे और उग्र तपसे किसी प्रकार भी विचलित न हुए। इस उग्र तपके प्रभावसे उन्हें कफौषधि, श्लेष्मौषधि, विपृडौषधि, मलौषधि, आमर्षौषधि, सर्वौषधि और संभिन्न श्रोत—इन सात लब्धियोंको प्राप्ति हुई, तथापि उन्होंने रोगोंका किञ्चित् भी प्रतिकार न किया।

एक बार सौधर्मेन्द्रने सुधर्मा सभामें साधुका वर्णन करते हुए सनत्कुमार चक्रीके धैर्यकी बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद वह स्वयं वैद्यका रूप धारण कर सनत्कुमारके पास गये और उनसे कहा कि—"हे भगवन्! यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपकी व्याधियोंका प्रतिकार करूं। यद्यपि आप निरपेक्ष हैं, तथापि मैं

आपकी व्याधियोंका नाश करना चाहता हूं।" मुनिने कहा—"वैद्यराज! आप द्रव्य व्याधिका प्रतिकार करना चाहते हैं, या भाव व्याधिका?" इन्द्रने कहा—"भगवन्! द्रव्यव्याधि और भावव्याधिके भेदसे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूं। कृपया बतलाइये कि द्रव्य-व्याधि और भावव्याधि किसे कहते हैं?" मुनिने बतलाया—"द्रव्यव्याधि तो यही है, जिसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो और भाव व्याधि कर्मको कहते हैं। क्या तुम कर्म व्याधिका भी प्रतिकार कर सकते हो?" इन्द्रने कहा—"स्वामिन्! कर्मव्याधि बहुत ही विकट व्याधि है। उसे उच्छेद करना मेरे सामर्थ्यके बाहरकी बात है।" इन्द्रकी यह बात सुन, मुनिने अपनी एक उंगली पर श्लेष्मा लगा दिया। श्लेष्मा लगाते ही वह मानो सोनेकी हो गयी। मुनिराजने उसे इन्द्रको दिखलाते हुए कहा—इन द्रव्य व्याधिओंको प्रतिकार करनेकी शक्ति तो मुझमें भी है, किन्तु मैं इनका प्रतिकार करना नहीं चाहता। जब अपने कर्म अपनेहीको भोग करने हैं, तब व्याधिका प्रतिकार करनेसे क्या लाभ होगा?" मुनिकी यह बातें सुन इन्द्रने अपना प्रकृत रूप प्रकट किया और मुनिराजकी प्रशंसा कर तीन प्रदक्षिणा और अनेकानेक अभिनन्दन कर, स्वस्थानके लिये प्रस्थान किया।

सनत्कुमार मुनि अनेक कर्मोंका क्षय कर आयु पूर्ण होने पर तीसरे देव लोकमें सनत्कुमार नामक देव हुए। देवकी आयु पूर्ण होने पर उन्हें महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धिपदकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार तपकी महिमा जान कर, कर्मक्षय करनेके लिये भव्य-जीवोंको यथाशक्ति अवश्य तप करना चाहिये।

अब हम लोग भावधर्म पर विचार करेंगे। भाव, धर्मका मित्र है। कर्मरूपी इन्धनको भस्म करनेके लिये वह अग्नि समान और सुकृत्य रूपी अन्नके लिये घृत समान है। भाव पूर्वक अल्प सुकृत करनेसे भी वह पुरुषोंको सब अर्थोंकी सिद्धि प्रदान करता है। किसीने ठीक ही कहा है कि जिस तरह चूना लगाये विना पानमें रंग नहीं आता, उसी तरह भावके विना दान, शील, तप और जिन पूजा आदिमें विशेष लाभ नहीं होता।" भाव भ्रष्ट पुरुषोंको सर्वत्र असफलता ही प्राप्त होती है। यदि भावपूर्वक एक दिन भी चारित्रका पालन किया जाया, तो उससे सद्‌गतिको प्राप्ति होती है। इस सम्बन्धमें पुंडरीक और कंडरीककी कथा मनन करने योग्य है। वह कथा इस प्रकार है:—

पुंडरीक कंडरीक कथा
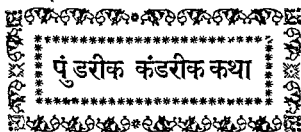
महाविदेह क्षेत्रके पुल्कलावती नामक विजयमें पुंडरीकिणी नामक एक नगरी है। वहां महापद्म नामक एक परम न्यायी राजा राज करता था। उसकी रानीका नाम पद्मावती था। वह शील, विनय, विवेक, औदार्य और चारु चातुर्य आदि गुणोंसे

स्थसे परिचय न रखना और रागादि प्रबल शत्रुओंको जीतना यह सब कठिन है। इन्हींके कारण चारित्र तलवारकी धारके समान माना गया है। तुम्हारी अवस्था अभी बहुत छोटी है। चारित्रका पालन करना केवल भुजाओंके सहारे समुद्र पार करनेके समान है। परिषहोंका सहन करना बहुत ही कठिन है, इसलिये गृहस्थ धर्म पालन कर अभी तुम राज करो। युवावस्था व्यतीत होनेपर फिर दीक्षा ग्रहण करना। यह समय तुम्हारे लिये आनन्द करनेका है, तप करनेका नहीं।"

इस प्रकार पुंडरीकने बहुत समझाया, और मन्त्रियोंने भी बहुत मना किया, किन्तु कंडरीकके ध्यानमें एक भी बात न उतरी और उसने दीक्षा ले ही ली। पुंडरीकने बन्धुका दीक्षा महोत्सव मनाया। अब मन्त्रियोंने पुंडरीकसे कहा कि—"हे राजन्! जब तक शासनभार ग्रहण करनेवाला और कोई तैयार न हो जाय, तबतक आपही राज कीजिये।" दूसरा कोई उपाय न होनेके कारण पुंडरीकने मन्त्रियोंकी यह बात मान ली। वह मनमें चारित्र भावना धारण कर पूर्ववत् राज-काज करने लगा और कंडरीक मुनि तथा साधुओंके साथ विचरण करता हुआ चारित्रका पालन करने लगा। इसी तरह बहुत दिन व्यतीत हो गये।

एक बार पुष्पावती नगरीके समीप कई स्थविर मुनि एक उद्यानमें पधारे। उन्हींमें कंडरीक भी था। इनका आगमन समाचार सुन अनेक नगर निवासी इन्हें वन्दन करने गये। उन्हें देख कर कंडरीक मुनिको दुर्ध्यान उत्पन्न हुआ। उस समय

विभूषित थी। उसके उदरसे शस्त्र और शास्त्र विशारद पुंडरीक और कंडरीक नामक दो पुत्रोंका जन्म हुआ था। राजा न्याय और प्रेमपूर्वक अपना प्रजाका पालन करता था।

एक बार नगरके बाहर नलिनीवन नामक उद्यानमें अनेक साधुओंके साथ श्रीसुव्रताचार्य नामक गुरु महाराजका आगमन हुआ। उनका आगमन समाचार सुन राजा उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और उन्हें प्रणाम कर उनके सम्मुख जमानपर आसन ग्रहण किया। उस समय गुरु महाराजने उपस्थित लोगोंको धर्मोपदेश देते हुए कहा कि—"हे भव्य प्राणियो! इस संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके लिये मनुष्यत्व, धर्मका श्रवण, धर्मपर श्रद्धा और संयममें महावीर्य यह चार पदार्थ बहुतही दुर्लभ हैं।" इसी प्रकारकी अनेक बातें सुन राजाको वैराग्य आ गया और उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र पुंडरीकको राज्य भार सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद चौदह पूर्वोंका अभ्यास कर वे विविध तप करते हुए चारित्र का पालन करने लगे। अन्तमें संलेखना कर उन्होंने शरीर त्याग किया और समस्त कर्मोंको क्षीण कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

बहुत दिनोंके बाद फिर वही स्थविर मुनि विहार करते हुए पुंडरीकिणी नगरीमें पधारे। मुनिका आगमन समाचार सुन पुंडरीक अपने छोटे भाई और परिवारके साथ उन्हें वन्दन करने गया। गुरुदेवने भी उसे विस्तार पूर्वक धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर पुंडरीकको वैराग्य आ गया। वह तुरत ही अपनी

नगरीमें लौट आया और मन्त्रियोंको बुलाकर उनके सम्मुख कंडरीकसे कहा—"हे वत्स ! मैंने ऐश्वर्य भी भोग किया और प्रजापालन भी किया, राजाओंको वश कर अनेक देशोंको अधिकृत किया, देवगुरुकी पूजा की, गृहस्थ धर्मका पालन किया, स्वजनोंका सत्कार किया और अर्थी जनोंकी इच्छा पूर्ण कर यश भी उपार्जन किया। अब मेरा यौवन व्यतीत हो चला, वृद्धावस्था समीप आती जा रही है और मृत्यु भी कटाक्षदृष्टिसे मुझे देखा करती है। प्राणियोंको जन्म और मरणकी व्याधि सदा ही लगी रहती है इसलिये यह संसार उन्हें विडम्बना मय हो पड़ता है। गुरुदेवका धर्मोपदेश सुन मुझे वैराग्य आ गया है, इसलिये अब तुम यह गुरुतर भार ग्रहण करो और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करो। मैं किसी सद्गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण करूंगा।"

पुंडरीककी यह बात सुन कंडरीकने कहा—"हे बन्धु ! क्या आप चाहते हैं कि मैं सदा भवसागरमें ही भ्रमण करता रहूं ? मैंने भी धर्मोपदेश सुना है और मैं भी दीक्षा ग्रहण कर अपना जन्म सार्थक करना चाहता हूँ।"

भाईकी यह बात सुन पुंडरीकने कहा—"चारित्र दुष्कर है। उसमें भी सब जीवोंपर समभाव युक्त, दया रखना, सदा सत्य बोलना, तृणमात्र भी अदत्त न लेना, सदा ब्रह्मचर्य पालन करना, परिग्रहका सर्वथा त्याग करना, रात्रिमें चारों आहारोंका त्याग करना, बयालिस दोष रहित आहार ग्रहण करना, चौदह प्रकारके उपकरण धारण करना, किसी भी वस्तुका संचय न करना, गृह-

स्यसे परिचय न रखना और रागादि प्रबल शत्रुओंको जीतना यह सब कठिन है। इन्हींके कारण चारित्र तलवारको धारके समान माना गया है। तुम्हारी अवस्था अभी बहुत छोटी है। चारित्रका पालन करना केवल भुजाओंके सहारे समुद्र पार करनेके समान है। परिषहोंका सहन करना बहुत ही कठिन है, इसलिये गृहस्थ धर्म पालन कर अभी तुम राज करो। युवावस्था व्यतीत होनेपर फिर दीक्षा ग्रहण करना। यह समय तुम्हारे लिये आनन्द करनेका है, तप करनेका नहीं।"

इस प्रकार पुंडरीकने बहुत समझाया, और मन्त्रियोंने भी बहुत मना किया,किन्तु कंडरीकके ध्यानमें एक भी बात न उतरी और उसने दीक्षा ले ही ली। पुंडरीकने बन्धुका दीक्षा महोत्सव मनाया। अब मन्त्रियोंने पुंडरीकसे कहा कि—"हे राजन्! जब तक शासनभार ग्रहण करनेवाला और कोई तैयार न हो जाय, तबतक आपही राज कीजिये।" दूसरा कोई उपाय न होनेके कारण पुंडरीकने मन्त्रियोंकी यह बात मान ली। वह मनमें चारित्र भावना धारण कर पूर्ववत् राज-काज करने लगा और कंडरीक मुनि तथा साधुओंके साथ विचरण करता हुआ चारित्रका पालन करने लगा। इसी तरह बहुत दिन व्यतीत हो गये।

एक बार पुष्पावती नगरीके समीप कई स्थविर मुनि एक उद्यानमें पधारे। उन्हींमें कंडरीक भी था। इनका आगमन समाचार सुन अनेक नगर निवासी इन्हें वन्दन करने गये। उन्हें देख कर कंडरीक मुनिको दुर्ध्यान उत्पन्न हुआ। उस समय

वसन्त ऋतु थी अतएव अनेक मनुष्य क्रीडा करनेके लिये वहां गये हुए थे। कोई नृत्य और हास्य कर रहा था, कोई विनोद कर रहा था, कोई बाजे बजा रहा था तो कोई और ही किसी प्रकारके विनोदमें व्यस्त था। इसी समय कंडरीकका व्रत विघातक चारित्रावरणीय कर्कश कर्म उदय हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा, "—अहो! इन लोगोंको धन्य है, जो घरमें रहकर सांसारिक सुख उपभोग करते हैं, नृत्य और गायन वादनका आनन्द लेते हैं और इच्छानुसार आहार करते हैं। मैं तो दीक्षा ग्रहण कर नरकके समान दुःख भोग कर रहा हूं। मुझे एक क्षण भरके लिये भी सुख नहीं है। तुच्छ और शीतल, जला या कच्चा, भला या बुरा जो कुछ मिलता है, वह खाना पड़ता है और कठिनपरियह सहन करना पड़ताहै। यह नरकके समान दुःख कहांतक भोग किये जायें? ऐसी दीक्षासे बाज आये। अब तो भाईसे मिलकर पुनः राज्यका स्वीकार करना चाहिये और जितनी जल्दी हो, इस दुःखी जीवनका अन्त लाना चाहिये।" इन विचारोंके कारण कंडरीकका मन खराब हो गया और उसके भाव बिगड़ गये। उसकी यह बात अन्यान्य मुनियोंसे छिपी न रह सकी। अतः उन्होंने शीघ्र ही उसका त्याग कर दिया और गुरुने भी उसकी उपेक्षा कर दी।

इसके बाद कंडरीक अपनी नगरीमें पहुंचा और एक उद्यानकी हरी जमीनपर डेरा डाल कर उद्यानपालकको पुंडरीकके पास भेज कर उसे अपने पास बुला भेजा। उद्यानपालकके मुंहसे पुंडरीकका आगमन समाचार सुन राजा अपनी सेनाके

साथ तुरत ही वहां जा पहुंचा। कंडरीकको देखते ही वह उसकी वास्तविक अवस्थाको समझ गया, तथापि उसने उसे प्रणाम कर कहा—"आप पूज्य और महानुभाव हैं। आपहीको धन्य है, कि तरुणावस्थामें ऐसा दुष्कर व्रत ग्रहण किया है और शुद्ध चारित्रका पालन कर रहे हैं।" यह सुन पुंडरीक बहुत ही लज्जित और दुःखि हुआ और अपना मनोभाव व्यक्त किये बिना ही वह फिर वहांसे चलता बना। अब वह मुनिवेषका तो त्याग न कर सका, किन्तु चारित्र, व्रत, विनय और क्रिया आदि समस्त कर्मोंको उसने त्याग दिया। किसीने ठीक ही कहा है, कि लहसुनको, कस्तूरी, चन्दन केसर और कपूरसे ढक रखने पर भी उसकी दुर्गन्ध दूर नहीं होती, उसी तरह जातिदोषसे संगठित स्वभाव कभी नहीं बदलता। पुंडरीकने यथेष्ट प्रेरणा की, किन्तु कंडरीकपर उसका कोई स्थायी प्रभाव न पड़ा। वर्षाके बाद वह फिर उसी तरह वहां आया और पुंडरीकको अपने पास बुला भेजा। उसी समय राजा आया और उससे कहने लगा कि—"हे महानुभाव! संयम रूपी मेरू पर आरोहण कर आप फिर किस लिये अपनी आत्माको नीचे गिरा रहे हैं? राज्यादि सम्पत्ति तो सुलभ है—इसे प्राप्त करना बायें हाथका खेल है, किन्तु जिन धर्म प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।"

कंडरीकने इस बार साहस कर सब बातें स्पष्ट कह दीं। उसने कहा,—"हे बन्धो! यह सब उपदेश अब मेरे लिये बेकार है। मैं दीक्षासे बाज आया। इस दुष्कर व्रतका पालन कर

नेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।" यह सुन राजाने कहा—"यदि ऐसी ही बात है तो आकर राज्य सम्हालिये और मुझे दीक्षा लेने दीजिये।" कंडरीक तो यह चाहता ही था, अतएव उसने तुरत यह बात मान ली। उसी समय पुंडरीक उसे अपने साथ नगरमें ले आया और मन्त्रियोंको बुला कर कहा, कि आप लोग कंडरीकका राज्याभिषेक कीजिये। अब मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। इस प्रकार कंडरीकके अभिषेकका प्रबन्ध कर पुंडरीकने उसका साधुवेश उससे मांग लिया और अपने आप दीक्षा ले ली।

कंडरीकका मुख तेज हीन हो रहा था। मन्त्री, अधिकारी या नगरनिवासी कोई भी उसे आदरकी दृष्टिसे न देखते थे। बहुत लोग तो उसे व्यंग वचन कह-कह कर उसे चिढ़ाने भी लगे। किसीने भी उसको आदर पूर्वक प्रणाम न किया। यह देख कर कंडरीकको बहुत ही क्रोध चढ़ा। उसने विचार किया कि पहले भोजन कर लूं, फिर जिन लोगोंने मेरा अपमान किया है, उन सबको कठोरसे कठोर दण्ड दूं। यह सोच कर उसने षट्रस भोजन तैयार करनेकी आज्ञा दी। भोजन तैयार होनेपर कंडरीकने इस तरह ठूंस-ठूंस कर भोजन किया, कि चौकिसे उठनेकी भी उसमें सामर्थ्य न रही। दो चार सेवकोंने उसे हाथका सहारा देकर उठाया और किसी तरह शय्या पर सुला दिया। अब कंडरीकमें एक कदम भी चलनेकी शक्ति न थी। मध्यरात्रिके समय उसे अजीर्ण हो गया। पेटमें बड़े जोरोंकी शूल वेदना आरम्भ हुई और वायु रुद्ध होगया। मन्त्रियोंको

यह समाचार मिला किन्तु किसीने भी उसकी खोज खबर न ली, न कोई वैद्य ही उसके रोगका प्रतिकार करनेके लिये उपस्थित हुआ। इससे कंडरीकको बड़ा ही क्रोध हुआ और वह सोचने लगा, कि सवेरा होते ही समस्त वैद्यों और मन्त्रियोंको कठोर दण्ड दूंगा, किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। क्रोधावस्थामें ही रात्रिके समय उसकी मृत्यु हो गयी। और वह सातवीं नरक भूमिमें नारकी हुआ।

उधर पुंडरीक राजर्षि साधुधर्म प्राप्त करनेके कारण अपने भाग्यकी सराहना कर रहे थे। वह अपने मनमें सोच रहे थे कि अब मैं गुरुके निकट चारित्र अङ्गीकार करूंगा। इसी तरहके विचार करते हुए वे भूख, प्यास और धूप आदिकी परवा किये विना बहुत दूर निकल गये। इस यात्राके कारण उनके पैरोंसे रक्त बह रहा था और श्रमके कारण वे बहुत ही क्लान्त हो रहे थे। अन्तमें एक गांव मिलनेपर पुंडरीकने उपाश्रयकी याचना की। वहा वे तृणके आसनपर शुभ लेश्यापूर्वक बैठकर अपने मनमें सोचने लगे—"अहो! मैं कब गुरुके निकट पहुँच कर अशेष कर्मको दूर करनेवाली यथोचित प्रव्रज्याको अंगीकार कर उसे निरतिचारपूर्वक पालन करूंगा?" इसी तरहकी बातें सोचते-सोचते वे व्याकुल हो उठे और मस्तक पर अंजलि जोड़कर स्पष्ट शब्दोंमें कहने लगे—"अर्हन्त भगवानको नमस्कार है! धर्माचार्योंका नमस्कार है! हे नाथ! मैं बल रहित हूँ अतएव यहां रहने पर भी यह मान कर कि मैं आपके चरणोंके

समीप ही हूं, हिंसा, असत्य, अदत्त, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, परनिन्दा, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य इन अठारह पापस्थानोंका त्याग करता हूँ। साथ ही यह शरीर लालित, पालित और बहुकालसे सुरक्षित होनेपर भी इसका मैं त्याग करता हूं। इस प्रकार भावरूपी जलसे आत्माके पापको धोकर पुंडरीक मुनिने इस शरोको त्याग दिया और पांचवें अनुत्तर विमानमें उत्तम देवत्वको प्राप्त किया।

हे भव्य प्राणियो! इस प्रकार भाव धर्मकी महिमा जानकर समस्त धर्म कार्योंमें भावको प्रधानता देनी चाहिये।"

श्री पार्श्वनाथ प्रभुका यह धर्मोपदेश सुन अनेक लोगोंने चारित्र ग्रहण किया। अनेकोंने श्रावक धर्म स्वीकार किया। अनेकोंने सम्यकृत्व प्राप्त किया और अनेक भद्रक भावी हुए। अश्वसेन राजाने भी भगवानका धर्मोपदेश सुनकर हस्तिसेन नामक अपने पुत्रको राज्य भार सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। यह देख वामादेवी और प्रभावतीने भी भावपूर्वक दीक्षा अङ्गीकार कर ली।

उस समय भगवानने दस गणधरोंकी स्थापना की। उनके नाम इस प्रकार थे—(१) आर्यदत्त (२) आर्यघोष (३) विशिष्ट (४) ब्रह्म (५) सोम (६) श्रीधर (७) वीरसेन (८) भद्रयशा (९) जय और (१०) विजय। इन दस गणधरोंको भगवानने उत्पाद, विगम और ध्रौव्यरूप त्रिपदी सुनायी। इसे सुनकर गण-

धरोंने द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसके बाद भगवानने उठकर शक्रेन्द्र द्वारा रत्नथालमें रखा हुआ दिव्य वासक्षेप उनके सिरपर डाला। तदनन्तर दुंदुभी नादपूर्वक संघकी स्थापना कर उन्हें समुचित शिक्षा दी। और प्रथम पोरषी पूर्ण होनेपर देशना समाप्त कर, भगवान दूसरे गढ़में ईशानकोणमें देवताओंके रचे हुए दिव्य देवच्छंदमें चले गये और वहीं जाकर विश्राम करने लगे।

सप्तम सर्ग।

देवच्छंदमें जानेपर अग्रगणधर श्रीआर्यदत्त मुनिने इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया :—

हे भव्य जीवो! सुज्ञजनोंके लिये यति धर्म ही शीघ्र मोक्ष देनेवाला है, किन्तु जो लोग उसकी आराधना करनेमें असमर्थ हों, उन्हें श्रावक धर्मकी आराधना करनी चाहिये। इस असार संसारमें धर्म ही एक सार रूप है। गृहस्थको शील, तप और क्रियामें अशक्त होनेपर भी श्रद्धाका अवलम्बन करना चाहिये। अब मैं श्रावक धर्मका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। उसे ध्यानसे सुनो।

गृहस्थोंका सम्यक्त्व मूल बारह व्रतरूपी धर्म है। इसमें प्रथम धर्मका मूल सम्यक्त्व है। सुदेवमें देव बुद्धि, सुगुरुमें गुरुबुद्धि और सद्धर्ममें धर्मबुद्धि रखनेको सम्यक्त्व कहते हैं। इससे विपरीतको मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वका त्याग कर सम्यक्त्वके इन पांच अतिचारोंका भी त्याग करना चाहिये।

शंका—देव, गुरु और धर्ममें शंका रखना अर्थात् यह सत्य है या असत्य आदि सोचना।

आशंका—हरि, हर और सूर्य प्रभृति देवताओंका प्रभाव देख कर उनसे और, जिन धर्मसे भी सुखादिक प्राप्त करनेकी इच्छा

रखना या भोग सुख प्राप्त करनेके लिये शंखेश्वरादि देवताओंकी मानता—मिन्नत करना।

विचिकित्सा—धर्मविषयक फलके सम्बन्धमें सन्देह करना या देव, धर्म और गुरुकी निन्दा करना।

पर प्रशंसा—अन्य दर्शनीयोंकी प्रशंसा करना।

पर परिचय—अन्य दर्शनीयोंसे विशेष परिचय करना।

श्रावकोंको इन पांच अतिचारोंसे रहित सम्यक्त्वका पालन करना चाहिये।

बारह व्रतोंमें सर्वप्रथम अणुव्रत प्राणातिपात विरमणका पालन करना चाहिये। श्रावकोंमें सवा विश्वा दया बतलायी गयी है। क्योंकि स्थूल और सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा संकल्प और आरंभ दो प्रकारसे होती है। उसके भी सापराधिनी और निरपराधिनी एवम् सापेक्षिता पूर्वक और निरपेक्षिता पूर्वक—यह दो-दो भेद हैं। इन भेदोंका ज्ञान गुरुमुखसे प्राप्त करना चाहिये। प्रथम अणुव्रतके यह पांच अतिचार त्याग करने योग्य हैं।

वध—मनुष्य और पशुओंको निर्दयता पूर्वक लकड़ी आदिसे मरना।

बन्ध—पशु एवं मनुष्योंको कड़ाईके साथ बांधना।

छविच्छेद—पशुओंके कान नाक आदि छेदना।

अतिभार—ज़ियादा भार लादना।

भक्तपान विच्छेद—पशुओंको यथा समय चारा पानी आदि न देना।

दूसरे अणुव्रतके भी पांच अतिचार यह हैं :—

(१) किसीको झूठा कलंक लगाना।

(२) एकान्तमें किसीके साथ किया हुआ कोई गुप्त कार्य या रहस्य प्रकट करना।

(३) झूठा उपदेश देना।

(४) अपनी स्त्रीकी गुप्त-बात प्रकाशित करना।

(५) झूठा तौल-नाप करना या असत्य बातें लिखना।

इनके अतिरिक्त सुज्ञ पुरुषको इन प्रधान पंचकूट (असत्य) का भी त्याग करना चाहिये। कन्या विषयक कूट, चतुष्पद विषयक कूट, भूमिविषयक कूट; किसीकी रकमको हड़प जाना और झूठी गवाही देना।

तीसरे अणुव्रतके भी पांच अतिचार त्याज्य हैं यथा—(१) चोरीकी चीज लेना (२) चोरको सहायता करना (३) चुंगी न देना (४) झूठे बटखरे और माप रखना (५) अच्छी और बुरी चीजोंको मिलावट करना।

चौथे अणुव्रतके भी पांच अतिचार त्याज्य माने गये हैं। यथा—(१) तनख्वाह देकर दासियोंसे दुराचार करना (२) वेश्या गमन करना (३) अत्यासक्त हो कामक्रीड़ा करना (४) लोगोंके विवाह कराते फिरना (५) काम भोगकी तीव्र अभिलाषा रखना।

पांचवें परिग्रह परिमाण—अणुव्रतके भी पांच अतिचार त्याज्य हैं, यथा—(१) धन धान्यके परिमाणका अतिक्रम (२)

क्षेत्र-वस्तु परिमाणका अतिक्रम (३) चांदी सोनेके परिमाणका अतिक्रम (४) कुप्य परिमाणका अतिक्रम (५) द्विपद और चतुष्पदके परिमाणका अतिक्रम।

अब मैं तीन गुणव्रतोंका वर्णन करता हूं। इनमेंसे पहला गुणव्रत दिग्विरति है। इसके भी पांच अतिचार हैं—(१) उर्ध्व-दिशिके प्रमाणका अतिक्रम (२) अधोदिशाके प्रमाणका अतिक्रम (३) तिर्यग्दिशाके प्रमाणका अतिक्रम (४) क्षेत्रवृद्धि अर्थात् काम पड़नेपर एक दिशाको घटाकर दूसरी दिशामें बढ़ जाना (५) दिशाका परिमाण याद न रखना।

दूसरे गुणव्रतका नाम है भोगोपभोग विरमण। अन्नादिक जो एक बार भोग किया जाता है उसे भोग कहते हैं और ललना आदि जो चीज बारम्बार भोग की जाती हैं, उसे उपभोग कहते हैं। इस व्रतके भोजन विशयक पांच अतिचार माने गये हैं, यथा—(१) सचित्त आहारका भक्षण (२) सचित्त-प्रतिबद्धका भक्षण (३) अग्नि और जल द्वारा अर्धपक्वका भक्षण (४) पर्पटिका आदि दुःपक्व-कच्चे फलोंका भक्षण और (५) तुच्छ औषधियोंका भक्षण।

कर्मविषयक पन्द्रह कर्मादान रूपी पन्द्रह अतिचारोंका वर्णन पहले ही किया चुका है।

अनर्थ दण्ड विरमण नामक तीसरे गुणव्रतके पांच अतिचार यह हैं—(१) कामोत्तेजक बातें कहना (२) भांडोंकी तरह कुचेष्टा कर लोगोंको हँसाना, (३ असंबद्ध बातें कहना (४) अधि

करण तैयार रखना (५) भोगोपभोग वस्तुओं की तीव्र अभिलाषा रखना और भोगातिरिक्त चीजें तैयार रखना।

अब मैं चार शिक्षा व्रतों का वर्णन करता हूं। इनमेंसे प्रथम का नाम सामायिक व्रत है। इसके पांच अतिचार यह हैं--(१) मनमें आर्तध्यान और रौद्रध्यानका चिन्तन करना (२) वचनसे सावद्य बोलना (३) कायासे सावद्य करना अर्थात् अप्रमार्जित भूमिपर बैठना (४) अनुपस्थापना--अव्यवस्था (५) चंचल चित्तसे सामायिक करना अर्थात् सामायिकमें गप-शप करना।

दूसरे देशावकाशिक शिक्षाव्रतके पांच अतिचार यह है,--(१) लाना (२) भेजना (३) आवाज करना (४) रुप दिखाना (५) कंकड़ी डालना। छठे और दसवें व्रतमें केवल इतना ही अन्तर है कि छठां व्रत यावज्जीवित होता है और दसवां व्रत उसी दिनके परिमाण वाला होता है।

तीसरे पौषधोपवास शिक्षातव्रके पांच अतिचार यह हैं--(१) अप्रतिलेखित या दुःप्रतिलेखित संथारेपर सोना (२) अप्रमार्जित भूमिपर लघुनीति या बड़ीनीति फेंकना (४) शुद्धमनसे पौषधका पालन न करना (५) निद्रा लेना और विकथादि कहना।

चौथे अतिथि संविभाग शिक्षाव्रतके भी पांच अतिचार हैं, यथा--(१) न देनेके विचारसे शुद्ध आहारादिकको अशुद्ध करना (५) देनेके विचारसे अशुद्ध आहारादिकको शुद्ध करना (३) अचित्त वस्तुको सचित्त वस्तुसे ढँक रखना (४) यतिजी घरपर

आवे उस समय उन्हें देरीसे दान देना (५) अभिमान पूर्वक दान देना।

इस प्रकार श्रावकको सम्यक्त्व मूल बारह व्रतोंका पालन करना चाहिये। इससे भी सिद्धि प्राप्ति होती है। गृहस्थके लिये लोहेके तपाये हुए गोलोंके समान इन व्रतोंका पालन करना बहुत ही कठिन है, अतएव उन्हें जिनपूजा तो अवश्य ही करनी चाहिये। जिनपूजासे बड़ा लाभ होता है। जिनेन्द्रकी पूजासे अनिष्ट दूर होता है, सम्पत्ति प्राप्त होती है और संसारमें सुयश फैलता है। इसलिये श्रद्धावान श्रावकोंको जिन पूजा अवश्य करनी चाहिये। जिन पूजासे रावणने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया था। उसकी कथा इस प्रकार है :—

रावणकी कथा।

कनकपुर नामक एक समृद्धिशाली नगरमें सिंहसेन नामक एक न्यायी राजा राज करता था। उसके सिंहवती नामक एक रानी थी। राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करता था। उसी नगरमें कनक नामक एक करोड़पति महाजन भी रहता था। वह विदेशोंमें व्यापार करता था। उसके देवाङ्गनाके समान गुणसुन्दरी नामक एक स्त्री थी वह जिन धर्मपर वह बड़ाही अनुराग रखती थी। इसके उदरसे दो पुत्रोंका जन्म हुआ था। इनमेंसे बड़ा पुत्र सबका

प्रियपात्र था। और उसे देखते ही लोग प्रसन्न हो उठते थे। किन्तु छोटा पुत्र बड़ा ही दुर्विनयी, कटुभाषी और उद्दण्ड था। अतएव लोगोंने गुण देख कर बड़ेका नाम सुविनीत और छोटेका नाम दुर्विनीत रख दिया। दोनों इसी नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध थे।

एक बार कनकने नाना प्रकारकी वस्तुओंसे पांच सौ गाड़े भरा कर, स्त्री पुत्र और परिवार सहित व्यापारके लिये सिंहल-द्वीपकी ओर प्रस्थान किया। तीस योजन मार्ग तय करनेके बाद एक बहुत बड़ा वन मिला। उसमें विविध वाटिकाओंसे सुशोभित, देवताओंके क्रीड़ा भवनके समान मनोहर श्रीऋषभदेव स्वामीका एक चैत्य दिखायी दिया। उसके पास एक आम्रवृक्षके नीचे तम्बू खड़ा कर कनकने डेरा डाला। भोजन कर विश्राम करनेके लिये शय्या पर सोने गया, किन्तु धनरक्षाकी चिन्ताके कारण उसे निद्रा न आ सकी। इसी समय उस आम्रवृक्ष पर सफेद रंगके तोतेका एक जोड़ा आ बैठा और मनुष्यकी वाणीमें बातें करने लगा। उनकी बातचीत सुनकर कनकको बड़ा ही विस्मय हुआ और वह धन-रक्षाकी चिन्ता छोड़ ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुनने लगा। उस समय शुक और शुकीमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी:—

शुक—हे प्रिये! यह बनिया बड़ा ही भाग्यवान है।

शुकी—स्वामिन्! इस बार यह जो माल बेचने जा रहा है उसमें तो इसे कुछ भी लाभ होनेकी संभावना नहीं है। ऐसी अव-स्थामें इसे हम भाग्यवान कैसे कह सकते हैं?

शुक—प्रिये! व्यापारकी दृष्टिसे इसे मैं भाग्यवान नहीं कहता। इसके हाथों एक जिनविम्ब और जैन तीर्थकी स्थापना होनेवाली है, इसीसे भाग्यवान बतलाता हूं।

शुकी—क्या यह किसी नवीन तीर्थकी स्थापना करेगा?

शुक—हां, यह विरुक पर्वत पर बदरी नामक तीर्थकी स्थापना करेगा और जैन धर्मकी विजय-पताका फहायेगा।

शुक और शुकीकी यह बातें सुनकर कनक तम्बूसे बाहर निकाल आया और कौन बातचीत कर रहा है, यह जाननेके लिये वह इधर उधर देखने लगा। जब उसे शुक और शुकीको छोड़, वहां और कोई भी न दिखायी दिया, तब उसे विश्वास हो गया कि निःसन्देह यही दोनों बातचीत कर रहे थे। साथ ही शुक बड़ा ज्ञानी है यह सोचकर वह पुनः उन दोनोंकी बातचीत सुनने लगा। इस बार उन दोनोंमें फिर इस प्रकार बातचीत होने लगी।

शुकी—हे स्वामिन्! यह वणिक जिस विम्बको प्रतिष्ठित करेगा, वह शैलमय, रत्नमय, सुवर्णमय या काष्टमय—कैसा होगा?

शुक—प्रिये! यह वणिक स्पर्श-पाषाणमय जिनविम्बकी स्थापना करेगा और उसके कारण संसारमें इसकी बड़ी ख्याति होगी।

जिस समय शुक और शुकीमें इस तरहकी बातचीत हो रही थी, उसी समय कनकके दोनों पुत्र भी वहां आ पहुंचे। शुक-युगलको देखकर दुर्विनीतने कहा,—"इस शुकका या तो शिकार करना चाहिये या पकड़ कर पींजड़ेमें बन्द कर देना चाहिये।"

दुर्विनीतका यह प्रस्ताव सुनकर सुविनीतने कहा—"ऐसे सुन्दर पक्षियोंको मार डालना ठीक नहीं। इन्हें फलोंका प्रलोभन दिखा कर पकड़ लेना चाहिये। यह सुन दुर्विनीतने सुविनीतकी बात मान ली। अतः वह तुरत अंगूरकी एक गौद ले आया और पाशके साथ उसे बांध कर वृक्षपर चढने लगा। यह देखकर शुकने कहा,—"प्रिये! हम लोगोंको पकड़नेके लिये यह वृक्ष पर चढ़ रहा है किन्तु इसका मनोरथ किसी भी अवस्थामें पूर्ण नहीं हो सकेगा। इसका कारण यह है कि यह बायीं आंखसे काना है। और इधर वृक्षके एक कोटरमें बायीं ओर पीणिक नाग बैठा हुआ है। काना होनेके कारण न तो वह उसे ही देख सकता है, न हमें ही। इसीलिये मैं कहता हूं कि वह हमें पकड़ नहीं सकता।"

शुकीने कहा,—"नाथ! आप बुद्धिमान हैं। आप जो कहते हैं वह ठीक ही है, किन्तु मुझे अंगूर खानेका दोहद उत्पन्न हुआ है। यदि आप मुझे अंगूर न ला देंगे और मेरी यह इच्छा पूर्ण न करेंगे, तो मेरे लिये जीना कठिन हो जायगा।

शुकने कहा,—"प्रिये! अंगूरके साथ इस समय पाश बंधा हुआ है, इसलिये अभी अंगूर लाना कठिन है। यह काना जब कोटरके पास पहुंचेगा, तब नाग इसका श्वास भक्षण कर लेगा। उस समय यह मृतप्राय हो पड़ेगा और अंगूर लाना भी सहज हो जायगा।

शुककी यह बात सुन कर शुकी चुप हो गयी। कुछ ही समय में दुर्विनीत वृक्षके उस कोटरके पास जा पहुंचा। वहां पहुंचते-

ही पीणिक नाग फोटरसे बाहर निकला और दुर्विनीतका श्वास खींच लिया। इससे दुर्विनीत वृक्षकी एक शाखा पर मुर्देकी तरह लटक गया और पीणिक नाग भी मानुष-विषके प्रयोगसे अचेतन होकर वहीं पड़ा रहा। दोनोंके बेहोश हो जानेपर वह शुक अंगूरोंके पास पहुँचा और चंचु-घातसे पाशको छेद कर अंगूर ले आया। इसी तरह कई बार उसने अंगूर ला लाकर शुकीको दिये और शुकीकी इच्छा पूर्ण की। इसके बाद दोनों पारस्परिक प्रेमके कारण आनन्द विभोर हो गये।

इसी समय कनककी निगाह दुर्विनीत पर जा पड़ी। उसने देखा कि वह मुर्देकी तरह अचेतन हो रहा है। यह देख कर वह विरह व्याकुल हो करुण क्रन्दन करने लगा। वह कहने लगा—"अहो! यह संसार कैसा विचित्र है। किसी कविने ठीक ही कहा है कि हे भगवन्! यदि संभव हो, तो हमें जन्म ही मत देना, यदि जन्म देना तो मनुष्यका जन्म मत देना, यदि मनुष्यका जन्म देना, तो प्रेम मत देना और यदि प्रेम देना तो वियोग मत कराना। अहो! यह हृदय मानो वज्रसे बना है इसीलिये वज्रके समान कठोर है। यदि ऐसा न होता तो प्रिय पुत्रका वियोग होनेपर यह टूक-टूक क्यों न हो जाता? जिस प्रकार जलके वियोगसे कीचड़का हृदय विदीर्ण हो जाता है, उसी तरह यदि सच्चा प्रेम हो, तो मनुष्यका हृदय भी विदीर्ण हो जाना चाहिये।

इस प्रकार कनक बहुत देरतक विलाप करता रहा। इसके बाद उसने उस शुककी ओर देखकर कहा,—"हे शुक! तुझे

जितनी तेरी प्रियतमा प्यारी है, उससे कहीं अधिक मुझे मेरा पुत्र प्यारा है। तुम दोनों आनन्द कर रहे हो और मैं दुःख सागरमें डूब रहा हूं।" कनकका यह विलाप शुकीसे सुना न गया। वह शुकसे कहने लगी,—"हे नाथ! जिस पुरुषके कारण मेरा दोहद पूर्ण हुआ है, वही इस समय कष्टमें आ पड़ा है। इसलिये हे स्वामिन्! यदि इस वणिकके जीनेका कोई उपाय हो तो अवश्य बतलाइये। शुकने कहा,—"हे प्रिये! उपाय केवल एक ही है। यदि हरे नारियलका धुआं नागको दिया जाय, तो दुर्विनीतका श्वास उसके शरीरमें वापस आ सकेगा और वह सजीवन हो उठेगा। साथही एक प्रहरके बाद नाग भी जी उठेगा। इसके अतिरिक्त दुर्विनीतको बचानेका और कोई उपाय नहीं है। यह सुनकर कनक तुरत एक हरा नारियल ले आया और उसकी छाल जलाकर उसकी धुंनी सांपको दी। इससे दुर्विनीत तत्काल जीवित हो उठा और सावधानी पूर्वक वृक्षसे नीचे उतर आया। यह देखकर कनक उसे वारंवार आलिङ्गन और चुम्बन करने लगा। पिताको इस तरह असाधारण प्यार करते देख दुर्विनीतने पूछा,—"पिताजी! आज क्या है, जो आप मुझे वारंबार हृदयसे लगा रहे हैं?" दुर्विनीतका यह प्रश्न सुनकर कनकने उसे सारा हाल कह सुनाया। साथही उसे यह भी बतलाया, कि वह जिस शुकको मारने जा रहा था, उसीने उसका प्राण बचाया है।

पिताकी यह बात सुनकर दुर्विनीतको बड़ा आनन्द हुआ और वह बारम्बार स्नेह दृष्टिसे उस शुकको देखकर कहने लगा,—

"हे परोपकारी! हे प्राणदाता! आज तेरी ही बदौलत मेरा पुनर्जन्म हुआ है, इसलिये तू मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय मालूम हो रहा है। अब तुमसे मेरा यही निवेदन है कि तुम दोनों मेरे दिये हुए फल रोज स्वेच्छापूर्वक भक्षण किया करो। मुझे आशा है कि तुम मेरा यह निवेदन स्वीकार कर मुझे ऋणमुक्त होनेका अवसर दोगे।" यह सुन शुकने दुर्विनीतकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब दुर्विनीत प्रतिदिन अंगूर और अनार प्रभृति फल लाता और एक पात्रमें रख, उन्हें वृक्षपर रख देता। शुक युगल उन फलोंको खाकर आनन्द मनाते रहे।

एक बार कनकने किरानेका भाव जाननेके लिये अपने अनुचरोंको सिंहलद्वीप भेजा और स्वयं वहीं जंगलमें रह गया। एक दिन वह ताम्रपात्रमें जल लेकर झाड़ा फिरनेके लिये एक ओर जंगलमें गया। वहां एक वृक्षके नीचे काली शिला पड़ी हुई थी। उसी पर ताम्रपात्रको रखकर वह नित्य कर्मसे निवृत्त हुआ। शिलापर रखते ही ताम्रपात्र सोनेका हो गया। यह देखकर कनकको बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही उसके चेहरेपर आनन्द छा गया। वह उस शिलापर एक चिह्न बनाकर डेरेकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें दुर्विनीतसे भेंट हो गयी। पिताके हाथमें स्वर्णपात्र देखकर दुर्विनीतके कान खड़े हो गये। उसने पूछा,—"पिताजी! यह स्वर्णपात्र किसका है?" कनकने कहा,—"बेटा! यह हमारा नहीं है।" किन्तु दुर्विनीतको इस बातपर विश्वास न हुआ। उसने पिताके पहले ही डेरेपर पहुँचकर इस बातकी जांच की

कि वह ताम्रपात्र कहां है? लोगोंने उसे बतलाया कि तुम्हारे पिताजी उसे ले गये हैं। यह सुनकर दुर्विनीतको विश्वास हो गया कि अवश्य पिताजीने किसी औषधिके प्रयोगसे ताम्रपात्रको स्वर्ण-पात्र बना दिया है। यह सोचकर वह औषधिकी खोज करनेके लिये कनकके पैर देखता हुआ जंगलकी ओर चला। चलते चलते जब वह उस शिलाके पास पहुंचा, तब उसे एक नया वृक्ष दिखायी दिया। उसने सोचा कि हो-न हो, पिताजीने इसी वृक्षके पत्तोंसे ताम्रपात्रको स्वर्णपात्र बनाया है। यह सोच कर वह उस शिलापर जूतेके साथ पैर रख, उस वृक्षके पत्ते तोड़ने लगा। उसकी यह धृष्टता देखकर शिलाके अधिष्ठायक देवताको क्रोध आ गया और उसने उसी समय दुर्विनीतको भूमिपर गिरा दिया। इससे दुर्विनीतके चार दांत टूट गये और वह अपना सा मुंह लेकर डेरेको लौट आया। कनकने जब उससे दांत टूटनेका कारण पूछा, तो वह कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका।

एक दिन कनकने शुकको बुलाकर कहा,—"हे शुकराज! चलो, हमलोग कहीं एकान्तमें चलकर कुछ बातचीत करें। मैं तुमसे कुछ आवश्यक बातें पूछना चाहता हूं।" कनककी यह बात सुन शुक उसके साथ हो लिया और दोनों जन जंगलके एकान्त भागमें जाकर बातचीत करने लगे। कनकने कहा,— "हे शुकराज! हे बुद्धिविशारद! पहले तुमने जो बात कही थी वह सत्य सिद्ध हुई। स्पर्शपाषाण मुझे मिल गया है। अब यह बतलाइये कि उसकी प्रतिमा किस प्रकार बनवायी जाय?"

शुकने कहा,—"हे पुण्यशाली! तुम मेरे पूर्व जन्मके मित्र हो, इसलिये मैं तुम्हें यह सब बातें बतलाता हूं। फल सुखद पहले तुम उस पाषाणको लेकर अपने समस्त मनुष्योंके साथ यहांसे प्रस्थान करो। सात दिनोंमें तुम इस जंगलके उस पार पहुंच जाओगे। वहां पहुंच कर तुम ठहर जाना। वहीं मैं भी अपनी प्रियाके साथ तुम्हें आ मिलूंगा और इस सम्बन्धकी विशेष बातें वहीं बतलाऊंगा।

कनकने शुककी यह सलाह मान ली और दूसरे ही दिन वहांसे प्रस्थान किया। शुक भी उसके साथ ही चला। सात दिनमें जंगलके उसपार पहुंचने पर वहीं डेरा डाल कर सब लोग विश्राम करने लगे। दूसरे दिन कनकने शुकसे एकान्तमें पूछा,—"हे शुकराज! हे प्राणवल्लभ! मैं तुम्हारे कथनानुसार यहां आ पहुंचा। अब बतलाओ, कि मुझे क्या करना चाहिये। यह सुन शुकने कनकको एक लता दिखलाते हुए कहा,—"इस लताके प्रभावसे तुम्हारा सब काम सिद्ध होगा। इसके समस्त पत्र इकट्ठा कर आंखमें पट्टी बांध लो। इसके प्रभावसे मनुष्य गरुड पक्षी बन जाता है। जब तुम गरुड हो जाओ, तब उडकर चटक पर्वतपर जाना। वहां शाल्मलि नामक एक बडासा वृक्ष है, उसके फलमें छ प्रकारका स्वाद है। उसके पुष्पमें भी छ: रंग होते हैं। उसका एक भाग सफेद, एक भाग लाल, एक भाग पीला, एक भाग नीला, एक भाग काला, एक भाग आसमानी और मध्यभाग पचरंगी होता है। इस वृक्षके पुष्प,

फल, काष्ट आदि पञ्चाङ्ग यहां ले आना फिर मैं तुम्हें आगेका कर्तव्य बतलाऊँगा।"

शुकको यह बात सुन कनकने सोचा, कि इस कामके लिये ज्येष्ठपुत्र सुविनीतको भेजना चाहिये। इस कामके लिये वह सर्वथा उपयुक्त है। यह सोचकर उसने ज्येष्ठपुत्रको बुलाया और उसे सब बातें समझा कर कहा,—"हे भद्र! यह काम जल्दी कर आओ। सुविनीतने कहा,—"पिताजी! आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है, यह कह वह आंखोंपर उस लतापत्रकी पट्टी बांध, गरुड़ बन गया और उसी समय चित्रक पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। शुक कुछ दूरतक रास्ता दिखानेके लिये उसके साथ गया। चलते समय सुविनीतको फिर एकबार सूचना देते हुए उसने कहा,—"हे सात्विक! मार्गमें जिस पर्वत पर तुझे कक-ड़ोंकी गंध आये, उसी पर्वतपर रुक जाना और आंखकी पट्टी खोलकर उस वृक्षके पञ्चाङ्ग ले आना।

इस प्रकार सूचना देकर शुक लौट आया और सुविनीत पचास योजन उड़कर उस पर्वतपर पहुँचा। वहां उसने आँखकी पट्टी खोल डाली। पट्टी खोलते ही वह फिर मनुष्य हो गया। उसने शाल्मली वृक्षको बतलायी हुई निशानियोंसे पहचान कर उसके पञ्चाङ्ग संग्रह किये और वहांसे चलनेकी तैयारी की। किन्तु उस पट्टीमें अब मनुष्यको गरुड़ बनानेका गुण न था अतएव सुविनीतको चिन्ता हो पड़ी, कि अब क्या किया जाय और यहांसे किस प्रकार वापस जाया जाय? अन्तमें कोई उपाय न

सुमनेपर वह एक स्थानमें बैठकर ठण्डी सांसे लेने लगा। उसी समय अचानक वहां एक शुकयुगल आ पहुँचा, उसे देखकर सुविनीतको बड़ा ही आनन्द हुआ और उसने उस युगलको अपने पास बुला कर बैठाया। पश्चात् शुकने उसका परिचय पूछते हुए कहा,—"तुम कौन हो और कहांसे आये हो?" शुकका यह प्रश्न सुनकर सुविनीतने उसे सारा हाल कह सुनाया। सुनकर शुकने कहा,—"वह शुक मेरा भाई है। कहिये, वह और शुकी दोनों जन प्रसन्न तो हैं?" यह सुन सुविनीतने कहा,—"हां, वे दोनों जन सकुशल हैं। शुकने कहा,—"अच्छा, अब यह बतलाओ कि तुम ठंढी सांसें क्यों ले रहे थे?" सुविनीतने कहा,—"तुम्हारे भाईके बतलाये हुए उपायसे मैं यहांतक तो आ पहुँचा, किन्तु अब यहांसे लौटनेका कोई उपाय दिखायी नहीं देता।" विनीतकी यह बात सुनते ही शुकी एक ओरको उड़ गयी और कहींसे एक फल ले आयी। शुकने वह फल सुविनीतको देते हुए कहा,—"इस फलको गलेमें बांध लेनेपर आकाश मार्गसे एक पहरमें सौ योजन जानेकी शक्ति प्राप्त होती है। यह सुन सुविनीत उस फलको लेकर शुक और शुकीको अनेकानेक धन्यवाद देने लगा। तदनन्तर शुकीने शुकसे कहा,—"हे नाथ! इस मनुष्यके पास मार्गमें खाने-पीनेका भी कोई सामान नहीं है अतएव इसे कुछ देना चाहिये।" शुकने कहा,—"जो तुम्हें अच्छा लगे वह ला दो। शुकी फिर उड़ी और पर्वतके एक कोटरसे एक चिन्तामणि रत्न ले आयी। वह रत्न उसने सुविनीतको देते

हुए कहा,—"यह चिन्तामणि रत्न है। इसके प्रभावसे चिन्तित कार्य सिद्ध होता है। इससे तुम जो मागोगे, वह तुम्हें तत्काल मिलेगा।" सुविनीतको यह दोनों चीजें पाकर बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने उस फलको गलेमें बांध लिया और शाल्मलिके पञ्चांग एवम् चिन्तामणि रत्नको बड़ी सावधानीके साथ अपने पास रख लिया। इसके बाद शुक और शुकीकी आज्ञा प्राप्त कर उसने वहांसे प्रस्थान किया। कुछ ही समयमें वह वहांसे अपने पिताके डेरेपर आ पहुँचा और उनको प्रणाम कर पञ्चाङ्ग तथा रत्न दोनों चीजें उनके सामने रख दीं। इससे कनकको बड़ा आनन्द हुआ। उसने उस रत्नके प्रभावसे अपने समस्त संगियोंको अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन कराया और वस्त्राभूषण आदि दे उन्हें सन्तुष्ट किया।

दान कदापि निष्फल नहीं जाता। किसीने ठीक ही कहा है, कि जो किसी सुपात्रको लक्ष्मीका निधान रूपी और अनर्थको दलन करनेवाला दान करता है, उसकी ओर दारिद्र नजर भी नहीं कर सकता। दुर्भाग्य और अपकीर्ति उससे दूर रहती है। पराभव और व्याधि उसके पीछे नहीं रहते। दैन्य और भय तो उलटे उससे डरते हैं। इसी तरह और भी कोई आपत्ति उसे पीड़ित नहीं कर सकती।

इसके बाद कनकने बहुतसा धन सत्कार्यमें खर्च किया; क्योंकि चिन्तामणि रत्नके प्रभावसे उसकी समस्त इच्छायें अनायास पूरी हो जाती थीं। एक दिन कनकने शुकराजसे पूछा,—"हे शुक-

राज ! अब कृपया बतलाइये कि जिन-प्रतिमा किस प्रकार तैयार करायी जाय ?" शुकने कहा,—"हे श्रेष्ठिन् ! उस पर्वतपर गुफाके समीप एक श्वेत पलाश है। उसका काष्ठ लाकर पुरुषके आकारका एक पुतला बनाइये। उसके कंठमें यह फल बांधिये और सिरपर चिन्तामणि रत्न रखिये। ऐसा करनेसे वह काष्ठ पुरुष अधिष्ठायक देवताके प्रभावसे प्रतिमा तैयार करेगा; किन्तु उससे सर्व प्रथम प्रतिमा ही तैयार करवानी न होगी। पहले अन्यान्य काष्ठ लाकर दरवाजे और किंवाड़ोंके साथ एक काष्ठ-मन्दिर तैयार करवाना होगा। मन्दिर तैयार हो जानेपर स्पर्श पाषाण और काष्ठ पुरुषको उसके अन्दर ले जाना होगा। वहां मन्दिरके अन्दर उस काष्ठ नरको सर्व प्रथम शाल्मलि वृक्षके फल और पुष्प देने होंगे। इसके रससे वह उस शिलापर प्रतिमाका आकार अंकित करेगा। इसके बाद शाल्मलिके काष्ठसे प्रतिमा गढ़ी जायगी और उसको पेंडी या तनेसे प्रतिमापर ओप चढ़ाया जायगा। प्रतिमा तैयार कराते समय स्पर्श पाषणको लोहेका स्पर्श न होना चाहिये, न उसपर किसीको दृष्टिही पड़नी चाहिये। प्रतिमा तैयार करनेका यह सारा काम वह काष्ठ पुरुष ही कर देगा। प्रतिमा तैयार कराते समय मन्दिरके बाहर बाजे-गाजेके साथ नृत्य कराते रहना होगा। इसी विधिसे वह प्रतिमा तैयार होगी। इस कार्यको सुचारु रूपसे सम्पादन करनेपर आपकी बड़ी कीर्ति होगी और साथ ही आपका भाग्योदय भी होगा।"

शुककी यह बात सुनकर कनकको बड़ा ही आनन्द हुआ।

उसने उसके आदेशानुसार जिन-प्रतिमा तैयार करायी और उस प्रतिमाको शुभ स्थानमें प्रतिष्ठित कर उसकी पूजा और भक्ति आदि महोत्सव मनाया। इसके साथ ही उसने उस स्थानमें गीत और नाट्यादिक करानेका भी प्रबन्ध किया। कनकके इस कार्यसे परम सन्तुष्ट हो धरणेन्द्र, पद्मावती और वैरोट्या आदि देवी देवता उसे सहायता करने लगे। इसके बाद कनकने स्पर्श पाषाणके समस्त टुकड़े यत्न पूर्वक अपने पास रख लिये। अब वह उस प्रतिमाको अपने साथ ले सिंहलद्वीप जानेकी तैयारी करने लगा। यह देखकर शुकने कहा अब मैं अपने स्थानको जाता हूं। कनकने कहा,—"हे शुकराज! तुम मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय हो। तुमने मुझपर बड़ा ही उपकार किया है। कृपाकर यह तो बताओ कि तुम देव हो, विद्याधर हो या कौन हो? तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है?" यह सुन शुकने कहा,—"हे श्रेष्ठिन्! कुछ दिनों के बाद मेरा असली रूप तुम्हें केवली भगवान बतलायेंगे।" यह कह शुक और शुकीने अपना देव रूप प्रकट कर देवलोकके लिये प्रस्थान किया। वहां शाश्वत जिन प्रासादमें अट्ठाई महोत्सव कर वह दोनों देव अपने विमानमें सुख पूर्वक रहने लगे।

अब कनकने निश्चिन्त हो, सिंहलद्वीपके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें उसे उसके वे अनुचर भी मिल गये, जिन्हें उसने किरानेका भाव लानेके लिये पहले ही सिंहलद्वीप भेजा था। उन अनुचरोंने कनकसे कहा,—"स्वामिन्! शीघ्र चलिये, इस समय किरानेका भाव बहुत तेज है। अपना माल बेच देनेपर हम

लोगोंको इस समय खूब लाभ होगा।" अनुचरोंकी यह बात सुन कनक और भी तेजीके साथ रास्ता तय करने लगा और कुछ ही दिनोंमें सिंहलद्वीप जा पहुंचा। वहां उसने अपना सब माल बेच दिया। इसमें उसे बहुत ही लाभ हुआ। साथही उसने स्पर्शपाषाणके टुकड़ोंकी सहायतासे वहां बहुतसा सोना भी तैयार किया। अब वहांसे सौ योजनकी दूरी पर ही चटक पर्वत था। इसलिये वह सिंहलद्वीपसे सीधा वहां पहुंचा। वहां उसने अपने नामसे कनकपुर नामक एक नगर बसाया। उस नगरके चारों ओर उसने एक मजबूत किला बनवाया और उसमें अनेक हवेलियें भी बनवायीं। अब वह अपने समस्त संगियोंके साथ उसी जगह रहने लगा। क्रमशः उसने वहां और भी पचीस गांव बसाये। इसके बाद कनकने उस नगरमें चौरासी मण्डपोंसे अलंकृत और उन्नत तोरणोंसे युक्त एक मनोहर जिन मन्दिर बनवाया। जिसमें उसने उत्सव पूर्वक शुभ मुहूर्त और सिद्धि योगमें श्रीपार्श्वनाथके बिम्बका स्थापना की। इसके बाद वह वहां नित्य स्नात्रादिक पूजा और मंगल गान कराने लगा।

एक बार वैताढ्य पर्वतका मालिक विद्याधरोंका नायक मणिचूड़ नामक विद्याधर नन्दीश्वर द्वीपके जिनोंकी यात्रा करने गया था। वह वहांके जिनेश्वरोंको वन्दन कर निज द्वीप आया और वहां भी जिन-वन्दना की। इसके बाद वह अपने स्थानकी ओर जाने लगा। मार्गमें चटक पर्वतके उस ग्रामके ऊपर पहुंचते ही उसका विमान अड़ गया। यह देखकर विद्या-

धरने अपनी प्रज्ञप्ति विद्याको अधिष्ठायिका प्रज्ञप्तिदेवीसे पूछा कि—"हे माता! मेरा यह विमान क्यों नहीं चलता?" देवीने कहा,—"हे राजन्! यहां एक नवीन पार्श्वनाथका बिम्ब है। उसकी वन्दना किये बिना विमान आगे नहीं बढ़ सकता।" देवी की यह बात सुन वह जिनेश्वरकी पूजा-वन्दना करनेके लिये विमानके साथ नीचे उतर पड़ा और पवित्र हो जिनपूजन किया। उस समय उसको उंगलीमें सोनेकी एक चतुर्दशवर्णिका अंगूठी थी। वह स्पर्श पाषाणके जिन-बिम्बको स्पर्श करते ही षोडश-वर्णिका हो गयी। यह देखकर विद्याधरको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसने स्थिर किया कि यह जिनदल (पाषाण) का ही प्रभाव है। अब उसके मनमें लोभ समाया और वह उस प्रतिमाको वहां से उठाकर चलता बना। यह देखकर सब लोग उसके पीछे दौड़े और उससे युद्ध करना आरम्भ किया। उसी समय अचानक वहां सिंहलद्वीपका रावण नामक राजा आ पहुंचा। उसने एक मास पर्यन्त युद्ध कर उस विद्याधरको पराजित किया और उससे वह प्रतिमा छीन कर सिंहलद्वीप (लङ्का) उठा ले गया। वहां एक प्रासादमें उस बिम्बकी स्थापना की और पूजा तथा नाटकादि कर उसकी भक्ति करने लगा। इसी तरह पचास वर्ष व्यतीत हो गये।

एक बार पार्श्वजिनके सन्मुख रावण स्वयं वीणा बजा रहा था और मन्दोदरी गायन तथा नृत्य कर रही थी। उस समय वीणा बजाते-बजाते उसकी तांत टूट गयी। यह देख रावणने

सोचा कि नृत्यमें भंग न हो, अतः उसने अपने हाथकी एक नस खींच कर वीणामें लगा दी। फलतः नाच-रंग अविछिन्न रूपसे होता रहा और निश्चित समयपर ही समाप्त हुआ। इस अपूर्व जिन भक्तिके प्रभावसे रावणने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया।* जिन भक्तिके प्रभावसे पद्मावती, वैरोट्या और अजितबला प्रभृति देवियोंने रावणके हाथकी पीड़ा दूर कर दी। उसी रात्रिको प्रतिमाके अधिष्ठायक देवताने रावणको स्वप्नमें कहा कि—"मुझे मेरे स्थानमें रख आओ।" यह जानकर रावणने उस जिन-बिम्बको वहां पहुंचानेका काम अपनी बदरी नामक एक दासीको सौंपा। बदरी गर्भवती थी, किन्तु २३ वर्ष हो जानेपर भी उसे प्रसव न होता था। रावणके आदेशानुसार वह जिन बिम्बको लेकर चटक पर्वत पर गयी और उसके पूर्व स्थानमें उसकी स्थापना कर, वह प्रति दिन उसकी पूजा और भक्ति करने लगी। पूजा एवं भक्तिके प्रभावसे शीघ्र ही दासीको प्रसव हो गया और उसने एक पुत्रको जन्म दिया। इस पुत्रका नाम केदार रखा गया। वह जन्मसे ही वैरागी था। यौवन प्राप्त होनेपर रावणने उसे चटक पर्वतका राजा बनाया। अब केदार पचीस गांवोंका स्वामी हुआ और कनक उसका मन्त्री बना। राजा और मन्त्री दोनों धर्मनिष्ट और दानी थे। अतएव उन्होंने पुण्य करनेमें किसी प्रकारकी कसर न

---

* इस वृत्तान्तसे जैन रामायण आदिका वृत्तान्त नहीं मिलता। अन्यान्य ग्रन्थोंमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि रावणने अष्टापद पर्वतपर तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया था।

रखी। कुछ दिनोंके बाद रामचन्द्रने रावणपर आक्रमण कर उसका विनाश किया किन्तु जिन-भक्तिके प्रभावसे उन्होंने केदारका राज्य छीनना उचित न समझा। इससे केदार और कनक बड़ेही प्रसन्न हुए और वे न्याय-नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन वहां एक केवली गुरुका आगमन हुआ। यह जानकर केदार और कनक दोनों जन उन्हें वन्दन करने गये। वन्दन करनेके बाद उन्होंने बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ केवली गुरुका उपदेश सुना। अन्तमें कनकने पूछा,—"भगवन्! वह शुक कौन था जिसने मुझे प्रतिमा बनवानेकी सलाह दी थी?" यह सुन गुरुने कहा,—"वह तेरा पूर्व जन्मका मित्र है। एक बार सौधर्म देवलोकमें सौधर्मेन्द्रके सम्मुख नाटक हो रहा था। उस समय अमिततेज और अनन्ततेज नामक इन्द्रके दो मित्र भी वहीं बैठकर नाटक देख रहे थे। इसी तरह अन्यान्य देवता भी नाटक देख रहे थे। इन्हीं दर्शकोंमें इन्द्रकी अंजू नामक एक पटरानी भी थी। नाटक देखते समय उन दोनों मित्र और अंजूकी चार आंखें हुईं और उनके मनमें कामोद्दिपन हो आया। फलतः वे सब वहांसे उठकर समीपकी वाटिकामें चले गये और वहीं कामक्रीडा करने लगे। किसी तरह यह बात इन्द्रको मालूम हो गयी, अतः वे भी उसी वाटिकामें आ पहुँचे। वहां इन तीनोंको एकान्त सेवन करते देख वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा,—"तुम लोगोंने यह बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। तुम्हें इसका फल अवश्य भोगना होगा। मैं तुम दोनों देवोंको शाप देता हूं कि तुम

मनुष्यलोकमें शुक और शुकीके रूपमें उत्पन्न होकर अपना जीवन व्यतीत करोगे। इन्द्रका यह शाप सुनकर दोनों देव कांप उठे।" उन्होंने इन्द्रसे पूछा,—"भगवन्! हमें इस शापसे मुक्ति कब मिलेगी?" यह सुन इन्द्रने कहा,—"तुम लोगोंका एक मित्र यहां है। उसका जीव यहांसे च्युत होकर कनक नामक एक वणिकके रूपमें उत्पन्न होगा। वह जब स्पर्श पाषाणकी प्रतिमा बनवाकर उसकी पूजा करेगा, तब तुम शापसे मुक्त होगे। तदनुसार दोनों देवता शुक और शुकीके रूपमें उत्पन्न हुए और तूने देवत्वसे च्युत होकर यहां जन्म लिया। इन्द्रके कथनानुसार ही शुकने तुझसे स्पर्शपाषाणकी प्रतिमा बनवाकर शापसे मुक्ति लाभ की। इसके बाद उन दोनोंने नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर शुकरूपका त्याग किया और वहीं देवरूप धारणकर अट्ठाई महोत्सव मनाते हुए वे देवलोकको चले गये और अपने अमृतसागर नामक विमानमें सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे।"

इस प्रकार केवली भगवानके मुंहसे शुकका वृत्तान्त सुनकर कनकश्रेष्ठी और केदार राजाको वैराग्य आ गया और इन दोनोंने दीक्षा ले ली। इसके बाद निरतिचार चारित्रका पालन करते हुए हुए अन्तमें वे अनशन कर पांचवें ब्रह्मदेव लोकमें दस सागरोपम की आयुवाले देव हुए। वहांसे च्युत होनेपर उन्हें महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धपदका प्राप्ति होगी।

हे भव्य प्राणियो! जिस प्रकार रावणने जिनपूजासे तिर्थंकर गोत्र उपार्जे किया, उसी तरह अन्य जीवोंको भी, जिनपूजासे स्वर्ग

और मोक्षकी प्राप्ति होती है। पूजा तीन प्रकारकी है—पुष्प पूजा (अंगपूजा), अक्षतपूजा (अग्रपूजा) और भावपूजा इनमेंसे पुष्प-पूजा प्राणियोंके लिये विशेष फलदायक है। किसीने कहा भी है, राजा सन्तुष्ट होनेपर एक गाँव दे सकते हैं, गांवका जागिरदार सन्तुष्ट होकर एक खेत दे सकता है और खेतका मालिक प्रसन्न होनेपर दो-चार मूठी अन्न दे सकता है, किन्तु सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव सन्तुष्ट होनेपर वह अपना पद दे सकता है। पुष्पपूजासे वयरसेन राजकुमारको राज्यकी प्राप्ति हुई थी। वह कथा इस प्रकार है:—

वयरसेनकी कथा।

इस भरतक्षेत्रमें ऋषभपुर नामक एक सुप्रसिद्ध नगर है। वह समृद्धि और प्रासाद श्रेणियोंसे सुशोभित था। वहां गुण सुन्दर नामक एक न्यायी राजा राज्य करता था। उसी नगरमें परम श्रद्धालु, सदाचारी और विचारशील अभयंकर नामक एक वणिक रहता था। वह जैन धर्मानुरागी और श्रावक था। उसके कुशल-मती नामक एक स्त्री थी। वह भी निरन्तर देवपूजा, दान, सामायिक और प्रतिक्रमण आदि अनेक पुण्यकार्य किया करती थी। उस वणिकके सरल प्रकृतिवाले दो सेवक थे। उसमेंसे एक गृहकार्य करता था और दूसरा गायें चराता था। एक बार वे

दोनों आपसमें बातें करते हुए कहने लगे,—"हमारे स्वामीको धन्य है, जिन्हें पूर्वजन्मके सुकृत्योंसे इस जन्ममें सुख-समृद्धि प्राप्त हुई है और उस जन्ममें भी ऐहिक पुण्यके प्रभावसे सुगति प्राप्त होगी। हम लोग तो पुण्य हीन होनेके कारण सदा दरिद्र ही रहेंगे। न तो हमें इस लोकमें ही सुख मिला न उसी लोकमें मिलेगा। किसीने कहा भी है कि—

"अदत्त भावाच्च भवेद् दरिद्री, दरिद्र भावात्प्रकरोति पापम्।
पाप प्रभावान्नरके प्रजति, पुनरेव पापी पुनरेव दुःखी॥"

अर्थात्—"पूर्वजन्ममें दान न देनेसे प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्रताके कारण वह पाप करता है और पापके प्रभावसे वह नरक जाता है, इस तरह वह बार-बार पापकर्म कर बार-बार दुःख भोग करता है।" हम दोनों इसी तरह व्यर्थ ही अपना मनुष्य जन्म गवां रहे हैं।

सेवकोंकी यह बातें किसी तरह अभयंकरसेठने सुन लीं। वह अपने मनमें समझ गया कि अब यह दोनों धर्मकी साधना करने योग्य हो गये हैं। अतः कुछ दिनोंके बाद चातुर्मासिक दिन आने पर अभयंकरने उन दोनोंसे कहा, कि तुम भी हमारे साथ जिन पूजा करने चलो। इससे दोनों जन अभयंकरके साथ पूजा करने गये। वहाँ पवित्र वस्त्र पहनकर शुद्धभावसे जिनपूजा करते हुए अभयंकरने उनसे कहा,—"इन पुष्पादिसे तुम लोग भी जिनपूजा करो।" यह सुनकर उन्होंने कहा,—"जिसके पुष्प होंगे, उसीको फल मिलेगा—हमलोग तो केवल बेगार ही करने भरके होंगे।

यह सुन अभयंकरने कहा,—"तुम लोगोंके पास नाम मात्रके लिये भी कुछ है या नहीं ?" ग्वालेने कहा,—"हां, मेरे पास पांच कौड़ियें हैं। यह सुन अभयंकरने कहा,—"अच्छा, तू उन कौड़ियोंके पुष्प ले आ और भावपूर्वक जिनपूजा कर।" यह देखकर दूसरा सेवक सोचने लगा—"इसके पास तो इतना भी है, पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।" यह सोचकर वह दुःखित होने लगा। इसके बाद अभयंकर उन दोनोंको लेकर गुरु वन्दन करने गया। वहां गुरु महाराजका धर्मोपदेश सुनते हुए प्रत्याख्यान करनेवाले किसी मनुष्को देखकर उस सेवकने गुरुसे पूछा कि इसने यह क्या क्रिया ? गुरुने कहा—"हे भद्र! आज इसने पौषध किया है। उसीका यह प्रत्याख्यान ले रहा है। यह सुनकर उसने उपवासका प्रत्याख्यान लिया। इसके बाद वे दोनों अपने मालिकके साथ घर लौट आये।

भोजनका समय होनेर उपवास करनेवालेने थालीमें अपना अन्न परोसवा लिया, किन्तु भोजन न कर वह द्वारके पास खड़ा रहकर सोचने लगा,—"यदि सौभाग्यवश कोई मुनि यहांसे आ निकले, तो मैं उन्हें यह भोजन दान कर दूं। इसे दान करनेके लये मैं पूर्ण अधिकारी हूँ, क्योंकि मैंने इसे अपने परिश्रमके बदलेमें लिया है।" जिस समय वह यह बातें सोच रहा था, उसी समय वहाँ एक मुनि आ पहुंचे। उनके आते ही उसने वह सब भोजन मुनिको दे दिया। सेवकका यह कार्य देखकर अभयंकर सेठ को बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने उस सेवकके लिये फिरसे भोजन

परोसनेकी आज्ञा दी। यह देख उस सेवकने कहा,—"अब मुझे और भोजन नहीं चाहिये, क्योंकि मैंने आज उपवास किया है।" यह सुन अभयंकरने पूछा—"तब तूने पहले भोजन क्यों परोसवाया था?" सेवकने कहा,—"मैंने किसी मुनिको दान देनेके उद्देशसे ही यह अन्न ग्रहण किया था।" यह सुनकर अभयंकर सेठको बड़ाही आनन्द हुआ। अब वह अपने इन दोनों सेवकोंको विशेष आदरपूर्वक रखने लगा। इधर दोनों सेवक भी प्रतिदिन चैत्यमें जाते थे। एवं मुनि वन्दन और नमस्कार मन्त्रका पाठ करते हुए अधिकाधिक धर्मसाधना करने लगे। उन्हीं दिनों कलिङ्ग देशमें शूरसेन नामक एक राजा राज्य करता था। एक बार शत्रुओंने उसका राज्य छीन लिया; इसलिये वह कुरुदेश चला गया और वहां हस्तिनागपुरके अचल नामक राजाके पास शरण ली। इससे अचल राजाने उसे निर्वाहके लिये पचास गांव दे दिये। अब शूरसेन उन गावोंमेंसे सुकरपुरको अपनी राजधानी बनाकर वहीं रहने लगा। शूरसेनके दो स्त्रियें थीं, जिनमें एकका नाम विजयादेवी और दूसरीका नाम जयादेवी था। विजयापर राजाका विशेष स्नेह था।

अभयंकरके उपरोक्त सेवकोंकी मृत्यु होनेपर वे दोनों इसी विजयाके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुए। इनमेंसे दान करनेवाला सेवक बड़ा भाई हुआ और उसका नाम अमरसेन रखा गया। जिन पूजा करनेवाला सेवक छोटा भाई हुआ और उसका नाम वयरसेन रखा गया। पूर्व जन्मके प्रभावसे उन्होंने यहांपर कुछ

ही दिनोंमें समस्त विद्या और कलाओंमें पार दर्शिता प्राप्त कर ली। इससे राजा-प्रजा सभी उनको देख कर प्रसन्न होते थे। किन्तु विमाता जया उनपर द्वेष भाव रखती थी।

एक दिन राजा शूरसेन किसी कार्यवश कहीं बाहर गया था। उस समय दोनों भाई महलके नीचे गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते वह गेंद सौतेली माताके महलमें जा गिरा। इसलिये उसने उसे उठा कर रख लिया। जब वयरसेन गेंद लेने गया, तो उसका रूप और यौवन देख कर उसके मनमें कामोद्रेक हो आया। इससे उसने वयरसेनको अपने प्रेम जालमें फँसानेकी चेष्टा की; किन्तु इसमें वह सफल न हो सकी। उसी समय वयरसेन हाथ पैर जोड़, क्षमा प्रार्थना कर, अपना गेंद लेकर चला आया, और उसने अपने भाईसे यह सारा हाल कह दिया। इधर दोनों भाई खेलकूद कर भोजनादि करने लगे और उधर जया रानी उनसे बदला लेनेका सामान करने लगी। अपने वस्त्रों को चीर फाड़ कर वह एक टूटी खाटपर सो रही। जब शूरसेन वापस आया और उसने जयाकी यह अवस्था देखी तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह उससे पूछने लगा—"प्यारी! आज यह क्या मांजरा है?" जयाने कहा,—"स्वामिन्! आपके दोनों पुत्रोंने आज मुझे इस प्रकार सताया है कि मुझसे कुछ कहते-सुनते नहीं बनता। बड़ी कठिनाईसे मैं अपनी लाज बचा सकी हूँ। मेरे सब कपड़े उन्होंने फाड़ डाले और मेरी बड़ी दुर्गति की।"

जयाकी यह सब बातें शूरसेनने सत्य मान लीं। अपने पुत्रोंपर

उसे बहुत ही क्रोध हुआ। उसने सोचा कि इन दोनों दुष्ट और दुराचारी पुत्रोंको प्राण दण्डकी सज़ा देना चाहिये। यह निश्चय कर उसने चण्ड नामक मातंगको बुलाकर आज्ञा दी, कि "दोनों राजकुमारोंको नगरके बाहर ले जाओ और इनके सिर काटकर मेरे पास ले आओ।" यह सुन मातंग आश्चर्यमें पड़ गया। वह राजाके इस भीषण क्रोधका कारण न समझ सका। राजाको क्रोधित देख इस समय अनुकूलता दिखानेमें ही लाभ समझ उसने कहा—"आपकी आज्ञा स्वीकार है। इसके बाद वह राजकुमारोंके पास गया और उन्हें राजाको आज्ञा कह सुनायो। सुनकर राजकुमारोंने कहा,—"अच्छो बात है। शीघ्रही पिताजीकी आज्ञा पालन करो। हम दोनों जन इसके लिये तैयार हैं। यह सुन मातंगने कहा,—"नहीं, मैं यह नहीं करना चाहता। तुम दोनों जन शीघ्रही यह देश छोड़ कर कहीं विदेश चले जाओ।" राजकुमारोंने कहा,—"हम लोग चले जायंगे, तो विपत्तिका सारा पहाड़ तुम्हारे ही सिरपर टूट पड़ेगा। उस समय पिताजी न केवल तुम्हारे ही प्राणके ग्राहक बनेंगे, बल्कि तुम्हारे परिवारको भी जीता न छोड़ेंगे। अतएव अपने बदले तुम्हें उनकी क्रोधाग्निमें भस्म होने देना हमें पसन्द नहीं है। यह सुन मातंगने कहा,—"आप मेरी चिन्ता न कीजिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि किसी न किसी तरह अपनी प्राण रक्षा अवश्य कर लूंगा। अब आप लोग शीघ्र ही यहांसे प्रस्थान कीजिये।"

अन्तमें राजकुमारोंने मातंगका कहना मान लिया और उसके

कथनानुसार अपने घोड़ोंको वहीं छोड़, पैदलही वहांसे चल पड़े। इधर मातंगने राजाको धोखा देनेके लिये बड़ी चतुराईके साथ मिट्टीके दो सिर बनाये और उनपर लाखका रंग चढ़ा, शामके वक्त वह राजकुमारोंके घोड़े और दोनों नकली सिर लेकर राजाके पास पहुंचा और दूरहीसे उन्हें वे सिर दिखाकर कहा,—"स्वामिन्! आपके आदेशानुसार राजकुमारोंको मार कर उनके सिर ले आया हूं।" यह जानकर राजाको बड़ी खुशी हुई, उसने आज्ञा दी कि,—"गांवके बाहर किसी गड्ढेमें इन्हें फेंक आओ!" यह सुन मातंग "जो आज्ञा" कहता हुआ वहांसे चलता बना। इधर जयाने समझा कि वास्तवमें दोनों राजकुमार मार डाले गये। इससे वह भी अपने मनमें बड़ी खुशी मनाने लगी।

इसके बाद दोनों राजकुमार अविच्छिन्न प्रयाण करते हुए कई दिनोंके बाद एक ऐसे जंगलमें जा पहुंचे, जो नाना प्रकारके वृक्ष और वन्य पशुओंसे पूर्ण हो रहा था। यहां उन दोनोंने आम्रफल खाकर नदीका शीतल जल पिया और वहीं एक वृक्षके नीचे लेट कर विश्राम करने लगे। धीरे-धीरे शाम हो गयी। सूर्यास्त होनेपर आकाशमें तारे निकल आये और चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य हो गया। अतः राजकुमारोंने वहीं रात काटना स्थिर किया। जब थकावट दूर हुई तो वे दोनों आपसमें बातचीत करने लगे। छोटे भाईने बड़े भाईसे पूछा,—"भाई! पिताजीके क्रोधका कोई कारण मालूम हुआ?" अमरसेनने कहा,—"नहीं, क्रोधका ठीक-ठीक कारण तो मैं नहीं जानता; पर मेरी धारणा

हैं कि यह सब विमाताकी करतूत है।" वयरसेनने पूछा,—"क्या पिताजीने माताकी असत्य बातोंपर विश्वास कर लिया होगा?" अमरसेनने कहा,—"हे वत्स! तुम अभी नादान हो, इसी लिये ऐसा प्रश्न पूछते हो। स्त्रियां असत्यका घर कहलाती हैं। रागान्ध पुरुष उनके असत्य वचनोंको भी सत्य मान लेते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य गङ्गाकी बालुकाके कण गिन सकता है, समुद्रके पानीका थाह लगा सकता है और मेरु पर्वतको भी तौल सकता है, किन्तु स्त्री-चरित्रको वह कदापि नहीं जान सकता। भाई! पिताजीने जो किया सो ठीक ही किया और जो हुआ सो भी ठीक ही हुआ; क्योंकि इस बहाने हम लोगोंको देशाटन करनेका अपूर्व अवसर मिला है, जिससे निःसन्देह हम लोगोंको बड़ा ही लाभ होगा। मैं तो इस घटनाको ईश्वरकी एक कृपाही समझता हूं।" इस तरहकी बातें करते-करते अमरसेनको नींद आ गई और वयरसेन सजग हो वहीं बैठकर पहरा देने लगा।

इसी समय उस वृक्षपर शुक और शुकीका एक जोड़ा आ बैठा। शुकने शुकीसे कहा,—"हे प्रिये! यह दोनों पुरुष बड़े ही सज्जन हैं अतएव इनका कुछ सत्कार करना चाहिये।" यह सुन शुकीने कहा,—"आपने बहुत ही ठीक कहा। आपको ख़याल होगा कि सुकुट पर्वतकी एक गुफामें विद्याधरोंने दो आम्रवृक्ष लगाये हैं। उन आम्रवृक्षोंके बीज मन्त्रसे अभिषिक्त होनेके कारण उनमें बहुत ही विलक्षण गुण आ गया है। उनका एक फल खानेसे सात दिनमें राज्य मिलता है और दूसरे फलकी

गुठली निगल जानेसे दतून करते समय प्रतिदिन पांच सौ स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त होती हैं। यही दोनों फल लाकर इन दोनोंको देने चाहियें। परोपकार करनेसे जन्म सफल हो जाता है। किसीने कहा भी है, कि जिस दिन परोपकार किया जाता है, वही दिन सफल होता है। अन्य दिनोंको तो निष्फल ही गये हुए समझना चाहिये। अन्धकारको दूर करनेके कारण ही सूर्यकी महिमा है, ग्रीष्मऋतुके कष्ट दूर करनेके कारण ही मेघकी प्रशंसा होती है। और थके हुए मनुष्योंको विश्रान्ति देनेके कारण ही वृक्ष आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इसी तरह तालाब स्वयं जल नहीं पीते न वृक्ष स्वयं फल भक्षण करते हैं। वह तो दूसरोंके ही उपकारक होते हैं। सच बात तो यह है, कि सज्जनों का सब कुछ परोपकारके ही लिये होता है। हम लोगोंको भी इस अवसरसे लाभ उठा कर कुछ परोपकार करना चाहिये।" यह सुन शुकने कहा,—"प्रिये! तूने उन फलोंकी बात अच्छे मौके पर याद दिलायी है। चलो, हम दोनों चलें, और इसी समय उनके फल ले आवें।" यह कह वे दोनों पक्षी सुकुट पर्वतकी ओर उड़ गये और कुछ ही समयमें वहांसे फल लेकर लौट आये। इधर वयरसेनने इन दोनोंको बातें पहले ही सुन ली थीं, अतएव शुक और शुकीके फल रखते ही उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनको ले लिया। तदनन्तर वयरसेनको उन दोनों फलोंके गुण और भेद समझा कर शुक और शुकी वहांसे उड़ गये। वयरसेनने दोनों फल चुपचाप अपने पास रख लिये।

आधी राततक वयरसेन जागता रहा। इसके बाद अमरसेनको जगाकर वयरसेन सो रहा। सुबह होते ही दोनों वहांसे चल पड़े। मार्गमें एक सरोवर मिला। वहां दोनों जन मुख शुद्धि कर नित्य कर्मसे निवृत्त हुए। उस समय फलका गुण बतलाये बिनाही वयरसेनने राज्य दायक फल बड़े भाई अमरसेनको खिला दिया और दूसरा फल स्वयं खा गया। इसके बाद दोनों जन आगे बढ़े। दूसरे दिन सुबह वयरसेनने एकान्तमें जाकर दतून की तो उस फलके प्रभावसे पांच सौ स्वर्णमुद्रायें उसके सामने आ पड़ीं। अब अमरसेनके साथ रहते हुए भी वयरसेन भोजनादिकमें विपुल धन व्यय करने लगा। यह देख कर अमरसेनने पूछा—"भाई! तेरे पास यह धन कहांसे आया?" वयरसेनने वास्तविक भेदको प्रकट करना उचित न समझ कर कहा,—"चलते समय मैंने पिताजीके खजानेसे यह धन ले लिया था।" यह सुनकर अमरसेन चुप हो रहा। इसी तरह छः दिन बड़ी मौजमें कटे। सातवें दिन वे दोनों जन काञ्चनपुर नामक एक नगरमें जा पहुंचे। उस समय दोनों जन परिश्रमके कारण थक गये थे इसलिये नगरके बाहर एक उद्यानमें विश्राम करने लगे। कुछ देरमें अमरसेन सो गया और वयरसेन भोजन-सामग्री लानेके लिये नगरमें चला गया।

दैवयोगसे इसी दिन उस नगरके राजाकी शूलवेदनाके कारण मृत्यु हो गयी। उसे कोई संतान न थी इसलिये नये राजाको खोज निकालनेके लिये नियमानुसार हस्ती, अश्व, कलश छत्र

और चामर-यह पांच देवाधिष्ठित चीजें नगरमें घुमायी जाने लगीं। यह सब चीजें नगर भरमें घूम आयीं, किन्तु इन्हें कहीं भी राज्यासनपर बैठाने योग्य पुरुष न मिला। अन्तमें यह चीजें नगरके बाहर निकली और घूमती हुई जहां अमरसेन सो रहा था, वहां जा पहुंचीं। वहां पहुंचते ही कलशका जल अपने आप अमरसेनपर ढल गया, और अश्वने हिन हिनाहट किया। हाथीने गर्जना कर अपनी सूंढ़से अमरसेनको उठा कर पीठपर बैठा लिया। छत्र अपने आप खुल गया और चामर स्वयं डुलने लगे। यह देखते ही मन्त्री प्रभृति अधिकारी और प्रजागण समझ गये कि यही हमारा भावी राजा है। अतः उन्होंने अमरसेनको दिव्य वस्त्रा भूषणोंसे सज्जित कर बड़े समारोहके साथ नगर प्रवेश कराया। इसके बाद यथा विधि अमरसेनका राज्य भिषेक हुआ और कई दिनोंतक उत्सव मनाया गया। इस प्रकार फलके प्रभावसे अमरसेनको राज्यकी प्राप्ति हुई और वह बड़ी योग्यताके साथ नीति पूर्वक राज करने लगा।

इधर वयरसेन जब भोजन सामग्री लेकर नगरसे लौटा तब उद्यानमें उसने अपने भाईको न पाया। पता लगानेपर जब उसे उसकी राज्य-प्राप्तिका हाल मालूम हुआ, तब वह अपने मनमें कहने लगा,—"बड़े भइयाने जब राज्य स्वीकार करनेमें मेरी राह न देखी, तब मुझे अब उसके पास क्यों जाना चाहिये? इस प्रकार उसके पास जाना बड़े अपमानकी बात होगी।" किसीने कहा भी है कि, व्याघ्र और गजेन्द्रसे पूरित वनमें रहना अच्छा है,

वृक्षपर रहते हुए केवल फल, पुष्प और जल द्वारा निर्वाह करना अच्छा है, तृणकी शय्यापर सो रहना और वल्कलके वस्त्र पहनना भी अच्छा है, किन्तु बन्धुओंके बीचमें धनहीन या मानहीन होकर रहना अच्छा नहीं। यदि मैं भाईके पास जाऊंगा तो वे यही समझेंगे कि यह किसी आशासे ही आया है। ऐसी अवस्थामें वे मुझे बहुत तो पांच सात गांव देना चाहेंगे, किन्तु मुझे तो यह स्वप्नमें भी लेना नहीं है, क्योंकि पुरुषार्थी पुरुष परसेवामें प्रेम रख ही नहीं सकते। क्या मदोन्मत्त हाथीका मस्तक विदारण करनेवाला सिंह कभी तृण खा सकता है? गरिबी दिखाकर खुशामद द्वारा जीविका उपार्जन करनेकी अपेक्षासे भूखों मर जाना ही अच्छा है। इसके अतिरिक्त मुझे भी तो प्रतिदिन पांचसौ स्वर्ण मुद्रायें मिलती हैं। क्या यह आमदनी किसी राज्यसे कम है! फिर ऐसी अवस्थामें मुझे परमुखापेक्षी क्यों होना चाहिये!"

इस तरह अनेक बातें सोचकर वयरसेनने उसी जगह भोजन किया। अनन्तर निवृत्त हो, वह नगरमें गया और मगधा नामक एक वेश्याके यहां रहकर सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा। क्योंकि उसके पास धनकी तो कमी थी ही नहीं। वह प्रतिदिन खूब धन दान करता और खाने पीनेमें भी उदार हो खर्च करता। गाना, बजाना, नाटक देखना, काव्यशास्त्र और कथादिक द्वारा मनोरञ्जन करना, द्यूतक्रीड़ा करना प्रभृति कार्य उसकी दैनिक दिनचर्या हो रहे थे। इसी तरह वह अपने इष्टमित्रोंके साथ आनन्द में दिन बिताने लगा। उधर राजा अमरसेनने नगरमें वयरसेनकी

बहुत कुछ खोज करायी, किन्तु जब कहीं उसका पता न चला तब वह भी राज्य चिन्तामें पड़कर उसे भूल गया।

मगधाके यहां उसकी बुढ़िया माता रहती थी। वह कुटनीका काम करती थी और बहुत ही घुटी हुई तथा लोभी प्रकृतिकी थी। एक दिन उसने मगधासे कहा,—"बेटी! तेरा यह प्रियतम तो बड़ा ही दानी और महाभोगी है। संसारमें इस समय ऐसा कोई पुरुष हीं नहीं दिखायी देता, जो इसकी समता कर सके। किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि न तो यह कोई रोजगार करता है न कहीं नौकरी ही करता है, फिर भी न जाने इतना धन कहांसे लाता है! तू उससे पूछना कि इतना धन वह कहांसे लाता है?" यह सुन मगधाने कहा—"मैया! हमें उससे ऐसा प्रश्न क्यों पूछना चाहिये? हमें तो केवल धनसे काम है और वह हमें मुंह-मांगा मिल ही रहा है।" बुढ़ियाने कहा,—"तेरा कहना ठीक है। तथापि अवसर मिलनेपर यह प्रश्न पूछना जरूरी है। तदनुसार एक दिन रात्रिके समय मगधाने वयरसेनसे पूछा,—हे स्वामिन्! नौकरी या व्यापार किये बिना ही आप यह धन कहांसे लाते हैं?" वयरसेन तो तनमनसे उसपर आशिक हो रहा था, इसलिये उसने उस आम्र फलकी गुठलीका सारा हाल उसको कह सुनाया। बिचारे उसे क्या मालूम था, कि अपना यह रहस्य बतलाकर वह अपना ही सर्वनाश करने जा रहा है?

वयरसेनसे आम्रफलका भेद मिलते ही मगधाने वह अपनी माताको कह सुनाया। अब उस बुढ़ियाने विचार किया कि

किसी तरह आम्रफलकी वह गुठली वयरसेनके पेटसे बाहर निकालनी चाहिये। यह सोचकर उसने एक दिन वयरसेनको भोजनमें मदन फल खिला दिया। इससे उसको उसी समय कै हो गई और उसके साथ वह गुठली भी बाहर निकल आयी। इसी समय गुठलीको धोधाकर बुढ़िया तुरत खा गयी, किन्तु उसके पेटमें पड़ते ही वह गुठली नष्ट हो गयी, फलतः उसे कोई लाभ न हुआ। इधर अब वयरसेनको भी स्वर्ण मुद्रायें मिलनी बन्द हो गयी, इससे उसका हाथ तंग हो गया और उसके दान धर्म प्रभृति कार्योंमें भी बाधा पड़ गयी। वह अपने मनमें कहने लगा,—"इस बुढ़ियाने मेरे साथ बड़ा चालबाजी की है, अतएव इसे कुछ सजा अवश्य देनी चाहिये।"

वयरसेन इस तरह सोच ही रहा था, कि बुढ़ियाने आकर उससे कहा,—"आज हमारे यहां देवी की पूजा होनेवाली है, अतएव आप घरसे बाहर चले जाइये।" इस तरह बहाना कर उसने वयरसेनको घरसे भी निकाल दिया। अब वयरसेन अपमानित हो इधर उधर भटकने लगा। वह अपने मनमें सोचने लगा,—"संसारमें धन ही सार वस्तु है। धनसे सभी काम सिद्ध होते हैं। जिसके पास धन होता है, वही पुरुष कुलीन, वही पण्डित, वही विद्वान्, वही वक्ता और वही दर्शनीय माना जाता है, क्योंकि सभी गुण उसीमें निवास करते हैं। निर्धन अवस्थामें मनुष्यको अपना जीवन भी भाररूप हो पड़ता है; अतएव मैं अब कहां जाऊं और क्या करूं?" इसी तरह सोचते हुए अन्तमें उसने

निश्चय किया, कि इस समय मुझे केवल दैव की ही शरण चाहिये ; क्योंकि ऐसे अवसरपर दैव ही कोई उपाय दिखला सकता है ।

इस प्रकार सोचता हुआ वयरसेन सारा दिन नगरमें भ्रमण करता रहा और शामको नगरके वाहर चला गया। वहां श्मशानमें एक खंडहर था, उसीमें रात बितानेका निश्चय कर बैठ गया। उस समय कहीं उल्लू बोल रहे थे, तो कहीं श्रृगाल चिल्ला रहे थे, कहीं हिंसक पशु घूम रहे थे, किन्तु वयरसेन इन सबोंको देखकर लेशमात्र भी विचलित न हुआ और सारी रात जागते हुए वहीं बैठा रहा। किसीने ठीक ही कहा है, कि उद्यमसे दरिद्र नष्ट होता है, जपसे　　　　होता है, मौन रहनेसे कलह का नाश होता है और जाग्रत रहनेसे भय दूर हो जाता है।

दैवयोगसे श्मशानमें आधिरातके समय चार चोर आये और वे कोई वस्तु बाँटनेके लिये आपसमें टंटा-फिसाद करने लगे। वयरसेनने उनकी बातें सुन चोरोंकी ही भाषामें उनसे कुछ कहा। इससे चोरोंने समझा, कि यह भी कोई चोर है, अतएव उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। उसी समय वयरसेन उनके पास गया और उनसे कहने लगा, कि—"तुम लोग इस तरह झगड़ा क्यों कर रहे हो।" यह सुन चोरोंने कहा,—"हमारे झगड़ेका कारण यह है, कि हम लोगोंको चोरीमें एक कन्था, एक दण्ड और पादुका—यह तीन चीजें मिली हैं किन्तु हम लोग चार जन हैं। किसी तरह बांटने नहीं बनता, इसीलिये

झगड़ा हो रहा है। इसमें कोई चीज ऐसी भी नहीं है, जिसके विभाग किये जा सकें।" यह सुन वयरसेनने कहा,—"इन असार वस्तुओंके लिये इतना झगड़ा ? मैं तो समझता था, कि तुम लोग किसी मूल्यवान वस्तुके लिये लड़ रहे हो।" यह सुन चोरोंने कहा,—"भाई ! तुम्हें इनका रहस्य मालूम नहीं है, इसीसे तुम ऐसी बात कहते हो। हम लोगोंने जो यह तीन चीजें प्राप्त की हैं वह तीनों ही अनमोल हैं।" वयरसेनने पूछा,—"इनमें ऐसी क्या विशेषता है, जिससे तुम लोग इन्हें अनमोल कह रहे हो। क्या इनके अच्छे दाम आ सकेंगे ?" यह सुन एक चोरने बतलाया कि—"इस श्मशानमें एक सिद्ध पुरुष महाविद्याकी साधना करता था। वह जब छः मासतक साधना करता रहा तब उस विद्याको अधिष्ठायिका देवीने प्रसन्न हो उसे यह तीनों चीजें दी थीं। उसी सिद्ध पुरुषको मारकर हमलोग उसकी यह चीजें ले आये हैं। इस कन्थाको झाड़नेसे प्रतिदिन पांचसौ स्वर्णमुद्रायें गिरती हैं, इस दण्डको पास रखनेसे संग्राममें विजय मिलती है और पादुका पहननेसे आकाशमें विचरण किया जा सकता है।"

चोरको यह बातें सुनकर वयरसेनको बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने कहा,—"चिन्ता न करो ! मैं इसी समय झगड़ा मिटाये देता हूं। तुम चारों जन थोड़ी देरके लिये श्मशानके चारों ओर चले जाओ। मैं सोच-विचार कर जब तुम्हें बुलाऊं तब मेरे पास आना।" यह सुनकर चोरोंने वयरसेनकी बात मानकर ऐसा ही

किया। ज्योंही वे वहांसे हटे, त्योंहीं वयरसेनने कन्याको उठा कर कन्धेपर डाल लिया, दण्ड हाथमें ले लिया और पादुकायें पैरमें पहन लीं। पादुका पहनते ही वह आकाश मार्गसे उड़ा और नगरमें चला गया। इधर कुछ समय तक चोरोंने उसके बुलानेकी प्रतीक्षा की, किन्तु जब उसने न बुलाया, तब वे आप ही वहां पहुंचे। जाकर देखा तो वयरसेन नदारद! वे उसका कपट समझ गये पर लाचार, कोई उपाय न होनेके कारण चुपचाप अपने-अपने स्थानको चल दिये।

उधर वयरसेन इन चीजोंको लेकर अपने एक मित्रके यहां गया और वहां इन चीजोंको छिपाकर रख दिया। वह प्रतिदिन कन्याको झाड़कर उससे पांचसौ स्वर्णमुद्रायें प्राप्त करता और पूर्ववत् उन्हें दानधर्म और मौज-शौकमें खर्च करता। इसी तरह अब वह फिर पूर्ववत् बड़ी शान-शौकतके साथ घूमने और चैनकी वंशी बजाने लगा।

वयरसेनकी यह अवस्था देख बुढ़िया समझ गयी, कि फिर इसके हाथ कुछ माल लगा है। अतएव उसने अपनी दासी द्वारा वयरसेनके निवास स्थानका पता लगवाया। पता लग जानेपर उसने अपनी पुत्रीको श्वेत वस्त्र पहनाये और उसे वयरसेनके पास ले जाकर कहा,—"हे वत्स! मैंने उस दिन तुझे थोड़ी देरके लिये बाहर जानेको कहा था, किन्तु तू तो फिर वापस आया ही नहीं। जिस दिनसे तू गया उसी दिनसे मगधाकी अवस्था बहुत,ही खराब हो रही है। इसने खाना-पीना और

स्नान-विलेपन करना भी छोड़ दिया है। अधिक क्या कहूं, इसने मुझसे भी बोलना छोड़ दिया है। यह इसी तरह श्वेतवस्त्र पहन कर कष्टपूर्वक रहती है और रात दिन तेरा ही नाम लिया करती है। यह तेरे लिये इतना कष्ट सहन कर रही है और तू अकेला आनन्द कर रहा है? खैर, अब मैं और अधिक कहना नहीं चाहती, तुझे जो अच्छा लगे सो कर!"

बुढियाकी यह कपटपूर्ण बातें सुनकर वयरसेन अपने मनमें कहने लगा,—"यह दुष्टा फिर मुझे जालमें फँसाना चाहती है, लेकिन देखा जायगा। अब मैं इससे सावधान रहूंगा।" यह सोचकर उसने बुढियासे कहा,—"मैया! तुम्हारा कहना ठीक है। तुम्हारी पुत्रीको भी दुःख होना स्वाभाविक है। अब जो कहो सो करूं!" यह सुन बुढियाने कहा—"बेटा! कहने सुननेकी कोई बात नहीं है। तुम हमारे साथ चलो और जैसे हमारे यहां पहले रहते थे, उसी तरह रहा करो और हमारे घरको अपना ही घर समझो। यही मैं चाहती हूं और यही मेरा कहना है।" बुढियाकी यह बातें सुन वयरसेन फिर उसके यहां चला गया और पहलेहीकी तरह दान तथा क्रीडादिकमें काल व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद बुढियाने पुनः मगधाको धनागमका कारण पूछनेके लिये प्रेरित किया। अबकी मगधाने कहा,—"मैया! तेरे हृदयमें बड़ाही लोभ समाया है। तू वृक्षके फल न खाकर उसको मूलसे ही काट डालना चाहती है। मैं ऐसा प्रश्न न पूछ सकूंगी।

तूही क्यों न पूछ ले ?" पुत्रीसे यह उत्तर मिलनेपर मगधाने एक दिन स्वयं वयरसेनसे पूछा कि,—"हे वत्स! तुम इतना धन कहांसे लाते हो ?" यह सुन वयरसेनने कहा—"माता! यह बात किसीको बतलाने योग्य नहीं है, किन्तु फिर भी तुमसे कोई बात छिपी न होनेके कारण मैं बतलाता हूं। मेरे पास विद्याधिष्ठित दो पादुकायें हैं, उनपर खड़ा हो मैं आकाशमार्गसे इन्द्रके भण्डारमें जाता हूँ और वहांसे आवश्यक धन ले आता हूं।" वयरसेनकी इस बातको उसने सब मान लिया और किसी तरह उन पादुकाओंको अपने हाथ करनेकी युक्ति सोचने लगी।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन उसने बीमारीका ढोंग किया। वह एक टूटी खाटपर सो रही और पेटमें शूल वेदना होनेका बहाना करने लगी। उसे इस तरह देख वयरसेनने जब उससे बीमारीके सम्बन्धमें पूछताछ की, तब उसने कहा,—"हे वत्स! क्या कहूं ? बात कहने योग्य नहीं है, पर तेरा आग्रह देखकर कहती हूं। जब तू हमारे यहांसे चला गया था, तब मैंने समुद्र स्थित कामदेवकी पूजा करनेकी मानता मानी थी, किन्तु वहां जाना बहुत ही कठिन होनेके कारण मैं अभी तक उस मानताको पूरी नहीं कर सकी। इसी लिये कामदेव मुझे यह कष्ट दे रहे हैं।"

बुढ़ियाकी यह बात सुनकर वयरसेनने सोचा कि यह बहुत ही अच्छा मौका मिल रहा है। इस दुष्टाको इस बहाने अपने साथ ले जाकर समुद्रमें डाल आऊंगा। यह सोचकर उसने कहा,—"माता! यह काम मेरे लिये बहुत सहज है। तुम मेरे साथ

चलो, मैं अभी मानता पूरी कराये लाता हूं। बुढ़िया तो यह चाहती ही थी, अतएव वह तुरत उसके साथ जानेको राजी हो गयी। वयरसेनने उसे अपने कंधेपर बैठाकर पादुकायें पहन लीं। पादुकायें पहनते ही वे दोनों आकाश मार्गसे उड़कर समुद्र स्थित कामदेवके मन्दिरमें जा पहुंचे। वहां पहुंचनेपर बुढ़ियाने वयरसेनसे कहा -"हे वत्स! मैं बाहर बैठी हूं। पहले तुम अन्दर जाकर कामदेवकी पूजा कर आओ।" बुढ़ियाकी यह बात सुन वयरसेन पादुकायें बाहर रख चैत्यमें पूजा करने गया, किन्तु वह ज्योंही अन्दर गया त्योंही बुढ़िया पादुकायें पहनकर आकाश-मार्गसे अपने मकानको उड आया। वयरसेन इस प्रकार फिर एक बार ठगा गया। उधर उसने चैत्यसे बाहर निकलकर देखा, तो पादुका और बुढ़ियाका कहीं पता भी न था। यह देखकर वह कहने लगा,—"अहो! मैं चतुर होनेपर भी बुढ़िया द्वारा फिर ठगा गया और अबकी बार तो बहुतही बुरी तरह ठगा गया। खैर, जो होना होगा सो होगा, चिन्ता करनेसे क्या लाभ? बाल्यावस्थामें जिसने पेट भरनेके लिये माताके स्तनोंमें दूध उत्पन्न किया था, वह क्या अब भी भोजन न देगा?"

इस प्रकार विचार कर वह वनफल खाता हुआ उसी जगह दुःखपूर्वक समय बिताने लगा। कुछ दिनोंके बाद उसी जगह एक विद्याधर आ निकला। वह उस समय अष्टापद तीर्थकी यात्रा करने जा रहा था। कुमारको इस तरह दुःखी अवस्थामें देखकर उसे दया आ गयी। उसने उसके पास आकर पूछा,—"तू

कौन है और यहां कैसे आ पहुँचा ?" यह सुन कुमारने उसे सब हाल कह सुनाया। पश्चात् विद्याधरने उसे धैर्य देते हुए कहा,—"हे भद्र ! इस समय मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूं। पन्द्रह दिनमें वहांसे लौटूंगा। उस समयतक तू यहीं रहना। मेरे आनेके बाद तू जहां कहेगा, वहां मैं तुझे पहुँचा दूंगा। किन्तु देख, यहां मन्दिरके चारों ओर देवताओंके विलास करनेके लिये बगीचे बने हुए हैं। इनमेंसे पूर्व दक्षिण और उत्तर दिशाके बगीचोंमें तू जा कर फलाहार और जलक्रीड़ा कर सकता है, किन्तु चैत्यके पीछे पश्चिम दिशामें जो उद्यान है, उसमें भूलकर भी न जाना।" यह कह विद्याधरने वयरसेनको लड्डू आदि कुछ खानेका सामान दे, वहांसे प्रस्थान किया। अनन्तर वयरसेन भी वहीं वनफल खाकर कामदेवकी पूजा करते हुए समय बिताने लगा।

एक दिन वयरसेन बगिचोंकी सैर करने निकला। पहले वह पूर्व दिशाके बगीचेमें गया। उसमें दो ऋतुएं दिखायी देतीं थीं। आधे बगीचेमें वसन्त ऋतु होनेके कारण आम्र और चम्पकादि वृक्ष विकसित हो रहे थे। कोकिलायें पञ्चम स्वरमें कूक रही थीं और चम्पकके पुष्पोंसे समूचा वन सुगन्धित हो रहा था। आधे बगीचेमें ग्रीष्मऋतु होनेके कारण वहां ग्रीष्मकालीन फूलोंकी सुगन्ध फैल रही थी। यहां वयरसेनने वापिकामें जलक्रीड़ा कर फलाहार किया। इसके बाद वह दक्षिण दिशाके बगीचेमें गया। उसमें भी दो ऋतुओंकी बहार दिखायी देती थी। आधे बगीचेमें वर्षा ऋतु होनेके कारण

वहां मयूर और मेंढकोंका शब्द सुनायी दे रहा था और केतकी तथा जाई प्रभृति पुष्पोंकी सुगन्ध फैल रही थी। आधे बगीचेमें शरद् ऋतुकी बहार होनेके कारण सरोवरका जल निर्मल हो रहा था और कास कुसुम तथा सतच्छद वृक्ष इनोंके निवाससे सुशोभित हो रहे थे। वहां वह क्रीड़ा कर उत्तर दिशाके बगीचेमें गया। वहां भी दो ऋतुएं दिखायी देती थीं। आधे बगीचेमें शिशिर ऋतु थी,इसलिये वहां खिली हुई शतपत्रिका पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। आधे बगीचेमें हेमन्त कालीन पुष्प विकसित हो रहे थे। इस प्रकार तीन दिशाके बगीचोंमें विचरण करता हुआ वयरसेन दिन बिताने लगा।

एक दिन उसने सोचा, कि तीन दिशाओंके बगीचे तो देख लिये, पर चौथी दिशाके बगीचेमें क्या है यह मालूम न हो सका। इस लिये एक बार वहां भी चलना चाहिये। यह सोच कर वह वहां गया। वहां घूमते हुए उसे एक नया पुष्प वृक्ष दिखायी दिया। इससे उसने कौतुकवश उसका एक पुष्प तोड़ कर सूंघ लिया। सूंघते ही वह रासभ (गधा) बन गया। और सर्वत्र रेंकता हुआ भ्रमण करने लगा। पन्द्रह दिन बीतने पर जब वह विद्याधर आया, तो उसने वयरसेनको गर्दभके रूपमें देख उसको बहुत ही भर्त्सना की। इसके बाद उसने एक दूसरे वृक्षका पुष्प सूंघा कर फिर उसे मनुष्य बना दिया। इसी समय वयरसेनने विद्याधरके पैर पकड़ कर उससे क्षमा प्रार्थना की। अनन्तर विद्याधरने कहा,—"कहो, अब मैं तुम्हें

कहां पहुँचा दूं ?" यह सुन वयरसेनने कहा,—"हे स्वामिन्! यदि आप वास्तवमें मुझपर उपकार करना चाहते हैं तो मुझे यह दोनों पुष्प देकर काञ्चनपुर पहुँचा दीजिये।" वयरसेनकी यह प्रार्थना सुन विद्याधरने उसे वे दोनों पुष्प देकर आकाश-मार्गसे तुरत काञ्चनपुर पहुँचा दिया। वहां पहुँचने पर वह फिर पहले-की तरह आनन्द करने लगा।

वयरसेनको फिर ऐसी अवस्थामें देख बुढ़ियाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। अब वह अपने घुटने और केहुनियोंपर पट्टी बांध, लकड़ी टेकती हुई फिर वयरसेनके पास पहुंची। उसे आते देख वयरसेनने कहा—"माता! हाथ-पैरमें क्या हुआ है?" बुढ़ियाने रोते-कलपते हुए कहा—"हे वत्स! क्या कहूँ? ज्योंहीं तू काम-देवके मन्दिरमें पूजा करने गया, त्योंही वहाँ एक दुष्ट विद्याधर आ पहुंचा और तेरी पादुकायें उठाकर भागने लगा। यह देख मैंने उसका पल्ला पकड़ लिया। इससे उसके साथ मैं भी लटक गयी और आकाशमें लड़ने लगी। किन्तु यहां पहुंचने पर उसने जोरका धक्का देकर मुझे नीचे गिरा दिया। इससे मेरे हाथ पैर टूट गये, पर अब यह दुःख किससे कहूं? जो दुःख सिरपर आ पड़ा है, उसे बरदास्त करना ही होगा। अब तू आ गया तो बहुत ही अच्छा हुआ। तुझे देखते ही मेरे सब दुःख दूर हो गये।" इस तरहकी बातें कह कर वह वयरसेनको फिर अपने घर लिवा ले गयी। वयरसेन भी फिर अपनी प्रेमिका मगधाके साथ सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन बुढ़ियाने वयरसेनसे पूछा—"बेटा! मैं तो उस विद्याधरके वस्त्रोंमें लटक कर यहाँ चली आयी, पर तू यहाँ कैसे आया और रोज इतना धन कहाँसे लाता है?" यह सुन वयरसेनने कहा,—"माता! मैंने यहाँ कामदेवकी आराधना की थी अतः उन्होंने मुझे बहुत सा धन देकर यहाँ पहुँचा दिया।" बुढ़ियाने फिरसे पूछा,—"कामदेवने केवल धन ही दिया है या और भी कोई वस्तु दी है?" वयरसेनसेने कहा,—"हाँ, उन्होंने मुझे एक दिव्य औषधि भी दी है। जिसको सूँघनेसे बूढ़ेको भी नवयौवनकी प्राप्ति होती है।"

यह सुनकर बुढ़ियाको बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने वयरसेनसे कहा,—"हे वत्स! मुझे वह औषधि सुँघा दे ताकि इस बुढ़ापेसे छुटकारा पा जाऊं। यह सुन वयरसेनने कहा—"माता! वह औषधि विशेष कर तुम्हारे ही लिये लाया हूं। यथा समय अवश्यही उसका प्रयोग करूंगा।" यह सुन बुढ़ियाने कहा—"अच्छे कामके लिये अवसरकी प्रतीक्षा करना ठीक नहीं। इसी समय मुझे उस औषधीको सुंघा दे। इस तरह बुढ़ियाका आग्रह देख वयरसेन कंथा और दण्ड ले आया। इसके बाद उसने बुढ़िया को रासभकरण पुष्प सुंघा दिया। वह फूल सूंघतेही वह रासभी (गधी) बन गयी। यह देखकर वयरसेनको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने बुढ़ियासे सब दिनकी कसर आज ही निकालना स्थिर किया। उसी समय कंथाको कन्धे पर रख वह दण्डसे गधीको पीटते हुए नगरमें घूमने लगा। यह देख मगधाने कहा,—"यह

बहुतही अच्छा हुआ। लोभीको ऐसी ही सजा मिलनी चाहिये।" किन्तु अन्यान्य गणिकायें हाहाकार करती हुई राजाके पास पहुंचीं और उससे शिकायत की कि—"हे स्वामिन्! एक धूर्तने हमारे परिवारकी एक बुढ़ियाको औषधिके प्रयोगसे गधी बना दिया है और अब वह उसपर बड़ा ही अत्याचार कर रहा है।" वेश्याओंकी यह बात सुन कर राजाको हंसी आ गयी। यह देख वेश्याओंने फिरसे कहा,—"नाथ! यदि आप भी इस बातको हंसीमें उड़ा देंगे, तो हम लोग फिर किससे फरियाद करेंगी?" इस तरह वेश्याओंके बोलनेपर राजाको उनकी बातपर विश्वास हो आया अतः उसने उसी समय कोतवालको हुक्म दिया कि उस धूर्तको फौरन पकड़ ले आओ। यह सुन कोतवाल उसी समय गया और वयरसेनसे कहने लगा कि,—"भाई! तूने यह अनुचित कार्य क्यों किया है?" यह सुन वयरसेनने कहा,—"तू जिसके हुक्मसे यहां आया है, उसकी आज्ञा माननेको मैं तैयार नहीं हूं। मुझे जो उचित मालूम हुआ, सो मैंने किया।" यह सुनकर कोतवालको क्रोध आ गया और उसने बाण आदिक द्वारा वयरसेन पर प्रहार किये, किन्तु दण्डके प्रभावसे वे सब बेकार हो गये और वयरसेनका बाल भी बांका न हुआ। इसके बाद वयरसेन दण्ड घुमाता हुआ कोतवालके सामने आ पहुंचा। उसे अपने सामने आते देख कोतवाल भयके मारा कांप उठा और तुरत ही राजाके पास दौड़ा आया। यह देख राजाने कहा,—"क्या माजरा है? क्यों इस तरह भयभीत हो रहे हो?" कोत-

धालने कहा,—"स्वामिन्! यह धूर्त तो बड़ा ही जबर्दस्त मालूम होता है। उससे भिड़ना मेरी शक्तिके परेका काम है।" यह सुन राजाने शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित अनेक सुभटोंको भेज कर वयरसेनको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी। साथ ही मन्त्री और राज्यके अधिकारीगण भी यह कौतुक देखनेके लिये वहां जा पहुँचे। राजाके भेजे हुए सुभट ज्योंही वयरसेनके समीप पहुँचे, त्यों ही उसने दण्ड घुमाना शुरू कर दिया। फिर किसकी मजाल थी जो वहां ठहर सके? देखते-ही-देखते सब लोग भाग खड़े हुए। राजा अमरसेनने जब यह हाल सुना तो वह स्वयं अनेक सुभटोंके साथ घटना स्थलपर उपस्थित हुआ। राजाको देखकर वयरसेन अब गधीको और भी पीटने लगा। इससे वह जोरोंसे चिल्लाने लगी। यह देख कर लोग हंसने लगे और कहने लगे—"अहा! कैसा देखने योग्य दृश्य है। एक ओर राजा गजारूढ़ है और दूसरी ओर धूर्त खरारूढ़ है।" वयरसेन गधीको पीटता पीटता राजाके सम्मुख आ उपस्थित हुआ। उसे देखते ही अमरसेनने पहचान लिया और उसी समय उसने हाथीपरसे उतरकर वयरसेनको गलेसे लगा लिया। पश्चात् अमरसेनने पूछा—"हे वत्स! यह अनुचित कार्य क्यों कर रहा है?" अमरसेनकी यह बात सुन वयरसेनने उसे सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद उसने गधीको एक वृक्षसे बांध दिया और भाईके साथ हाथीपर सवार हो शहरमें प्रवेश किया। जब यह वृत्तान्त लोगोंको मालूम हुआ, तो वे कहने लगे कि बुढ़ियाको उसके कर्मानुसार ठीक ही सजा

मिली है। किसीने ठीक ही कहा है कि :—

"अति लोभो न कर्तव्यो, लोभं नैव परित्यजेत्। ८
अति लोभाभिभूतात्मा, कुट्टिनी रासभो कृता ॥"

अर्थात्—"न तो बहुत अधिक लोभ ही करना चाहिये, न एकदम उसका त्याग ही करना चाहिये, क्योंकि अतिलोभके ही कारण बुड़ियाको गधी होना पड़ा।"

अनन्तर राजाके अनुरोधसे वयरसेनने बुढ़ियाको दूसरा फल सुंघा कर फिर उसे स्त्री बना दिया। इसके बाद उससे अपनी पादुकायें लेकर उसे छोड दिया।

राजा अमरसेनने अब वयरसेनको अपना युवराज बना दिया और दोनों जन बहुत दिनोंतक प्रजा-पालन करते हुए आनन्द करते रहे। इसके बाद उन्होंने अपने पिताको बुलाकर कहा,—"पिताजी! आप यहीं आनन्दसे रहिये और इस राज्यको भी अपना ही समझ कर इसे सम्हालिये। हम दोनों जन आपके आज्ञाकारी सेवक बन कर रहेंगे।" इसके बाद दोनों भाइयोंने विमाताके पैरों गिर कर कहा—"माता! यह सारा राज्य हमें आपकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है।" इस तरह कहते हुए उन्होंने अपर माताका भी सत्कार किया और उसके मनका मैल दूर कराया। इसके बाद उस मातंगको जिसने उनका प्राण बचाया था, बुलाकर उसे मातंगों (मेहतरों) का अधिकारी बना दिया। इस प्रकार अमरसेनने पुनः अपने परिवारमें स्नेह तथा सौहार्द्र उत्पन्न किया और सबके साथ हिलमिल कर ऐश्वर्य भोग करने लगा।

एक दिन दोनों राजकुमार झरोखेमें बैठे हुए नगरकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें एक मुनि शुद्ध भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए उधरसे आ निकले। उनका मन अव्यग्र और गात्र मैलसे मलीन हो रहे थे, किन्तु चारित्रका पालन करनेमें वे किसी तरह की कमी न रखते थे। उन्हें देखकर दोनों भाई सोचने लगे, कि इन्हें शायद कहीं देखा है। यह सोचते-सोचते उन्हें शुभ ध्यानके योगसे जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। फलतः वे दोनों जन मुनिराजको वन्दन करने गये। मुनीन्द्रने भी अवधिज्ञानसे उन दोनोंके पूर्व जन्मका वृत्तान्त जान कर कहा,—"हे राजन्! तूने पूर्वजन्ममें साधुओंकी सेवा कर दानरूपी कल्पवृक्ष बोया था। उसीका यह राज्य-प्राप्ति रुप पुष्प प्राप्त हुआ हैं, मोक्षगमन रूपी फल अभी मिलना बाकी है। ययरसेनने पांच कौड़ियोंके पुष्प लाकर जिनपूजा की थी। उसी पुण्यके प्रभावसे इसे दिव्य और विपुल भोगकी प्राप्ति हुई है, किन्तु यह तो उस पुण्यवृक्षका पुष्प है। फलके रूपमें तो अनन्त सुख रूपी सिद्धिकी प्राप्ति होगी।"

मुनिकी यह बातें सुनकर दोनोंने पूछा,—"हे विभो! हमें सिद्धि कब प्राप्ति होगी?" मुनिने कहा,—"पहले तुम्हें देवयोनि और मनुष्य योनिमें क्रमशः पांच जन्म लेकर सुख भोग करना होगा। इसके बाद पूर्व विदेहमें तुम्हारा छठां जन्म होगा। वहां साम्राज्य सुख भोगनेके बाद तुम लोग चारित्र ग्रहण करोगे और निर्मल तप कर अन्तमें दोनों जन सिद्धि पद प्राप्त करोगे।"

मुनिकी यह बातें सुनकर राजकुमार तथा समस्त श्रोताओं-

को अत्यन्त आनन्द हुआ। दोनों राजकुमारोंने पुनः सम्यक्त्व मूल बारह व्रत रूपी श्रावक धर्मका स्वीकार किया। इसके बाद वे मुनिको प्रणाम कर अपने महलमें गये और जैन धर्मपरायण हो काल बिताने लगे। उन्होंने अनेक जिन मन्दिर बनवाकर उनमें जिनेश्वरके बिम्बकी प्रतिष्ठा करवायी। बड़े समारोहके साथ रथ-यात्रादि महोत्सव किये और भक्ति पूर्वक अनेक साधर्मिक वात्सल्य किये। अन्तमें दोनोंने दीक्षा ग्रहण की और आयुपूर्ण होनेपर पांचवें ब्रह्मलोकमें देवत्व प्राप्त किया। क्रमशः इन्हें महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धिपदकी प्राप्ति होगी।

इसी प्रकार अक्षतपूजाके सम्बन्धमें शुकराजकी कथा मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है :—

शुकराजकी कथा।

इस भरतक्षेत्रमें श्रीपुर नामक एक मनोहर नगर है। वहां बाहरके उद्यानमें स्वर्गके प्रासाद सदृश श्री आदिनाथ भगवानका एक चैत्य था। उसके शिखरमें फहराती हुई पताका मानो लोगोंको अपने पास आनेका निमन्त्रण दे रही थी। शिखरके कलश मानों लोगोंका सूचना दे रहे थे कि तेजसे देदित्यमान यह एक ही प्रभु संसार तारक और सर्वज्ञ हैं, इसलिये हे भव्यजीवो! इन्हें भजो। यह प्रभु भवसागरमें नावके समान हैं, अतएव इन्हींकी सेवा करो!" उस चैत्यमें अनेक मनुष्य प्रभुको

नमस्कार करनेके लिये आते थे। उसी मन्दिरके पास एक बड़ा सा आम्रवृक्ष था। जिसपर एक प्रेमी शुकयुगल रहता था। एक बार शुकने शुकीसे कहा,—"हे प्राणनाथ! मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप शालिक्षेत्रसे एक शालिगुच्छा ला दीजिये।" शुकने कहा,—"हे प्रिये! यह श्रीकान्तक राजाका खेत है। इस खेतसे एक दाना भी लेना प्राणको खतरेमें डालना है।" यह सुन कर शुकीने कहा,—"हे स्वामिन्! संसारमें आपके समान शायद ही कायर कोई दूसरा होगा। दोहद पूरा न होनेके कारण मैं मर रही हूं और आप प्राणके लोभसे मेरी उपेक्षा कर रहे हैं।" शुकी-की यह बात सुन शुक लज्जित हो उठा और अपने प्राणको हथेली में रखकर शालिक्षेत्रसे एक गुच्छा ले आया। इस प्रकार उस दिन शुकीका दोहद पूर्ण हुआ। इसके बाद रक्षकोंका भय छोड़कर वह रोज शुकीके आदेशानुसार क्षेत्रसे शालिका गुच्छा लाकर शुकीका दोहद पूर्ण करने लगा।

एक दिन श्रीकान्त राजा शालिक्षेत्र देखने आया। उसने वहां जब चारों ओर घूमकर देखा तो एक ओर खेतको पक्षियों द्वारा खाया हुआ पाया। यह देखकर उसने अपने अनुचरोंसे पूछा,—"इस ओर तो सारा खेत चौपट हो गया है। तुम लोगोंने इसकी रक्षा क्यों न की?" अनुचरोंने कहा,—"स्वामिन्! हमारी रक्षामें कोई कसर नहीं है, किन्तु क्या करें; एक शुक रोज चोरकी तरह आता है और बालियां लेकर उड़ जाता है। उसीने खेतकी यह अवस्था की है।" यह सुन राजाने कहा,—"उसे जालमें फँसाकर

मेरे पास उपस्थित करो। उसे मैं चोरकी तरह सजा दूंगा।"

यह कह राजा चला गया। दूसरे दिन खेतके रक्षकोंने शुकको जालमें फँसानेकी तैयारी की और ज्योंही वह बालियां लेने आया त्योंहीं उसे जालमें फांस लिया गया। इसके बाद वे उसे पकड़ कर राजाके पास ले गये। शुककी यह अवस्था देख शुकी भी अश्रुपात करती हुई राज मन्दिरमें पहुंची। शालिरक्षकोंने शुकको राजाके सम्मुख उपस्थित करते हुए कहा—"नाथ! यही वह शुक है। जिसने शालिक्षेत्रको चौपट कर दिया है।" सेवकोंकी यह बात सुन राजाने क्रुद्ध हो अपनी तलवार उठायी, किन्तु ज्योंही वह शुकको मारने चला, त्योंही शुकीने बीचमें कूदकर कहा—"हे राजन्! यदि क्षेत्र नष्ट करनेके लिये आप दण्ड ही देना चाहते हैं, तो मुझे दीजिये, क्योंकि यह अपराध वास्तवमें मैंने ही किया है। शुक निर्दोष है, अतएव इसे छोड़ दीजिये। इसने तो मेरे आदेशानुसार बालियां ला लाकर मेरा दोहद पूर्ण किया है और मेरा प्राण बचाया है।"

शुकीकी यह बात सुनकर राजाको हँसी आ गयी। उसने शुककी ओर देखकर कहा,—"हे शुक! प्रियाके कहनेसे अपने जीवनको इस तरह खतरेमें डालते समय तेरा लोक प्रसिद्ध पाण्डित्य कहां चला गया था?" इसी समय राजाके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए शुकीने कहा,—"हे राजन्! पिता-माता और धना-दिक त्यागना तो एक साधारण बात है, किन्तु पुरुष अपनी स्त्रीके लिये प्राण भी न्योछावर कर सकता है। यदि आप इसे माननेसे

इन्कार करेंगे, तो मैं आपहीसे पूछूँगी, कि रानी श्रीदेवीके पीछे आपने अपने जीवनका क्यों त्याग किया था ? यदि आपके जीवन त्यागकी बात सत्य है तो फिर इस शुकका क्या अपराध !" यह सुनकर राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह चिन्तामें पड़ गया कि इस शुकीको मेरा यह वृत्तान्त कैसे मालूम हुआ ! अन्तमें उसने कहा,—"हे भद्रे ! मुझे बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है कि तुझे यह बात कैसे मालूम हुई ! इस सम्बन्धमें तुझे जो कुछ मालूम हो, वह कह सुना।" शुकीने कहा,—"हे राजन् ! एक समय आपके राज्यमें एक परिव्राजिका (जोगिन) रहती थी। वह महा कपटी, टोने-टटकेमें निपुण और मन्त्र-तन्त्रमें भी बहुत प्रवीण थी। एक दिन आपकी श्रीदेवी नामक रानीने उसे बुलाकर कहा,—"हे माता ! मैं राजाकी रानी हूँ। राजाके और भी अनेक रानियां हैं किन्तु कर्मवशात् मैं दुर्भगा हूँ। राजा मेरे घर नहीं आते इसलिये हे भगवती ! मुझपर प्रसन्न होकर ऐसा कीजिये कि मैं पतिकी प्यारी बन सकूं। साथ ही यह भी होना चाहिये कि जबतक मैं जीवित रहूँ, तबतक मेरे पति भी जीवित रहें और यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो मेरे पति भी अपना प्राण त्याग दें।"

यह सुन परिव्राजिकाने कहा—"राजाकी स्त्री होना बहुतही बुरा है। एक तो सैकड़ों सपत्नियों (सौतों) के बीचमें रहना, दूसरे पुत्रोत्पत्ति न होनेके कारण बंध्या कहलाना, साथही घरके अन्दर भी स्वेच्छा पूर्वक विचरण करनेकी स्वतंत्रता न रहना। वास्तवमें यह बड़े ही कष्टकी बातें हैं। शास्त्रका कथन है

कि दुर्भाग्य पूर्वक दान देनेसे राजपत्नी होना पड़ता है। अस्तु! अब तू यह औषधि ले। और इसे किसी तरह राजाको खिला देना। ऐसा करनेसे वह तेरे वशीभूत हो जायगा।" रानीने कहा,—"माता! आपका कहना सत्य है, किन्तु राजा तो मेरे यहां पैर भी नहीं रखते। ऐसी अवस्थामें मुझे उनके दर्शन भी कैसे हो सकते हैं और मैं उन्हें औषधि भी किस प्रकार खिला सकती हूँ!" जोगिनने कहा,—"यदि ऐसी अवस्था है, तो मैं तुझे एक मंत्र सिखाती हूँ। उसकी एकाग्रचित्तसे साधना करना, ऐसा करनेपर तेरा दुर्भाग्य दूर होगा और पति भी वशीभूत होगा।"

रानीने यह करना स्वीकार किया अतएव परिव्राजिकाने शुभ मुहूर्तमें उसे एक मन्त्र दिया। इसके बाद वह प्रति दिन प्रेमपूर्वक उस मन्त्रका जप करने लगी। जप करते हुए अभी तीन दिन भी न हुए थे कि राजाने एक सेवकको भेज कर रानीको अपने महलमें बुला भेजा। उसी समय रानी स्नान, विलेपन और श्रृंगारादि कर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो दासियोंके साथ हस्तिनीपर बैठ कर राज-महलमें गयी। उसे आते देख राजाने सम्मानपूर्वक बुलाकर उसे अपने पास बैठाया और उसके साथ प्रेमालाप कर उसे अपनी पटरानी बनाया। अब रानी इच्छित सुख भोग करने लगी। किसीपर संतुष्ट होती, तो उसे मनचाहा फल देती और किसीपर रुष्ट होती तो उसका सर्वनाश कर डालती।

एक दिन वह जोगिन फिर रानीके पास आयी। उसने रानी-से पूछा,—"हे वत्से! तेरे मनोरथ सिद्ध हुए? रानीने कहा,—

"माता! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपकी कृपासे राजाने मुझे पटरानी बनाया है। उनका अब मुझपर प्रेम भी पूरा है, किन्तु फिर भी मैं चाहती हूं कि राजाका मुझपर ऐसा प्रगाढ़ प्रेम हो कि जबतक मैं जीवित रहूं तभी तक राजा भी जियें और ज्योंही मेरी मृत्यु हो त्योंही वह भी प्राण त्याग दें।" जोगिनने कहा,—"हे वत्से! राजाका तेरे ऊपर अब ऐसा ही प्रेम है।" रानीने कहा,—"सम्भव है कि यह ठीक हो, किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता।" जोगिनने कहा,—"हे वत्से! यदि तुझे विश्वास न हो, तो तू परीक्षा करके देख ले। इसके लिये मैं तुझे एक मूलिका देती हूं। उसे सुंघनेसे तू जीवित होनेपर भी मरेके समान प्रतीत होगी। इसके बाद क्या होता है सो देखना। जब मैं देखूंगी कि अब राजाकी परीक्षा हो चुकी तब मैं दूसरी मूलिकाको सुंघा कर तुझे सजीवन करूंगी।" रानीने कहा,—"अच्छा माता, ऐसा ही कीजिये।" इसके बाद योगिन रानीको एक मूलिका देकर चली गयी। ज्योंही रानीने उसको सुंघा, त्योंही वह मृतवत् मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उसकी यह अवस्था देखकर राजाको बड़ा ही दुःख हुआ। नगरमें भी जब यह समाचार फैला तो चारों ओर हाहाकार मच गया। राजाने तुरत अनेक वैद्य और मान्त्रिकोंको बुलाकर इकट्ठा किया, किन्तु वे सब कुछ भी न कर सके। उन्होंने रानीको मृतक समझ कर उसका अग्निसंस्कार करनेकी सलाह दे दी। उनके चले जानेपर रानीके अग्निसंस्कारकी तैयारी होने लगी। यह देख राजाने कहा,—"रानीके साथ मैं भी जल

मरूंगा, क्योंकि उसके बिना मेरा जीना कठिन हो पड़ेगा। राजाकी यह बात सुन मन्त्रियोंने शोकाकुल हो कहा,—"हे राजन्! आप पर तो सारी प्रजाका आधार है। आपका इस प्रकार प्राण-त्याग करना ठीक नहीं।" यह सुन राजाने गद्गद् कंठसे कहा,—"प्रेमीकी इसके अतिरिक्त और गति हो ही नहीं सकती। इसलिये अब विलम्ब करनेकी आवश्यकता नहीं है। एक पल भी मुझे एक वर्षके समान प्रतीत हो रहा है। जाओ, शीघ्रही चन्दन-काष्ठकी चिता तैयार करो।" यह कह राजा रानीके शवके साथ महलसे बाहर निकल आया और रुदन करता हुआ श्मशान गया। वहां उसने गरीबोंको खूब धन दान किया। इसके बाद ज्यों हीं वह रानीके साथ चिता प्रवेश करने चला, त्यों ही उस परिव्राजिकाने आकर कहा,—"हे राजन्! ठहरिये, इस प्रकार प्राण देना ठीक नहीं।" राजाने कहा,—"हे देवि! रानीके बिना मैं किसी तरह जी नहीं सकता।" परिव्राजिकाने कहा,—"यदि ऐसा ही है, तो जरा ठहरिये। मैं आपकी प्रियतमाको अभी सब लोगोंके समक्ष सजीवन किये देती हूं।" राजाने आनन्दित हो कहा,—हे" भगवती! आप प्रसन्न हो! आपका कथन सत्य हो। यदि आप रानीको जिला देंगी, तो मैं समझूंगा, कि आपने। मुझे भी जीवनदान दिया।" उसी समय जोगिनने रानीको दूसरी (संजीवनी) औषधि सुंघायी। सुंघाते ही रानीके शरीरमें चेतना शक्तिका सञ्चार हुआ और वह इस प्रकार उठ बैठी मानों निद्रासे उठ रही हो। रानीको इस तरह पुनः जीवित देखकर राजा

और पुरजनोंको बड़ा ही आनन्द हुआ और वे नाना प्रकारसे आनन्द मनाने लगे। राजने दिव्य वस्त्राभूषण धारण कर योगिन के चरणोंकी पूजा की। इसके बाद उसने जोगिनसे कहा—"हे भगवती! हे आर्ये! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूं? आप जो आज्ञा दें, वही मैं करनेको तैयार हूं।" जोगिनने कहा,—"हे राजन्! मुझे किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। आपके नगरमें मुझे जो भिक्षा मिल जाती है, वही मेरे लिये यथेष्ट है, क्योंकि जिस प्रकार पवनका भक्षण करनेपर भी सर्प दुर्बल नहीं होते और शुष्क तृण खानेपर भी वनहस्ती बलवान बने रहते हैं, उसी तरह भिक्षा भोजन ही मुनियोंके लिये उत्तम है।"

इसके बाद राजा और रानी हाथी पर सवार हो श्मशानसे अपने महल लौट आये। अनन्तर राजाने जोगिनके लिये नगरमें एक सुन्दर मढ़ी बनवा दिया। बहुत दिनोंतक वह वहीं काल-यापन करती रही। अन्तमें, आयुक्षीण होनेपर जब उसकी मृत्यु हुई, तब वह आर्तध्यानके योगसे शुकी हुई। वह शुकी मैं ही हू और आपके सम्मुख उपस्थित हूं। इस समय आपकी रानीको देखकर मुझे जातिस्मरणज्ञान हो आया है। इसीसे यह सब बातें मैं आपको बतला सकी हूं।

शुकीकी यह बातें सुन कर रानीको पिछली बातं याद आ गयीं। उसने दुःखित हो पूछा,—"हे माता! आपको इस प्रकार शुकी क्यों होना पड़ा?" शुकीने कहा—"हे भद्रे! इसमें खेद करने योग्य कोई बात नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार

प्राणियोंको सुख और दुःखकी प्राप्ति हुआ ही करती है।" इसके बाद शुकीने राजाको सम्बोधित कर कहा,—"हे राजन्! मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि विषय-वासनाके कारण पुरुष स्त्रियोंके दास होकर रहते हैं। शुकने भी इसी कारणसे आपका खेत नष्ट किया है और इसीसे मैं भी अपना अपराध स्वीकार करती हूं।"

शुकीकी यह बातें सुनकर राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने कहा—"हे शुकी! तेरा कहना यथार्थ है। तेरी बातें सुनकर मुझे बड़ा ही आनन्द और सन्तोष हुआ है। इस समय तेरी जो इच्छा हो, वह तू मांग सकती है। यह सुन शुकीने कहा—"राजन्! यदि आप वास्तवमें प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं तो मेरे प्रियतम का अपराध क्षमा कर, इन्हें जीवित-दान दीजिये। यही मेरी याचना और यही मेरी अभिलाषा है।" शुकीकी यह प्रार्थना सुन रानीने राजासे कहा,—"हे राजन्! इसे भरतार और भोजन दोनों चीजें देनी चाहिये।" यह सुन राजाने तुरत शुकको छोड़ दिया और शालि-रक्षकोंको आज्ञा दी, कि इन दोनोंको खेतमें खाने-पीने दिया करो। राजाकी यह आज्ञा सुन शुक और शुकीको परमानन्द हुआ और वे दोनों मन-ही-मन राजाका कल्याण-कामना करते हुए अपने निवासस्थानको उड़ गये।

कुछ दिनोंके बाद शुकीने अपने घोंसलेमें दो अण्डे दिये। उसी समय एक दूसरी शुकीने भी, जो उसकी सौत थी, एक अण्डा दिया। एक दिन दूसरी शुकी चुगनेके लिये बाहर गयी थी। इसी समय पहली शुकीने ईर्ष्याके कारण उसका अण्डा घोंसलेसे

उठा कर कहीं अन्यत्र रख दिया। जब शुकी लौट कर आयी, तो उसे अपना अण्डा दिखायी न दिया। इससे वह भूमिपर लोटने और विलाप करने लगी। यह देखकर :पहली शुकीको पश्चाताप हुआ और उसने उसका अण्डा फिर वहीं रख दिया। दूसरी शुकी जब रो-धोकर अपने घोंसलेमें वापस आयी, तब वहां अण्डेको देखकर उसे असीम आनन्द हुआ। पहली शुकीके गले इस घटनाके कारण दारुण कर्म बंधा। यद्यपि पश्चाताप करनेसे उसका बहुतसा अंश क्षय हो गया फिर भी एक जन्म तक भोग करनेको बाकी रह ही गया।

यथा समय शुकोके दो अण्डोंसे एक शुकी और एक शुकका जन्म हुआ। वे दोनों वनमें क्रीड़ा करने लगे। शुक और शुकी दोनों अपनी चंचुओंमें शालिक्षेत्रसे चावल लाते और अपने इन बच्चोंको चुगाकर आनन्द मनाते।

एक बार चारण श्रमण मुनि आदिनाथ भगवानके प्रासादमें आ कर, प्रभुको नमस्कार कर इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे तीन भुवनोंके अधीश! हे संसार तारक! आपकी जय हो। हे अनन्त सुखके निधान! हे ज्ञानके महासागर! आपकी जय हो। इस प्रकार स्तुति और वन्दना कर मुनिने शुद्ध भूमिपर प्रमार्जन कर स्थान ग्रहण किया। इसी समय राजा भी वहां आ पहुंचा और उसने जिनेश्वरकी पूजा और वन्दना की। तदनन्तर मुनिको वन्दन कर राजाने पूछा,—"हे भगवन्! जिन पूजाका फल क्या है?" मुनिने कहा—"राजन्! जिनेश्वरके सन्मुख अखण्ड अक्ष-

तकी तीन ढेरियां लगानेसे अक्षत सुखकी प्राप्ति होती है।" मुनिका यह वचन सुन अनेक मनुष्य अक्षत पूजा करने लगे।

अक्षतपूजाका यह फल सुनकर शुकीने शुकसे कहा,—"हमलोग भी अक्षतसे जिनेश्वरकी पूजा क्यों न करें, ताकि अल्पकालमें ही सिद्धि सुख प्राप्त हो।" शुकने इसमें कोई आपत्ति न की, फलतः वे दोनों जिनेश्वरके सम्मुख प्रतिदिन अक्षतकी तीन ढेरियां लगाने लगे। उन्होंने अपने बच्चोंको भी यही करनेका आदेश दिया। इस प्रकार वे चारों पक्षी प्रतिदिन जिनेश्वरकी शुद्ध भावसे अक्षतपूजा करने लगे। आयुपूर्ण होनेपर इस पूजाके प्रभावसे चारों पक्षियोंको देवलोककी प्राप्ति हुई।

देवलोकमें स्वर्गसुख उपभोग करनेके बाद शुकका जीव वहांसे च्युत होकर हेमपुर नामक नगरमें राजाके रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम हेमप्रभ पड़ा। शुकी इसी राजाकी जयसुन्दरी नामक रानी हुई। दूसरी शुकी भी संसारमें भ्रमण कर हेमप्रभ राजाकी रतिसुन्दरी नामक रानी हुई। उस राजाके दूसरी भी पांच सौ रानियां थीं, किन्तु पूर्व संस्कारके कारण वह इन दोनो रानियोंपर विशेष प्रेम रखता था।

एक बार हेमप्रभ राजाको दाहज्वर हो आया। चन्दनका लेप करनेपर भी वह व्याकुल हो जमीनपर लोटने लगा। क्रमशः उसे अंग-भंग, भ्रम, स्फोटक, शोथ, शिरोव्यथा, दाह और ज्वर—यह सात विषम रोग हो गये। राजाकी चिकित्साके लिये आयुर्वेद विशारद अनेक वैद्य उपस्थित हुए, उन्होंने राजाकी

शरीर चेष्टाका निरिक्षण किया। नाड़ी देखी, मूत्र परीक्षा की और रोगका निदान कर अनेक उपचार किये, किन्तु कोई लाभ न हुआ। मन्त्रवादियोंने आकर अनेक मन्त्र तन्त्रादि किये, किन्तु उनसे भी कोई लाभ न हुआ। भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी पूजा की गयी और उनके निमित्त दान भी दिये गये, किन्तु राजाको शान्ति न मिली। अन्तमें अनेक स्थानोंमें देवपूजा तथा यक्ष और राक्षसोंकी मानता आदि की गयी।

अन्तिम उपाय करनेपर एक दिन रात्रिके समय एक राक्षसने प्रकट होकर कहा,—"हे राजन्! यदि आपकी कोई रानी अपने आपको आप पर उतारकर आगमें जल मरे तो आपके प्राण बच सकते हैं, अन्यथा नहीं।" यह कह वह राक्षस तो चला गया, किन्तु राजाको इस बातकी सत्यतापर सन्देह हो जानेके कारण उसने सारी रात संकल्प विकल्पमें बिता दी। सुबह सूर्योदय होने पर राजाने यह हाल अपने मन्त्रीको कह सुनाया। मन्त्रीने कहा—"राजन्! जीवन-रक्षाके लिये यह भी किया जा सकता है।" राजाने कहा,—"यह ठीक है, किन्तु उत्तम पुरुष पर-प्राणसे अपने प्राणकी रक्षा नहीं करते। जो होना हो वह हो, मैं इस उपायसे काम लेना नहीं चाहता।"

राजाकी इस प्रकार अनिच्छा होनेपर भी मन्त्रीने समस्त रानियोंको इकट्ठा कर उन्हें राक्षसकी बात कह सुनायी। सुनतेही मृत्युभयसे सब रानियां अपना सिर नीचा कर, निरुत्तर हो गयीं। किन्तु रतिसुन्दरीने विकसित वदन और प्रफुल्लित चित्तसे कहा,—

"यदि मेरे जीवनसे राजाकी जीवन-रक्षा होती हो, तो मैं अपना जीवन देनेके लिये तैयार हूँ।" रतिसुन्दरीकी यह बात सुन मन्त्रीको बड़ा ही आनन्द हुआ और उसने उसके पतिप्रेमकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके बाद महलके झरोखेके नीचे एक बड़ासा कुण्ड तैयार कराकर, मन्त्रीने उसमें चन्दनके काष्ट भरवाये। इधर रानीने भी चितारूढ़ होनेकी तैयारी की। वह स्नान-विलेपन कर, सुन्दर वस्त्र पहन, राजाके पास गयी और उन्हें नमस्कार कर कहने लगी,—"हे नाथ! ईश्वर आपको दीर्घजीवी करे। मैं अग्नि कुण्डमें प्रवेश करने जा रही हूं।" राजाने उद्विग्न हो कहा,—"नहीं, प्रिये! मेरे लिये इस प्रकार तेरा प्राण त्याग करना ठीक नहीं। पूर्वकृत कर्म मुझे ही भोग करना चाहिये।" रानीने राजाके पैर पकड़कर कहा,—"हे स्वामिन्! ऐसा न कहिये। आपके निमित्त प्राण त्याग करनेमें मैं अपने जीवनकी सार्थकता समझती हूँ।" यह कहकर रानी बलात् अपनेको राजाके ऊपरसे उतार कर झरोखेकी राह धाँय-धाँय जलते हुए अग्निकुण्डमें कूद पड़ी। उसके कूदते ही राक्षसने सन्तुष्ट होकर कहा,—"हे वत्से! तेरा यह सत्व देखकर मुझे परम सन्तोष हुआ है। तुझे जो इच्छा हो वह वरदान मांग ले, मैं देनेको तैयार हूं।" रानीने कहा—यदि आप वास्तवमें प्रसन्न हैं तो मेरे स्वामीको समस्त रोगोंसे मुक्त कीजिये!" यह सुन राक्षसने कहा,—"तथास्तु।" इसके बाद उसने रानीको अग्निकुण्डसे निकालकर स्वर्ण-सिंहासनपर बैठाया और राजाका अमृतसे अभिषेक किया।

राजाको जीवितदान देनेके कारण सब लोग रतिसुन्दरीकी जय पुकार-पुकार कर उसकी स्तुति करने लगे। रानीने अक्षत और पुष्पसे राजाकी पूजा की। राजाको रतिसुन्दरीका यह आत्म त्याग और यह प्रेमभाव देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा,—"हे प्रिये! मैं तुझपर बहुत ही प्रसन्न हूं। तुझे जो अभिष्ट हो, वह वर तू मांग सकती है। रानीने कहा,— "प्राणनाथ! आप ही मेरे अभिष्ट वर हैं। मुझे और किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है।" राजाने कहा,—"भद्रे! तूने अपना प्राण देकर मेरा प्राण बचाया है। यह कोई जैसा तैसा उपकार नहीं है। कम-से-कम मेरे सन्तोषके लिये भी, तुझे कुछ न कुछ मांगना ही होगा।" यह सुन रानीने हंसकर कहा,—"यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मेरा यह वरदान अपने पास जमा रहने दीजिये। मुझे जब आवश्यकता होगी तब मैं मांग लूंगी।" रानीकी इस बातसे राजाको सन्तोष और परम प्रसन्नता लाभ हुई।

रतिसुन्दरीके अबतक एक भी पुत्र न हुआ था। उसने एक दिन कुल देवीसे प्रार्थना की, कि—"हे माता! यदि आपकी कृपासे मुझे पुत्रकी प्राप्ति होगी, तो मैं आपको जयसुन्दरीके पुत्रकी बलि दूंगी।" भाग्यवश दोनों रानियोंको कुछ समयके बाद एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ। रतिसुन्दरीको अब चिन्ता हो पड़ी, कि देवीको जयसुन्दरीके पुत्रकी बलि किस प्रकार दी जाय? सोचते-सोचते उसे एक उपाय सुझायी दिया। उसने स्थिर किया कि राजाके पास जो वर जमा है, वह इस समय

मांगना चाहिये। वरदानमें कुछ दिनोंके लिये राजासे राज्य मांग कर समस्त अधिकार अपने हाथमें कर लेना चाहिये। ऐसा करने पर आसानीसे निर्दिष्ट कार्य सिद्ध हो सकता है। यह सोचकर वह राजाके पास गयी और उसे उस वरकी याद दिलाकर कहा,—"नाथ! अब मुझे उस वरकी आवश्यकता पड़ी है। आप उसके उपलक्षमें मुझे पांच दिनके लिये राज्य देकर अपना वचन पूर्ण कीजिये।" राजाके लिये यह कार्य ज़रा भी कठिन न था। अतः उसने उसी समय रानीको उसके कथनानुसार समस्त अधिकार पांच दिनके लिये सौंप दिये।

रानीने राज्यको अपने अधिकारमें लेकर महोत्सव मनाया। इसके बाद उसने जयसुन्दरीके पुत्रको बलात् छीन मँगवाया। और उसे स्नान अर्चन करा, चन्दन, पुष्प और अक्षतादि चढ़ा, एक सूपमें सुलाकर दासीके शिरपर रखवाया। इसके बाद बाजों और स्त्रियोंके गीत-गान सहित रतिसुन्दरी उसे बलि देनेके लिये उद्यानमें देवीके मन्दिर जानेको निकली।

इसी समय काञ्चनपुरका राजा जिसका नाम सूर था और जो एक विद्याधर था, वह आकाशमार्ग द्वारा उधरसे आ निकला। दासीके सिरपर सूर्य समान तेजस्वी बालकको देखकर उसने उसे उठा लिया और उसके स्थानमें दूसरा मृतक बालक रख दिया। विद्याधरके साथ उसकी पत्नी भी थी, जो इस समय विमानमें सो रही थी। विद्याधरने उस बालकको उसकी बगलमें सुलाकर अपनी पत्नीसे कहा,—"हे प्रिये! सत्वर उठ! देख तुझे

पुत्र हुआ है। पतिकी यह बात सुन पत्नीने कहा,—"नाथ! एक तो दुर्दैवकी मण्डपाके कारण मुझे पुत्र नहीं होता और उसीसे मेरा जो दुःखी रहता है, तिसपर आप इस प्रकार हंसी कर रहे हैं।" विद्याधरने हँसकर कहा,—"प्रिये! मैं हंसी नहीं करता। यह देख वास्तवमें रत्नके समान बालक तेरी बगलमें सो रहा है। यही अब हमारा पुत्र है।" रानीने अब उठ कर पुत्रको देखा। देखते ही उसे इतना आनन्द हुआ, मानो तीनों लोकका राज्य मिल गया हो। उसने उस पुत्रको गलेसे लगा लिया। दोनों बड़े प्रेमसे उसे साथ लेकर अपने नगरमें आये और पुत्रवत् उसका लालन-पालन करने लगे।

इधर रतिसुन्दरीने देवीके मन्दिरमें पहुँच कर, प्रसन्नता पूर्वक उस बालकको उठाया और उसे देवीके सिरपर उतार कर उनके सामने पटक दिया। इस तरह अपना मनोरथ पूर्ण कर रतिसुन्दरी अपने महलको लौट आयी। इधर जयसुन्दरी पुत्रके वियोगसे दुःखपूर्वक काल निर्गमन करने लगी।

उधर काञ्चनपुरके विद्याधरने उस बालकका नाम मदनांकुर रखा। यथा समय विविध विद्या और कलाओंका सम्पादन कर उस बालकने यौवन प्राप्त किया। एक दिनकी बात है, वह आकाशगामिनी विद्या द्वारा आकाशमार्गसे कहीं जा रहा था। उस समय उसकी माता जयसुन्दरी महलके झरोखेमें बैठी हुई थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही मदनांकुरके हृदयमें कुछ स्नेह भाव उत्पन्न हुआ, फलतः उसने उसे उठाकर अपने विमानमें बैठा लिया।

रानीके मनमें भी वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ और वह भी मदनांकुरको बारंबार स्नेह दृष्टिसे देखने लगी। वास्तवमें उन दोनोंके हृदयमें माता और पुत्रका प्रेमभाव ज़ोर मार रहा था, किन्तु वे दोनों उसे समझनेमें असमर्थ थे। इधर नगरमें चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग आकाशकी ओर हाथ उठा उठा कर कहने लगे, कि रानीको कोई विद्याधर उठाये लिये जाता है। राजाने जब यह समाचार सुना तब उसे भी असीम दुःख हुआ, किन्तु कोई बस न देख कर चुपचाप बैठ रहा। इस प्रकार पुत्रकी मृत्यु और रानीके अपहरणसे उसका चित्त सदैव दुःखी रहने लगा।

पूर्व जन्मकी शुकी, जिसने इस समय देवत्व प्राप्त किया था, उसे अवधिज्ञानसे इस अनुचित कार्यका ज्ञान हुआ। अतः वह अपने मनमें कहने लगी—"अहो! मेरा भाई अपनी माताको स्त्री बुद्धिसे हरण किये जा रहा है यह बहुत ही बुरा हो रहा है।" यह सोच कर उस देवने वानर और वानरीका रूप धारण किया और एक सरोवरके निकट, जहां मदनांकुर जयसुन्दरीके साथ बैठा था, वहीं एक वृक्षपर वे दोनों भी आ बैठे। अवसर देखकर, मदनांकुर को सचेत करनेके लिये दोनों इस प्रकार बातचीत करने लगे।

वानर,—"हे प्रिये! यह तीर्थ बहुत ही उत्तम और अभीष्ट-दायक है, इस तीर्थके जलमें अवगाहन करनेसे तिर्यञ्च मनुष्य होते हैं और मनुष्य देवत्व प्राप्त करते हैं। देखो, यह दोनों मनुष्य कैसे सुन्दर हैं। हमलोगोंको भी मनमें यही इच्छा रख

भी उसीकी बातोंको पुष्टि मिलती है अतएव यही मेरी असली माता होनी चाहिये, किन्तु फिर भी एक बार केवली भगवानके पास जाकर पूछ आना चाहिये, ताकि किसी प्रकारका सन्देह न रहे।

यह सोच, कुमार अपनी दोनों माताओं और पिताको साथ लेकर हेमपुरमें केवली भगवानको वन्दन करने गया। वहां केवली भगवानको नमस्कार कर, वह सपरिवार मुनिका धर्मोपदेश सुनने लगा। दूसरी ओर हेमप्रभ राजा भी अपने नगर-जनोंके साथ वहां आ पहुंचा और भगवानका उपदेश सुनने लगा। धर्मोपदेश समाप्त होनेपर हेमप्रभने मौका देखकर केवलीसे पूछा—"स्वामिन्! मेरी पत्नीका हरण किसने किया है?" केवलीने कहा,—"राजन्! यह उसके पुत्रका ही काम है। उसीने उसका हरण किया है।" मुनिकी यह बात सुन राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने कहा,—"भगवन्! मेरी उस पत्नीके तो पुत्र ही न था। एक पुत्र हुआ था, किन्तु उसकी मृत्यु तो पहले ही हो गयी थी।" केवली भगवानने कहा,— "यह ठीक है, किन्तु मैंने जो बात कही है, उसमें सन्देहके लिये कोई स्थान नहीं है।" यह कह केवली भगवानने राजाको सब पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया और अन्तमें बतलाया कि इस उद्यानमें वह कुमार, आपकी रानी तथा कुमारके पालक माता पिता भी उपस्थित हैं।

केवली भगवानकी बातोंसे राजा, रानी और कुमारका सारा सन्देह दूर हो गया। राजा खड़ा होकर इधर उधर कुमारको

खोज करने लगा, किन्तु उसे विशेष परिश्रम न करना पड़ा। राजकुमारका सन्देह दूर होतेही वह वहां दौड़ आया और पिताके चरणोंमें लिपट गया। उसी समय राजाने उसे दोनों हाथसे उठाकर छातीसे लगा लिया। उस समय जयसुन्दरी, रतिसुन्दरी राजा और दोनों कुमार सभी वहां उपस्थित थे। सभी एक दूसरेको मिल कर परम आनन्दित हुए। जयसुन्दरीने मुनिको नमस्कार पूछा,—"हे भगवन्! किस कर्मके कारण मुझे सोलह वर्ष पर्यन्त पुत्रका यह वियोग सहन करना पड़ा?" भगवानने कहा,—"शुकीके जन्ममें सोलह मुहूर्त पर्यन्त तूने अपनी सौत शुकीके अण्डेका अपहरण कर उसे जो वियोग दुःख दिया था, उसीका तुझे यह फल मिला है। जो इस जन्ममें किसीको थोड़ा भी सुख या दुःख देता है, उसे दूसरे जन्ममें उससे बहुत अधिक सुख या दुःख भोग करना ही पड़ता है।"

गुरुके यह वचन सुन कर रतिसुन्दरीने जयसुन्दरीसे क्षमा प्रार्थना कर अपना अपराध मक्षा कराया। इसके बाद राजाने पूछा,—"हे भगवन्! मैंने पूर्व जन्ममें कौनसा सुकृत किया था, जिससे मुझे यह राज्य मिला?" मुनिने कहा,—"तूने पूर्व जन्मम जिनबिम्बके सम्मुख अक्षतके तीन पुञ्ज किये थे। उसीका राज्य प्राप्ति रूपी पुण्य है और इसीके फल स्वरूप तीसरे जन्ममें तुझे मोक्ष प्राप्ति होगी।"

इसके बाद हेमप्रभ राजाने रतिसुन्दरीके पुत्रको राज्य देकर जयसुन्दरी और उसके पुत्रके साथ दीक्षा ग्रहण की। दुस्तप

कर इस तीर्थमें स्नान करना चाहिये, ताकि हमलोग भी ऐसे ही सुन्दर मनुष्य हों। यदि तू ऐसी ही सुन्दर स्त्री बन जाय, और मैं ऐसा ही सुन्दर पुरुष बन जाऊं, तो कितने आनन्दकी बात हो।"

वानरी,—"नाथ! यह पुरुष बड़ा ही पापी है। आप इसकासा रूप क्यों चाहते हैं? इसका तो नाम लेना और मुंह देखना भी महापाप है। देखो, यह अपनी माताको पत्नी बनानेके लिये हरण कर लाया है।"

वानर और वानरीकी यह बातें सुनकर दोनोंको बड़ाही आश्चर्य हुआ। कुमार मनमें कहने लगा,—"जिस स्त्रीको मैं हरण कर लाया हूँ, वह मेरी माता कैसे हुई—यह समझायी नहीं पड़ता; किन्तु फिर भी मैं देखता हू कि मेरे मनमें उसके प्रति मातृभाव उत्पन्न हो रहा है।" इसी तरह रानीने सोचा,—"यह युवक मेरा पुत्र कैसे हुआ सो समझ नहीं पड़ता, किन्तु इसे देखकर मेरे मनमें वात्सल्य भाव अवश्य उत्पन्न होता है।" दोनों इस प्रकार बड़े असमंजसमें पड़ गये। कुमारने आदरपूर्वक वानरीसे पूछा,—"हे भद्रे! तूने जो बात कही, वह क्या वास्तवमें सत्य है?" वानरीने कहा—"नि.सन्देह, मेरा कथन सत्य है। यदि कोई सन्देह हो, तो इस वनमें एक ज्ञानी मुनि हैं, उनसे पूछकर अपना सन्देह निवारण कर सकते हो। यह कह वे दोनों अन्तर्धान हो गये।

कुमार आश्चर्य करता हुआ वनमें मुनिके पास उसी समय पहुंचा और उनसे पूछा हे भगवन्! क्या वानरीकी बातें सच हैं? यह सुन मुनिने कहा,—"हे भद्र! उसकी बातें बिलकुल

सत्य है। उसमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है। इस समय मैं कर्म क्षय करनेके लिये ध्यान कर रहा हूँ, इसलिये अब अधिक बातें नहीं बतला सकता। आप हेमपुरमें केवली भगवानके पास जाइये। वे आपको सब बातें स्पष्टतापूर्वक बतलायेंगे। मुनिकी यह बात सुन कुमार उन्हें नमस्कार कर अपनी माताके साथ अपने घर गया। कुमारको देखकर उसके माता-पिताको बड़ा ही आनन्द हुआ, किन्तु कुमारकी सारी हँसी-खुशी हवा हो गयी थी। उसने एकान्तमें अपनी विद्याधरी माताके पैर पकड़ कर पूछा—"हे माता! सच बतलाइये कि मेरे वास्तविक माता-पिता कौन हैं?" विद्याधरीने कहा,—"वत्स! आज तू ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहा है? मैं ही तेरी वास्तविक माता और यही तेरे वास्तविक पिता हैं। हमीं दोनों जनने तुझे पालपोस कर बड़ा किया है।" कुमारने कहा,—"यह तो मैं भी जानता हूँ कि आप लोगोंने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है, किन्तु मैं अपने उन माता-पिताका पता पूछ रहा हूँ, जिन्होंने मुझे जन्म दिया है।" विद्याधरीने कहा,—"बेटा! उनके सम्बन्धमें मैं कुछ भी नहीं जानती। यदि तुझे कुछ जानना ही हो तो अपने पितासे पूछ सकता है।"

माताकी यह बात सुन कुमार अपने पिताके पास गया और उससे यह हाल पूछा। विद्याधरने उसे समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया, किन्तु माता-पिताका नाम मालूम न होनेके कारण वह उनके नाम न बतला सका। अब कुमारने मनमें कहा,—"वानरीने जो बात कही थीं, वे सत्य मालूम होती हैं। मुनिकी बातोंसे

भी उसीकी बातोंको पुष्टि मिलती है अतएव यही मेरी असली माता होनी चाहिये, किन्तु फिर भी एक बार केवली भगवानके पास जाकर पूछ आना चाहिये, ताकि किसी प्रकारका सन्देह न रहे।

यह सोच, कुमार अपनी दोनों माताओं और पिताको साथ लेकर हेमपुरमें केवली भगवानको वन्दन करने गया। वहां केवली भगवानको नमस्कार कर, वह सपरिवार मुनिका धर्मोपदेश सुनने लगा। दूसरी ओर हेमप्रभ राजा भी अपने नगरजनोंके साथ वहां आ पहुंचा और भगवानका उपदेश सुनने लगा। धर्मोपदेश समाप्त होनेपर हेमप्रभने मौका देखकर केवलीसे पूछा—"स्वामिन्! मेरी पत्नीका हरण किसने किया है?" केवलीने कहा,—"राजन्! यह उसके पुत्रका ही काम है। उसीने उसका हरण किया है।" मुनिकी यह बात सुन राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने कहा,—"भगवन्! मेरी उस पत्नीके तो पुत्र ही न था। एक पुत्र हुआ था, किन्तु उसकी मृत्यु तो पहले ही हो गयी थी।" केवली भगवानने कहा,—"यह ठीक है, किन्तु मैंने जो बात कही है, उसमें सन्देहके लिये कोई स्थान नहीं है।" यह कह केवली भगवानने राजाको सब पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया और अन्तमें बतलाया कि इस उद्यानमें वह कुमार, आपकी रानी तथा कुमारके पालक माता पिता भी उपस्थित हैं।

केवली भगवानकी बातोंसे राजा, रानी और कुमारका सारा सन्देह दूर हो गया। राजा खड़ा होकर इधर उधर कुमारकी

खोज करने लगा, किन्तु उसे विशेष परिश्रम न करना पड़ा। राजकुमारका सन्देह दूर होतेही वह वहां दौड़ आया और पिताके चरणोंमें लिपट गया। उसी समय राजाने उसे दोनों हाथसे उठाकर छातीसे लगा लिया। उस समय जयसुन्दरी, रतिसुन्दरी राजा और दोनों कुमार सभी वहां उपस्थित थे। सभी एक दूसरेको मिल कर परम आनन्दित हुए। जयसुन्दरीने मुनिको नमस्कार पूछा,—"हे भगवन्! किस कर्मके कारण मुझे सोलह वर्ष पर्यन्त पुत्रका यह वियोग सहन करना पड़ा?" भगवानने कहा,—"शुकीके जन्ममें सोलह मुहूर्त पर्यन्त तूने अपनी सौत शुकीके अण्डेका अपहरण कर उसे जो वियोग दुःख दिया था, उसीका तुझे यह फल मिला है। जो इस जन्ममें किसीको थोड़ा भी सुख या दुःख देता है, उसे दूसरे जन्ममें उससे बहुत अधिक सुख या दुःख भोग करना ही पड़ता है।"

गुरुके यह वचन सुन कर रतिसुन्दरीने जयसुन्दरीसे क्षमा प्रार्थना कर अपना अपराध मक्षा कराया। इसके बाद राजाने पूछा,—"हे भगवन्! मैंने पूर्व जन्ममें कौनसा सुकृत किया था, जिससे मुझे यह राज्य मिला?" मुनिने कहा,—"तूने पूर्व जन्मम जिनबिम्बके सम्मुख अक्षतके तीन पुञ्ज किये थे। उसीका राज्य प्राप्ति रूपी पुण्य है और इसीके फल स्वरूप तीसरे जन्ममें तुझे मोक्ष प्राप्ति होगी।"

इसके बाद हेमप्रभ राजाने रतिसुन्दरीके पुत्रको राज्य देकर जयसुन्दरी और उसके पुत्रके साथ दीक्षा ग्रहण की। दुस्तप

तप, प्रव्रज्याका पालन और अनशनके फल स्वरूप आयु पूर्ण होनेपर राजा सातवें महाशुक्र देवलोकमें देवाधिप (इन्द्र) हुआ। जयसुन्दरीका जीव महर्द्धिक देव हुआ और कुमारको भी वहीं देवत्वकी प्राप्ति हुई। वहांसे च्युत होनेपर तीनोंको मनुष्यत्व प्राप्त होगा और इसके बाद उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी।

इसी तरह भावपूजाके सम्बन्धमें भी वनराजकी कथा मनन करने योग्य है। वह इस प्रकार है :—

वनराजकी कथा।

इस भरतक्षेत्रमें देवनगरके समान क्षिति प्रतिष्ठित नामक एक नगर है। वहां अरिमर्दन नामक राजा राज्य करता था। इसी नगरमें एक निर्धन और महा दरिद्री कुल पुत्रक रहता था वह भिक्षाके लिये घर-घर भटकता था और वही उसकी जीविकाका एक मात्र साधन था। ऐसी अवस्था किसी भयंकर पापके ही कारण प्राप्त होती है। किसीने कहा भी है कि सब पदार्थोंसे तृण हलका होता है। उससे भी रूई अधिक हलकी होती है और उससे भी अधिक याचक हलका होता है, किन्तु जो याचनाका भंग करे, उसे तो सबसे जियादा हलका समझना चाहिये। इस सम्बन्धमें

एक मुसाफिर और एक स्त्रीके प्रश्नोत्तर भी ध्यान देने योग्य हैं।

मुसाफिरने एक स्त्रीसे कहा,—"हे सुभगे! मैं रास्तेका मुसाफिर हूं। मुझे कुछ भिक्षा दे दो।"

स्त्री,—"इस समय भिक्षा नहीं मिल सकती।"

मुसाफिर,—"याचकको इस प्रकार निराश करनेका क्या कारण है?"

स्त्री—,"हमारे यहां कुछ दिन हुए एक पुत्र उत्पन्न हुआ है।"

मुसाफिर,—"तब तो एक मासके बाद शुद्धि होगी?"

स्त्री,—"नहीं, यह पुत्र ऐसा है, कि उसको मृत्युके पहले कभी शुद्धि हो ही नहीं सकती।"

मुसाफिर,—"अहो! ऐसा कैसा विलक्षण पुत्र है?"

स्त्री,—"हमारे यहां यह चित्त और वित्तको हरण करनेवाला दारिद्रय रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ है।"

यह सुनकर मुसाफिरने अपना रास्ता लिया। यह दरिद्रय निःसन्देह दानके द्वेष रूपी वृक्षका फल कहा जा सकता है।

उपरोक्त भिक्षुक जिधर ही जाता था, उधर ही उसे भिक्षा न मिलने कारण निराश होना पड़ता था। वह अपने मनमें सोचने लगा कि,—"यह कितने खेदकी बात है कि कौवेतक अपना पेट भर लेते हैं, किन्तु मुझे कहीं भिक्षा नहीं मिलती। इससे मालूम होता है कि मैंने बहुत ही बुरे पाप किये हैं। ऐसे दुःखदायी जीवनसे तो मृत्यु ही अच्छा।" यह सोचता हुआ वह एक दिन दैवयोगसे नगरके बाहर एक उद्यानमें जा पहुंचा। वहां उसे परम

शान्त, धर्ममूर्ति और परमज्ञानी एक मुनि दिखायी दिये। उनकी तीन प्रदक्षिणा कर, उदासिन हो, वह उनके पास बैठ गया। उसे देख कर मुनिको बड़ी दया उपजी। अतः उन्होंने उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा,—"अहो! जीव समृद्ध होनेपर भी तीनों भुवनमें भ्रमण करते हैं, किन्तु धर्मके अभिज्ञानसे रहित होनेके कारण, ये कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। जिस प्रकार बीज बोये बिना अन्नकी प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार धर्मके बिना पुरुषों को इष्ट सम्पत्तिकी प्राप्ती नहीं होती। इसीलिये बाल्यावस्थामें, दुःखावस्थामें या निर्धनावस्थामें भी और कुछ नहीं, तो केवल श्रद्धापूर्वक देवदर्शन करने भरका धर्म अवश्य ही करते रहना चाहिये।"

मुनिकी यह बात सुन, उस भिक्षुकने हाथ जोड़कर कहा,—हे भगवन्! मैं अनाथ हूं, शरण रहित हूं, और बन्धु रहित हूं। हे स्वामिन्! इस जन्ममें मुझे किसीने भी अबतक मधुर वाणीसे नहीं बुलाया। सर्वत्र मेरी भर्त्सना ही होती है। अब मैं आपकी शरणमें आया हूं। भुझ डूबते हुए निराधारके लिये आप ही नौका स्वरूप हैं। कृपया मुझे बतलाइये कि देव किसे कहते हैं? उनके दर्शन किस प्रकार किये जाते हैं और दर्शन करनेसे क्या फल मिलता है?" मुनिने कहा,—"हे भद्र! सुन, पद्मासनपर विराजमान शान्तमूर्ति जिनेश्वरको देव कहते हैं। उनके मन्दिरमें जाकर जमीनपर सिर रख, दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करना चाहिये :—

"जित संमोह सर्वज्ञ, यथावस्थित देशक
त्रैलोक्यमहित स्वामिन्, वीतराग नमोस्तु ते।"

अर्थात्—"मोक्षपर विजय प्राप्त करनेवाले, सर्वज्ञ, यथार्थस्थित वस्तुओंके प्रकाशक, त्रिभुवन पूजित, वीतराग देव! आपको नमस्कार है।"

जिन मन्दिरमें जाकर भगवानको प्रतिमाके समक्ष इस प्रकार स्तुति करना एवं विनयपूर्वक वन्दन करना ही दर्शन कहलाता है। इसके फल स्वरूप मोक्ष तकको प्राप्ति हो सकती है। मुनि-राजको यह बात सुन भिक्षुकने कहा,—"भगवन्! अब मैं ऐसाही करूंगा।" इसके बाद भिक्षुक उस नगरके प्रधान चैत्यमें गया और वहां जिनेश्वरका दर्शन कर उसी तरह स्तुति करने लगा। वहांसे निकल कर वह दूसरे और दूसरेसे निकल कर तीसरे चैत्यमें गया और इसी प्रकार सभी मन्दिरोंमें दर्शन किये। अब यही उसका नित्य कर्म हो गया। इसके बाद भिक्षा वृत्तिमें जो कुछ मिल जाता, उसीमें सन्तोष मानता। बीच-बीचमें वह अपने मनमें सोचता कि—"इस प्रकार केवल स्तुति करनेसे मुझे कोई फल मिलेगा या नहीं? फिर कहता,—"मैं ऐसी बातें सोचता ही क्यों हूँ! मुनिराजने जब कहा है, तो दर्शन और नमस्कारसे अवश्य ही सर्वार्थसिद्धि को प्राप्ति होगी।"

इस प्रकार दिन प्रति दिन उसकी श्रद्धा दृढ़ होती गयी। अन्तमें उसके हृदयमें राज्य प्राप्तिकी इच्छा उत्पन्न हुई। वह अपने मनमें कहने लगा—"उत्तम कुलमें जन्म होनेसे ही क्या लाभ? यदि नीच कुलमें जन्म मिलने पर भी राज्य मिले, तो वह उत्तम कुलके जन्मकी अपेक्षा कहीं अच्छा है। इस प्रकार सोचते और

बारंबार वीतराग-स्तुतिका श्लोक बोलते हुए उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर वह इसी नगरके राजपुरोहितकी दासीके यहां पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ।

जिस समय इसका जन्म हुआ, उस समय पुरोहित राजसभामें बैठे हुए थे। उन्हें किसीने जाकर इसके जन्मकी सूचना दी। उस समय उन्होंने लग्न देखा तो लग्नके स्वामीसे युक्त, शुभ ग्रहसे अवलोकित, शुभग्रहके बलसे युक्त और तीन उच्च ग्रहोंसे युक्त लग्न देखकर वे चकित हो गये। उन्हें चकित होते देखकर राजाने पूछा,—"कैसा लग्न योग है?" पुरोहितने राजाको एकान्तमें ले जाकर कहा,—"स्वामिन्! इस समय मेरी दासीको जो पुत्र हुआ है, उसके लग्न योग देखनेसे मालूम होता है कि यही आपके राज्य का अधिकारी होगा।"

पुरोहितका यह बात सुन कर राजाके सिरपर मानो पहाड़ टूट पड़ा। उसने शंकाकुल हो उसी समय सभा विसर्जन कर दी और महलमें जाकर सोचने लगा कि,—"अहो! यह कैसी विचित्र बात है? मेरा पुत्र विद्यमान होनेपर भी क्या मेरे राज्यका अधिकारी यह दासी पुत्र होगा? किन्तु रोग उत्पन्न होते ही उसे निर्मूल करना चाहिये। आग लगनेपर कुंआ नहीं खोदा जा सकता।" यह सोचकर राजाने तत्काल चण्ड नामक एक सेवकको बुलाकर आज्ञा दी कि पुरोहितकी दासीने आज जिस पुत्रको जन्म दिया है, उसे चुपचाप नगरके बाहर ले जाकर मार डालो! आज्ञा मिलने भरकी देर थी। चण्ड तुरत इस कार्यके

लिये चल पड़ा। शामके वक्त अवसर मिलते ही वह उस बालकको उठा ले गया। नगरके बाहर एक जीर्ण और शुष्क बगीचा था, जिसमें एक आमका वृक्ष और कुआं भी था। वहींपर चण्डने उस बालकका वध करना स्थिर किया। किन्तु वध करनेके पहले ज्योंही उस बालकको उसने अच्छी तरह देखा, त्योंही चन्द्र सा निर्दोष मुख देख कर उसका चित्त विचलित हो उठा। उसके हाथ पैर ढीले पड़ गये। वह अपने मनमें कहने लगा,—"अहो! इस पराधीनताको धिक्कार है। यदि आज मैं पराधीनताके बन्धनसे बँधा न होता तो इस सुन्दर बालकका मुझे वध क्यों करना पड़ता? निःसन्देह यह बालक बड़ा ही भाग्यमान मालूम होता है। यदि ऐसा न होता, तो इसके यहां आते ही यह ऊजड़ उद्यान हरा भरा क्यों हो जाता? राजाने यद्यपि बड़ी कठोर आज्ञा दी है, तथापि, जो होना हो, वह हो—मैं अब इस देवतुल्य बालकका वध न करूंगा।" इस प्रकार चण्डका कठोर हृदय भी उस बालकको देखकर पसीज गया। किन्तु अब उसे चिन्ता हो पड़ी कि अब इस बालकका क्या किया जाय और इसे किसके संरक्षणमें रखा जाय? अन्तमें कोई उपाय न सूझनेपर, उसने उसे वनदेवताओंको सौंपकर वहीं छोड़ दिया। इसके बाद वह बारंबार उस बालककी ओर देखता हुआ नगरको लौट आया। राजाके पूछने पर उसने कह दिया, कि मैंने नगरके बाहर एक शून्य उद्यान में उसे मार डाला है। यह जानकर राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ और वह अब निश्चिन्त हो पूर्ववत् राज-काज करने लगा।

सूर्योदय होते ही उस उद्यानका माली उद्यानमें पहुंचा। सूखे वृक्षोंको आज फल फूलोंसे लदे देख कर उसके आश्चर्यका वारापार न रहा। कुंएके पास गया तो उसमें भी आज निर्मल जल लहराता हुआ दिखायी दिया। जरा आगे बढ़ते ही उस आम वृक्षके नीचे यह सुन्दर बालक पड़ा हुआ दिखायी दिया। उसे देखकर वह कहने लगा,—"मालूम होता है कि इस तेजस्वी बालकके प्रतापसे ही यह सूखा हुआ उपवन नवपल्लवित हो उठा है और मुझे निःसन्तान जानकर वन देवताओंने मेरे लिये ही इस बालकको यहां भेज दिया है। अतएव अब इसे घर ले जाकर पुत्रवत् इसका लालन-पालन करना चाहिये।"

यह सोचकर वह उसे अपने घर उठा लाया और अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि,—"हे प्रिये! वन देवताओंने सन्तुष्ट हो कर हम लोगोंको यह पुत्र दिया है। इसे ले और पुत्रवत् इसका पालन कर!" यह कह कर उसने उस बालकको उसे सौंप दिया। साथ ही चारों ओर यह बात फैला दी, कि मालिनको गर्भ था इसलिये आज उसने पुत्रको जन्म दिया है। अब उसने मंगलाचार कर बड़ी धूमके साथ बालकका जन्मोत्सव मनाया और अपने जाति बन्धु तथा स्वजन स्नेहियोंका भोजनादिसे यथोचित सत्कार कर उस बालकका नाम वनराज रखा। इसके बाद वनराज मालीके यत्नसे शुक्ल पक्षके चन्द्रको भांति बढ़ने लगा। क्रमशः बाल क्रीड़ा करते हुए उसकी अवस्था पांच वर्षकी हो गयी।

एक बार वसन्त ऋतुमें मालिन पुष्पाभरण लेकर राज-सभामें

राजाके पास गयी। कौतुकवश वह बालक भी उसके साथ चला गया। उसे देखते ही राजपुरोहितने पूर्ववत् सिर धुनाया। यह देख राजाने सम्भ्रान्त हो पूछा,—"क्यों पुरोहितजी! आप सिर क्यों धुना रहे हैं?" पुरोहितने कहा,—"राजन्! मालिनके साथ यह जो बालक आया है, वह आपके राज्यका अधिकारी होगा।" राजाने पूछा,—"इसका क्या प्रमाण?" यह सुन मन्त्रीने कहा,—सुनिये, मैं आपको सामुद्रिक शास्त्रके लक्षण सुनाता हूं :—

उन्नत, लाल और स्निग्ध नख होनेपर सुखदायी होते हैं। सूप जैसे, रुक्ष, भग्न, वक्र और श्वेत नख दुःखदायी होते हैं। पैरमें ध्वज, वज्र और अंकुश की सी रेखायें होनेपर राज्य-लाभ होता है। उंगलियां समान, लम्बी, मिली हुई और समुन्नत होने पर भी राज्य प्राप्ति होती है। विस्तृत अंगुष्ठ होनेसे दुःख मिलता है और सदा सफर करना पड़ता है।

हंस, मृग, वृषभ, क्रौंच और सारसकी सी चाल अच्छी होती है, तथा गधा, ऊंट, महिष और श्वानकीसी चाल अशुभ मानी गयी है। काग जैसी जंघाओंसे दुःख होता है। लम्बी जंघाओंसे जियादा सफर करनी पड़ती है। अश्वकीसी जंघाओंसे बन्धन होता है और मृगकीसी जंघाओंसे राज्यकी प्राप्ति होती है। हरिण और बाघके समान जिसका पेट हो, वह भोगी होता है। श्वान और शृगालके समान जिसका पेट हो वह अधम होता है और मेंढकके समान पेट हो तो वह पुरुष राजा होता है।

जिसकी लम्बी भुजायें हो वह कई मनुष्योंका स्वामी होता

है और छोटी भुजायें हो तो वह नौकर होता है। स्वच्छ और रक्त नख, लम्बी उंगलियां और लाल हाथ हो तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जिसके हाथमें शक्ति, तोमर, दण्ड, तलवार, धनुष, चक्र, और गदाके समान रेखायें हो, वह राजा होता है। जिसकी हथेली या पदतलमें ध्वज, वज्र, अंकुश, छत्र, शंख और पद्म आदि की रेखायें हो वह पुरुष धनी होता है। स्वास्तिक होनेपर वह सौभाग्यशाली होता है। मछली हो तो वह सर्वत्र पूजा जाता है। श्रीवत्स होनेपर वाञ्छित लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और दामक होने पर चतुष्पदादिककी प्राप्ति होती है। खंडित या टूटी हुई रेखायें हो तो वह आयुकी अल्पता सूचित करती हैं। करभकी रेखायें पुत्र सूचक और कनिष्ठाङ्गुलीके नीचेकी रेखायें स्त्री सूचक होती हैं। अंगूठेके मूलकी रेखाओंसे भ्रातृवर्गकी सूचना मिलती है। अंगूठेमें यव होनेपर वह पुरुष उत्तम भक्ष्यका भोगी बनता है और अन्यान्य सुख भी प्राप्त करता है। हाथमें स्थूल मोटी रेखायें हो तो दरिद्री होता है और पतली रेखायें हों तो धन सम्पन्न होता है।

जिसे पूरे बत्तीस दांत हो तो वह राजा, एकतीस हो तो वह भोगी, तीस हो तो वह सुखी और इससे कम हो तो वह दुःखी होता है। कमलके पत्र समान लाल, सूक्ष्म और सुशोभित जीभ उत्तम मानी जाती है। जिसकी नाक शुक जैसी होती है, वह राजा होता है और जिसकी नाक छोटी होती है, वह धार्मिक होता है। अर्धचन्द्र सा ललाट होनेपर राजा, उन्नत होनेपर धर्म-

निष्ठ, विशाल होनेपर विद्वान किंवा भोगी और छोटा होनेपर मनुष्य दुःखी होता है। राजाका मस्तक छत्राकार होता है। दरिद्रीका लम्बा होता है। अधमका घड़ेकी तरह होता है और पापीका बैठा हुआ होता है। मुलायम, काले, चिकने और पतले बाल हों तो पुरुष राजा होता है और सफेद, भूरे, मोटे और रुखे हों तो वह दुःखी होता है।

इस प्रकार सामुद्रिक शास्त्रका वर्णन कर राज पुरोहितने कहा,—"हे राजन्! जितने शुभ और राज्य प्राप्ति सूचक चिन्ह माने गये हैं, वे सभी इस बालकमें दिखायी देते हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि यह अवश्य ही आपके राजका अधिकारी होगा।"

पुरोहितकी यह बात सुनकर राजा अमावस्याके चन्द्रकी भांति क्षीण हो गया। उसने उसी समय सभा विसर्जित कर दी और महलमें पहुंच कर तुरत चण्डको बुलवाया और उससे पूछा कि,—"हे चण्ड! सच कहना, तूने उस बालकका वध किया था या नहीं?" चण्ड अब झूठ न बोल सका। उसने गिड़गिड़ा कर क्षमाप्रार्थना करते हुए सच बात कह दी। राजा अब पुनः उस बालकको मरवानेके लिये तैयार हुआ। इस बार उसने यह काम भीमसेन नामक सेवकको सौंपा। इसलिये भीमसेन धनराजको खेलते समय फुसला ले गया। जब वह उसका वध करनेके लिये घोड़ेपर सवार हो नगरके बाहर चला, तब मार्गमें धनराजने उससे पूछा,—"पिताजी! आप मुझे कहां लिये जा रहे हैं?" धनराजकी यह मीठी बोली सुनकर भीमसेनका मन पानी

पानी हो गया। अपनी मुच्छके साथ खेलते हुए उस बालकको देखकर भीमसेनके हृदयमें वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ। उसने कहा,—"हे वत्स! हम लोग नगरके बाहर घूमने जा रहे हैं।"

इस प्रकार वनराजको फुसलाते हुए भीमसेन उसे एक भयङ्कर जंगलमें ले गया, पर अब उसमें उसको वध करनेकी शक्ति न थी। वनमें सुन्दर नामक एक यक्षका मन्दिर था। उसीमें उसे ले गया और उसी यक्षकी शरणमें छोड़कर वह अपने घर लौट आया। इसके बाद कुछ देरमें वनराजको भूख लगी, इस लिये उसने यक्षसे कहा,—"पिताजी! मुझे भूख लगी है, लड्डू दीजिये।" इस प्रकार स्नेहमय कोमल वचन बोलता हुआ वनराज यक्षके पेटपर हाथ फेरने लगा। यक्षकी मूर्ति पाषाणमय होनेपर भी वह उसके इन वचनोंसे सन्तुष्ट हो उठा। उसी समय उसने बालकको स्वादिष्ट, सुन्दर, और बढ़िया लड्डू खानेको दिये, जिन्हें खाकर वनराजने अपनी क्षुधा शान्त की।

दैवयोगसे इसी समय वहा सदलबल एक वनजारा आ पहुंचा और उसने इसी मन्दिरके समीप डेरा डाला। इस वनजारेका नाम केशव था। इसके कई बैल खो गये थे, इसलिये चिन्ताके कारण वह अर्धनिद्रावस्थामें पड़ा हुआ था। इसी समय यक्षने उसे दर्शन देकर कहा,—"हे भद्र! चिन्ता न कर! तेरे बैल अपने आप सुबह तुझे आ मिलेंगे। मुझे एक बात और भी तुझसे कहनी है। वह यह कि मेरे मन्दिरमें वनराज नामक एक बालक बैठा हुआ है। उसे सुबह तू अपने साथ लेते जाना। वृ

अपुत्र हैं, इसलिये मैं तुझे देता हूं।" यक्षकी यह बात सुन वनजारेको बड़ा ही आनन्द हुआ। सुबह होते ही उसने मन्दिरमें जाकर यक्षकी स्तुति की और वहांसे उस बालकको लाकर अपनी स्त्रीको सौंप दिया। यात्रासे अपने घर पहुंचनेपर उसने वनराजको एक ब्राह्मण द्वारा शिक्षा दिलानेका प्रबन्ध किया। इससे वनराजने कुछ ही दिनोंमें विविध विद्या और कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। क्रमशः उसकी अवस्था सोलह वर्षकी हुई और उसने युवावस्थामें पदार्पण किया।

एक बार वह वनजारा व्यापारके निमित्त घूमता हुआ वनराजके साथ क्षतिप्रतिष्ठित नगरमें आ पहुंचा। नगरके बाहर एक अच्छे स्थानमें डेरा डालकर वह वनराजको साथ ले, नजराना देनेके लिये राजाकी सेवामें उपस्थित हुआ। वहाँ राजाके सम्मुख नज़राना रखकर वह एक ओर आसन पर बैठ गया; किन्तु वनराज वहीं खड़ा-खड़ा सिंहकी भांति चारों ओर देखता रहा। इसी समय राजाके पास बैठे हुए पुरोहितकी दृष्टि वनराजपर जा पड़ी और उसने उसके लक्षण देखकर पूर्ववत् सिर धुना दिया। यह देख राजाने शीघ्र ही उसे एकान्तमें ले जाकर इसका कारण पूछा। पुरोहितने कहा,—"राजन्! लक्षणोंसे मालूम होता है कि यही युवक आपके राज्यका अधिकारी होगा।"

पुरोहितकी यह बात सुन राजाको बड़ी चिन्ता हो पड़ी। वह अपने मनमें सोचने लगा, कि यह वही मालूम होता हैं। न जाने यह कोई देवता है या विद्याधर? सेवक द्वारा दो-दो बार

घात करानेपर भी यह अभी जीवित ही है। खैर, अब इन बातोंको सोचनेसे क्या लाभ होगा ? अब भी समय है—आसानीसे इसका विनाश किया जा सकता है। सब चिन्ता छोड़कर अब इसके लिये यत्न करना चाहिये।

इस तरहकी बातें सोचते हुए राजाने उसके विनाशका एक उपाय खोज निकाला। पांच दिनोंके बाद उसने एक दिन उस बनजारेको बुलाकर पूछा,—"आपके साथ जो एक युवक है, वह कौन है ?" यह सुन केशवने कहा,—"वह मेरा पुत्र है।" राजाने कहा,—"अच्छा, उसे कुछ दिन हमारे यहां रहने दो।" केशवने यह सोचकर कि राजाको शत्रु बनाना ठीक नहीं अतएव उसने उसकी यह बात मान ली। इससे राजाने भी प्रसन्न हो, उसके मालका समस्त कर माफ कर दिया।

राजाके पास वनराजको छोड़ते समय केशवको बड़ा ही दुःख हुआ। उसकी आखोंमें आसू भर आये। उसने वनराजसे कहा,—"हे वत्स ! हमलोग राजाका वचन अमान्य नहीं कर सकते इस लिये राजाकी इच्छानुसार कुछ दिन तुम यहीं रहो। जब तबियत न लगे, तब राजाकी आज्ञा लेकर घर चले आना।" यह सुन वनराजने कहा,—"पिताजी ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। आप मेरा चिन्ता न करें ; मैं आनन्द पूर्वक अपने दिन यहा बिता दूगा।" इसके बाद पिता पुत्र दोनों जन एक दूसरेको मिल भेंट कर पृथक हुए। राजाने भी वनराजको बहुत कुछ आश्वासन दिया। अब वनराज आनन्दपूर्वक वहा रहने लगा। कुछही दिनोंके

बाद राजाने वनराजको कई गांव, घोड़े और सिपाही देकर उसे कोतवाल बना दिया। इससे वनराजका उत्साह दुना हो गया। अब उसने अपने कार्य और व्यवहारसे राजाके समस्त सेवक तथा सारे राज-परिवारको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। इधर वनजारा भी उसे खूब धन भेजा करता था, इस लिये वनराज अब चैनको वंशी बजाने लगा।

एक बार राज्यके किसी अधिकारीने राजाके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा किया, इसलिये राजाने उसे दमन करनेके लिये अपने पुत्र नृसिंहके साथ वनराजको भी जानेकी आज्ञा दी। राजाको आज्ञा मिलते ही दोनों जन एक बड़ी सेनाके साथ विद्रोहियोंके सिरपर जा धमके और उनके किलेको चारों ओरसे घेर लिया। विद्रोही पहले तो किलेमें छिप गये ; किन्तु बादको बहुत कुछ ललकारने पर वे भी मरने-मारनेको तैयार हो गये। इसलिये अब दोनों दलोंमें भीषण युद्ध होने लगा, किन्तु वनराजकी युद्ध निपुणताने विद्रोहियोंके दांत खट्टे कर दिये। उसने शीघ्र ही विद्रोहियोंको पराजित कर उनके नायकको गिरफ्तार कर लिया। इस युद्ध कौशलके कारण वनराजको चारों ओर ख्याति हो गयी। कुछ दिनोंके बाद स्वयं राजा भी वहां आ पहुंचा। उसे विद्रोहियोंका पराजय देखकर जितना आनन्द हुआ, उससे कहीं अधिक वनराजकी ख्याति सुनकर दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा,—"वनराज इस भाषण युद्धमें भी जीता रह गया। खैर, अब इसके नाशका कोई और उपाय करूंगा। यह सोचकर उसने

नृसिंह और वनराजको राजधानीकी ओर वापस भेज दिया और आप कोई बहाना कर यहीं रह गया।

वनराजके कारण राजाको खाना पीना और सोना तक कठिन हो गया। वह रात दिन उसीके मारनेकी तरकीब सोचा करता था। जब नृसिंह और वनराज दोनों जन क्षतिप्रतिष्ठित नगरमें पहुंच गये, तब राजाने एक दिन सांढनी सवारको पत्र देकर नृसिंहके पास भेजा। उस पत्रमें उसने लिखा था कि यह पत्र मिलतेही शीघ्रही वनराजको विष दे देना। सांढनी सवार यह पत्र लेकर क्षतिप्रतिष्ठित नगरके लिये रवाना हुआ। रात पड़नेपर वह मार्गके उसी जंगलमें टिक रहा, जिसमें सुन्दर यक्षका मन्दिर था। यक्षको अवधिज्ञानसे मालूम हो गया कि वनराजको मारनेके लिये ही यह सब कार्रवाई हो रही है। फलतः उसने देव शक्तिसे उस पत्रके "विष" शब्दको "विषा" बना दिया। विषा राजाकी राजकुमारीका नाम था। सांढनी सवार दूसरे दिन नगरमें पहुंचा और नृसिंहको वह पत्र दिया। नृसिंहने वह पत्र पढ़कर उसका यही अर्थ निकाला कि राजाने वनराजके साथ शीघ्र ही विषाका ब्याह कर देनेकी आज्ञा दी है। देखते ही देखते यह शुभ संवाद समूचे नगरमें फैल गया। राजकुमारने बड़ी तेजीके साथ ब्याहकी तैयारी करायी और शुभ मुहूर्त्त देखकर बड़े समारोहके साथ वनराजसे विषाका ब्याह कर दिया। वनराज अब राजपरिवारके मनुष्योंमें परिगणित होने लगा और राजसी ठाठसे नवविवाहिता वधूके साथ आनन्द करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद राजा नगरमें आया। उसके आते ही राज कुमारने उसे विपा और वनराजकी बातें कह सुनायी। यह विपरीत समाचार सुन राजाने अपने मनमें कहा,—"हा दैव! यह तूने क्या किया? जिसे मैं मारना चाहता हूं, उसकी तो उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। मेरा यह दाव भी खाली गया, किन्तु कोई हर्ज नहीं। अब कोई दूसरा दाव आजमाऊंगा।"

यह सोचकर राजाने राजकुमारको "बहुत अच्छा हुआ" कहकर विदा कर दिया और आप फिर वनराजके प्राणनाशकी बाजी सोचने लगा। एक दिन उसने गुप्त रूपसे दो मातंगोंको बुलाकर आज्ञा दी, कि आज आधी रातके समय नगरके बाहर कुलदेवीका पूजन करनेके लिये पूजन-सामग्री लेकर जो जाता दिखायी पड़े, उसे उसी समय मार डालना। मातंगोंको यह आज्ञा देनेके बाद शामके समय राजाने वनराजको बुलाकर कहा,— "युद्धके लिये प्रस्थान करते समय मैंने द्वारवासिनी देवीकी पूजा मानी थी। अतएव तुम आज मध्यरात्रिके समय जाकर उनकी पूजा कर आओ ताकि मैं ऋणमुक्त हो जाऊं।"

राजाके आदेशानुसार वनराज मध्यरात्रिके समय दीपक और पूजन सामग्री लेकर बाहर निकला। महलसे निकलते ही कहीं उसे राजकुमार नृसिंहने देख लिया। उसने उसके पास आकर इस समय बाहर जानेका कारण पूछा। वनराजने सारा हाल बतला दिया, उसे कष्टसे बचानेके विचारसे राजकुमारने कहा,— "आप महलमें जाकर आराम कीजिये और यह सब सामान मुझे दे दीजिये, अभी मैं पूजा किये आता हूं।"

धनराजने जरा भी आपत्ति न कर, सब पूजन-सामग्री राजकुमारको दे दी और स्वयं अपने महलको लौट आया। उधर नगरके दरवाजेके पास दोनों मातंग पहलेसे ही राजाके आदेशानुसार छिपे खड़े थे। राजकुमारके वहां पहुंचते ही वे दोनों उसपर टूट पड़े और तलवारसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस घटनासे चारों ओर हाहाकार मच गया। राजाने ज्योंहीं यह संवाद सुना कि द्वारवासिनीके मन्दिरके पास किसीको हत्या कर डाली गयी है, त्योंहीं वह मनमें प्रसन्न होता हुआ वहां पहुंचा। आज शत्रुपर विजय मिलनेसे मानों उसके सिरका बहुत बड़ा भार उतर गया। किन्तु उसकी यह खुशी चन्द मिनटोंसे अधिक समय न ठहर सकी। घटनास्थलपर पहुंचते ही उसने देखा कि धनराजके बदले राजकुमार मातंगोंका शिकार बन गया है। यह देखते ही उसका माथा घूम गया और वह सिर पटक-पटक कर विलाप करने लगा।

किन्तु अब विलाप करनेसे लाभ ही क्या हो सकता था? उसने जो जो चालें चलीं, सबोंका फल विपरीत आया। प्रत्येक दावमें उसकी हार हुई और अन्तमें तो इस तरह बाजी ही पलट गयी। सवेरा होते ही उसने राजकुमारका अग्निसंस्कार कराया और धनराजको बुलाकर कहा,—"हे वत्स! तेरा भाग्य बड़ाही बली है। मेरे पुरोहितकी सभी बातें सत्य प्रमाणित हुई। निःसन्देह तू पूर्ण भाग्यवान है।" यह कह राजाने धनराजको उसके जन्मसे लेकर अब तकका सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें

कहा,--"अब तू मेरा अपराध क्षमा कर और इस राज्यको ग्रहण कर। तेरे भाग्यने ही तुझे यह राज्य दिलाया है। मैं तो अब दीक्षा लूंगा।" यह कह, राजाने वनराजको सिंहासनपर बैठा कर दीक्षा ले ली। अनन्तर प्रतापी वनराज राज्य प्राप्त कर न्याय और नीति पूर्वक प्रजा-पालन करने लगा।

एक बार नन्दन उद्यानमें चार ज्ञानधारी नन्दनाचार्यका आगमन हुआ। यह जानकर वनराज अपने परिवारके साथ उन्हें वन्दन करने गया। मुनिराजको वन्दन कर उनका धर्मोपदेश सुननेके बाद वनराजने पूछा,--"भगवन्! मैंने पूर्वजन्ममें कौनसा सुकृत किया था, जिसके कारण मुझे इस राज्यकी प्राप्ति हुई है?" यह सुन ज्ञानातिशयसे सम्पन्न मुनिराजने कहा,—"हे राजन्! पूर्वजन्ममें श्रद्धा और भावपूर्वक जिनेश्वरकी स्तुति थी उसीसे राज्य मिला है और स्तुति करते समय तुझे बीच-बीचमें सन्देह हो जाता था कि मुझे केवल स्तुतिसे कोई लाभ होगा या नहीं? इस सन्देहके कारण तुझे बीच-बीचमें कुछ कष्ट भी उठाना पड़ा। अन्तिम समयमें तूने सोचा था कि उत्तम कुलसे क्या? भाग्य ही श्रेष्ठ है इसलिये तू दासी पुत्र हुआ।" मुनिराजकी यह बातें सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया और वह पूर्व जन्मकी बातें स्मरण कर सद्ध्यानमें लीन हुआ। उसने जिनधर्मपर श्रद्धा रखकर अनेक जिनचैत्य और जिन बिम्ब कराये तथा नये-नये काव्य और छंदोंसे अष्ट प्रकारकी पूजाके साथ भावपूजा भी करने लगा। यह बाहरसे सभी

आवश्यक क्रियादि करता, किन्तु अन्तमें सदा तत्वका ही चिन्तन किया करता था। अन्तमें उसने चारित्र ग्रहण कर, निरतिचार पूर्वक उसका पालन कर परमपद प्राप्त किया।

इस प्रकार अनेक जीवोंने जिनपूजा द्वारा परमपद प्राप्त किया है, इसलिये जो लोग सदा जिनार्चनमें तत्पर रहते हैं, उन्हें धन्य है। पूजामें मिथ्या आडम्बर न करना चाहिये, क्योंकि सर्वत्र भाव ही प्रधान है।

अब हमलोग गुरु भक्तिके सम्बन्धमें विचार करते हैं। इस सम्बन्धमें श्री उपदेशमालामें कहा गया है, कि सुगति मार्गमें जो दीपकके समान ज्ञान करानेवाले हैं, ऐसे सद्गुरुके लिये अदेय क्या हो सकता है? देखिये भिल्लने गुरुभक्तिके निमित्त शिवको एक बार अपने नेत्र किस प्रकार दिये थे।

किसी पहाड़की गुफामें एक बहुत बड़ा मन्दिर था। उसमें शिव अधिष्ठायिका प्रतिमा थी। उसे अपना सर्वस्व मान कर एक धर्मनिष्ट ब्राह्मण दूरसे आकर रोज उसकी सेवा पूजा करता था। वह उसे शुद्ध जलसे स्नान कराता, चन्दन लगाता, सुगन्धित पुष्पोंसे पूजन करता, नैवेद्य रखता, धूप देता और बादको हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करता :—

"त्वयि तुष्टे मम स्वामिन्, संपत्स्य तेऽखिला" श्रिया।
त्वमेव शरणं मेऽस्तु, प्रसीद परमेश्वर!"

अर्थात्—"हे स्वामिन्! आपके प्रसन्न होनेसे मुझे सब प्रकार की सम्पत्तियें प्राप्त होगी। आप ही मेरे शरण स्थान हैं। हे परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न हुजिये।"

इस प्रकार निरंतर पूजन कर वह अपने घर जाता। एक बार वह अपनी पूजाको अस्तव्यस्त अवस्थामें देख कर उसका कारण जाननेके लिये पूजन कर वहीं एकान्तमें छिप रहा। इसी समय एक भिल्ल बायें हाथमें धनुष बाण, दाहिने हाथमें पुष्प और मुंहमें जल लेकर आया। आते ही उसने शिवपर चढ़े हुए पत्र पुष्पादि पैरसे हटा दिये। इसके बाद मुंहका पानी शिवमूर्ति पर छोड़, पुष्प चढ़ा, उन्हें वन्दन किया। उसके इतना करते ही शिव उससे वार्तालाप करने लगे। बातचीत पूरी होनेपर भिल्ल वहांसे चला गया। यह घटना देखकर उस धर्मनिष्ठ ब्राह्मणको बड़ा ही खेद हुआ और वह क्रोधसे शिवको उपालम्भ देते हुए कहने लगा,—"हे शिवजी! आप भी इस भिल्ल जैसे ही मालूम होते हैं। उस अधमने अशुद्ध शरीरसे आपकी पूजा की, फिर भी आप उसके साथ बोलने-चालने लगे; किन्तु आज तक आपने मुझे तो स्वप्नमें भी दर्शन नहीं दिये!"

ब्राह्मणकी यह बात सुन शिवने कहा,—"हे ब्राह्मण! क्रोध न कर! इसका कारण तुझे अपने आप मालूम हो जायगा" इस घटनाको आठ दिन बीत गये। एक दिन शिवकी पूजा करते समय ब्राह्मणने देखा, कि शिवका एक स्वर्ण नेत्र गायब है। वह सोचने लगा, कि अवश्य कोई दुष्ट उसे निकाल ले गया है। यदि वह फिर वहां आये, तो उसे पकड़नेके विचारसे ब्राह्मण वहीं छिप रहा। थोड़ी ही देरमें वहां वह भिल्ल आ पहुंचा। उसने शिवको इस अवस्थामें देख तुरत अपनी आंख निकाल कर

उनके लगा दो। शिवजी इससे प्रसन्न हो उठे और बोले—"हे सात्विक! तू वर माँग!" भिल्लने कहा—"नाथ! आपकी दयासे मुझे किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है!" शिवने पुनः कहा,—"हे सात्विक! मुझे केवल तेरा सत्व ही देखना था, सो मैं देख चुका।" यह कह शिवजीने अपना पूर्वनेत्र प्रकट किया और भिल्लका नेत्र फिर उसे लगाकर पूर्ववत् कर दिया। भिल्लको इससे परम सन्तोष हुआ और वह उन्हें नमस्कार कर चला गया। शिवजीने अब उस ब्राह्मणसे कहा,—"हे विप्र! तूने इस भिल्लका मनोभाव देखा? हम लोग भाव ही देखकर प्रसन्न होते हैं, बाह्य भक्तिसे नहीं।" शिवजीकी यह बात सुन ब्राह्मण भी उन्हें नमस्कार कर वहांसे चला गया। इसलिये हे भव्य जीवो! धर्ममें भी भावहीसे सिद्धि प्राप्त होती है। अतएव लोगोंको यह रहस्य जान कर भाव पूर्वक जिन धर्मकी आराधना करनी चाहिये।" इस प्रकार गणधर का धर्मोपदेश सुननेके बाद सब कोई पार्श्वप्रभुको नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये। इसके बाद धरणेन्द्रने प्रकट हो भगवानके सम्मुख दिव्य नाटक किया। पार्श्वयक्ष अधिष्ठायक हुआ। प्रभाव पूर्ण, सुवर्ण जैसा वर्ण और कुर्कुट जातिके साँपका वाहन प्राप्त कर पद्मावती शासनदेवी हुई। अनन्तर पार्श्वनाथ भगवान् स्वर्ण-कमलोंपर अपने चरणोंको रखते हुए पृथ्वी-तलपर विचरण करने लगे।
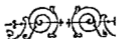
तीन जगतके स्वामी, जगत् गुरु, पार्श्वयक्षसे सेवित, सर्प लाञ्छनसे युक्त और आठ महाप्रतिहार्योंसे विराजमान, चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित और वाणीके पैंतीस गुणोंसे शोभायमान भगवान पार्श्वनाथ विहार करते हुए एक बार पुंड्रदेशके साकेतपुर नगरके आम्रोद्यान नामक वनमें पधारे।

पूर्वदेशमें ताम्रलिप्ति नगरमें बन्धुदत्त नामक एक युवक बनजारा रहता था। वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। उसकी स्त्री किसी अन्य पुरुषमें आसक्त थी अतएव उसने अपने पतिको विष देकर बाहर फेंक दिया। उसे मृतप्राय अवस्थामें एक ग्वालिन उठा ले गयी और उसने औषधोपचार कर उस ब्राह्मणको जिलाया। इस घटनासे ब्राह्मणको वैराग्य आ गया इसलिये उसने दीक्षा ले ली। मृत्यु होनेपर वह बन्धुदत्तके यहां पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। यहाँ उसका नाम सागरदत्त रखा गया। उसे जाति-स्मरणज्ञान हो आया इसलिये वह समस्त स्त्रियोंसे विरक्त रहता था। उधर वह ग्वालिन भी मृत्यु होनेपर उसी नगरके एक वणिकके यहां रूपवती कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई। उसके बन्धुओंने सागरदत्तके साथ

उसका ब्याह कर दिया। किन्तु सागरदत्त उसपर भी प्रेम न रखता था। उसकी इस विरक्तिसे उद्विग्न हो एक दिन उस स्त्रीने एक पत्रमें यह श्लोक लिख भेजा—

"कुलीनामनु रक्तांच, किं स्त्रीं त्यजसि कोविद !
कौमुद्या हि शशी भाति, विद्युताब्दो गृही स्त्रिया ॥"

अर्थात्—"हे चतुर ! आप कुलीन और अनुरक्त स्त्रीका त्याग किस लिये करते हैं ? जिस प्रकार चन्द्रिकासे चन्द्र और बिजलीसे मेघकी शोभा है, उसी तरह स्त्रीसे पुरुषकी शोभा है।" इस श्लोकके उत्तरमें सागरदत्तने निम्नलिखित श्लोक लिख भेजाः—

"स्त्री नदीवत् स्वभावेन, चपला नीच गामिनी।
उद्वृत्ता च जड़ात्मा सौ, पक्षद्वय विनाशिनी।"

अर्थात्—"स्त्री स्वभावसेही नदीकी भांति चपल, अधोगामिनी और दोनों कुलोंकी विनाशक होती है।" यह श्लोक पढ़कर स्त्री अपने मनमें कहने लगी कि मालूम होता है, कि इन्हें पूर्व-जन्मकी बातें स्मरण आ रही हैं और इसी लिये यह स्त्रियोंको दोष दे रहे हैं। यह सोचकर उसने पुनः एक श्लोक लिख भेजा। यह श्लोक इस प्रकार था।"

"एकस्या दूषणे सर्वा, तज्जातिर्नैव दूष्यति।
अमावास्येव रात्रित्वात्, त्याज्येन्दोः पूर्णिमापि किम् ?'

अर्थात्—"एकके दूषणसे समस्त जाति दूषित नहीं होती। अमावस्याकी रात्रि देखकर क्या कोई पूर्णिमाके चन्द्रका भी त्याग करता है ?" स्त्रीके इस श्लोकको पढ़नेसे सागरदत्तकी विरक्ति दूर हो गयी और वह उसी दिनसे अपनी पत्नीपर प्रेम करने लगा।

सागरदत्तको समुद्र मार्गसे व्यापार करनेका बड़ा शौक था। इसके लिये उसने सात बार समुद्र यात्राकी, किन्तु सातों बार उसकी नोकायें टूट गयीं। इससे उसको बड़ी हानि हुई। वह अपने मनमें कहने लगा—अब मैं क्या करूं? मेरे जीवनको धिक्कार है। इस तरह किंकर्तव्य विमूढ़ हो वह इधर उधर भटकने लगा। एक बार उसने देखा कि एक मनुष्य कुएंसे पानी भर रहा है। उसने सात बार चेष्टा की, किन्तु पानी न आया। इससे हताश न होकर उसने आठवीं बार फिर प्रयत्न किया और इस बार पानी निकल आया।

यह घटना देखकर सागरदत्त अपने मनमें कहने लगा—मुझे भी एक बार और चेष्टा करनी चाहिये। संभव है कि इसी तरह मुझे भी सफलता मिल जाय। यह सोच कर उसने फिर यात्राकी तैयारी की और शुभ मुहूर्त देखकर नौकाके साथ सिंहलद्वीपके लिये प्रस्थान किया। सिंहलद्वीप पहुंचनेपर वहांसे वह रत्नद्वीप गया और वहांसे अनेक रत्न लेकर वह अपने नगरके लिये वापस लौटा। रास्तेमें नाविकोंके मनमें लोभ समाया इसलिये उन्होंने रत्नोंको हाथ करनेके लिये रात्रिके समय सागरदत्तको समुद्रमें ढकेल दिया। किन्तु दैवयोगसे उसके हाथ एक काष्ट खण्ड लग जानेसे वह उसके सहारे तैरकर किनारे लगा। इसके बाद वह भ्रमण करता हुआ क्रमशः पाटलिपुत्रमें पहुंचा। वहां व्यापारके निमित्त गये हुए उसके श्वसुरसे उसकी भेट हुई। वह उसे अपने निवास-स्थानमें ले गया और उसे स्नान भोजन कराया। स्नान

भोजनसे निवृत्त होनेपर सागरदत्तने अपने श्वसुरको अपना सारा हाल कह सुनाया। अनन्तर श्वसुरने उसे अपने पास रख लिया और वह भी उसके साथ रहने लगा।

कुछ दिनोंके बाद उसकी नौकायें भी वहां आ पहुंची। सागरदत्तने राजाकी आज्ञा प्राप्त कर नाविकोंको अटकाया और अपने रत्न लेकर उन्हें मुक्त किया। इसके बाद सागरदत्त अपने घर आया और आनन्द करने लगा।

अब वह ब्राह्मण, योगी और अन्य दर्शनवालोंको भी आहार और वस्त्रादिकका दान दे, उनसे पूछता, कि देव गुरु और धर्म किसे कहते हैं? उसके इस प्रश्नका उत्तर कोई कुछ देता और कोई कुछ? इससे सागरदत्त कोई बात स्थिर न कर सका और विविध शास्त्र सुननेमें अपना काल बिताने लगा।

एक दिन वह नगरके बाहर गया। वहां एक मुनिको ध्यानस्थ देखकर उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा,—"हे स्वामिन्! देव, गुरु और धर्म किसे कहते हैं और आप कौन हैं यह मुझसे सत्य सत्य कहिये।" मुनिने कायोत्सर्गसे निवृत्त हो कहा,—"हे महानुभाव! मैं अनगार हूँ। मैंने राज्यका त्याग कर दीक्षा ग्रहण की है। इस समय मैं ध्यान कर रहा हूँ। तुझे सत्य बातें बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं किन्तु वैसा करनेसे मेरा ध्यान भंग होता है। इस लिये वे सब बात मैं इस समय तुझे न बतलाऊंगा। कल यहां तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ प्रभु पधारेंगे। उन्हें वन्दन कर यह प्रश्न पूछनेसे वे तुझे सब बतला देंगे।

मुनिकी यह बात सुन सागरदत्त आनन्दित हो अपने घर गया। दूसरे दिन वास्तवमें पार्श्वनाथ भगवानका वहाँ आगमन हुआ। यह समाचार सुनते ही राजा, नगरजन और सागरदत्त हर्षित हो वन्दन करनेके लिये गये। उस समय लाभ होनेकी संभावना देख भगवानने सागरदत्तको ही लक्ष्यकर धर्मोपदेश दिया। भगवानने अपने उपदेशमें देवतत्त्व, गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्वको विस्तार पूर्वक व्याख्या की। उसे सुनकर सागरदत्तको वैराग्य आ गया। उसी समय वह भगवानके चरणोंमें गिर पड़ा। शुक्ल ध्यान और शुभ वासनाके कारण उसे वहीं जातिस्मरणज्ञान हो आया। इसके बाद उसने यतिवेष धारण कर क्रमशः परम पद प्राप्त किया। इस प्रकार परोपकारी पार्श्वनाथ भगवानने उसे इस संसारसे तारकर पार लगाया।

चार मुनियोंकी कथा।

शुद्ध वंशोत्पन्न शिव, सुन्दर, सोम और जय नामक चार शिष्योंने चिरकालसे व्रत ले रखा था। अब वे बहुश्रुत भी हुए थे। उन्होंने भगवानको प्रणाम कर पूछा—"हमें इस जन्ममें सिद्धि प्राप्त होगी या नहीं?" भगवानने बतलाया—"तुम लोग चरम शरीरी हो, इसलिये इसी जन्ममें सिद्ध होगे।" भगवानका यह वचन सुन कर वे अपने मनमें कहने लगे, कि यदि हमें इसी जन्ममें सिद्ध होना है, तो वृथा कायाकष्ट क्यों करना चाहि-

ये ? स्वेच्छापूर्वक भोजन, पान और शयन क्यों न किया जाय ? बौद्ध दर्शनमें भी कहा है कि मनपसंद भोजन, उत्तम शयन और सुन्दर भवनमें रहकर मौज करना चाहिये। सुबह दूध और मद्य-पान करना चाहिये, दोपहरको स्वादिष्ट भोजन करना चाहिये। शामको मद्य और शरबत पीना चाहिये और रात्रिके समय अंगूर खाने चाहिये। इस प्रकार सुखोपभोग करते हुए अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।" इसलिये हम लोग भी इसी तरह काल यापन करें, वृथा कष्ट करनेसे क्या लाभ होगा ?

इस तरहकी बातें सोचकर उन साधुओंने चारित्रका त्याग कर दिया और सुखोपभोग करनेमें समय व्यतीत करने लगे। किन्तु आसन्न सिद्धि होनेके कारण कुछ दिनोंके बाद उनके मनमें फिर विचार उत्पन्न हुआ कि अहो! हमलोग किस मार्गपर जा रहे हैं ! जगत् गुरु श्रीपार्श्वनाथको प्राप्त कर हमें आत्म कल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये था, किन्तु उलटा हम लोग अपना अपकार कर रहे हैं। हम लोगोंने सच्चारित्र रूपी जलमें स्नान करनेके बाद फिर कुमति संसर्ग रूपी मिट्टीमें लोटना पसन्द किया। अब हम लोगोंकी न जाने क्या गति होगी ? हे भगवन्! हम अब आपके शरणागत हैं। हमारी आप ही रक्षा कीजिये। इस प्रकारकी बातें सोचते हुए वे क्षपक श्रेणीपर पहुंचे और शीघ्र ही पार्श्वनाथ परमात्माके ध्यानके प्रभावसे केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए।
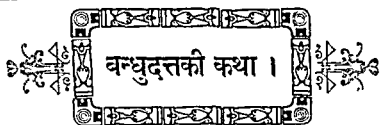
वन्धुदत्तकी कथा।

नागपुरीमें धनपति नामक एक धनी व्यापारी रहता था। उसे वन्धुदत्त नामक एक पुत्र था। उसका व्याह वसुनन्दकी कन्या चन्द्रलेखाके साथ होना स्थिर हुआ था। यथा समय व्याह भी हुआ किन्तु अभी चन्द्रलेखाके हाथका कंकण भी न छुटा था, कि उसे सर्पने डश लिया और उसके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। वन्धुदत्तका पुनःविवाह हुआ किन्तु दूसरी स्त्रीकी भी यही गति हुई। इसी तरह वन्धुदत्तने छः व्याह किये किन्तु उसकी एक भी पत्नी जीवित न रही। इस विचित्र घटनाके कारण वन्धुदत्त विष हस्त और विषवरके नामसे प्रसिद्ध हो गया। अब उसके साथ कोई अपनी कन्याका व्याह करनेको तैयार ही न होता था। उसके साथ व्याह करना, कन्याको जान बूझकर मृत्युके मुंहमें डालना था। यह भला कौन पसन्द करता?

इधर चिन्ताके कारण वन्धुदत्तका शरीर दिन प्रति दिन शुक्ल पक्षके चन्द्रकी तरह क्षीण होने लगा। उसकी यह अवस्था देख कर उसके पिताने उसे व्यापारार्थ विदेश यात्रा करनेकी सलाह दी। वन्धुदत्त इसके लिये तैयार हो गया। शीघ्र ही वह नौकाओं में बहुमूल्य चीजें लेकर शुभ मूहूर्तमें घरसे निकल पड़ा। विदेशमें उसका सितारा चमक उठा। वह जहाँ जाता वहीं उसे यथेष्ट

लाभ होता। यदि मिट्टीको छु लेता तो वह भी सोना हो जाता। इस प्रकार विपुल सम्पत्ति उपार्जन करनेके बाद बन्धुदत्त अपने घर आनेके लिये रवाना हुआ, पर मार्गमें तूफानके कारण उसकी नौका टूट गयी और वह अपनी समस्त सम्पत्तिके साथ समुद्रमें जा पड़ा। किन्तु सौभाग्यवश एक काष्ट खण्ड उसके हाथ लग गया और वह उसके सहारे तैरता हुआ रत्नद्वीपमें किनारे आ लगा। वहांसे पैदल चलता और फलाहार करता हुआ वह रत्नाद्रि पहुंचा। वहां रत्न ग्रहण करते हुए उसे एक जिन प्रासाद दिखायी दिया। उसमें जाकर उसने श्रीनेमिनाथके बिम्बको नमस्कार किया। इसके बाद उसी जगह चैत्यके बाहर, एक वृक्षके नीचे शुक्लध्यानमें निमग्न कई मुनि बैठे हुए थे, उन्हें वन्दन कर उसने अपना सारा हाल कह सुनाया। सुनकर उन मुनियोंमेंसे एक मुनि, जो बड़े ही शान्त और ज्ञानी थे, उन्होंने उसे सान्त्वना दी एवं उसे उपदेश दे जिन धर्मपर दृढ़ किया।

इसी समय चित्रांगद नामक एक विद्याधर मुनिको वन्दन करने आया। उसने बन्धुदत्तको साधर्मिक भाई जानकर अपने यहां निमन्त्रित किया और उसे अपने घर ले जाकर स्नान मज्जन और भक्ति पूर्वक भोजन कराया। भोजनादिसे निवृत्त होनेपर विद्याधरने कहा,—"प्रिय बन्धु! आप मेरे सहधर्मी हैं और मेरी बात मानकर मेरे यहां पधारे हैं, अतएव इस अवसरकी स्मृतिमें मैं आपको कुछ देना चाहता हूं। कहिये तो आपको आकाश-गामिनी विद्या दूं और कहिये तो किसी सुन्दरी कन्यासे आपका

विवाह करा दूं।" बन्धुदत्तको आकाशगामिनी विद्याकी अपेक्षा स्त्रीकी अधिक आवश्यकता थी अतएव उसने कहा,—"मैं एक साधारण वणिक हूं। मुझे आकाशगामिनी विद्याकी आवश्यकता नहीं है। यदि आप और कुछ देना चाहें, तो दे सकते हैं। मैं उसे स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं।

बन्धुदत्तकी इस बातसे चित्राङ्गद समझ गया कि वह ब्याहके लिये विशेष उत्सुक है। फलतः वह किसी रूपवती कन्याके लिये चिन्ता करने लगा, इसी समय उसे उसकी बहन सुवर्णलेखाने आकर कहा कि,—"कौशाम्बीमें जिनदत्तकी प्रियदर्शना नामक एक लड़की मेरी सखी है। वह बड़ी ही रूपवती और शुशिला है। एक बार उसके पिताने चतुर्ज्ञानी मुनिसे पूछा था कि यह कन्या कैसी होगी? यह सुनकर मुनिने उसके पिताको बतलाया था कि इस कन्याका ब्याह होनेके बाद वह एक पुत्रको जन्म देकर अन्तमें चारित्र ग्रहण करेगी।" उस कन्याको मैं अच्छी तरह जानती हूं। वह मेरी देखी सुनी है, इसलिये उसीके साथ बन्धुदत्तका ब्याह करवानेका प्रबन्ध कीजिये।"

बहिनकी यह बात सुनकर चित्राङ्गदको बड़ाही आनन्द हुआ। उसी समय बन्धदत्त और कई विद्याधरोंको अपने साथ ले वह कौशाम्बी गया। कौशाम्बीमें प्रवेश करतेही पार्श्वनाथ भगवानका एक प्रासाद दिखायी दिया। अतएव सब लोग वहां भगवानक वन्दन करने गये। इसी समय संयोगवश वहां जिनदत्त भी पूजा करनेके लिये जा पहुंचा। जिस प्रासादमें बन्धुदत्त तथा विद्या-

घरोंको देखकर उसे बड़ाही आनन्द हुआ। यह सबको निमन्त्रित कर अपने घर ले गया और वहां बड़े प्रेमसे सबको भोजनादिक कराया। भोजनसे निवृत्त हो सब लोग बात चीत करने बैठे। जिनदत्तने बन्धुदत्त आदिसे कौशाम्बी आगमनका कारण पूछा। चित्राङ्गदने सब वृत्तान्त बतलाकर कहा,—"हमलोग विद्याधर (खेचर) हैं, किन्तु यह बन्धुदत्त भूचर है। आप भी भूचर हैं, इसलिये आप अपनी कन्याका व्याह बन्धुदत्तसे कर दीजिये। यह सम्बन्ध बहुत ही उपयुक्त और लाभदायक प्रमाणित होगा। बन्धुदत्त सर्वगुण सम्पन्न और बड़ा ही धर्मनिष्ठ है। आपकी कन्या भी वैसीही सुशीला है। अतएव इन दोनोंका व्याह-सम्बन्ध सोना और सुगन्धकासा योग हो पड़ेगा।

चित्राङ्गदका यह प्रस्ताव जिनदत्तने सहर्ष स्वीकार कर लिया और शीघ्रही बन्धुदत्तसे प्रियदर्शनाका व्याह कर दिया। व्याह हो जानेपर विद्याधर तो अपने निवास स्थानको चले गये, किन्तु बन्धुदत्त वहीं रह गया और अपनी नवविवाहिता वधूके साथ आनन्दपूर्वक काल निर्गमन करने लगा। साथही वह सामायिक, प्रतिक्रमण और पौषधादिक धर्मकृत्य भी करता रहा। कुछ दिनोंके बाद प्रियदर्शना गर्भवती हुई। अब बन्धुदत्तने अपने घर जाना उचित समझा। इसके लिये शीघ्रही उसने जिन दत्तकी आज्ञा प्राप्त कर ली और अपनी पत्नी तथा कुछ सेवकोंके साथ वहांसे प्रस्थान किया। मार्गमें उसे एक भयकर जंगल मिला। तीन दिनमें उस जंगलको पार कर वह एक *तालाब किनारे

पहुंचा। यहां आनेपर चंडसेन नामक एक पल्लीपति भिल्लका दल अचानक उसके दल पर टूट पड़ा। बन्धुदत्तके साथ आदमी बहुत कम थे और लुटेरोंका दल बहुत बड़ा था अतएव उन्होंने देखते देखते बन्धुदत्तका सर्वस्व लूट लिया। चलते समय वे प्रियदर्शनाकोभी बलपूर्वक अपने साथ लेते गये।

यह सब लूटका माल लेकर लुटेरे चंडसेनके पास पहुंचे। प्रियदर्शनाको देखते ही चंडसेन उस पर मोहित हो गया। वह सोचने लगा कि मैं इसको अपनी प्रधान पत्नी बनाऊंगा। उसने प्रियदर्शनासे पूछा,—"हे भद्रे! तू कौन है? किसकी पुत्री है? और तेरा क्या नाम है?" उसका यह प्रश्न सुन कर प्रियदर्शनाने उसे अपना पूरा परिचय दे दिया। परिचय पाते ही चंडसेनने कहा,—"यदि वास्तवमें तू जिनदत्तकी पुत्री है, तो मैं तुझे अपनी बहनसे भी बढ़कर समझूंगा, क्योंकि जिनदत्तने एक बार मुझ पर बड़ा भारी उपकार किया था। बात यह हुई थी कि एक दिन मैं कौशाम्बीके बाहर चोरोंके साथ मद्यपान कर रहा था। इतनेमें राजाके सिपाही आ पहुंचे। उन्हें देखते ही मेरे सब साथी तो भाग गये, किन्तु मैं उनके हाथमें पड़ गया। उन्होंने मुझे गिरफ्तार कर राजाके सम्मुख उपस्थित किया। इसके बाद राजाने मुझे प्राणदण्डकी सजा दे दी इस लिये राजाके सेवक मुझे वध करने के लिये वधस्थानकी ओर ले चले। सौभाग्यवश उसी समय तेरे पिता पौषधकर उसी मार्गसे अपने घरकी ओर जा रहे थे। उन्होंने मेरा रोना-कलपना देख कर राजासे प्रार्थना की और मुझे छुड़ा

दिया। तबसे मैं तेरे पिताको अपने पिताके समान पूज्य दृष्टिसे देखता हूं और इसीसे मैं तुझे बहिन मान रहा हूं। बोल, मैं तेरा क्या हित कर सकता हूं ?" यह सुन प्रियदर्शनाने कहा,—"हे बन्धु ! जिस समय आपके आदमियोंने हम लोगोंको लूटा, उस समय तो मेरे पति देव मेरे साथ ही थे, किन्तु अब वे न जाने कहां होंगे ! यदि आप वास्तवमें मेरा हित करना चाहते हैं, तो उनकी खोज कर उन्हें यहां ले आइये।" प्रियदर्शनाकी यह प्रार्थना सुन, उसे वहीं छोड़, चण्डसेन स्वयं बन्धुदत्तकी खोजमें बाहर निकल पड़ा, किन्तु चारों ओर बहुत कुछ खोज करने पर भी उसका कहीं पता न लगा। अन्तमें वह हताश हो घर लौट आया। इसके बाद उसने अपने आदमियोंको दूर दूर तक खोज करनेको आज्ञा दे रवाना किया, किन्तु कहीं भी पता न लगने पर कुछ दिनोंमें वे भी लौट आये। इस समय प्रियदर्शनाने एक पुत्रको जन्म दिया।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन चंडसेनने अपनी कुल देवीके सम्मुख मानता मानी कि:—"हे माता ! यदि एक मासमें प्रियदर्शनाका पति बन्धुदत्त मिल जायगा, तो मैं तुझे दस पुरुषोंकी बलि चढ़ाऊंगा।" इस बातको भी पचीस दिन बीत गये, किन्तु बन्धुदत्तका कहीं पता न मिला। फिर भी चण्डसेनने अपने आदमियोंको बलिदानके लिये दस पुरुष ले आनेकी आज्ञा दे दी।

इधर पत्नी वियोगसे संतप्त हो चारों ओर भ्रमण करता हुआ बन्धुदत्त हिंताल पर्वतके एक वनमें आ पहुंचा। वहां उसने एक बहुत बड़ा सप्तच्छद वृक्ष देखा। उस वृक्षको देख कर वह अपने

मनमें कहने लगा,—"निःसन्देह प्रियदर्शनाने मेरा वियोग होते ही प्राण त्याग दिया होगा। उसके बिना अब मेरा भी जीना व्यर्थ है। ऐसे जीवनसे तो गलेमें फांसी लगा कर प्राण दे देना अच्छा है। यह सोच कर वह ज्यों ही गलेमें फांसी लगाने चला, त्यों ही उसकी दृष्टि एक हंस पर जा पड़ी। वह हंस हंसीके वियोगसे व्याकुल हो रहा था और सरोवरके चारों ओर बड़ी व्यग्रताके साथ उसे खोज रहा था। खोजते-खोजते उसने कमलोंके पीछे छिपी हुई हंसीको देख लिया। इससे उसे असीम आनन्द हुआ और वह हंसीके साथ फिर पूर्ववत् क्रीड़ा करने लगा।

यह घटना देखकर बन्धुदत्त अपने मनमें कहने लगा, कि सम्भव है कि जीवित रहनेपर किसी तरह कभी प्रियदर्शनासे मेरी भी भेंट हो जाय। फलतः उसने आत्महत्या करनेका विचार छोड़ दिया। अब उसने स्थिर किया, कि इस निर्धनावस्थामें घर जाना ठीक नहीं। यही उत्तम होगा, कि इस समय मैं विशालानगरीमें अपने मामाके यहां चला जाऊं और वहांसे कुछ धन लाकर फिर प्रियदर्शनाको खोज करूं। यदि ईश्वरकी कृपासे प्रियदर्शना मिल जायगी, तो मैं अपने घर जाऊंगा और वहांसे मामाका धन उसे वापस भेज दूंगा।

मनमें यह बात स्थिर कर बन्धुदत्तने वहांसे विशाला नगरीकी राह ली। मार्गमें गिरिपुर नगरके समीप एक यक्षालयमें वह रात्रि हो जानेके कारण टिक रहा। उसी यक्षालयमें एक और भी मुसाफिर ठहरा हुआ था। उससे बातचीत करनेपर बन्धुदत्तको

होनेपर भी मेरे निमित्त दस मनुष्योंका वध होने जा रहा है। विशेष दुःखकी बात तो यह है कि चण्डसेनको समझानेपर भी यह किसी तरह नहीं मानता। अब क्या किया जाय और किस प्रकार इन मनुष्योंके प्राण बचाये जायँ ?

इधर बन्धुदत्तने देखा कि मृत्युकाल समीप आ पहुंचा है, अतएव बारम्बार पंच परमेष्ठी महामन्त्रका उच्चारण करने लगा। कभी वह अपने अपराधोंके लिये मन-ही-मन पश्चाताप कर उनके लिये क्षमा प्रार्थना करता और कभी उच्चस्वरसे पार्श्वनाथ भगवानका नाम स्मरण करता। इसी समय भिल्लोंने उसपर खड्गप्रहार किया, किन्तु पार्श्वनाथके नाम स्मरणके प्रभावसे उसको जरा भी दुःख न हुआ। उसपर बरम्बार प्रहार किये गये किन्तु उसके शरीरपर इस प्रकार वे प्रहार बेकार हो जाते थे, मानो उसका शरीर पत्थरका बना हो। यही अवस्था बन्धुदत्तके मामा धनदत्तकी भी थी। यह हाल देखकर भिल्ल घबड़ा उठे। उन्होंने तुरन्त चण्डसेनके पास जाकर यह हाल निवेदन किया। चण्डसेनने उन दोनोंको अपने पास लानेकी आज्ञा दी। भिल्लोंने वैसा ही किया। चण्डसेनके पासही प्रियदर्शना भी बैठी हुई थी। वह बन्धुदत्तको देखते ही प्रसन्न हो उठी। प्रियदर्शनाको देखकर बन्धुदत्तको भी आनन्द हुआ। दोनोंके नेत्रोंसे हर्षके कारण अश्रुधारा बह चली। थोड़ी देरके बाद प्रियदर्शनाने चण्डसेनको बतलाया कि यही मेरे पतिदेव हैं। यह सुनते ही चण्डसेनने उठकर बन्धु-दत्तको गलेसे लगा लिया और उसे बड़े आदर सत्कार पूर्वक अपने

पास बैठाया। तदनन्तर प्रियदर्शनाने बन्धुदत्तको चण्डसेनका परिचय कराया और बन्धुदत्तने चण्डसेनका अपने मामासे परिचय कराया। इसके बाद बन्धुदत्त, धनदत्त, और प्रियदर्शना के अनुरोधसे चण्डसेनने शेष आठ बन्दियोंको भी छोड़ दिया।

एक दिन चंडसेनने बन्धुदत्तसे पूछा,—"मुझे इस बातपर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है कि आप पर इतने वार किये गये, फिर भी आपको लगे क्यों नहीं? क्या आपके पास कोई औषधि है या यह किसी मन्त्रका प्रभाव है?" यह सुन बन्धुदत्तने कहा,—"न मेरे पास कोई औषधि है न कोई मन्त्र। यह केवल श्रीपार्श्वनाथके नाम स्मरणका प्रभाव है। इससे बड़ो-बड़ो विघ्नबाधायें दूर होती हैं। खड्गप्रहारका रुकना तो एक साधारण बात है।" यह सुनकर चंडसेनने फिर पूछा,—"पार्श्वनाथ देव कैसे हैं और कहां हैं?" ब्रह्मदत्तने बतलाया कि,—"पार्श्वनाथ भगवानकी इन्द्र और मनेन्द्र सेवा करते हैं। वे सदा छत्र और चामरोंसे सुशोभित रहते हैं। इस समय वे नागपुरोमें विचरण करते हैं। वे अनन्त कोटि जन्मके सन्देह दूर करते हैं। उनके नाम स्मरणसे मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है।" बन्धुदत्तकी यह बातें सुनकर चण्डसेनने पार्श्वनाथके दर्शन करनेके लिये उत्सुकता दिखायी। अतः शीघ्रही बन्धुदत्त अपनी स्त्री, अपने मामा धनदत्त और चण्डसेनको साथ ले नागपुरीके लिये चल पड़ा। नागपुरीमें पहुंच, उन्होंने त्रिभुवन पति पार्श्वनाथके समवसरणमें जाकर प्रभुके दर्शन कर उनका धर्मोपदेश श्रवण किया। इसके बाद

मालूम हुआ कि यह विशाला नगरीसेही आ रहा है अतएव उसने अपने मामा धनदत्तका कुशल समाचार उससे पूछा। पथिकने बतलाया कि,—"धनदत्त इस समय बड़ी विपत्तिमें पड़े हुए हैं। राजाने उन्हें सपरिवार कैदकर जेलखानेमें बन्द कर दिया है।" यह सुन बन्धुदत्तने पूछा,—"क्यों भाई! उन्होंने राजाका क्या अपराध किया था?" पथिकने कहा,—"एक दिन राजा उद्यानसे क्रीड़ा कर नगरकी ओर आ रहा था। उस समय मार्गमें कहीं धनदत्तका पुत्र बैठा हुआ था। कार्यमें व्यस्त होनेके कारण उसने राजाको न देखा और उनको प्रणाम भी न किया। अतएव राजाने इसे उसकी धृष्टता समझ कर उसे कैद कर लिया। इस समय धनदत्त कार्यवश कहीं बाहर गया था। लौटनेपर जब उसने यह समाचार सुना, तब राजासे क्षमा प्रार्थना कर पुत्रको छोड़ देनेका प्रस्ताव किया। राजाने पहले तो इसे मंजूर न किया, किन्तु बहुत कुछ कहने-सुननेपर अन्तमें इस शर्तपर स्वीकार किया कि यदि एक करोड़ रुपये दण्ड स्वरूप देना स्वीकार हो तो वह उसे छोड़ सकता है। धनदत्तने यह शर्त मंजूर कर अपने पुत्रको छुड़ा लिया है; किन्तु इतनी रकम राजाको देना उसके सामर्थ्यके बाहरकी बात थी अतएव घटती हुई रकम लानेके लिये वह अपने भान्जे बन्धुदत्तके यहां गया है।"

पथिककी यह बात सुन बन्धुदत्त अपने मनमें कहने लगा,—"अहो! मेरे कर्मकी गति भी कैसी विचित्र है। मैंने मामाके यहां जानेका विचार किया, तो वहांका मार्ग पहलेसे ही बन्द हो

गया। जिस काममें हाथ लगाता हूँ, उसीमें कोई-न-कोई विघ्न आ ही पड़ता है, अब मैं क्या करूं और कहां जाऊं!" बहुत कुछ सोचनेके बाद बन्धुदत्तने स्थिर किया कि चाहे जो हो, एक बार मामाके यहां चलकर वहांका हाल तो देखना ही चाहिये। इसके बाद जो उचित प्रतीत होगा, वह किया जायगा। यह सोच कर बन्धुदत्त विशाला नगरीकी ओर चल पड़ा। मार्गमेंही उसकी मामासे भेंट हो गयी। दोनों जन प्रेमालिङ्गन कर एक दूसरेको बड़े प्रेमसे मिले। दोनों जनने अपना-अपना दुःख एक दूसरेको कह सुनाया और खेदपूर्वक अपनी अवस्थापर विचार करने लगे। इसी समय बलिदानके लिये दस पुरुषोंकी खोजमें निकले हुए चण्डसेनके आदमी वहां आ पहुंचे और इन दोनोंको पकड़ लिया। इसके बाद और भी आठ मनुष्योंको पकड़ कर वे सबको साथ ले अपने नगरको लौट आये। जब एक महीना पूरा हो चला, तब चण्डसेन अपने मनमें कहने लगा,—"आज महीना पूरा हो जायगा, किन्तु खेद है कि बन्धुदत्तका कहीं पता न चला। खैर, उसका पता चले या न चले, मैंने दस पुरुषोंके बलिदानकी जो मानता की है, उसे तो आज अवश्यही पूरी करूंगा।"

यह सोचकर चण्डसेनने सेवकोंको देवीके सम्मुख उन दसों पुरुषोंका बलिदान करनेकी आज्ञा दे दी। उस समय वे लोग प्रियदर्शनाको भी पुत्रके साथ देवीको प्रणाम करानेके लिये वहां ले गये। प्रियदर्शना देवीको वन्दन कर अपने मनमें सोचने लगी, कि यह कितने दुःखकी बात है कि श्रावक कुलमें जन्म

बन्धुदत्तने भगवानसे पूछा,—"हे भगवन्! किस कर्मसे ब्याह होते ही मेरी छः स्त्रियां मर गयीं और स्वजनोंका वियोग हुआ।" भगवानने कहा,—"यह तेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। सुन—

विन्ध्याचल पर्वतपर शिखरसेन नामक एक जमीन्दार रहता था। वह सदा हिंसामें तत्पर रहता था। उसके चन्द्रावती नामक एक स्त्री थी। शिखरसेन सदा सात व्यसन और पापमें लीन रहता था। उसीके पास एक बार रास्ता भूलकर साधुओंका समुदाय आ पहुंचा। उन्हें देख शिखरसेनने पूछा,—"आप लोग कौन हैं और यहाँ क्यों आये हैं?" मुनिओंने बतलाया कि हमलोग साधु हैं और रास्ता भूलकर यहां आ पहुंचे हैं।" इस समय शिखरसेनकी स्त्रीने उससे कहा,—"नाथ! इन्हें फलाहार कराकर रास्ता बता आइये। यह सुन मुनियोंने कहा,—"हम लोगोंने बहुत दिनोंका वर्ण और गन्धादि रहित फल खाया है, इसलिये हमें अन्न और फलोंकी आवश्यकता नहीं है किन्तु क्षण भरके लिये स्थिर होकर तू हमारी बात सुन ले। इससे तेरा कल्याण होगा।" मुनियोंकी यह बात सुन शिखरसेन उनके पास आ बैठा। मुनियोंने उसे नमस्कार मन्त्र सुनाकर कहा—"इस नमस्कारका निरन्तर स्मरण करना और बिना संग्रामके किसी जीवका घात न करना। यह कह वे मुनिवर वहांसे अन्यत्र चले गये। शिखरसेन उन्हें रास्ता बतला कर अपने घर लौट आया और मुनिओंके आदेशानुसार धर्म-कार्य करने लगा।

एक बार शिखरसेन अपनी स्त्री चन्द्रावतीके साथ नदीमें जल

क्रीड़ा कर रहा था। इसी समय वहां एक सिंह आ पहुंचा और वह उन दोनोंको खा गया। इस प्रकार उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर नमस्कार ध्यानके प्रभावसे वे दोनों सौधर्म देव लोकमें पल्योपमके आयुष्यवाले देव हुए। वह आयु पूर्ण होनेपर शिखरसेनका जीव च्युत होकर महाविदेहकी चन्द्रपुरी नामक नगरीमें कुरु मृगाङ्क राजाका पुत्र हुआ और उसका नाम मीनमृगाङ्क पड़ा। चन्द्रावतीका जीव च्युत होकर भूषण राजाके यहां कन्या रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम वसन्तसेना पड़ा। क्रमशः दोनोंने जब यौवन प्राप्त किया, तब पूर्वजन्मके योगसे उनका ब्याह हो गया और वे सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे। कुरुमृगाङ्क राजाने बहुत दिनोंतक राज किया। अन्तमें वैराग्य आनेपर उसने मीनमृगाङ्कको राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली। मीनमृगाङ्कने अब वसन्तसेनाको अपनी पटरानी बनाया और यौवनसे मदोन्मत्त हो यथेच्छ आनन्द विहार करने लगा। उसे शिकारका व्यसन लग गया और इस व्यसनके कारण उसने अनेक तिर्यञ्चोंका वध कर स्त्री और पुत्रोंसे उनका वियोग कराया। तिर्यञ्चोंके भोगमें इस प्रकार अन्तराय करनेके कारण उसने भोगान्तराय कर्म संचित किया। वृषभ, अश्व और पुरुषोंको भी षंढ बनाकर उसने बहुतसा दुष्कर्म उपार्जन किया। इस प्रकार पाप और व्यसनोंमें परायण हो अन्तमें वह दाह ज्वरसे आक्रान्त हुआ और इसी रोगसे उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर वह रौद्र ध्यानके कारण छठे नरकमें गया। वसन्तसेना पति वियोगके कारण

अग्निप्रवेश कर उसी नरकमें गयी। वहांसे निकल कर दोनों पुष्करवर द्वीपके भरतक्षेत्रमें भिन्न भिन्न दरिद्री कुलोंमें पुत्र और पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुए। पूर्व संयोगके कारण इस जन्ममें भी इन दोनोंका एक दूसरेसे ही व्याह हुआ। एक बार उन लोगोंने कई साधुओंको देखकर उन्हें भक्ति और आदर पूर्वक आहार-पानी दिया। इसके बाद उपाश्रयमें जाकर उन दोनोंने उनका उपदेश सुना और गार्हस्थ्य धर्म ग्रहण किया। इस धर्मके पालनसे मृत्यु होनेपर वे पांचवें ब्रह्मदेव लोकमें देव हुए। वहांसे च्युत होनेपर दोनोंका जीव वणिकोंके यहां पुत्र और पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुआ। वही दोनों तुम हो। हे वन्धुदत्त! तूने तिर्यचोंका वधकर उन्हें वियोग दुःख दिया था इसी लिये तुझे इस जन्ममें वियोग सहना पड़ा। भले बुरे जो कुछ कर्म किये जाते हैं, वे यथा समय उसी रूपमें प्रकट हुए बिना कदापि नहीं रहते।"

पार्श्वनाथ भगवानके मुंहसे यह वृत्तान्त सुन कर बन्धुदत्तको जातिस्मरणज्ञान हो आया। अब उसे पूर्व जन्मकी सारी घटनायें ज्यों-की त्यों दिखने लगी। उसने भगवानके चरणोंमें गिर कर कहा,—"हे भगवन्! आपका कहना यथार्थ है। अब मैं अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें अच्छी तरह देख रहा हूं। यह मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है कि आपके चरण कमलोंको मुझे प्राप्ति हुई। अब मुझे क्या करना चाहिये और क्या स्मरण करना चाहिये यह बतलानेकी कृपा करें।"

भगवानने कहा,—"हे भद्र ! दुर्जनका संसर्ग छोड़कर साधुओंका समागम कर। रात दिन पुण्य कर, सदा संसारकी अनित्यताका स्मरण करता रह, औचित्यका उल्लंघन न कर, सद्गुरुकी सेवा कर, दानादिकमें प्रेम रख। हृदयमें केवल शुभ भावनाओंको ही स्थान दे और सदा अन्तर्दृष्टि रखकर वैराग्यकी भावनाओंपर विचार किया कर। मंगल जप, स्वदुष्कृतकी गर्हा, चारण श्रमणोंको आराधना और पुण्यकार्यकी अनुमोदना कर। परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये चेष्टा कर, अच्छे दृष्टान्तोंका मनन कर और धर्मशास्त्रका श्रवण कर। यही इस संसारमें सारभुत है।"

भगवानका यह उपदेश सुननेके बाद चण्डसेनने पूछा—"भगवन् ! मैं पापी, दुष्ट, दुराचारी, सात व्यसनोंमें आसक्त, चोर और स्त्री लम्पट हूं। बतलाइये, किस प्रकार मेरी शुद्धी हो सकती है ?" जगत् गुरु श्री पार्श्वनाथने कहा,—"हे भद्र ! पापि प्राणी भी पाप कर्मका त्याग कर शुकृत करनेसे शुद्ध होता है। इस सम्बन्धमें श्रेगुप्तका दृष्टान्त मनन करने योग्य है। सुनः—

इस भरतक्षेत्रमें वेजयन्ती नामक एक नगरी है। वहां न्यायी और प्रजापालक नल नामक एक राजा राज करता था। उसकी महीधर नामक एक बनजारेके साथ बड़ी मित्रता थी। महीधरके श्रीगुप्त नामक एक पुत्र था। वह सप्त व्यसनोंमें लीन और बड़ा ही पापी था। वह रोज रात्रिको नगरमें चोरी करता था।

एक बार रात्रिके समय बहुत दुःखित हो महीधर राजाके पास गया। उसे उदास देख कर राजाने पूछा,—"हे भद्र ! आज तू

रहासे क्यों दिखायी देता है? महीधरने एक ठंढी सांस लेकर कहा,—"हे राजन्! किसी दूसरेने कोई दुःख दिया हो, तो वह कहते सुनते भी बनता है, किन्तु जो दुःख अपने ही आप सिर पर आ पड़ता है, वह न तो किसीसे कहते ही बनता है न छिपाया ही जा सकता है।" यह सुन राजाने कहा—"तू मेरा अभिन्न हृदय मित्र है। मुझसे दुःखका हाल बतलानेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये।" महीधरने कहा—"राजन्! क्या कहूं? कुछ कहते सुनते नहीं बनता। आप जानते हैं कि मेरे केवल एक ही पुत्र है किन्तु वह इतना दुराचारी है कि ऐसे पुत्रसे मैं निःसन्तान होना अधिक पसन्द करता हूं। उसने द्यूतादि व्यसनोंमें मेरा पूर्वसंचित समस्त धन नष्ट कर दिया है। उसे कितना ही कहिये, कितना ही समझाइये किन्तु कोई फल नहीं होता। अब तो वह चोरियां भी करने लगा है। अब मैं क्या करूं और यह दुःख किससे कहूं। उसे किसी तरह चुपके ३ इसे उठाया तो सोम नामक वणिकके यहां जाकर चोरी की और उसका सारा धन उड़ा लाया। इसीलिये मैं आपके पास आया हूं। आप मुझे अपराधी समझ कर मेरे पास जो कुछ बचा है, वह ले लीजिये। शास्त्रमें चोर, चोरी करानेवाला, चोरको सलाह देनेवाला, चोरका भेद जाननेवाला, चोरीका माल लेनेवाला, और चोरको भोजन तथा स्थान देनेवाला—इन सबोंको चोर ही कहा गया है।

महीधरकी यह बातें सुन राजाने उसे सान्त्वना दे विदा किया और कहा कि सुबह जो होगा सो देखा जायगा।" सुबह नित्य

कर्मसे निवृत्त हो राजा ज्योंही राज-सभामें पहुँचा त्योंही नगर निवासी हा हा कार करते हुए वहां आ पहुँचे। राजाके पूछने पर उन्होंने चोरीका सारा हाल कह सुनाया और कहा कि हम लोगोंकी सब मिला कर पचीस हजार स्वर्ण मुद्रायें चोरी गयी हैं। यह सुनकर राजाने तुरत अपने भण्डारसे रकम देकर उन लोगोंको विदा किया। उन लोगोके चले जाने पर राजाने कोतवालको उलाहना दे श्रीगुप्तको उसी समय बुला भेजा। उसके आनेपर राजाने आक्षेपपूर्वक कहा—"तूने रातको जो धन चुराया है, वह सब इसी समय लाकर उपस्थित कर। यह सुन श्रीगुप्तने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि—"राजन्! आप यह क्या कह रहे हैं? हमारे कुलमें ऐसा कुकर्म होही नहीं सकता।" राजाने क्रुध होकर कहा,—"यदि तूने चोरी नहीं की तो तुझे अपनी सफाई देनी होगी।" यह सुन श्रीगुप्तने कहा—"मैं इसके लिये हर वक्त तैयार हूं।"

श्रीगुप्तकी यह बात सुन राजाने लोहेका एक गोला गरम करवाया और श्रीगुप्तको उसे उठानेकी आज्ञा दी। श्रीगुप्तको अग्नि स्तम्भनका सिद्ध मन्त्र मालूम था। इसलिये उसने वह मन्त्र स्मरण कर उस गोलेको हाथमें उठा लिया। मन्त्रके प्रभावसे हाथोंका जलना तो दूर रहा, उसे गरम आंचतक न लगी। इससे उसकी निर्दोषिताका प्रमाण समझ कर, लोग उसकी जय-जयकार करने लगे। श्रीगुप्त भी गर्वपूर्वक बड़े आडम्बरके साथ अपने घर चला गया।

यह घटना देखकर राजाको बड़ा ही आश्चर्य और दुःख

हुआ। वह अपने मनमें सोचने लगा—"श्रीगुप्तने लोहेका गोला उठाकर अपनेको निर्दोष प्रमाणित कर दिया। अब तो लोग यही कहेंगे कि मैंने उसे मिथ्या कलंक लगाया था। मुझे इस मामलेमें नीचा देखना पड़ा—मेरा अपमान हुआ। ऐसी अवस्थामें जीवित रहनेसे ही क्या लाभ होगा?" यह सोचकर उसने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—"श्रीगुप्तने तो अपनेको निर्दोष प्रमाणित कर दिखाया। मैं झूठा सिद्ध हुआ इसलिये अब जो सजा चोरको देनी चाहिये, वह मैं अपने आपको दूंगा। मुझे अब इस राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप लोग जिसे चाहें उसे गद्दीपर बैठाइये और जो अच्छा लगे सो कीजिये।" राजाका यह वात सुन मन्त्रियोंने उसे बहुत समझाया बुझाया, किन्तु कोई फल न हुआ। राजाने कहा—"मैंने जो कुछ कहा है, वह बहुत सोच समझ कर कहा है। आप लोग अब शीघ्रही चन्दनकाष्टकी एक चिता तैयार करें। उसीमें प्रवेश कर मैं अपना प्राण दे दूंगा।"

समूचे नगरमें यह समाचार विद्युत वेगसे फैल गया। महीधरके कानमें यह बात पड़ते ही वह राजाके पास दौड़ आया और कहने लगा—"हे राजन्! आप यह क्या कर रहे हैं? आपका यह कार्य बहुतही अनुचित है। अनुचित कार्य करनेसे सदा अहित ही होता है। इस अनर्थका वास्तविक कारण तो मैं हूं। यदि किसीको दण्ड ही देना हो तो मुझे दीजिये!"

राजाने कहा—"नहीं, मित्र! तूने मुझसे जो कहा था उसमें मुझे लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। किन्तु श्रीगुप्तने लोहेका गोला

उठाकर अपनेको सच्चा और मुझको झूठा प्रमाणित कर दिया है। इस प्रकार कलंकित होकर जीनेकी अपेक्षा मैं मृत्युको भेंटना ही अच्छा समझता हूं।"

महीधरने कहा—"राजन्! मैंने आपसे जो बात कही है, वह बिलकुल ठीक है। वह कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती किन्तु मैं समझता हूं, कि श्रीगुप्तने अपनेको निर्दोष प्रमाणित करनेमें अवश्य किसी युक्तिसे काम लिया है—अवश्य इसमें कोई रहस्य छिपा हुआ है।"

मन्त्रियोंने भी महीधरकी इस बातका समर्थन किया। उन्होंने कहा—"सम्भव है कि श्रीगुप्तने मन्त्रके बलसे अग्नि-स्तम्भन कर दिया हो।" यह सुन मतिसागर नामक मन्त्रिने कहा—"यदि ऐसी ही बात है, तो हम लोगोंको इस सम्बन्धमें जांच करनी चाहिये। रथनुपुर नामक नगरमें एक विद्याधर रहता है। वह बड़ा ही सिद्ध है। उसे बुलाकर पूछनेसे अवश्य ही सारा रहस्य मालूम हो जायगा।

मन्त्रियोंकी इस बातसे राजा सहमत हो गया। इसलिये मतिसागर मन्त्रिने तुरत उस विद्याधरको बुला भेजा। उसके आनेपर उससे यह सब हाल कहा गया। उसने सुन कर राजासे कहा—"हे राजन्! आप श्रीगुप्तको फिर लोहेका गोला उठानेकी आज्ञा दें। मैं दूसरेकी विद्याको स्तम्भन करनेवाली विद्या जानता हूं। यदि उसने किसी मन्त्र तन्त्र या विद्याके प्रभावसे यह चमत्कार दिखलाया होगा, तो अवश्य ही इस

बार उसे निष्फलता प्राप्त होगी।" विद्याधरकी यह बात सुन राजाने पुनः श्रीगुप्तको बुलाकर लोहेका गोला उठानेकी आज्ञा दी। श्रीगुप्त तुरत इसके लिये तैयार हो गया, किन्तु इस बार ज्योंहीं उसने वह गोला उठाया, त्योंहीं उसके दोनों हाथ जल गये। यह देखकर लोग श्रीगुप्तको धिक्कारने लगे और राजाकी जय पुकारने लगे।

अनन्तर राजाने श्रीगुप्तसे पूछा कि—"तूने पहले यह चमत्कार कैसे कर दिखाया था?" श्रीगुप्तने अब झूठ बोलनेमें कोई लाभ न देखकर राजाको सच्चा हाल बतला दिया। इसके बाद राजाने उससे चोरीका सारा धन छीन लिया, और उसे मित्रका पुत्र समझ कर प्राण दण्डकी सजा न देकर अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया।

श्रीगुप्त इस प्रकार निर्वासित हो इधर उधर भटकने लगा। एक बार वह भटकता हुआ रथनूपुर नगरमें जा पहुंचा। वहां उसने उस मंत्रवादी सिद्ध विद्याधरको देखा। उसे देखते ही उसके हृदयमें प्रति हिंसाकी भयंकर ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। उसने उसे अपनी इस अवस्थाका मूल कारण और अपना शत्रु समझ कर उसे मार डालना स्थिर किया और एक दिन अवसर मिलते ही इस विचारको कार्य रूपमें परिणत कर डाला; किन्तु दुर्भाग्यवश, ज्योंहीं वह उसे मारकर भागने लगा। ज्योंहीं नगर निवासियोंने उसे पकड़ कर कोतवालके सिपुर्द कर दिया। कोतवालने उसे राजाके सम्मुख उपस्थित किया और राजाने उसी

समय उसे प्राणदण्डकी सजा दे दी। अनन्तर राजाके आदेशानुसार वधिक गण उसे नगरके बाहर ले गये और उसके गलेमें फांसी डाल, उसे एक वृक्षकी शाखामें लटका कर लौट आये।

कंठ पाशसे पीडित श्रीगुप्त कभी आकाशकी ओर ताकता और कभी पृथ्वीकी ओर। वह अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियां गिन रहा था। इसी समय आयुष्य बलसे उसके गलेका पाश टूट गया और वह पृथ्वीपर आ गिरा। शीतल पवनके झकोरे लगनेपर जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई और वह कुछ सावधान हुआ, तब वहांसे उठकर शीघ्र ही एक ओर भाग गया। भागते भागते वह एक जङ्गलमें जा पहुंचा। वहां उसे किसीकी मधुर ध्वनि सुनायी दी। अतः उसने इधर उधर देखा तो एक स्थानमें एक मुनि स्वाध्याय करते हुए दिखायी दिये। भयके कारण वह एक वृक्षकी आडमें छिप रहा और वहींसे कान लगा कर मुनिकी स्वाध्याय ध्वनि सुनने लगा। सुनते सुनते उसके हृदयमें शुभ भावना जागृत हुई। वह अपने मनमें कहने लगा—"एक यह महानुभाव हैं, जो संयमकी साधना कर रहे हैं और एक मैं हूं जो रात दिन दुराचार, दुष्टता, पाप और व्यसनोंमें ही लीन रहता हूं। न जाने मेरी कौन गति होगी?" यह सोच कर वह मुनिके पास गया और उन्हें वन्दन कर, उनके पास बैठ गया।

उस समय मुनि पाठ कर रहे थे, पाठसे निवृत्त हो, उन्होंने श्रीगुप्तसे कहा—"हे भद्र! तूने तो अभी पाप वृक्षका पुष्पही भोग किया है, कटु फल तो तुझे अब भोगने पड़ेंगे। तू यह वृथा पाप

क्यों कर रहा है? नरकके पीड़न, ताड़न, तापन और विदारण प्रभृति कष्ट तू कैसे सहन करेगा? इन पापोंका फल तुझे बहुत दिनों तक भोग करना ही पड़ेगा।

श्रीगुप्तने पूछा—"भगवन्! क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मैं इन कष्टोंसे छुटकारा पा सकूं?" मुनिने कहा—क्यों नहीं? किन्तु इसके लिये तुझे कुछ चेष्टा करनी होगी।" श्रीगुप्तने कहा—"आप जो कहें, वह मैं करनेको तैयार हूं।" मुनिने कहा—अच्छा, मैं बतलाता हूं ध्यानसे सुन। यदि वास्तवमें तू इन कष्टोंसे मुक्ति लाभ करना चाहता है, तो हिंसा, चोरी और व्यसनोंको सर्वथा त्याग दे और श्री शत्रुंजय तीर्थकी सेवा कर। वहां श्रद्धापूर्वक दान, तप और ध्यान करनेसे बड़ाही लाभ होता है और सारे पाप विनाश हो जाते हैं। वहां रह कर प्रति वर्ष सात छट्ठ और दो अट्ठम कर, पारणके दिन सचित्तका त्याग कर एकाशन करना चाहिये। इस प्रकार बारह वर्ष पर्यन्त तप करनेसे कोटि जन्मके भी पाप विलय हो जाते हैं।"

मुनिकी यह बात सुन श्रीगुप्तने कहा—"भगवन्! मैं अवश्यही आपके आदेशानुसार आचरण करूंगा।" इसके बाद वह मुनिको वन्दन कर वहांसे शत्रुंजय पर्वतके लिये चल पड़ा। वहां पहुंचने पर उसने बारह वर्ष पर्यन्त तप कर अपने आत्माको निर्मल किया। अनन्तर वह गिरिपल्लीपुरमें अपने मामाके यहां गया। किसी तरह यह बात उसके पिताको मालूम हो गयी अतएव वे उसे बुलाने आये। पुत्रको देखते ही उन्हें रोमाञ्च हो आया।

उन्होंने श्रीगुप्तको गले लगा कर कहा—"हे वत्स! आज तुझे वर्षोंके बाद देखकर मेरा हृदय बल्लियों उछल रहा है। तुझे देख कर आज मेरा सारा दुःख दूर हो गया। अब तू मेरे साथ घर चल। मैं अब तुझे अपनी इस वृद्धावस्थामें आंखोंसे ओट न होने दूंगा।"

पिताकी यह बातें सुन कर श्रीगुप्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। उसने कहा—"पिताजी! मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया। अपने पिछले कर्मोंके लिये अब मुझे बड़ा ही पश्चाताप हो रहा है। उन्हीं कर्मोंके कारण मैं दरदर भटकता फिरा और न जाने कितने कष्ट उठाये। खैर, अब मैं वैसे कर्म कदापि न करूंगा। गुरुके आदेशानुसार मैंने शत्रुंजय तीर्थ पर बारह वर्ष तपस्या कर पूर्व पापोंका प्रायश्चित भी कर लिया है और अब मैं यथा नियम जैन धर्मका पालन कर रहा हूं।"

पुत्रकी यह बातें सुन महोधरको बड़ाही आनन्द हुआ। उसी समय वह श्रीगुप्तको अपने साथ घर लिवा ले गया। वहां पहुंच कर उसने सर्व प्रथम राजाको सारा हाल कह सुनाया। इससे राजाने अपनी पूर्व आज्ञा वापस ले ली और श्रीगुप्तको नगरमें रहनेकी आज्ञा दे दी। अब श्रीगुप्त सानन्द वहां रह कर सामायिक, आवश्यक (प्रति क्रमण) और पौषध आदि धर्म कार्य करने लगा। इसी तरह कई वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीचमें श्रीगुप्तकी यथेष्ट ख्याति भी हो गयी।

एक दिन श्रीगुप्त सुबहके वक्त सामायिक कर नमस्कारका

स्मरण कर रहा था, इतनेमें पूर्वजन्मके मित्र किसी देवने आकर उससे कहा—"हे श्रीगुप्त ! अब तू विशेष धर्म कर, क्योंकि आजके सातवें दिन तेरी मृत्यु होगी। यह कह वह देव चला गया। श्रीगुप्तने उसकी बातसे सावधान हो, उसी दिन जिनेश्वरकी पूजाकर चारित्र ग्रहण किया और रातदिन अनशन पूर्वक नमस्कार मंत्रके स्मरणमें लीन रहने लगा। ठीक सातवें दिन उसकी मृत्यु हो गयी और वह स्वर्ग सुखका अधिकारी हुआ। क्रमशः अब उसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

हे चण्डसेन! महा पापी प्राणी भी इस प्रकार पापका त्याग कर और ध्यान, दान तथा तप द्वारा सद्गति प्राप्त करता है। यह संसार असार है। इसमें रहनेवाले सभी जीव स्वार्थ परायण ही होते हैं। विचार करनेपर मालूम होता है कि इस संसारमें कोई किसीका नहीं है। वास्तवमें संसार सुख मधुबिन्दुके समान है।

चण्डसेनने पूछा—"हे स्वामिन्! मधुबिन्दु समानसे क्या तात्पर्य है? भगवानने कहा, सुन :—

एक मनुष्य जङ्गलमें रास्ता भूल जानेके कारण इधर उधर भटक रहा था। इतनेमें उसे एक जंगली हाथीने देख लिया। देखते ही वह उसे मारने दौड़ा। अपनी ओर आते देखकर वह मनुष्य प्राण लेकर भगा। किन्तु वह जिधर जाता, उधर ही हाथी उसके पीछे लगता। इससे वह मनुष्य बहुत ही घबड़ाया। अन्तमें कोई उपाय न देख, वह एक वट वृक्षपर चढ़ गया और उसकी एक जटा पकड़ कर लटक रहा। इस जटाके नीचे एक पुराना कुआं था। उस

कुएंमें दो अजगर और चार भयंकर सर्प मुंह फैलाये बैठे हुए थे। जटाके ऊपर मधुमक्खियोंका एक छत्ता था। यहांसे मक्खियां उड़ उड़कर उस मनुष्यको काटती थीं। किन्तु इतनेहीसे उसकी विपत्तियोंका अन्त न आता था। एक ओर वह जिस जटामें लटका था उसे सफेद और काले रंगके दो चूहे काट रहे थे और दूसरी ओर वह हाथी उस वृक्षको जड़ मूलसे उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा कर रहा था। इस प्रकार वह मनुष्य सब तरहसे अपनेको विपत्तिमें फँसा हुआ पाता था। अब वह धीरे-धीरे जटाके सहारे कुछ नीचे सरक कर उसी कुएंमें लटक पड़ा। मधुमक्खियोंके छत्तेसे शहद टपककर उसके मुंहमें गिरने लगा, इसलिये वह मनुष्य उसीके आस्वादनमें सुख मानकर उसी ओर ताका करता और मधुबिन्दुके टपकनेकी राह देखा करता था। मधुके रसास्वादनमें वह इस प्रकार तन्मय हो गया कि उसे किसी विपत्तिका ध्यान तक न रहा। उसी समय एक विद्याधर विमानमें बैठकर उधरसे कहीं जा रहा था, उसने उसकी यह अवस्था देख दयार्द्र हो कहा —"भाई! तू आकर मेरे विमानमें बैठ जा, ताकि तुझे इन सब विपत्तियोंसे छुटकारा मिल जाय।" यह सुन उस मनुष्यने कहा— "जरा ठहरिये, मधुका एक बूंद मेरे मुंहमें और आ पड़ें, तब मैं चलूं।" यह सुन विद्याधरने कहा,—"मैं अब ठहर नहीं सकता। मुझे यह देखकर बड़ा ही दुःख हो रहा है कि तू स्वादके पीछे इस प्रकार अन्धा हो गया है कि तुझे आसपासके खतरोंका लेशमात्र भी ध्यान नहीं है। इसे छोड़ दे, अन्यथा तू बड़ाही दुःखी होगा।"

विद्याधरके इतना कहनेपर भी उस मनुष्यको चेत न हुआ, फलतः वह उसे उसी अवस्थामें लटकता छोड़, वहांसे चला गया।

यह दृष्टान्त वास्तवमें बड़ा ही रहस्यपूर्ण है। अरण्यसे इस संसारका तात्पर्य है। हाथी मृत्यु है, जो निरन्तर प्राणियोंके पीछे पड़ी रहती है। जन्म, जरा और मृत्यु ही वह कूप है। उसके जलको आठ कर्म समझना चाहिये। दो अजगरोंका तात्पर्य नरक और तिर्यञ्चकी गतिसे है। चार कषायोंको चार भयंकर सर्प कहा गया है। वटवृक्षकी जटा—आयु है। श्वेत श्याम चूहे कृष्ण और शुक्ल पक्ष हैं। मक्खियोंका काटना विविध रोग, वियोग और शोकादिका सूचक है। मधुबिन्दुका स्वाद विषय सुख समझिये। विद्याधरको परोपकारी गुरु और विमानको धर्मोपदेश समझना चाहिये। ऐसे अवसरपर जो प्राणी धर्म करता है वही इस संसारके दुःखसे छुटकारा पा सकता है।"

भगवानका यह उपदेश सुनकर चण्डसेनके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ। इसके बाद बन्धुदत्तने पुनः भगवानसे पूछा,—"स्वामिन्! अब हमारी क्या गति होगी?" यह सुन भगवानने कहा—"तुम दोनों व्रत ग्रहण कर सहस्रार देवलोकमें देव होगे। वहांसे च्युत होकर तू महाविदेहमें चक्रवर्ती होगा और चण्डसेन तेरी पत्नी बनेगा। वहां सांसारिक सुख भोगनेके बाद तुम लोग दीक्षा लेकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करोगे।" इस प्रकार भगवानके मुंहसे सारी बातें सुनकर बन्धुदत्तने स्त्री और चण्डसेनके साथ चारित्र ग्रहण किया और तीनों जन निरतिचार पूर्वक उसका पालन करने लगे।

बाह्य परिवारका त्याग कर उन्होंने शास्त्राध्ययनको अपना पिता, जिन भक्तिको जननी, विवेकको बन्धु, सुमतिको भगिनी, विनयको पुत्र, संतोषको मित्र, शमको भवन और अन्यान्य गुणोंको अपना सम्बन्धी बनाया। इस प्रकार अन्तरंग परिवारका आश्रय ग्रहण कर पवित्र चारित्रका पालन करते हुए, अन्तमें वे सहस्रार नामक देवलोकमें देवता हुए। इस प्रकार भगवानने उन तीनों का उद्धार किया।

लूरा नामक गांवमें अशोक नामक एक माली रहता था। वह सदा पुष्पोंका क्रय विक्रय किया करता था। एक बार उसने गुरुमुखसे सुना कि जिनेश्वरके नव अंगोंकी नव पुष्पोंसे पूजा करनेपर मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है। तबसे वह नित्य इसी प्रकार पूजा करने लगा। इस पूजाके प्रभावसे वह उस जन्ममें महर्द्धिक हुआ और दूसरे जन्ममें भी नव कोटिका स्वामी हुआ। इस प्रकार सात जन्मके बाद आठवें जन्ममें वह नव लाख गावोंका और नवें जन्ममें नव करोड़ गावोंका राजा हुआ। अनन्तर पार्श्वप्रभुसे अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तान्त सुन कर उसने दीक्षा ले ली और अन्तमें मोक्षका अधिकारी हुआ। इसी तरह भगवानने अनेक जीवोंका उद्धार किया।

प्रभुका परिवार—सोलह हजार साधु, २८ हजार साध्वी, एक लाख चौंसठ हजार श्रावक, तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाय, ३५७ चौदपूर्वी, १४०० अवधिज्ञानी, ७५० केवली और

१००० वैक्रिय लब्धिधारी—केवलज्ञान प्राप्त होनेके बाद भगवान-का इतना परिवार हुआ था।

दीर्घकाल तक विहार करनेके बाद जब भगवानको अपना निर्वाण काल समीप दिखायी दिया, तब वे समेत शिखरपर चले गये। इस पर्वतको अजितनाथ प्रभृति तीर्थंकरोंका सिद्धिस्थान समझ कर भगवानने यहीं निवास कर अनशन आरम्भ किया। इस समय अनेक देवता भगवानकी सेवा करते थे और अनेक किन्नरियां उनका गुणगान कर रही थीं। इन्द्रोंका आसन भी चलायमान हो उठा। उसी समय वे भगवानके पास आये और उन्हें वन्दन कर उदासीन हो उनके पास बैठ गये। श्रावण शुक्ला अष्टमीको विशाखा नक्षत्रमें भगवानने पहले मन वचनके योगका निरोध किया। यह देख अन्याय तेंतीस मुनियोंने भी उनका अनुकरण किया। क्रमशः भगवानने शुक्ल ध्यान करते हुए पंच ह्रस्वाक्षर प्रमाण कालका आश्रय कर समस्त कर्मोंको क्षीण करते हुए संसारके समस्त दुःख और मलोंसे रहित हो अचल, अरुज, अक्षय, अनन्त और अव्याबाध मोक्षपद प्राप्त किया। इस समय तेतींस मुनियोंको भी उन्हींके साथ अक्षपदकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार भगवानने तीस वर्ष गृहस्थावस्थामें और सत्तर वर्ष व्रतोंकी अवस्थामें व्यतीत कर सौ वर्षकी आयु पूर्ण की।

इसके बाद शक्रेन्द्रने भगवानके शरीरको क्षीर समुद्रके जलसे स्नान कराया और गोशीर्ष चन्दनसे लिप्त कर दिव्य भूषणोंसे विभूषित किया। अन्यान्य इन्द्रोंने उसे देवदूष्य वस्त्रसे ढक दिया

और वे सब वहीं बैठ गये। इसी तरह अन्यान्य देवताओंने मुनियोंको भी स्नानादिक कराया। इसके बाद सुगन्धित जल और पुष्पोंको वृष्टि करते हुए गीत, नृत्य, वाद्य और स्तुतिपूर्वक देव-देवियोंने उनका पूजन किया।

पूजन हो जानेपर दो शिबिकायें-पालखियें बनायी गयीं। उनमें भगवान तथा समस्त मुनिओंके शरीरको स्थापित कर, इन्द्रने भगवानकी और अन्यान्य देवताओंने मुनिओंकी शिबिका अपने कन्धोंपर उठायी। कुछ देवताओंने चन्दन और अगरकाष्टकी चिता पहलेसे ही तैयार कर रक्खो थी। उसीपर भगवान और मुनियों-के शरीर रख दिये गये। इसके बाद अग्निकुमार देवताओंने अग्नि रख दी और वायुकुमार देवताओंने वायु चला कर भगवान और मुनियोंके शरीरका अग्निसंसकार किया।

जिनेश्वरकी अस्थियोंको छोड़, जब शेष सभी धातु जल गयीं तब मेघकुमार देवताओंने क्षीरसमुद्रके जलसे चिताको बुझा दिया। इसके बाद भगवानकी भक्तिसे प्रेरित होकर शक्र और ईशानेन्द्रने ऊपरको दो दाढें ली। चमर और बलींद्रने नीचेकी दो दाढें ले ली। अन्यान्य इन्द्रोंने दांत लिये, देवताओंने अस्थिया ली और मनुष्योंने भस्मादिक पदार्थ ग्रहण किये। इसके बाद उस स्थान पर रत्नमय एक स्तूप बना कर समस्त देवता और इन्द्र नन्दीश्वरद्वीप गये। वहां शाश्वत जिन प्रतिमाके सम्मुख अट्ठाई महोत्सवकर सब लोग अपने-अपने अस्थानको चले गये। इसके बाद इन्द्रोंने अपने अपने विमानमें जाकर यत्नके साथ उन दाढोंको रख दिया। अब वे प्रति-

दिन इनकी पूजा करने लगे। इसके प्रभावसे सर्वत्र उन्हें विजय और मंगलकी प्राप्ति होती थी।

इस प्रकार पार्श्वनाथ भगवानने अगणित जीवोंका उद्धार कर अपनी इहलोक लीला समाप्त की। आज उनका नश्वर शरीर इस लोकमें न होने पर भी उनके स्वर्णोपदेश—उनके वे उपदेश जिनके श्रवण और मननसे हजारों प्राणियोंने पाप मुक्त हो मोक्ष लाभ किया है—हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। आओ, हमलोग भी एकाग्रचित्तसे उनका मनन करें, उन्हें कार्य रूपमें परिणत करें और क्रमशः मोक्ष-सुखके अधिकारी बनें। अस्तु।

※ समाप्त ※
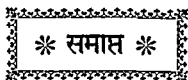
मुद्रक—
शेख कमरुद्दीन, कमर प्रेस—५, चीतपुर स्पर कलकत्ता।

उत्तमोत्तम पुस्तकें पढ़िये!

यपि आप हिन्दी जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम सचित्र और सस्ती पुस्तकें पढ़कर आनन्द अनुभव करना चाहते हैं, यदि आप अपने बालक-बालिकाओंको सुशिक्षित एवं सच्चरित्र बनाना च. , तो एक रुपया अग्रिम भेजकर हमारी आदिनाथ हिन्दी जैन साहित्य-मालाके स्थायी ग्राहक जरूर बनिये।

विशेष विवरण जाननेके लिये 'माला' की नियमावली और पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्तमें निम्नलिखित पतेपर आज ही मंगाइये।

पता—पण्डित काशीनाथ जैन।

मु० बंबोरा, पोष्ट—भीण्डर (नीमच-मेवाड़)

आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्यमालाकी

नियमावली

(१) उक्त नामकी साहित्यमालाका स्थान इस समय चंदेरिया—मेवाड़ तथा २०१ हरिसन रोड कलकत्तामें रहेगा।

(२) इस साहित्यमालाके अध्यक्ष पण्डित काशीनाथजी जैन रहेंगे, तथा इसके लाभ-हानिके जिम्मेवार भी यही होंगे।

(३) साहित्यमालाकी पुस्तकोंको मुद्रित करनेके लिये "आदिनाथ प्रेस" रहेगा जो कि ५०००) पांच हजार रुपयेके लागत मूल्यका होगा, यह इसकी स्थायर सम्पत्ति समझी जायगी तथा आज तक अध्यक्ष महोदयकी ओरसे बीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, उन पुस्तकोंका सम्बन्ध भी इसी साहित्यमालासे रहेगा और यह इसीकी सम्पत्ति मानी जायगी।

(४) साहित्यमालाकी ओरसे प्रतिवर्ष ८०० अथवा १००० पृष्ठके साहित्यकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करेंगी। जिनका मूल्य ६ रुपयेसे ७॥) रुपये तक रखा जायगा।

(५) पुस्तकोंका आकार डबल क्राउन सोलह पेजीके समान जो कि हमारा आदिनाथ-चरित्र तथा छोटी-छोटी पुस्तकें छप चुकी हैं, उनके अनुसार रहेगा।

(६) साहित्यमालाकी ओरसे जितनी पुस्तकें प्रकाशित [हु]आ करेंगी, उनमें गंदी, अश्लील तथा सांप्रदायिक खण्डन-मण्डनके विषयकी अथवा गच्छ सम्बन्धी चर्चाओंकी कोई पुस्तक प्रकाशित न की जायगी।

(७) इस साहित्यमालामें जो पुण्यशाली, साहित्यप्रेमी सज्जन एक मुश्त ५००० पांच हजार रुपैये देकर सहायता करेंगे वे साहित्यमालाके मानमीय "संरक्षक" माने जाँयगे। एतदर्थ उनके सम्मानके निमित्त साहित्यमाला अपनी ओरसे प्रकाशित हर एक पुस्तकमें संरक्षक महोदयका चित्र यानी फोटो देती रहेगी। तथा उनकी सेवामें प्रत्येक पुस्तककी तीन तीन प्रतियें भेंट दिया करेगी।

(८) जो धर्मात्मा सज्जन एक मुश्त दो हजार रुपैये प्रदान कर सहायता पहुंचायेंगे वे साहित्यमालाके "सहायक" समझे जांयगे। इसके उपलक्ष्यमें साहित्यमाला अपनी ओरसे प्रकाशित सभी पुस्तकोंके मुखपृष्ठ पर सहायक सज्जनका शुभनाम अंकित किया करेगी। तथा हर एक ग्रन्थकी दो-दो प्रतियें उनकी सेवामें उपहार दिया करेगी।

(९) जो साहित्य प्रेमी सज्जन इस साहित्यमालामें एक बार १००) रुपैये प्रदान करनेकी कृपा करेंगे, वे "आजीवन समासद" समझे जायँगे और उनके शुभनाम साहित्यमालाकी हर एक पुस्तकमें प्रकाशित हुआ करेंगे। एवं प्रतिवर्ष ८०० या १००० पृष्ठके साहित्यकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करगी जिनका मूल्य ६)

रुपैयेसे ७॥) रुपैये तकका होगा, यह उनको उपहार प्रदान की जायगी

(१०) जो सज्जन हमारे कार्यालयमें आकर या पोष्ट मनिआर्डर द्वारा १) रुपैया पेशगी जमा करवा देंगे, वे इस साहित्यमालाके "स्थायी ग्राहक" बन सकेंगे। प्रतिवर्ष ६) रुपैयेसे ७॥ साढ़ेसात रुपयेके मूल्यकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करेंगी, जिनकी एक-एक प्रति क्रमशः उनकी सेवामें पौने मूल्यसे वि० पी० पार्सल द्वारा भेजी जायगी। अगर एक प्रतिसे अधिक मंगवायेंगे तो उसके दाम पूरे लिये जायेंगे।

(११) संरक्षक, सहायक, आजीवन समासद, और स्थायी ग्राहक जो बाहर गांवके होंगे, उनको पुस्तकोंके भेजनेका डाक खर्च लगेगा, यह उन्हीं सज्जनोंके जिम्मे रहेगा।

ध्यानसे पढ़िये।

पुण्य और कीर्ति उपार्जन कर अपना नाम अमर कीजिये।

हमारे कार्यालय से प्रति वर्ष जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम छोटी-मोटी सात-आठ पुस्तकें प्रकाशित हुआ करेंगी। जिनमें सरल, शुद्ध हिन्दी भाषा रहेगी। एवं उत्तमोत्तम भावपूर्ण मनोहर चित्र भी निवेशित किये जायेंगे। जिनके देख जानेसे पुस्तकोंका सारा विषय बायस्कोपकी तरह आंखोंके सामने घूमने लगेगा। अतएव किसी साहित्यानुरागी धर्म-प्रेमी जैन बन्धुको अपने माता, पिता, भाई, बहिन प्रभृतिके स्मणार्थ ज्ञान-प्रचारके कार्यमें कुछ भी रकम लगाकर पुण्य प्राप्त करना हो तो हमारी प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंमें, जिसको वे पसन्द करेंगे, उसमें उनका नाम तथा फोटो-चित्र देकर जैन समाजमें साधर्मिक बन्धुओंको उपहार-भेंट देनेको व्यवस्था कर उनकी मनोकामना पूर्णकर दी जायगी। आशा है, हर एक जैन बन्धु हमारे निवेदनकी ओर लक्ष देकर इस व्यवस्थासे लाभ ग्रहण करते हुए हमें अनुग्रहीत करेंगे।

पता—पण्डित काशीनाथ जैन।

अध्यक्ष—आदिनाथ हिन्दी-जैन साहित्यमाला।

मु०° बंबोरा, पोष्ट भोण्ड (नीमच-मेवाड़)